शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार

Psychological Bases of Education

MAED-102

इकाई सं०	इकाई का नाम	पृष्ठ सं०
01	मनोविज्ञान का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अर्थ तथा शिक्षा से सम्बन्ध Meaning of Psychology in Historical Perspective and Its Relation with Education	1-11
02	शिक्षा मनोविज्ञानका अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र Educational Psychology:- Meaning , Nature and Scope	12-29
03	मानव विकास:- मानव विकास की अवस्थायें Human Development :- Stages of Human Development	30-46
04	ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त एवम इसका शैक्षिकनिहितार्थ Jean Piaget's Theory of Cognitive Development and Its Educational Implications	47-62
05	लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास का सिद्वान्त तथा इसका शैक्षिक निहितार्थ Lawrence Kohlberg's Theory of Moral Development and Its Educational Implications	63-82
06	जिरोम एस0 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त एवं इसका शैक्षिक निहितार्थ Jerome S. Bruner's Theory of Cognitive Development and Its Educational Implications	83-102
07	सीखना या अधिगम: प्रत्यय , अधिगम के सिद्धांत Learning: Concept, Theories of Learning	103-129
08	गेस्टाल्ट मनोविज्ञान, अधिगम के संज्ञानात्मक सिद्धान्त तथा उनके शैक्षिक निहितार्थ Gestalt Psychology, Cognitive Theories of Learning and their Educational Implications	130-148
09	गेने की सीखने की दशायें, मैसलो का सीखने का मानवीय मनोविज्ञान Gagne's Conditions Of Learning, Maslow's Humanistic Psychology Of Learning	149-168
10	स्नायु विज्ञान के क्षेत्र में सम्पन्न शोध कार्यो के परिणामों के शैक्षिक निहितार्थ Educational Implications of Research Findings from the field of Neuro Science	169-184
11	बुद्धि :- परिभाषा, से बुद्धि के सम्बन्ध में अध्ययन के प्रयास एवं बुद्धि मापन 1904 Intelligence: definitions, efforts made since 1904 to understand and measure intelligence.	185-211
12	बुद्धि के सिद्धान्त Theories of Intelligence	212-224
13	भावात्मक बुद्धि:- अर्थ, आयाम तथा महत्व Emotional Intelligence: - Meaning, Dimensions and Significance	225-242

14	बुद्धि परीक्षण Intelligence Tests	243-272
15	व्यक्तित्व का अर्थ, विकास तथा व्यक्तित्व के सिद्धान्त Personality: Concept and development, Theories of Personality	273-290
16	व्यक्तित्व विकास में प्रभावी कारक	291-312
17	व्यक्तित्व मापन की विधियाँ Assessment of Personality: Techniques	313-333
18	सृजनात्मकता Creativity	334-349
19	अभिप्रेरणा: परिभाषाएं, सिद्धान्त तथा अधिगम पर प्रभाव,अधिगमकर्ता को अभिप्रेरित करने में शिक्षक की भूमिका Motivation –Definitions and Theories, Impact on Learning. Role ofTeacher in Motivating the Learners	350-371
20	समायोजन:- अर्थ एवं प्रक्रिया, सुमायोजित तथा कुसमायोजित के लक्षण, समायोजन के निर्धारक, समायोजन की विधियाँ अध्यापकों तथा परिवार के दायित्व Adjustment- meaning and process, characteristics of an adjusted and maladjusted person. Determinants of Adjustment, Techniques of Adjustment, Role of teachers and family.	372-388

इकाई-1 मनोविज्ञान का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अर्थ तथा शिक्षा से सम्बन्ध

Meaning of Psychology in Historical Perspective and Its Relation with Education

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मनोविज्ञान का विकासः ऐतिहासिक परिदृश्य
1.4 मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र
1.5 मनोविज्ञान के सम्प्रदाय
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भग्रन्थ
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हमने मनोविज्ञान के विकास के क्रमिक ऐतिहासिक परिदृश्य का अवलोकन किया कि दर्शनशास्त्र का अंग मनोविज्ञान पहले आत्मा का विज्ञान रहा है फिर यह मस्तिष्क के विज्ञान के रूप में परिवर्तित होता हुआ चेतना के विज्ञान के रूप में परिवर्तित होकर अन्त में व्यवहार के विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। मनोविज्ञान के क्रमिक विकास का प्रस्तुतीकरण वुडवर्थ के कथन से अधिक स्पष्ट होता है। जिसमें उन्होंने साहित्यिक भाषा में कहा कि'' सबसे पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग किया फिर उनने अपने मन/मस्तिष्क का त्याग किया। उसके बाद उसने अपनी चेतना का त्याग, आज वह व्यवहार की विधि को स्वीकार करता है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हमारे व्यवहार में निम्नलिखित परिवर्तन हो सकेंगे।

1. मनोविज्ञान के विकास की यात्रा को समझ सकेंगे
2. मनोविज्ञान की परिभाषाओं से परिचित हो सकेंगे।
3. मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों से परिचित हो सकेंगे।
4. शिक्षा से मनोविज्ञान के सम्बन्धों से परिचित हो सकेंगे।

1.3 मनोविज्ञान का विकास: ऐतिहासिक परिदृश्य

यों तो मनोविज्ञान के जन्म के सम्बन्ध में यह कथन भी अतिश्योक्ति नहीं है कि मानव के विकास के साथ-साथ मनोविज्ञान का विकास भी होता रहा है परन्तु प्रारम्भ में उस की गति धीमी थी समय के साथ-साथ गति में त्वरण होता चला गया। हमारे ऋषियों ने वेद शास्त्रों में जिन सूत्रों को प्रस्तुत किया है वे मनोविज्ञान से बहुत कुछ सम्बन्धित रहे हैं। परन्तु एक अलग विषय के रूप में मनोविज्ञान विषय बहुत नया नहीं है मनोविज्ञान के विकास का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

1. आत्मा का विज्ञान (Science of Soul)

अरस्तु के समय में मनोविज्ञान ने दर्शनशास्त्र के एक अंग के रूप में जन्म लिया। धीरे धीरे मनोविज्ञान ने अपने आपको दर्शनशास्त्र से प्रथक कर लिया, (गैरिट, Psychology)मनोविज्ञान (Psychology)शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के दो शब्दों से हुई है वे हैं- Psyche तथा logos जिनका अर्थ क्रमशः आत्मा तथा अध्ययन है। इस प्रकार प्रारम्भ में साइकोलॉजी का अर्थ था आत्मा का विज्ञान। आत्मा का विज्ञान मानने वाले प्रमुख दार्शनिक रहे है- प्लेटो (Plato) अरस्तु (Aristotle) डेकार्टे (Descrates) आदि। आत्मा के अस्तित्व और प्रमाणिकता पर लगातार प्रश्नों का प्रत्यक्ष और प्रमाणित उत्तर न मिलने के कारण, 16वीं शताब्दी में मनोविज्ञान का यह स्वरूप अस्वीकार कर दिया गया।

2. मस्तिष्क का विज्ञान (Science of Mind)

स्रत्रहवीं शताब्दी में मनोविज्ञान को मन या मस्तिष्क का विज्ञान कहा गया। इटली के मनोविज्ञानी पाम्पोनाजी (Pomponazzi)का नाम विशेष उल्लेखनीय रहा। आत्मा की तरह मन की प्रकृति और स्वरूप भी निश्चित नहीं किया जा सका इसलिए मस्तिष्क के विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान को विद्धानों का सहयोग नहीं मिल पाया।

3. चेतना का विज्ञान(Science of consciousness)

मन के विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान को पर्याप्त सहयोग न मिलने के कारण, मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान कहा जाने लगा। 19वीं शताब्दि के प्रमुख मनोविज्ञानी वाइव्स

(Vives)विलियन जेम्स (William James) विलियन वुन्ट (William Wount) तथा जेम्स सुली (James Sully) रहे। विलियम जैम्स ने 1892 में मनोविज्ञान को इस प्रकार परिभाषित किया था-

विलियम जेम्स'' मनोविज्ञान की सर्वोत्तम परिभाषा यह हो सकती है कि यह चेतना की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन और व्याख्या करता है।

"The definition of Psychology may be best given ----- as the description and explanation of state of Consciousness as such." William James.

बाद में मनोविज्ञानियों ने कहा कि चेतना एक अपूर्ण शब्द है, मेकडुगल ने तो चेतना को बुरा शब्द तक कह दिया था (Consciousness is a thoroughly bad word. It has been a great misfortune for psychology that the word has come into general use) तथा चेतनमन के अतिरिक्त अर्द्धचेतन तथा अचेतन मन भी होते हैं, जो कि मनुष्य की क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। तथा मनोविज्ञान में शारीरिक क्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है। अतः मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान कहना उचित नहीं है।

4. व्यवहार एवं अनुभूति का विज्ञान:

20वीं शताब्दी के मनोविज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान कहना प्रारम्भ किया। इस काल में प्रमुख मनोविज्ञानियों के द्वारा मनोविज्ञान की प्रस्तुत की गई कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं-

वुडवर्थ: '' मनोविज्ञान वातावरण से सम्बन्धित व्यक्ति की क्रियाओं का अध्ययन करता है।''

"Psychology studies the Individual's Action in relation to environment'' Wood Worth.

गैरिसन तथा अन्य: ''मनोविज्ञान का सम्बन्ध प्रेक्षित मानव व्यवहार से है।

Psychology is concerns with observable human behavior" -Garrison and others

मन:‘‘आधुनिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध मानव व्यवहार की वैज्ञानिक खोज से है। ’’ “Psychology today is concerned with observable human behavior” –Munn

क्रो तथा क्रो : ‘‘मनोविज्ञान मानव व्यवहार और मानव सम्बन्धों का अध्ययन है।’’

‘‘Psychology is the study of human behavior and human relationship.” - Crow and crow

इस के अतिरिक्त चार्ल्स इ. स्कीनर, मैक्डूगल, जैम्स ड्रेवर, पिल्सबरी,प्रो. माथुर, प्रो. जलोटा, प्रो. भाटिया आदि की परिभाषाएं भी मनोविज्ञान के अर्थ स्वरूप तथा कार्यक्षेत्र की व्याख्या करने वाली परिभाषाएं हैं।

मनोविज्ञान के क्रमिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में वुडवर्थ के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता हैं।

वुडवर्थ:‘‘सबसे पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग किया। फिर उसने अपने मन या मस्तिष्क का त्याग किया उसके बाद उसने अपनी चेतना त्यागी। अब वह व्यवहार की विधि को स्वीकार करता है।’’

First psychology lost its soul, then its mind, then it lost its consciousness, it still has behavior of sort.” WoodWorth.

इस प्रकार मनोविज्ञान के सम्प्रत्यय में जो परिवर्तन आये उन्हें कालक्रमानुसार इस प्रकार विभक्त किया जा सकता है।

1. आत्मा का विज्ञान =15 वीं शताब्दी तक
2. मस्तिष्क का विज्ञान=16 तथा 17वीं शताब्दी
3. चेतना का विज्ञान=18 तथा 19वीं शताब्दी
4. व्यवहार का विज्ञान =20 शताब्दी से आज तक

1.4 मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र

मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र में रात दिन वृद्धि होती जा रही है। अतः मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए अनेक शाखाओं को विभाजित कर दिया गया है। यही नहीं लगातार नये नये क्षेत्र भी बनते चले जा रहे हैं। प्रमुख क्षेत्र इस प्रकार है।

1. सामान्य मनोविज्ञान

2. असमान्य मनोविज्ञान
3. मानव मनोविज्ञान
4. पशु मनोविज्ञान
5. बाल मनोविज्ञान
6. किशोर मनोविज्ञान
7. प्रोढ़ मनोविज्ञान
8. वृद्धावस्था का मनोविज्ञान
9. औद्योगिक मनोविज्ञान
10. नैदानिक मनोविज्ञान
11. परामर्श मनोविज्ञान
12. मनो जैव विज्ञान
13. व्यक्तित्व मनोविज्ञान
14. सैन्य मनोविज्ञान
15. प्रायोगिक मनोविज्ञान
16. मनोमितिक (Psychometric)मनोविज्ञान
17. अतीन्द्रीय मनोविज्ञान (Para Psychology)
18. पर्यावरणीय मनोविज्ञान
19. स्वास्थ्य मनोविज्ञान
20. न्यायिक (Forensic) मनोविज्ञान
21. खेल कूद (Sport) मनोविज्ञान
22. राजनीतिक (Political) मनोविज्ञान
23. शिक्षा (Educational)

शिक्षा मनोविज्ञान की विषयवस्तु: अधिगम, शिक्षण विधियाँ , अनुशासन, शिक्षणसहायक सामग्रियां, बाल मनोविज्ञान, किशोर मनोविज्ञान, अध्यापकों का मानसिक स्वास्थ्य, व्यक्तितव, विद्यार्थियों का शारीरिक मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक आध्यात्मिक, बौद्धिक आदि विकास, अभिप्रेरणा, स्मरण तथा विस्मरण, रुचि अभिक्षमताएं, अभिवृत्तियां, अवधान, निर्देशन, समूह का मनोविज्ञान, अनुशासन, विशिष्ट बाल पालन, बाल अपराध, सृजनात्मकता, समायोजन, उत्प्रेरणा, मापन एवं मूल्यांकन, समस्या समाधान क्योंकि कल्पना, अधिगम संवेग आदि का समावेश है। यह सूची अभी तक अपूर्ण है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1 मनोविज्ञान (Psychology)शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के दो शब्दों ________ तथा__________ से हुई है।

2 स्रत्रहवीं शताब्दी में मनोविज्ञान को _______ या ________ का विज्ञान कहा गया।

3 विलियम जेम्स द्वारा दी गयी मनोविज्ञान की परिभाषा दीजिए।

4 20वीं शताब्दी के मनोविज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को ________ का विज्ञान कहना प्रारम्भ किया।

1.5 मनोविज्ञान के सम्प्रदाय (Schools of Psychology)

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मनोविज्ञान के दर्शनशास्त्र से अलग होने की प्रक्रिया में मनोविज्ञान के कई सम्प्रदाय सामने आए। मनोविज्ञान के सम्प्रदाय से तात्पर्य मनोवैज्ञानिकों के ''किसी ऐसे समूह से है जो मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए एक समान विचारधारा तथा विधियों का अनुसरण करते हैं। संरचनावाद, कार्यवाद, व्यवहारवाद, गेस्टाल्टवाद तथा मनोविश्लेषणवाद कुछ ऐसे ही प्रमुख मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय रहे हैं। मनोविज्ञान के इन सम्प्रदायों ने व्यवहार के अध्ययन सम्बंधी विभिन्न प्रवृत्तियों को प्रभावित किया है। आगे मनोविज्ञान के कुछ प्रमुख सम्प्रदायों को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. संरचनावाद (Functionalism)–

मनोविज्ञान के संरचनावाद सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक विलियन वुण्ट नामक जर्मन मनोवैज्ञानिक थे। इन्होंने सन् 1879 में मन का व्यवस्थित ढंग से अध्ययन करके उद्देश्य से लिपजिंग में विश्व की प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला स्थापित करके मनोविज्ञान को एक स्वतंत्र विज्ञान का दर्जा दिलाया। वुण्ट ने प्रारम्भ मे संवेदना के ऊपर अध्ययन किये। उनके अध्ययनों के उपरान्त यूरोप तथा अमेरिका में अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाएं खुली। वुण्ट तथा उसके सहयोगियों ने अन्तदर्शन विधि का प्रयोग करके प्रयोगशालाओं में अध्ययन किये। वुण्ट तथा उनके अनुयायियों को संरचनावादी कहा जाता है । इसके अनुसार जटिल मानसिक अनुभव वास्तव में संरचनाएं होती हैं जो अनेक सरल मानसिक स्थितियों से मिलकर बनी होती हैं। ऐसा लगता है कि संरचनावादी रसायनशास्त्र में रासायनिक यौगिकों को रासायनिक तत्वों में विभक्त करके अध्ययन करने की प्रक्रिया से प्रभावित थे। उनका विचार था कि जटिल मानसिक अनुभवों को

संरचनाओं को खोजकर मनोविज्ञान का अध्ययन किया जा सकता है। एडवर्ड, बेडफोर्ड तथा विचनर जैसे मनोवैज्ञानिक वुण्ट के प्रमुख सहयोगी थे।

आधुनिक समय में संरचनावाद की अत्यंत सीमित उपयोगिता है। प्रक्रिया के स्थान पर केवल संरचना पर ध्यान देना सम्भवतः संरचनावाद की सबसे बड़ी कमी है। अन्तर्दर्शन विधि में वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय तथा वैधता की कमी के कारण संरचनावादियों के निष्कर्षों की प्रमाणिकता सिद्ध नहीं हो पाती है।

2. प्रकार्यवाद :

मनोविज्ञान के प्रकार्यवाद सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक विलियम जेम्स (William James) थे। जैम्स, डार्विन (Darwin) के विकासवाद सिद्धान्त (Theory of evolution) से प्रभावित थे तथा उन्होंने मन के अध्ययन मे जीव विज्ञान की प्रवृत्ति को अपनाया। इनका मानना था कि व्यक्ति वातावरण के साथ समायोजन करने में मानसिक अनुभवों का उपयोग करता है। वस्तुतः प्रकार्यवादियों को मुख्य बल अधिगम प्रक्रि्रया तक केन्द्रित था। जॉन डीवी (John Dewey) नामक प्रसिद्ध अमरीकन दार्शनिक तथा शिक्षाशास्त्री प्रकार्यवादी सम्प्रदाय के प्रमुख समर्थक थे। जैम्स रोलैन्ड एन्जिल (James Roland Engil), जे.एन. कैटिल (J.N. Cattell) ई.एल. थार्नडाइक (E.L. Thorndike) तथा आर.एस. बुडवर्थ (R.S. Woodworth) जैसे विचारकों ने प्रकार्यवादी विचारधारा को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इस सम्प्रदाय में पाठ्यक्रम की विषयवस्तु शिक्षण विधियाँ तथा मापन तथा मूल्यांकन प्रक्रिया की कार्यपरकता पर अधिक बल दिया। प्रश्नावली, अनुसूची तथा मानसिक परीक्षण जैसे वस्तुनिष्ठ उपकरण प्रकार्यवाद की ही देन हैं।

3. व्यवहारवाद Behaviorism:

बीसवीं शताब्दी के दूसरे एवं तीसरे दशक में मनोविज्ञान के व्यवहारवादी सम्प्रदाय का विकास हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों के एक समूह ने मनोविज्ञान कों व्यवहार के विज्ञान के रूप में स्वीकार किया। जोहन बी. वाटसन (John B. Watson, 1878-1956) इस समूह के प्रवर्तक थे। व्यवहार की विचारधारा को मानने के कारण इस समूह के मनोवैज्ञानिकों को व्यवहारवादी कहा जाता है। व्यवहारवादियों ने क्लार्क हल (Clark Hull) एडवर्ड टालमैन (Edward Tolman) बी.एफ. स्क्रिन (B.F. Skinner) जैसे मनोवैज्ञानिकों पर अमिट छाप छोड़ी। व्यवहारवादियों ने वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया में वंशानुक्रम की भूमिका को पूर्णरूपेण नकारते हुए केवल वातावरण के महत्व को स्वीकार किया।

अधिगम अभिप्रेरणा तथा पुनर्बलन पर जोर देना व्यवहारवादियों की एक प्रमुख विशेषता थी। शिक्षण-अधिगम के क्षेत्र में व्यवहारवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा।

4. समग्रवाद Gestaltism

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मनी में मनोविज्ञान के समग्रवाद नामक सम्प्रदाय का उद्भव हुआ। गेस्टाल्ट (Gestalt) जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पूर्णाकार (pattern) अथवा व्यवस्थित समग्र (Organized Whole) है। मैक्स वरधीमर (Max Wertheimer, 1880-1943) कुर्ट कोफ्का (Kurt Kafka, 1886-1941) कुछ प्रमुख गेस्टाल्टवादी थे। इनके अनुसार अनुभव तथा व्यवहार को अलग-अलग हिस्सों में करके अध्ययन नहीं किया जा सकता। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार अवयवों की तुलना में सम्पर्क अनुभव अधिक महत्वपूर्ण होता है। इन्होंने सीखने में अन्तर्दृष्टि (Insight) की भूमिका पर अधिक जोर दिया। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुसार प्राणाी किसी भी वस्तु या परिस्थिति को समग्र रूप में देखता है न कि इसमें सम्मिलित तत्वों के समूह के रूप में। यही कारण है कि किसी समस्या के समाधान के समय अन्तर्दृष्टि की प्रमुख भूमिका रहती है। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार समस्या को सग्रम रूप में देखते समय उसके विभिन्न अंगों के बीच के अनोखे सम्बन्धों एवं अन्तर्क्रियाओं को पहचानना ही अन्तर्दृष्टि है। उनके अनुसार यह अन्तर्दृष्टि ही समस्या का तत्काल समाधान प्रस्तुत करती है।

अन्तदृष्टि के अभाव मे जीवधारी समस्या का समाधान करने में असफल रहता है। गेस्टाल्टवादी सीखने के उद्देश्यों तथा अभिप्रेरणा पर विशेष जोर देते हैं। व्यवस्थित पाठ्यक्रम निर्माण अन्तर्विषयी अभिगम, शिक्षा के उद्देश्यों तथा अभिप्रेरणा पर बल गेस्टाल्टवाद की देन हैं।

5. मनोविश्लेषणवाद Psychoanalysis:

मनोविज्ञान के अन्य सम्प्रदायों से मनोविश्लेषणवाद का प्रारम्भ बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud, 1856-1939) इसके जनक थे। इन्होंने अचेतन मानसिक प्रक्रियाओं (Unconscious mental processes) पर जोर देते हुए कहा कि द्वन्द्वों (**conflicts**) तथा मानसिक व्यतिक्रम (**Mental Disorder**) के अधिकांश मुख्य कारण अचेतन में छिपे रहते हैं। अचेतन के अध्ययन के लिए फ्रायड ने मनोविश्लेषण की एक नई प्रविधि का अविष्कार किया जो मुख्यतः मुक्त साहचर्य वाले विचार प्रवाह (**Freely associated stream of thoughts**) तथा स्वप्न विश्लेषण (**Dream analysis**) पर आधारित है। काफी लम्बे समय तक मनोविश्लेषणवाद का बोलबाला, रहा एवं इस दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्ययन किये गये । अल्फ्रेड एडलर तथा कार्ल जुंग ने कुछ संशोधनों के साथ परम्परागत मनोविश्लेषणवाद के विचारों को आगे बढ़ाने में विशेष योगदान किया। मनोचिकित्सा से अधिक सम्बन्धित होने के कारण मनोविश्लेषणवाद ने शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेष योग्दान नहीं दिया। मनोविश्लेषणवाद बच्चों के विकास की अवस्थाओं को समझने में महत्वपूर्ण ज्ञान प्रस्तुत करता है।

6. **मानवतावादी Humanistic:**

वर्तमान समय में मनोविज्ञान के अध्ययन में मानवतावादी दृष्टिकोण (**Humanistic View**) तथा संज्ञानात्मक दृष्टिकोण (**Cognitive view**) पर अधिक जोर दिया जाता है। मॉस्लों, रोजर्स, आलपोर्ट आदि मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान में मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाने पर जोर दिया। मानवतावादी विचारधारा में मानव को यन्त्रवत नहीं माना जाता हैं वरन उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने वाले तथा वातावरण के साथ अनुकूलन करने में समर्थ जीवधारी के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस विचारधारा में व्यक्तित्व के महत्व को स्वीकार करते हुए स्वतंन्त्र इच्छा, वैयक्तिक विभिन्नता एवं व्यक्तिगत मूल्यों के अस्तित्व पर जोर दिया जाता है। मनोविज्ञान का संज्ञानात्मक दृष्टिकोण (**Cognitive view**) वातावरण के साथ अनुकूलन में संज्ञानात्मक योग्यताओं तथा प्रक्रियाओं के अध्ययन पर जोर देता है। एडवर्ड टालमैन (Edward Tolman) तथा जीन प्याजे (**Jean Piaget**) जैसे संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के द्वारा इस दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया गया है।

स्वमल्यांकन हेतु प्रश्न

5. मनोविज्ञान के ________ सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक विलियन वुण्ट नामक जर्मन मनोवैज्ञानिक थे।
6. मनोविज्ञान के प्रकार्यवाद सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक ____________ थे।
7. _________ जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पूर्णाकार अथवा व्यवस्थित समग्र है।
8. मनोविश्लेषणवाद के जनक ________ थे।

1.6 सारांश

इस इकाई में हमने मनोविज्ञान के विकास के क्रमिक ऐतिहासिक परिदृश्य का अवलोकन किया कि दर्शनशास्त्र का अंग मनोविज्ञान पहले आत्मा का विज्ञान रहा है फिर यह मस्तिष्क के विज्ञान के रूप में परिवर्तित होता हुआ चेतना के विज्ञान के रूप में परिवर्तित होकर अन्त में व्यवहार के विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। मनोविज्ञान के क्रमिक विकास का प्रस्तुतीकरण वुडवर्थ के कथन से अधिक स्पष्ट होता है। जिसमें उन्होंने साहित्यिक भाषा में कहा कि'' सबसे पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग किया फिर उनने अपने मन/मस्तिष्क का त्याग किया। उसके बाद उसने अपनी चेतना का त्याग, आज वह व्यवहार की विधि को स्वीकार करता है। मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषाएं विभिन्न समयों पर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने दी है। एन्साइक्लोपीडिया

ऑफ एजूकेशनल रिसर्च की व्याख्यात्मक परिभाषा शिक्षा मनोविज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करती है। शिक्षा जगत को शिक्षा मनोविज्ञान की महत्वपूर्ण देने है। यह शिक्षक को एक सफल शिक्षक बनाने में उपयोगी समझ तथा ज्ञान प्रदान करता है। विद्यार्थी भी शिक्षा मनोविज्ञान से लाभ प्राप्त कर अपना संवेगात्मक तथा शारीरिक तथा मानसिक विकास संतुलित रूप से कर सकते हैं। शिक्षा मनोविज्ञान अनुशासन स्थापन की नई विधियाँ सुझाता है। मूल्यांकन के सही समझ विकसित करता है। शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में सहयोगी है। तथा विद्यालयों में शैक्षिक-पर्यावरण निर्मित करने में सहयोगी है।

1.7 शब्दावली

1. मनोविज्ञान- व्यवहार एवं अनुभूति का विज्ञान
2. गेस्टाल्ट - जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पूर्णाकार (pattern) अथवा व्यवस्थित समग्र है।

1.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. Psyche, logos
2. मन, मस्तिष्क
3. **विलियम जेम्स**'' मनोविज्ञान की सर्वोत्तम परिभाषा यह हो सकती है कि यह चेतना की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन और व्याख्या करता है।
4. व्यवहार
5. संरचनावाद
6. विलियम जेम्स (William James)
7. गेस्टाल्ट
8. सिगमण्ड फ्रायड

1.9 सन्दर्भग्रन्थ

1. चौबे, एस.पी. तथा चौबे, ए. (2007) शैक्षिक मनोविज्ञान के मूल आधार, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
2. भटनागर, सुरेश (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
3. श्रीवास्तव, ज्ञानानन्द प्रकाश (2002) शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली कन्सैप्ट पब्लिकेशन
4. शुक्ल, ओ.पी. (2002) शिक्षा मनोविज्ञान लखनऊ, भारत प्रकाशन,
5. सिंह शिरीषपाल (2010): शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर. लाल.।

6. Child, D (1975): Psychology and the teacher. London; Holt Rinehart and Winston.
7. Garret HE. (1982): General Psychology. New Delhi Eurasia. Publishing house Pvt. Ltd.
8. Soreson, H (1964): Psychology in Education. New York: Mc Graw-hill Book co.
9. Mathur, S.S. (1977): Educational Psychology. Agra, Vinod Pustak Mandir.
10. Mitzel, H.E. (1982): Encyclopedia of Educational Research: London. The free press

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. मनोविज्ञान से आप क्या समझते हैं? मनोविज्ञान की परिभाषा दीजिए।
2. मनोविज्ञान का अर्थ एवं विषय क्षेत्र को समझाइए।
3. मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है समझाइए।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-
    a. संरचनावाद
    b. गेस्टाल्टवाद

इकाई 2- शिक्षा मनोविज्ञानका अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्रEducational Psychology:- Meaning , Nature and Scope

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषाएं
2.4 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ
2.5 शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति
2.6 शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र
2.7 शिक्षकों के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता
2.8 शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता
2.9 शिक्षा व्यवस्था के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता
2.10 शिक्षा मनोविज्ञान की सीमाएं
2.11 सारांश
2.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
2.13 सन्दर्भग्रन्थ
2.14 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

आजकल शिक्षा सर्व सुलभ और सर्वव्यापी रूप ले चुकी है। पहले कुछ व्यक्ति ही पढ़े लिखे हुआ करते थें। आज शिक्षा सवर्जन हिताय तथा सर्वजन सुखाय हैं। पहले शिक्षा का कार्य केवल सूचनाएं प्रदान करना था। आज शिक्षा का कार्य व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं का संतुलित, स्वाभाविक तथा प्रगतिशील विकास करना है, जिससे अध्ययनकर्ता एक सफल सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित हो सके। इस सब के लिए आवश्यक है कि अधिगमकर्ता निष्क्रिय श्रोता मात्र न रह कर सक्रिय होकर अपना विकास करे। शिक्षक का यह दायित्व है कि वह बालक की शारीरिक तथा मानसिक, योग्यताओं, अभिरुचियों अभिक्षमताओं जन्मजात शक्तियों के स्वाभाविक विकास में योगदान प्रदान करके तथा उसे

समाज के लिए एक उपयोगी नागरिक के रूप में विकसित होने का अवसर एवं सहयोग प्रदान करे। इस प्रकार का सहयोग अध्यापक तभी प्रदान कर सकता है, जबकि वह अध्ययनकर्ता के मनोविज्ञान को जानता हो। जान एडम्स ने तो यहां तक कह दिया है कि शिक्षक के अपने विषय की अपेक्षा शिक्षार्थी के सम्बन्ध में जानना अधिक महत्वपूर्ण है।

सभी शिक्षाशास्त्री यह मानते हैं कि शिक्षा शास्त्र और मनोविज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनोविज्ञान के बिना शिक्षण-प्रक्रिया सुचारू रूप से न तो चल सकती है और न ही सफल हो सकती है। जिसके फलस्वरूप शिक्षा मनोविज्ञान का जन्म हुआ। और अब शिक्षा मनोविज्ञान एक अलग विद्या विषय (Discipline) के रूप में विकसित हो चुका है। आगे के पृष्ठों में हम मनोविज्ञान के ऐतिहासिक-परिदृश्य, मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषाओं तथा शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगिता का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद हमारे व्यवहार में निम्नलिखित परिवर्तन हो सकेंगे।

1. हम शिक्षा मनोविज्ञान को परिभाषित कर सकेंगे।
2. शिक्षा मनोविज्ञान का शिक्षा से सम्बन्ध समझ सकेंगे।
3. शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र को समझ सकेंगे।
4. शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता को समझ सकेंगे

2.3 शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषाएं Definitions of Educational Psychology

स्किनर:''शिक्षा मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार का शैक्षिक परिस्थितियों में अध्ययन करता है।''

Education Psychology is that branch of Psychology which deals with teaching and learning". -**B.F. Skinner.**

नॅल तथा अन्य: ''शिक्षा मनोविज्ञान मुख्य रूप से शिक्षा की सामाजिक प्रक्रिया से परिवर्तित या निर्देशित होने वाले मानव व्यवहार से सम्बन्धित है। ''

Education Psychology deals with the behavior of human being in educational situations." **Null & Others.**

क्रो तथा क्रो: "शिक्षा मनोविज्ञान, व्यक्ति के जन्म से वृद्धावस्था तथा सीखने के अनुभवों का वर्णन और व्याख्या करता है।''

"Education Psychology describes and explains the learning experiences of individual from birth through old age."**Crow and crow**

सॉरे व टेलफोर्ड:'' शिक्षा मनोविज्ञान का मुख्य सम्बन्ध सीखने से है। यह मनोविज्ञान का वह क्षेत्र है जिस का मुख्य सम्बन्ध शिक्षा के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की वैज्ञानिक खोज से है। '

"The major concern of educational psychology is learning it is that field of psychology which is primarily concern with the scientific investigation of the psychological aspects of education" **- Sowrey and Telford**.

वाल्टर बी. कालेस्निक: शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के उन तथ्यों और सिद्धान्तों का अध्ययन है, जो शिक्षा प्रक्रिया की व्याख्या करने तथा सुधारने में सहायक होते हैं। इस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान दो क्रियाओं-शिक्षा तथा मनोविज्ञान के वैज्ञानिक ज्ञान का पिण्ड है।''

Education psychology is the study of those facts and principles of psychology which help to explain and improve the process of education. Educational Psychology thus is the body of scientific knowledge about two activities –Education and psychology**". Walter B. Kalesnik.**

एनसाइक्लोपीड्या ऑफ एडूकेशनल रिसर्च: शिक्षा मनोविज्ञान का सम्बन्ध सीखने के मानवीय तत्व से है। यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में किये गये प्रयोगात्मक कार्य द्वारा प्राप्त प्रत्ययों को शिक्षा में लागू किया जाता है। परन्तु यह ऐसा भी क्षेत्र है जिसमें ऐसे प्रत्ययों की शिक्षा में व्यवहारिकता की परीक्षा तथा शिक्षा की विशिष्ट रुचि के अध्ययन प्रकरणों को निर्धारित करने के लिए प्रयोगात्मक कार्य किया जाता है। यह सीखने वाले तथा सीखने सिखाने की विभिन्न शाखाओं, जो कि बालक को अधिकतम सुरक्षा, संतोष के साथ समाज से तादात्म स्थापित करने में सहायता देने हेतु निर्देशित हों, का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान करता है।

"Educational Psychology is concerned with the human factor in learning. It is field in which concepts derived from experimental work

in laboratories are applied to education, but it is also a field in which experimentation is carried out to test the applications of such concepts to education and to round out the study of topics of crucial interest to teachers. It is the study of the learners and of the learning teaching process in the various ramifications, directed towards helping the child come to terms with society with the maximum of security and satisfaction**."** **-Encyclopedia of Educational Research.**

कॉलसनिक के अनुसार-''शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धान्तों व परिणामों का शिक्षा के क्षेत्र में अनुप्रयोग है।''

"Educational psychology is the application of findings and theories of psychology in the field of education." **W.B. Kolesnik**

ट्रो के अनुसार - ''शिक्षा मनोविज्ञान, शैक्षिक परिस्थितियों के मनोवैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन है।''

Educational Psychology is the study of the psychological aspects of educational situations." **Prof. Trow**

स्टीफन के अनुसार-'' शिक्षा मनोविज्ञान, शैक्षिक विकास का क्रमबद्ध अध्ययन है।''

Educational Psychology is a systematic study of educational growth**."** **J.M. Stephon**

2.4 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ Meaning of Educational Psychology

शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ शिक्षा से सम्बन्धित मनोविज्ञान है। शिक्षा, मानव व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करना है। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ व्यक्ति तथा समाज के व्यवहार को परिमार्जित करना है।

शिक्षा के तीन रूप हैं- औपचारिक, अनौपचारिक व निरौपचारिक इन तीनों के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाये जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि व्यवहार परिमार्जन चाहे किसी भी माध्यम से किया जाए, किसी भी परिस्थिति में किया जाए यदि वहां पर मनोविज्ञान के नियमों, सिद्धान्तों, सूत्रों, अनुसंधानों से निस्रत निहितार्थों का प्रयोग किया जाये तो उसे शिक्षा मनोविज्ञान कहते हैं। **बी.एफ. स्कीनर के अनुसार**, ''शिक्षा मनोविज्ञान अपना अर्थ शिक्षा तथा मनोविज्ञान से ग्रहण करता है। शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है तथा मनोविज्ञान व्यवहार सम्बन्धी विज्ञान है।

Educational psychology takes its meaning from education, a social process and from psychology, a behavioral science." –B.F. Skinner.

शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ है-

1. शिक्षा मनोविज्ञान का केन्द्र-मानव व्यवहार है।
2. शिक्षा मनोविज्ञान-खोज तथा निरीक्षणों से प्राप्त तथ्यों का संग्रह है।
3. शिक्षा मनोविज्ञान, शैक्षिक समस्याओं का समाधान अपनी स्वयं की पद्धति से करता है।

2.5 शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति Nature of Educational Psychology

शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है। यह विज्ञान अपनी विभिन्न खोजों के लिए वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करता हैं तथा वैज्ञानिक विधियों से प्राप्त निष्कर्षों का उपयोग शैक्षिक समस्याओं के समाधान के लिए करता है। विभिन्न तथ्यों के आधार पर यह विज्ञान छात्रों की उपलब्धियों के सम्बन्ध में भविष्य कथन कर सकता है।

शिक्षा मनोविज्ञान के तथ्य, सिद्धान्त, नियम सभी वैज्ञानिक विधियों द्वारा परीक्षित होता है।, अतः इस विज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है। इस सम्बन्ध में क्रो एण्ड क्रो ने लिखा है- ''शिक्षा मनोविज्ञान को व्यावहारिक विज्ञान माना जा सकता है, क्योंकि यह मानव व्यवहार के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विधियों, निश्चित किये गये सिद्धान्तों और तथ्यों के आधार पर सीखने व व्याख्या करता है।''

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ लिखिए।
2. स्किनर द्वारा दी गई शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा लिखिए।
3. बाल्टर बी. कालेस्टिनक द्वारा दी गई शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा को लिखें।
4. "शिक्षा मनोविज्ञान, व्यक्ति के जन्म से वृद्धावस्था तथा सीखने के अनुभवों का वर्णन और व्याख्या करता है।'' यह परिभाषा किसके द्वारा दी गई है?

2.6 शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र Scope of Educational Psychology

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र को सीमित करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि मनोविज्ञान का यह क्षेत्र तीव्र गति से विकासमान है। नित नये अनुसंधानों के माध्यम से शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र विकसित हो रहा है। आर्चर का कथन इस की पुष्टि करता है। **आर्चर** ने कहा कि - यह बात उल्लेखनीय है कि जब हम शिक्षा मनोविज्ञान की नयी पाठ्य-पुस्तक खोलते हैं, तब हम यह नहीं जानते कि उसकी विषय सामग्री सम्भवतः क्या होंगी।''

शिक्षा मनोविज्ञान के मुख्य शिक्षा सम्बन्धी प्रकरणों को मोटे रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है-

1. अधिगमकर्त्ता के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अध्ययन,
2. अधिगमकर्त्ता की बौद्धिक क्षमता का अध्ययन,
3. अधिगकर्त्ता की रुचियों का अध्ययन,
4. अधिगकर्त्ता की संवेगात्मक स्थिति का अध्ययन,
5. अध्यापक के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन,
6. अधिगमकर्त्ताओं के समूह का उपर्युक्त के सम्बन्ध में अध्ययन,
7. सीखने तथा सिखाने की क्रियाओं का अध्ययन,
8. अधिगमकर्त्ताओं के वैयक्तिक विभेदों का अध्ययन,
9. बच्चों तथा किशोरों की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन,
10. शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यूहरचना का अध्ययन,
11. विशिष्ट बालकों के लिए विशिष्ट शिक्षण विधियों का अध्ययन,
12. विषयों के चयन के लिए आधारभूत जानकारी का अध्ययन,
13. शिक्षण की विधियों, तकनीकों एवं पद्धतियों का अध्ययन,
14. मापन एवं मूल्यांकन के लिए प्रयुक्त विधियों के उपयोग का अध्ययन,
15. समूह को समाजोपयोगी कार्य करने की अभिप्रेरणाओं की विधियों की उपयोगिताओं का अध्ययन,
16. शिक्षक विधियों को युक्तित्युक्त करने की विधियाँ ,
17. ऐसी शिक्षण विधियों को अपनाने के लिए अध्ययन करना, जिससे अधिगमकर्त्ता कम परिश्रम से तनावरहित रह कर स्वगति से शत-प्रतिशत अधिगम कर सके, तथा
18. अधिगकमर्त्ता की आवश्यकता के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण करना।

ऊपर की पंक्तियों में प्रस्तुत किये गये बिन्दु अन्तिम नहीं है, इस सूची को विस्तृत किया जा सकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि ‘‘शिक्षण प्रक्रिया का नियोजन, संचालन तथा परिमार्जन पूर्णरूपेण शिक्षा मनोविज्ञान की कृपा पर आधारित है।’’लिण्डग्रेन के शिक्षा के सम्बन्ध में तीन केन्द्रीय क्षेत्रों का वर्णन किया जो कि शिक्षा मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षकों के मतलब के हैं। यह हैं-सीखने वाला, सीखने की प्रक्रिया तथा सीखने की स्थिति

सीखने वाला (Learner) शैक्षिक प्रक्रिया में सीखने वाले का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। कोई भी शिक्षण बिना शिक्षार्थी के नहीं हो सकता। सीखने वाले से हमारा तात्पर्य शिक्षार्थी से है जो अलग-अलग सामूहिक रुप से कक्षा समूह बनाते हैं। कक्षा-कक्ष में शिक्षण बहुत बड़ी सीमा तक निर्भर होता है- विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, विकास के स्तरों एवं उनकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर। अतएव

प्रभावशाली शिक्षण के लिए इन सबका ज्ञान तथा अनेक अन्य योग्यताओं तथा निहितार्थओं की जानकारी की आवश्यकता होती है। इन सबसे शिक्षा-मनोविज्ञान गहरा ताल्लुक रखता है।

लिण्डग्रेन के अनुसार, सीखने की प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं, अपने कार्य सम्पन्न करने में सुधार लाते हैं, अपने चिन्तन का पुनर्संगठन करते हैं अथवा व्यवहार करने के तथा नई अवधारणाओं और सूचना प्राप्त करने के नये मार्गों की खोज करते हैं। वास्तव में जो कुछ भी व्यक्ति करते हैं जब वह सीखते हैं उसे सीखने की प्रक्रिया कहा जाता है। इस प्रक्रिया का निरीक्षण प्रत्यक्ष रूप से कर सकते हैं, उस समय जब विद्यार्थी लिखना सीख रहा है, गणना कर रहा है अथवा बातचीत कर रहा है। इत्यादि। अथवा इसका अप्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण कर सकते हैं- प्रत्यक्षीकरण करने में, चिन्तन में या स्मरण करने में। शिक्षा मनोवैज्ञानिक इस पर ध्यान देते हैं कि सीखने की प्रक्रिया कैसे होती है? वह यह पता करना चाहते हैं कि क्या होता है जब एक व्यक्ति सीखता है, क्यों वह सीखता है, शिक्षक क्यों चाहते हैं कि वह सीखे तथा शिक्षक क्या चाहते है। कि वह नही सीखें।सीखने की स्थिति (Situation of Learning) यह उस वातावरण का संकेत देती हैं जिससें सीखने वाला अपने को उस समय पाता है जब सीखने की प्रक्रिया हो रही है। शिक्षक की अभिवृत्ति कक्षा-कक्ष की सजावट, विद्यालय का संवेगात्मक परिवेश तथा जो रुचि समुदाय विद्यालय के कार्यक्रम में लेता है वह सब सीखने की स्थिति के ही अंश है। वास्तव में यह सब स्थानीय तत्व तथा व्यक्तिगत तत्व जिनके चारों ओर शिक्षण होता है। वह सब सीखने की स्थिति के तत्व हैं। कुछ दशाओं में सीखना सुविधाजनक हो जाता है जैसे कि शिक्षक का प्रेमपूर्ण व्यवहार है, कक्षा का कमरा हवादार और प्रकाशमय है तथ बैठने की सीटें आरामदेह होना, जबकि कुछ अन्य स्थितियों में सीखने में अवरोध हो जाता है जैसे कि वह शिक्षक कठोर है, समुदाय सहानुभूति रहित है और विद्यालय का वातावरण गन्दा है। शिक्षा मनोवैज्ञानिक की रुचि यह पता करने की होता है कि किन दशाओं में सीखना सुविधाजनक है और किनमें उसमें अवरोध आ जाता है तथा क्यों ऐसा होता है तथा कैसे शिक्षा की अच्छी दशाओं को बनाया जा सकता है।

2.7 अध्यापक के लिए शिक्षा-मनोविज्ञान का महत्व

अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान के महत्व को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर जान सकते हैं-

1. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक की शैक्षणिक समस्याओं के प्रति सम्यक दृष्टिकोण प्रदान करता है तथा उपयुक्त अध्यापक-विधि से अवगत कराता है। अध्यापक शिक्षा मनोविज्ञान के द्वारा यह जानकारी प्राप्त करना है कि बालक किस सीमा तक शिक्षा का अर्जन कर सकता है तथा किस सीमा तक उसका सामाजिक व्यवहार सुधारा जा सकता है, और कहां तक उसके व्यक्तित्व का समायोजन किया जा सकता है।

2. यह अध्यापक को बालक के विकास के लिए उपयुक्त शैक्षिक वातावरण प्रस्तुत करने में सहायता देता है, जिससे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए बालक के व्यवहार में ईष्ट परिवर्तन लाया जा सके। अध्यापक ऐसे पाठ्यक्रम और अध्यापन-विधि को चुनता है।
3. बालक के व्यवहार का प्रयोजन समझने और उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने में शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को सहायता देता है जो अध्यापक बालकों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण और समदर्शी होता है, वहीं उनके व्यवहार का सम्यक् और सूक्ष्म विश्लेषण कर सकता है। तथा उन्हें सुधारने के लिए उपयुक्त विधियाँ अपना सकता है।
4. शिक्षा मनोविज्ञान द्वारा प्रदत्त अन्तर्दृष्टि से अध्यापक बालक की मानसिक योग्यता, रुचि और रुझान के अनुसार उसके लिए विषयवस्तु चुनता है और उसके शिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था करता है।
5. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को यह अनुभव करने में सहायता प्रदान करता है कि शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक सम्बन्धों का सर्वाधिक महत्व है। इसलिए अध्यापक ऐसे उपयुक्त कार्यो का आयोजन करता है, जिससे बालकों में सामाजिक भावना का विकास हो। वह विद्यालय को सामूहिक कार्यों में भाग लेने के लिए उत्प्रेरित करता है और उनका सहयोग देता है।
6. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को अपने कार्य भार और उत्तरदायित्व को भली-भांति समझने में सहायता देता है। वह अध्यापक को ऐसी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है जिससे वह अपने कार्य में आने वाली समस्याओं का भली-भंॉंति सामना कर उनका निदान ढूंढ सके। इस अन्तर्दृष्टि से अध्यापक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण आता हैं, जिससे वह शिक्षण-कार्य में आगत समस्याओं को सुलझाता और उनका सही हल ढूंढ़ता है।
7. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को ऐसी पद्धतियों और प्रविधियों से अवगत कराता है, जिनके द्वारा वह अपने और दूसरों के व्यवहार का विश्लेषण कर सके। वह विश्लेषण उसके व्यक्तित्व के समायोजन के लिए परम आवश्यक है। यह दूसरों को उनके व्यक्तित्व की अभिवृद्धि और समायोजन में सहायता पहुंचा सकता हैं।
8. वैयक्तिक विभेदों का ध्यान रखते हुए बालकों का उचित मार्ग-प्रदर्शन करने और उपयुक्त कार्यक्रमों के लिए सामग्री जुटाने में शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को सहायता पहुंचाता है।
9. शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्धकों को प्रबन्ध और नियोजन के कार्यों में मार्ग प्रदर्शित करता है तथा शिक्षण की व्यवस्था करने में मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है।

10. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को उन उत्कृष्ट विधियों से अवगत कराता है, जिनके द्वारा बालक की उपलब्धियां का सोद्देश्य मापन और उनका मूल्यांकन किया जाता है। तथा बालक की सहज-प्रज्ञा का भी सही-सही आकलन किया जा सकता है।
11. यह बालक को शिक्षा देने की उत्तम विधियों से अध्यापक को सुसज्जित करता है तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ है, उसे अपनाने के लिए संकेत करता है। शिक्षा मनोविज्ञान की किसी पुस्तक में लेखक का यही प्रयास रहता है कि वह मनोविज्ञान के तथ्यों और सामान्यीकरण को इस प्रकार प्रस्तुत करे, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों की योग्यताओं एवं कुशलताओं में वृद्धि हो।
12. लिण्डग्रेन (Lindgren, Henery Clay) के शब्दों में, ''मनोविज्ञान ऐसा विज्ञान है। जिसका सम्बन्ध मानव आचरण के अवबोध से है और शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षकों को शिक्षण तथा अधिगम समस्याओं को समझने में सहायता करने वाला व्यावहारिक विज्ञान हैं।''

    स्किनर (Skinner) ने भी शिक्षकों के लिए शिक्षा-मनोविज्ञान की उपयोगिता पर बल देते हुए कहा है-''शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापकों की शिक्षा की आधारशिला है। उसका औचित्य इसी में है कि वह अध्यापकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो।'' **जे.एम. स्टीफन्स**(J.M. Stephen) का कथन है कि ''शैक्षिक विकास की प्रगति में अध्यापक का अत्यधिक योगदान होता है। शिक्षा-मनोविज्ञान का अध्ययन अध्यापक को सभी महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभाने में समर्थ बनाता है।'' शिक्षक शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन से अपने शिक्षण को किस प्रकार प्रभावी बना सकता है अथवा शिक्षा मनोविज्ञान एक अच्छा अध्यापक बनने में सहायता करता है।
13. सामाजिकता प्राप्त करने में (To get Social) मनोविज्ञान के ज्ञान के द्वारा शिक्षक द्वारा मूल्यांकन करना मनोविज्ञान के ज्ञान के अभाव में सम्भव नहीं है। मनोविज्ञान को परीक्षण निर्मित कर उनसे बालकों का शुद्ध एवं सही मूल्यांकन करना सिखता है। मूल्यांकन में निष्कर्ष के आधार पर ही अध्यापन प्रक्रिया में सुधार सम्भव होते हैं। किन्तु यह सुधार भी मनोविज्ञान के ज्ञान के द्वारा ही किए जा सकते हैं।
14. शैक्षिक परिदृश्यों के अन्तर्गत मनोविज्ञान वर्तमान में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान बहुत आवश्यक है। इसके अध्ययन की सहायता से शिक्षक कार्य अधिक सरलता, रुचि व क्षमता से हो सकता है। अध्ययन अध्यापन की आवश्यकता, परिस्थितियां, पाठ्यक्रम, अध्ययन के तरीके, मूल्यांकन आदि सभी में शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन शिक्षक के लिए लाभप्रद होता है।
15. बालकों की आवश्यकताओं का ज्ञान (Knowledge of Needs of Pupil)शिक्षा मनोविज्ञान के द्वारा बालकों की आवश्यकताओं का पता चल जाता है। साथ ही उनकी रुचि, योग्यता, क्षमता, आवश्यकता, अभिरुचि आदि का भी पता चल जाता है। इन

सभी में बालकों की विभिन्नताओं का ध्यान रखकर ही शिक्षा व्यवस्था व प्रक्रिया रखने का कार्य शिक्षक कर सकेगा।

16. पाठ्यक्रम (Curriculum) अध्यापक पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय शिक्षा मनोविज्ञान से बहुत प्रभावित होने लगा है। अध्यापक पाठ्यक्रम निर्माण में छात्रों की रुचि योग्यता विकास आदि का ध्यान रखती है। अब यह माना जाने लगा है कि पाठ्यक्रम बालकों के लिए है, न कि पाठ्यक्रम के लिए बालक।
17. शैक्षिक समस्याओं का ज्ञान (Knowledge Educational Problems)अध्यापक को शिक्षा मनोविज्ञान के विभिन्न शैक्षिक समस्याओं पर महत्वपूर्ण ज्ञान दिया है। विद्यार्थी अनुशासनहीनता, छात्र असन्तोष, पिछाड़पन, बालापराध आदि। इन समस्याओं के कारण निराकरण के उपाय आदि भी शिक्षा मनोविज्ञान ने ही शिक्षक को दिये हैं।
18. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएं (Co- Curriculum Activities) शिक्षा मनोविज्ञान से प्रभावित होकर ही अध्यापक यह मानने लगे हैं कि पाठ्यक्रम सहभागी क्रियाएं भी अध्ययन की तरह ही महत्वपूर्ण हैं। इन क्रियाओं को बालकों के सर्वागींण विकास में आवश्यक माना जाने लगा है।
19. समय-सारणी (Time-Table) अध्यापक के लिए समयसारणी बनाने में भी शिक्षा मनोविज्ञान बहुत उपयोगी है। समय सारणी में कठिन व सरल विषयों का समय निश्चित करने और थकान, विश्राम व अध्ययन को ध्यान में रखकर समय सारणी बनाने की दृष्टि से भी शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक के लिए बहुत उपयोगी है।
20. अध्ययन पद्धति (Teaching Method) शिक्षा मनोविज्ञान ने अध्ययन पद्धति में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अध्यापक अपने विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, रुचि आदि का ध्यान में रखकर अध्ययन विधि अपनाता है। शिक्षक को अनेक मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियाँ शिक्षा-मनोविज्ञान ने ही दी हैं।
21. अनुशासन (Discipline) प्राचीनकाल के दण्ड व्यवस्था के विचार को बदलने का कार्य शिक्षा मनोविज्ञान ने ही किया है। अध्यापक अपने विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता को अब दण्ड या भय की सहायता से दूर नहीं करता बलकि अनुशासनहीनता के कारणों की गहराई में जाकर उसके स्थायी समाधान का प्रयास करता है। लोकतान्त्रित अनुशासन के दृष्टिकोण के विकास में शिक्षा मनोविज्ञान का ही योगदान हैं।
22. मापन एवं मूल्यांकन (Measurement and Evaluation) अध्यापक द्वारा अपने विद्यार्थियों का मापन एवं मूल्यांकन करने में भी मनोविज्ञान का सही मूल्यांकन का काफी योगदान रहा है। विद्यार्थियों की योग्यताओं का सही मूल्यांकन और उसी के आधार पर सही निर्देशन का कार्य शिक्षक मनोविज्ञान की सहायता से करने लगा है।

23. शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति (Attainment of Educational Aims) शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में शिक्षक व छात्रों को शिक्षा-मनोविज्ञान का काफी योग्दान है। जैसा कि स्किनर ने लिखा है, ''शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक को जो ज्ञान प्रदान करता है एवं शिक्षक उस ज्ञान के आधार पर शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करता है''

    जी. लेस्टर एण्डर्सन के अनुसार अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता निम्नलिखित क्षेत्र के ज्ञान के लिए बताई है। (1) शिक्षा- मनोविज्ञान के ज्ञान से अध्यापक को शिक्षण सामग्री के चयन तथा उसकी व्यवस्था का ज्ञान होता है। (2) शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान से अध्यापक छात्रों के सीखने की प्रक्रिया का मार्गदर्शन अच्छी तरह से कर सकता है। (3) शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान से अध्यापक को मूल्यांकन की वैज्ञानिक तकनीकों का ज्ञान होता है।

24. हेनरी जी स्मिथ ने अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता निम्नलिखित क्षेत्रों की जानकारी के लिए बताई है- (1) शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान से अध्यापक को छात्रों की प्रकृति, स्वभाव तथा आवश्यकताओं का ज्ञान होता है। (2) शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अध्यापक को छात्रों के विकास की प्रक्रिया में उत्पन्न अनेक समस्याओं के निराकरण में सहायता प्रदान करता है। (3) शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को शिक्षा के उदार उद्देश्यों को समझने में सहायता देता है। (4) शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अध्यापक को छात्रों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने की सामर्थ्य प्रदान करता है। (5) शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अध्यापक की व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि करता है।

2.8 शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता

बालक शिक्षण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि उसी के लिए यह सब शैक्षिक

व्यवस्थाएं की जाती है। अतः शिक्षा मनोविज्ञान बच्चों को अपने स्वयं के बारे में जानकारी प्रदान करने का अवसर प्रदान करता है। शिक्षा मनोविज्ञान बालकों को अपने बारे में जानकारी प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता हैं। विशेष रूप से किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक मानसिक तथा संवेगात्मक परिवर्तनों का बोध कराने की त्रुटि रहित विधियों का विकास मनोविज्ञान के माध्यम से किया जा चुका है। इस प्रकरण से सम्बन्धित जानकारी छात्रों की आयुवर्गों के अनुसार पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जा चुकी हैं तथा की जा रही है। विशेष रूप से कामशिक्षा से सम्बन्धित जानकारी शरीर में होने वाले संवेगात्मक, शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तनों के रूप में जनसंख्या शिक्षा, एड्स (Aids) तथा पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित तथा शिक्षा के नये तथा उपयोगी पाठ्यक्रमों की जानकारी आजकल विद्यालयों में दी जाने लगी है।

1. शिक्षण कार्य को सम्पन्न करने के लिए मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रयोग किये बिना सफल शिक्षण किया जाना सम्भव नहीं है। शिक्षण विधियाँ बालकों की आयु, बौद्धिक स्तर, उनके सामाजिक परिवेश के अनुकूल हो, यह शिक्षा मनोविज्ञान समझता है।
2. बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं- जैसे-शैशवावस्था (0-3 वर्ष/पूर्व बाल्य काल 3-6 वर्ष) उत्तर बाल्यकाल (6-12 वर्ष), किशोरावस्था (12-18 वर्ष) प्रौढ़ावस्था (18 या 60 वर्ष), वृद्धावस्था (60 वर्ष से अधिक) में अधिगमकर्त्ताओं के लिए अलग-अलग शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए। इस कार्य को विधिपूर्वक पूरा करने के लिए, प्रयोग आधारित शिक्षण विधियाँ अलग-अलग हैं मों ेटेसरी, किण्डरगार्टन, अभिक्रमित-स्वाध्याय, दलशिक्षण, प्रयोगशाला विधि, कार्यशाला विधि, सुकराती विधि, प्रोजेक्ट पद्धत्ति, आदि में से किस का प्रयोग किस आयु वर्ग के लिए किया ा जाए, यह हमें शिक्षा मनोविज्ञान ही बताता है।
3. बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं से प्रत्येक बच्चे को जाना होता है। प्रत्येक आयु वर्ग में बच्चे के व्यवहार में शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक परिर्वतन आते हैं। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक अभिभावक तथा अध्यापक इन परिवर्तनों के बारे में जाने। इन परिवर्तनों के बारे में जाने बिना अध्यापक तथा अभिभावक बच्चों के विकास में सहयोगी नहीं हो सकते बल्कि कई बार वे अवरोध पैदा कर देते हैं। जिसके फलस्वरूप बच्चों में-मूत्र असंयम, क्रोधावेश, तुनकमिजाजी, अंगूठा चूसना, नकारात्मकता, रोनाधोना, झूठ बोलना, डरपोकपन, धैर्यहीनता, चोरी करना, दांतों से नाखून काटना, वामहस्तता, शर्मीलापन आदि संवेगात्मक समस्याएं आ जाती हैं। इन समस्याओं को पनपने न देना शिक्षा मनोविज्ञान की विधियों को प्रयोग करने से सम्भव है इस प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए मनोविज्ञान उपचार की विधियाँ बताता है। जो कि शिक्षक तथा अभिभावक के द्वारा अपनाये जा सकते है।
4. किशोरावस्था को **'स्टेनले हाल'**ने संघर्ष, तूफान, दबाव और तनाव का काल कहा है। इस आयुवर्ग में बालक का जीवन नाजुक दौर से गुजरता है। यह आयुवर्ग जीवन निर्माण का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस आयुवर्ग में यदि किशोरों के साथ मनोविज्ञान द्वारा बताये गये सिद्धांन्तों का पालन नहीं किया जाता तो बच्चे के विकास में बाधा पड़ती है। यदि अध्यापक तथा अभिभावक ठीक ढंग से व्यवहार नहीं करते तो किशोर समाज के लिए कंटक भी बन जाते है। वर्तमान काल में किशोरों में पनपती अनुशासनहीनता तथा विद्रोह तथा असामाजिककार्यों में लिप्त होने का यह महत्वपूर्ण कारक हैं। अतः किशोर मनोविज्ञान का ज्ञान प्रत्येक गृहस्थ तथा अध्यापक को होना चाहिए।
5. असफलता का भय, आत्मविश्वास की कमी के कारण आता है। आत्मविश्वास में वृद्धि करने का आधार सफलताएं हैं। मनोविज्ञान हमें बच्चों को सफलताओं का भान कराने की दिशा देता है।

6. मनोविज्ञान बच्चों को दण्ड न देने की दिशा देता है। क्योंकि दण्ड से बच्चे बिगड़ते हैं। जबकि पुरस्कार से बच्चे सुधरते हैं।
7. बच्चों में निहित अच्छाइयों की खोज करें, उनकी अच्छाइयों का सम्मान करें, ऐसा करने पर बुराइयां अपने आप छूट जाती है। यह मत शिक्षा मनोविज्ञान का है।
8. मनोविज्ञान कहता है कि कभी भी बच्चे को निषेधात्मक आदेश नहीं देने चाहिए। (यह न करो, वह न करो आदि) बल्कि सुझावात्मक सुझाव देने चाहिए। यह करना अच्छा है, इस तरह से अपनी बात कहनी चाहिए आदि।
9. बच्चे को स्वावलम्बन की शिक्षा दे। परिवार, विद्यालय आदि के लिए कर्तव्य का बोध भी करायें।
10. बच्चों के शारीरिक दोषों का निराकरण कराना अध्यापकों का दायित्व है।
11. बच्चों में वैयक्तिक विभिन्नताएं होती है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से बच्चे की बुद्धिलब्धि, अभिरुचि, अभियोग्यताओं के परीक्षण से वैयक्तिक विभिन्नताओं से परिचित होकर उनके अनुकूल शिक्षण विधियों, विषयों का चयन किया जाना चाहिए।
12. मूल्यांकन करना अत्यन्त महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि इससे विदित होता है कि अध्यापक अपने शिक्षण में कितना सफल हुआ। स्किनर ने लिखा है कि शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान, शिक्षक, के रूप में अपनी स्वयं की कुशलता का मूल्यांकन करने में सहायक होता है।
13. शिक्षा मनोविज्ञान विद्यालय तथा कक्षा में अनुशासन बनाये रखने में सहायक होता है।
14. बच्चों के संर्वागीण विकास में शिक्षा मनोविज्ञान सहायक होता है।
15. मनोविज्ञान के सिद्धान्तां पर आधारित दृश्यश्रव्य सामग्री शिक्षण को सुखद, सरल, सरस तथा उत्प्रेरणा प्रदान करती है, विषय की ओर अधिगमकर्ता का ध्यानकर्षण करती है। आनन्ददायक अनुभूति प्रदान करती है। अधिगमकर्ता को सक्रिय करती है, अध्यापन के समय की बचत करती है, अध्यापक के कार्य को सरल बनाती है, अधिक समय में पूरी होने वाली क्रियाओं को कम समय में पूरी करने में सहायक होती है। चीनी कहावत है मैं सुनता हूँ-भूल जाता हूँ, देखता हूँ- याद रहता है। करता हूँ- सीख जाता हूँ। इसी लिए आजकल शिक्षण में अधिगम सहायक सामग्रियों अर्थात दृश्य-श्रव्य साधनों का उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यह सभी साधन शिक्षा मनोविज्ञान के अनुसंधानों पर आधारित हैं।
16. विकलांग बच्चों के शिक्षण के लिए अध्यापकों को नई शिक्षण विधियों से परिचित कराने में शिक्षा मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण सहयोग है।
17. शिक्षा मनोविज्ञान बच्चों के समाजिक व्यवहार को संशोधित करने में सहयोग प्रदान करता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान के किन्हीं दो महत्व को लिखिए।
6. शिक्षण कार्य को सम्पन्न करने के लिए मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रयोग किये बिना सफल शिक्षण किया जाना सम्भव नहीं है। (सत्य/असत्य)

2.9 शिक्षा व्यवस्था के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता

शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा व्यवस्था से सम्बन्धित निम्नलिखित निर्णयों में सहायक है-

1. पाठ्यक्रम बालकों की अभिरुचि तथा अभिक्षमताओं के अनुकूल होने के सम्बन्ध में शिक्षा मनोविज्ञान दिशा निर्देश देता है।
2. शिक्षा मनोविज्ञान अनुशासन स्थापन की नवीन विधियों का ज्ञान देता है।
3. शिक्षा मनोविज्ञान मूल्यांकन की नवीन पद्धतियों को लागू करने में सहयोग एवं दिशा निर्देश प्रदान करता है।
4. शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में प्राप्त किए जा सकने वाले उद्देश्यों की जानकारी प्रदान करने में तथा आयुवर्गानुसार पाठ्यक्रम के निर्धारण में शिक्षा मनोविज्ञान दिशा निर्देश देता है।
5. विद्यालय के शैक्षिक पर्यावरण की उन्नति के सुझाव देना शिक्षा मनोविज्ञान से ही सार्थक होता है।

2.10 शिक्षा मनोविज्ञान की सीमाएं

योग्य अध्यापक बनने के लिए उसकी रुचि, मनोवृत्ति, अभ्यास एवं अनुभव की आवश्यकता होती है। शिक्षा मनोविज्ञान तो केवल उसे सूचना एवं ज्ञान प्रदान, करेगा, उसकी योग्यता में वृद्धि, उसके अपने अनुभव इत्यादि पर निर्भर होगी। अतएव शिक्षा मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण सीमा यह है कि शिक्षा की प्रकृति ऐसी है कि उसमें ज्ञान, सूचना, तथ्यों के संकलन के अतिरिक्त भी अन्य बातों की आवश्यकता है।

शिक्षा मनोविज्ञान की दूसरी सीमा इसके वैज्ञानिक रूप के कारण है। विज्ञान से तथ्य तो प्रकाश में आते हैं, किन्तु उसके द्वारा अन्तिम निर्णय नहीं लिये जा सकते हैं। जैसे, विज्ञान द्वारा अणु शक्ति के उत्पादन इत्यादि का ज्ञान तो प्राप्त हो जाता हैं, किन्तु इस शक्ति का प्रयोग कैसे हो, इसका निर्णय विज्ञान से न मिलकर समाजशास्त्रों एवं मानव कल्याण से सम्बन्धित विषयों द्वारा प्राप्त होता है। शिक्षा मनोविज्ञान से भी हमें केवल तथ्यों का पता चलता है। उनके प्रयोग के निर्णय के सम्बन्ध में बहुत सी अन्य बातों का पता ज्ञान होना भी नितान्त आवश्यक है।

शिक्षा-मनोविज्ञान हमें यह तो बता सकता है कि किस प्रकार का वातावरण किस प्रकार की शिक्षा के लिए उत्तम है, किन्तु वर्तमान स्थिति में वह वातावरण कैसे उत्पन्न किया जा सकता है

अथवा उसका निर्माण करना कितना सम्भव है, इसका निर्णय मनोविज्ञान के क्षेत्र से बाहर ही समझा जा सकता है।

हम कह सकते हैं कि किसी समस्या को सुलझाने में विज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण है और जो तथ्य विज्ञान द्वारा संकलित किये जाते हैं, वे अनेक दशाओं में समस्या-समाधान में मूल होते हैं, फिर भी सम्पूर्ण तथ्य मिलकर भी समस्या के सम्बन्ध में निर्णय लेने की आवश्यकता को नहीं समाप्त कर सकते ।

शिक्षा मनोविज्ञान की तीसरी सीमा इसकी अपनी प्रकृति के कारण है। मनोविज्ञान एक विज्ञान का रूप लिये हुए तो है किन्तु अन्य विज्ञानों से इस बात में भिन्न है इसके तथ्यों को नियमबद्ध क्रमबद्ध रूप में रखना, जैसा कि अन्य विज्ञानों में होता है, अब तक सम्भव नहीं हो पाया है।

भौतिक विज्ञान या रसायनशास्त्र अथवा अन्य प्रकृति-विज्ञान तथ्यों के झुण्ड के झुण्ड को कुछ नियमों, सिद्धान्तों या सामान्यीकरण के रूप में रख देते हैं। एक वैज्ञानिक को इन नियमों इत्यादि को ही स्मरण रखना होता है। और वह इस विज्ञान सम्बन्धी जटिल से जटिल समस्या को सुलझा लेता है, किन्तु एक मनोवैज्ञानिक को तथ्यों के झुण्डों में से अपने समस्या सम्बन्धी तथ्यों को निकालना होगा। यहीं नहीं इन तथ्यों को प्रयोग समस्या-के समाधान में जैसे उसे प्राप्त हुए है। वैसे ही नहीं, वरन् इनमें स्थान एवं समय या वातावरण के अनुसार परिवर्तन लाकर करना होगा।

एक उदाहरण से उपर्युक्त बात स्पष्ट हो जायेगी। इंजीनियर को भवन कानिर्माण करना है। वह भवन-निर्माण सम्बन्धी नियमों का अध्ययन कर भवन की इमारत खड़ी करा दे। नींव की गहराई, चूने, सीमेण्ट, ईंट तथा अन्य उपयोगी सामग्रियों जो भवन को मजबूती प्रदान करते हैं, इसका उसे ज्ञान होगा और वह नियमानुसार भवन बनावा देगा। किन्तु अध्यापक, जिसे चरित्र निर्माण कराना है, कोई भी ऐसे नियमों पर अपना कार्यक्र्रम आधारित नहीं कर सकता, जो चरित्र निर्माण सम्बन्धी पूर्णरूप से निर्धारित हों। चरित्र-निर्माण के लिए उसे वंशानुक्रम, वातावरण, आदतों इत्यादि सम्बन्धी अध्ययनों का अवलोकन करना होगा, फिर देखना होगा कि जिस स्थिति में इनके विद्यार्थी हैं, उनके किस प्रकार से इन अध्ययनों की सहायता लेकर चरित्र-निर्माण का कार्यक्रम प्रारम्भ किया जा सकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा-मनोविज्ञान की तीन महत्वपूर्ण सीमाएं हैं-

1. शिक्षा मनोविज्ञान का प्रयोग शिक्षण की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए सीमित रूप से ही किया जा सकता है। शिक्षण की प्रकृति के अनुसार अनुभव, रुचि मनोवृत्ति इत्यादि, शिक्षक के लिए उतने ही आवश्यक है जितना कि मनोविज्ञान का ज्ञान।

2. शिक्षा मनोविज्ञान विज्ञान की इस सीमा से सीमित है कि तथ्यों की सत्यता की जांच अथवा नये तथ्यों का पता लगाना-निर्णय करने में केवल सहायक होते हैं, न कि निर्णय को अन्तिम रूप देने में।
3. शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की सीमा से सीमित है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षा व्यवस्था में कोई दो उपयोगित लिखिए।
8. शिक्षा मनोविज्ञान की कोई एक सीमा लिखिए।

2.11 सारांश

शिक्षा मनोविज्ञान प्रारम्भ में मनोविज्ञान का एक अंगभूत घटक रहा है। इससे पहले मनोविज्ञान भी दर्शनशास्त्र का ही एक अंग रहा है। विश्व में ज्ञान विज्ञान का प्रसार बड़ी तीव्र गति से हो रहा है अतः शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान में भी निरन्तर प्रगति हो रही है तथा अब इन की प्रगति में विशिष्ट रूप से उन्नयन हुआ है। पाठ्य पुस्तक, शिक्षक का कक्षा में तथा कक्षा से बाहर का व्यवहार बदलना स्वाभाविक है। अध्यापन अब इतना सरल नहीं रह गया है जितना यह पहले माना जाता रहा है। अब शिक्षा मनोविज्ञान ने शिक्षक के दायित्वों में वृद्धि ही नहीं की है बल्कि अध्यापन के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए भी कई कार्य किये हैं। शिक्षण के दौरान अब बाल-अधिकारों को बच्चों को उपलब्ध कराने में अध्यापकों का दायित्व और अधिक महत्वपूर्ण हो चुका है।

2.12स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ है-
   i. शिक्षा मनोविज्ञान का केन्द्र-मानव व्यवहार है।
   ii. शिक्षा मनोविज्ञान-खोज तथा निरीक्षणों से प्राप्त तथ्यों का संग्रह है।
   iii. शिक्षा मनोविज्ञान, शैक्षिक समस्याओं का समाधान अपनी स्वयं की पद्धति से करता है।
2. **स्किनर:**‘‘शिक्षा मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार का शैक्षिक परिस्थितियों में अध्ययन करता है।’’
3. **वाल्टर बी. कालेस्निक:** शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के उन तथ्यों और सिद्धान्तों का अध्ययन है, जो शिक्षा प्रक्रिया की व्याख्या करने तथा सुधारने में सहायक होते हैं। इस

प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान दो क्रियाओं-शिक्षा तथा मनोविज्ञान के वैज्ञानिक ज्ञान का पिण्ड है।''

4. क्रो तथा क्रो
5. अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान के कोई दो महत्व निम्न हैं-
   i. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक की शैक्षणिक समस्याओं के प्रति सम्यक दृष्टिकोण प्रदान करता है तथा उपयुक्त अध्यापक-विधि से अवगत कराता है।
   ii. यह अध्यापक को बालक के विकास के लिए उपयुक्त शैक्षिक वातावरण प्रस्तुत करने में सहायता देता है।
6. सत्य
7. शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षा व्यवस्था में कोई दो उपयोगिता निम्न हैं-
   i. पाठ्यक्रम बालकों की अभिरुचि तथा अभिक्षमताओं के अनुकूल होने के सम्बन्ध में शिक्षा मनोविज्ञान दिशा निर्देश देता है।
   ii. शिक्षा मनोविज्ञान अनुशासन स्थापन की नवीन विधियों का ज्ञान देता है।
8. शिक्षा मनोविज्ञान का प्रयोग शिक्षण की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए सीमित रूप से ही किया जा सकता है। शिक्षण की प्रकृति के अनुसार अनुभव, रुचि मनोवृत्ति इत्यादि, शिक्षक के लिए उतने ही आवश्यक है जितना कि मनोविज्ञान का ज्ञान।

2.13संदर्भ ग्रंथ

1. चौबे, एस.पी. तथा चौबे, ए. (2007) शैक्षिक मनोविज्ञान के मूल आधार, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
2. भटनागर, सुरेश (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
3. श्रीवास्तव, ज्ञानानन्द प्रकाश (2002) शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली कन्सैप्ट पब्लिकेशन
4. शुक्ल, ओ.पी. (2002) शिक्षा मनोविज्ञान लखनऊ, भारत प्रकाशन,
5. Child, D (1975): Psychology and the teacher. London; Holt Rinehart and winston.
6. Gasret HE. (1982): General Psychology. New Delhi Eurasia. Publishing house Pvt. Ltd.
7. Soreson, H (1964): Psychology in Education. New York: McGraw-hill Book co.
8. Mathur, S.S. (1977): Educational Psychology. Agra, VinodPustakMandir.

9. Mitzel, H.E. (1982): Encyclopedia of Educational Research: London. The free press

2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र क्या है?
2. शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षार्थियों के लिए उपयोहिता को स्पष्ट कीजिए।
3. बाल व्यवहार में आने वाली समस्याओं की सूची बनाए जिनका शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर समाधन किया जा सकता है।
4. किशोर मनोविज्ञान अध्यापकों को क्यों जानना चाहिए।
5. दृश्य श्रव्य सामग्रियों के माध्यम से अध्यापन कराने के लाभ लिखें।

इकाई – 3 मानव विकास:- मानव विकास की अवस्थायेंHuman Development :- Stages of Human Development

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मानव विकास की अवस्थाएं
3.4 गर्भावस्था
3.5 शैशवावस्था
3.6 बाल्यावस्था
3.7 किशोरावस्था
3.8 प्रौढ़ावस्था
3.9 मध्यावस्था
3.10 वृद्धावस्था
3.11 सारांश
3.12 शब्दावली
3.13 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
3.14 संदर्भ-ग्रन्थ
3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

बालक के विकास की प्रक्रिया उसके जन्म से पूर्व माता के गर्भ से ही प्रारम्भ हो जाती है और जन्म के पश्चात् यह विकास प्रक्रिया शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था तक क्रमशः चलती रहती है। विकास की इन विभिन्न अवस्थाओं में बालक का कई प्रकार से विकास होता है यथा-शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक विकास आदि । इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव विकास प्रक्रिया जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त चलती रहती है।

प्रस्तुत इकाई में आप मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे तथा विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं एवं उस अवस्था विशेष में सम्पादित विकासात्मक कार्यो का अध्ययन कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

1. मानव विकास के विभिन्न अवस्थाओं में अन्तर समझ सकें।
2. विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों को रेखांकित कर सकें।
3. मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे।
4. विभिन्न अवस्थाओं के विकासात्मक कार्यो का वर्णन कर सकेंगे।

3.3 मानव विकास की अवस्थायें-

मनुष्य के सम्पूर्ण विकास काल को कई अवस्थाओं में बाँटा गया है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि गर्भकाल और परिपक्वता के बीच को प्रत्येक अवस्था में कुछ ऐसी प्रमुख विशेषतायें उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण एक अवस्था दूसरी अवस्था से भिन्न दिखाई पड़ने लगती है। विकासात्मक अवस्थाओं को लेकर मनोवैज्ञानिकों के बीच मतभेद है। आप इस इकाई में गर्भाधान से मृत्यु तक की विकासात्मक अवस्थाओं का निम्नवन अध्ययन करेंगे-

	विकास की अवस्था	जीवन अवधि
1	गर्भकालीन अवस्था या गर्भावस्था	गर्भाधान से लेकर जन्म तक
2	शिशुकाल या शैशवावस्था	जन्म से लेकर 3 वर्ष की अवस्था
3.	बाल्यकाल य बाल्यावस्था a) पूर्व- बाल्यावस्था b) उत्तर - बाल्यावस्था	3 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक 4 वर्ष से 6 वर्ष तक 7 वर्ष से 12 वर्ष तक
4	किशोरावस्था	13 से 19 वर्ष तक
5.	प्रौढ़ावस्था	20 से 40 वर्ष तक
6.	मध्यावस्था	41 से 60 वर्ष तक

7.	वृद्धावस्था- जीवन की अंतिम अवस्था होती है	इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद

3.4 गर्भावस्था

यह अवस्था गर्भाधान के समय से लेकर जन्म तक की अवस्था है। इस अवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा इसमें विकास की गति अधिक तीव्र होती है। किन्तु जो परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं वे विशेष रूप से शारीरिक होते हैं। समस्त शरीर-रचना, भार, आकार में वृद्धि तथा आकृतियों का निर्माण इसी अवस्था की घटनायें होती हैं।

सम्पूर्ण गर्भकालीन विकास को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। गर्भाधान से लेकर दो सप्ताह की अवस्था को बाल्यावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में प्राणी अंडे के आकार का होता है। इस अंडे में भीतर तो कोष्ठ-विभाजन की क्रिया होती रहती है परन्तु ऊपर से किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता। लगभग एक सप्ताह तक यह अण्डाकार जीव गर्भाशय में तैरता रहता है जिसके कारण इसे कोई विशेष पोषाहार नहीं मिल पाता। परन्तु दस दिन बाद यह गर्भाशय की दीवार से सट जाता है और माता के शरीर पर भोजन के लिए आश्रित हो जाता है। तीसरे सप्ताह से लेकर दूसरे महीने के अन्त तक गर्भकालीन विकास की दूसरी अवस्था होती है जिसे भ्रूणावस्था कहा जाता है। इस अवस्था के जीव को भ्रूण कहते हैं। विकास की गति बहुत तीव्र होने के कारण इस अवस्था में भ्रूण के भीतर अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। शरीर के प्रायः सभी मुख्य अंगों का निर्माण इसी अवस्था में होता है। दूसरे महीने के अन्त तक भ्रूण की लम्बाई सवा इंच से दो इंच तक तथा उसका भार लगभग दो ग्राम हो जाता है। परन्तु भ्रूण का स्वरूप वैसा नहीं होता जैसा नवजात शिशु का होता है। इस अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपाव में बहुत बड़ा होता है। इस अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपात में बहुत बड़ा होता है। कान भी सिर से काफी नीचे स्थित होते हैं नाक में भी केवल एक ही छिद्र होता है और माथे की चौड़ाई आवश्यकता से अधिक होती है। भ्रूण का निर्माण तीन परतों से होता है। बाहरी परत को एक्टोडर्म, बीच वाली परत को मेसोडर्म और आन्तरिक परत को एण्डोडर्म कहा जाता है। इन्हीं तीन परतों से शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण होता है। बाहरी परत से त्वचा, नाखून, दाँत, बाल तथा नाड़ी मण्डल का निर्माण होता है। इनमें से मस्तिष्क का विकास तो बड़ी तेजी से होता है। चार सप्ताह की अवस्था में मस्तिष्क के विभिन्न भागों को पहिचाना जा सकता है। बीच की परत से त्वचा की भीतरी परत तथा मांस-पेशियों का निर्माण होता है। इसी प्रकार आन्तरिक परत से फेफड़े, यकृत, पाचन क्रिया से सम्बन्धित अंग तथा विभिन्न ग्रन्थियाँ बनती है।

गर्भकालीन विकास की तीसरी और अन्तिम अवस्था गर्भस्थ शिशु की अवस्था कही जाती है। यह तीसरे महीने के प्रारम्भ से जन्म लेने के पूर्व तक की अवस्था होती है। इस अवस्था को निर्माण की

अवस्था नहीं बल्कि विकास की अवस्था समझना चाहिए, क्योंकि भ्रूणावस्था में जिन-जिन अंगों का निर्माण हो गया रहता है उन्हीं का विकास इस अवस्था में होता है। प्रत्येक महीने गर्भस्थ शिशु के आकार तथा भार में वृद्धि होती रहती है। पाँच महीने में इसका भार दस औंस तथा लम्बाई दस इंच होती है। आठवें महीने में शिशु वजन में पाँच पौंड का हो जाता है और लम्बाई अट्ठारह इंच तक हो जाती है। जन्म के समय शिशु का भार सात-साढ़े-सात पौंड तथा लम्बाई बीस इंच होती है। इस अवस्था में हृदय, फेफड़े, नाड़ी, मण्डल कार्य भी करने लगते हैं। यहाँ तक कि यदि सातवें महीने में ही बच्चा पैदा हो जाय तो वह जीवित रह सकने योग्य होगा।

3.5 शैशवावस्था

जन्म से लेकर 3 वर्ष की अवस्था को शैशव की अवस्था कहा जाता है। इस आयु के बालक को नवजात शिशु भी कहते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धानों से पता चलता है कि इस अवस्था में बालक के भीतर कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता। जन्म लेने के बाद जिस नये वातावरण में बालक अपने को पाता है उसे समझना और उसमें अपने को समायोजित करना उसके लिये आवश्यक होता है। अतः इस अवस्था में समायोजन की प्रक्रिया के अतिरिक्त बालक के भीतर किसी विशेष मानसिक या शारीरिक विकास के लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते।

3.6 बाल्यावस्था

व्यापक अर्थ में बाल्यावस्था गर्भकाल से परिपक्वता तक के जीवन-प्रसार को कहा जाता है। परन्तु जब हम विकास की विभिन्न अवस्थाओं की चर्चा करते हैं तो ‘बाल्यावस्था’ का प्रयोग संकुचित अर्थ में ही होता है। उस सन्दर्भ में बाल्यावस्था अन्य अवस्थाओं की भाँति विकास की एक विशेष अवस्था समझी जाती है जिसमें कुछ प्रमुख मानसिक और शारीरिक विशेषताएँ आविर्भूत होती हैं।

बाल्यावस्था चार से बारह वर्ष की अवस्था होती है। निरन्तर वातावरण के सम्पर्क में रहने के कारण इस अवस्था में बालक उससे भली-भाँति परिचित हो जाता है और उस पर यथासम्भव नियन्त्रण करने लगता है। वातावरण में अपने को समायोजित करने के लिए वह नित्य प्रयास करता रहता है। इस प्रकार का समायोजन स्थापित करना ही बाल्यावस्था की प्रमुख समस्या होती है और इस प्रक्रिया में उसकी जिज्ञासा की प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर कार्य करती है। समूह-प्रवृत्ति इस अवस्था की एक दूसरी प्रमुख विशेषता मानी जाती है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप बालक के भीतर सामाजिक भावनाओं का विकास प्रारम्भ होता है और घर के भीतर की सीमित वातावरण से ऊबकर वह बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करने लगता है।

सामूहिक परिस्थितियों में पढ़कर बालक में अनुकरण, खेल, सहानुभूति तथा निर्देशग्राहकता का विकास होने लगता है। उसकी अधिकांश नैतिकता समूह द्वारा ही नियंत्रित और निर्देशित होती है।

परन्तु अभी उससे उच्च नैतिक आचरण और आदर्श नैतिक निर्णय की आशा नहीं की जा सकती। जहाँ तक बाल्यावस्था में होने वाले सामाजिक विकास का प्रश्न है, बालक के भीतर सहयोग, सहानुभूति और नेवृत्व की भावनाओं के साथ ही अवज्ञा, स्पर्धा, आक्रामकता तथा द्वन्द्व आदि का विकास शीघ्रता से होने लगता है। यह सारी बातें बालक के सामाजिक समायोजन तथा उसके मस्तिष्क के उचित विकास के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि इन्हीं परिस्थितियों में पड़कर वह आत्मनिर्भर होना सीखता है। परन्तु द्वन्द्व और आक्रामकता के विकास के बावजूद भी किशोरावस्था की तुलना में बाल्यावस्था स्थिरता और शांति की अवस्था समझी जाती है। इस अवस्था में बालक घर के भीतर के संकुचित वातावरण से निकलकर पाठशाला और मित्रमण्डली में समय व्यतीत करता है। अतः उसे जीवन की अनेक वास्तविकताओं को भलीभाँति समझने का अवसर मिलता है। वह कठारताओं और अभावों को चुपचाप सहन कर लेता है, किशोरों की भाँति क्रांतिकारी भावनाओं का प्रदर्शन नहीं करता।

बाल्यावस्था को दो भागों में विभक्त किया गया है:-

1. पूर्व-बाल्यावस्था - 4 से 6 वर्ष तक
2. उत्तर- बाल्यावस्था - 7 से 12 वर्ष

पूर्व बाल्यावस्था की विशेषताएँ

इसे प्राक-स्कूल अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था में बच्चों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, अवगमात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास, बौद्धिक विकास, सामाजिक विकास, तथा सांवेगिक विकास होते देखा गया है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे प्राक्-टोली अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं।

1. **बाल्यावस्था एक समस्या अवस्था होती है-** इस अवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस अवस्था में बच्चे एक विशिष्ट व्यक्तित्व विकसित करते हैं और स्वतंत्र रूप से कोई कार्य करने पर अधिक बल डालते हैं। इसके अलावा इस उम्र के बच्चे अधिक जिद्दी, झक्की, विरोधात्मक, निषेधवादक तथा बेकहा होते हैं। इन व्यवहारात्मक समस्याओं के कारण अधिकतर माता-पिता इस अवस्था को 'समस्या अवस्था' कहते हैं।
2. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों की अभिरूचि खिलौनों में अधिक होती है-**इस अवस्था में बच्चे खिलौनों से खेलना अधिक पसंद करते हैं। बुरनर (1975), हेरोन (1971) एवं काज, (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बताया है कि इस अवस्था में बच्चों में खिलौनों से खेलने की अभिरूचि अधिकतम होती है और जब बच्चे स्कूल अवस्था में प्रवेश करने लगते हैं अर्थात वे 6 साल का होने को होते हैं तो उनकी यह अभिरूचि समाप्त हो जाती है।

3. **पूर्व बाल्यावस्था को शिक्षकों द्वारा तैयारी का समय बताया गया है-**इस अवस्था को शिक्षकों ने प्राक्स्कूली अवस्था कहा है, क्योंकि इस अवस्था में बच्चों को किसी स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए दाखिला नहीं कराया जाता है। लेकिन, कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं जिन्हें प्राक्स्कूल कहा जाता है जिनमें बच्चों को रखकर कुछ अनौपचारिक ढंग से या खेल के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। नर्सरी स्कूल ऐसे स्कूलों के अच्छे उदाहरण हैं। लेकिन, कुछ बच्चे ऐसे नर्सरी स्कूल में न जाकर माता-पिता से घर पर ही कुछ शिक्षा पाते हैं। शिक्षकों का कहना है कि चाहे बच्चे किसी नर्सरी स्कूल में अनौपचारिक शिक्षा पा रहे हों या घर में माता-पिता द्वारा शिक्षा प्राप्त कर रहे हों, वे अपने-आपको इस ढंग से तैयार करते हैं कि स्कूल अवस्था प्रारंभ होने पर उन्हें किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हो।
4. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में उत्सुकता अधिक होती है-**इस अवस्था में बच्चों में अपने इर्द-गिर्द की वस्तुओं, चाहे वे जीवित हों या अजीवित, के बारे में जानने की उत्सुकता काफी अधिक रहती है। वे हमेशा यह जानने की कोशिश करते हैं कि उनके वातावरण में उपस्थित ये सब वस्तुएँ किस प्रकार की है, वे कैसे कार्य करती हैं, वे कैसे एक-दूसरे से संबंधित हैं आदि-आदि। शायद यही कारण है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पूर्व बाल्यावस्था को अन्वेषणात्मक अवस्था कहा है।
5. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति अधिक तीव्र होती है-**इस अवस्था के बच्चों में अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य वयस्कों के व्यवहारों तथा उनके बोलने-चालने के तौर-तरीकों का नकल उतारने की प्रवृत्ति देखी जाती है। चेरी तथा लेविस (1991) का मत है कि इस अवस्था के जिन बच्चों में ऐसी प्रवृत्ति अधिक होती है उन बच्चों में किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में आने पर सुझाव ग्रहणशीलता का शीलगुण तेजी से विकसित होता है।

उत्तर बाल्यावस्था की विशेषताएँ

उत्तर बाल्यावस्था 7 वर्ष से प्रारंभ होकर बालिकाओं में 10 वर्ष की उम्र तक की होती है तथा बालकों में 7 वर्ष से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की उम्र तक की होती है। यह वह अवस्था होती है जब बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं। इस अवस्था को माता-पिता, शिक्षकों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिखाई गई विशेषताओं के आधार पर कई तरह के नाम भी दिए गए हैं। जैसे माता-पिता द्वारा इस अवस्था को उत्पाती अवस्था कहा गया है (क्योंकि अक्सर बच्चे माता-पिता की बात न मानकर अपने साथियों की बात अधिक मानते हैं), शिक्षकों ने इस अवस्था को प्रारंभिक स्कूल अवस्था कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चे स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए जाना प्रारंभ कर देते हैं) मनोवैज्ञानिकों ने इस अवस्था को गिरोह अवस्था या ''गैंग एज'' कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चों में अपने गिरोह या समूह के अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है)। इस अवस्था में भी बच्चों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, सांवेगिक विकास,

सामाजिक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते है जिनका ज्ञान होने से शिक्षक आसानी से बालकों का मार्गदर्शन कर पाते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. **माता-पिता द्वारा एक उत्पाती या उधमी अवस्था कहा गया है-**इस अवस्था में बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं और उन पर अपने संगी-साथियों का गहरा प्रभाव पड़ना भी प्रारंभ हो जाता है। वे माता-पिता की बात को कम महत्व देते हैं जिसके कारण उन्हें डाँट-फटकार भी मिलती है। इस अवस्था में बच्चे अपनी व्यक्तिगत आदतों के प्रति लापरवाह होते हैं जिससे माता-पिता तथा शिक्षक दोनों ही काफी परेशान रहते हैं।
2. **बच्चों में लड़ाई-झगड़ा करने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है-**उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में आपस में लड़ने-झगड़ने की प्रवृत्ति अधिक होती है। यह बात वहाँ पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है जहाँ परिवार में भाई-बहनों की संख्या अधिक होती है। छोटी-छोटी बात को लेकर एक-दूसरे पर आरोप थोपते हैं, गाली-गलौच करते हैं और शारीरिक रूप से आघात करने में भी पीछे नहीं रहते।
3. **शिक्षकों द्वारा उत्तर बाल्यावस्था को प्रारंभिक स्कूली अवस्था कहा जाता है-** शिक्षकों ने इस बात पर बल डाला है कि यह वह अवस्था होती है, जिसमें छात्र उन चीजों को सीखते हैं जिनसे उन्हें वयस्क जिंदगी में सफल समायोजन करने में मद्द मिलती है। इस अवस्था में छात्र पाठ्यक्रम से संबद्ध कौशल तथा पाठ्यक्रम कौशल दोनों को ही सीखकर अपना भविष्य उज्जवल करने की नींव डालते हैं। कुछ शिक्षकों ने इस अवस्था को नाजुक अवस्था भी कहा है, क्योंकि इस उम्र में उपलब्धि-प्रेरक की भी नींव पड़ती है। बालकों में उच्च उपलब्धि-प्रेरणा, निम्न उपलब्धि-प्रेरणा, या साधारण उपलब्धि-प्रेरणा की आदत बनती है। एक बार जिस प्रकार की आदत बन जाती है, वही आदत किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में भी बनी रहती है। कागन (1977) तथा हाईटमैन (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों से इस बात की पुष्टि की है कि उत्तर अवस्था में दिखाए गए उपलब्धि-स्तर तथा वयस्कता में प्राप्त किए गए उपलब्धि-स्तर में अधिक सह-संबंध पाया जाता है जो अपने-आपमें इस बात का द्योतक है कि उत्तर बाल्यावस्था का उपलब्धि-स्तर बहुत हद तक वयस्क के उपलब्धि-स्तर का एक तरह का निर्धारक होता है।
4. **बच्चा अपनी ही उम्र के साथियों के समूह द्वारा स्वीकृति पाने के लिए काफी लालायित रहता है-**इस अवस्था की एक विशेषता यह भी बताई गई है कि इस उम्र के बच्चे अपने साथियों के समूह में इतना अधिक खो जाते हैं कि उनके बोलने-चालने का ढंग, कपड़ा पहनने का ढंग, खाने-पीने की चीजों की पसंद आदि सभी इस समूह के अनुकूल हो जाता है। बच्चे ऐसे तौर-तरीकों पर इतना अधिक ध्यान देते हैं कि वे इस बात की भी परवाह नहीं करते कि इस ढंग का तौर-तरीका उनके परिवार तथा स्कूल के तौर-तरीकों से परस्पर विरोधी हैं।
5. **बच्चों में सर्जनात्मक क्रियाओं की ओर अधिक झुकाव होता है-**

इस उम्र के बच्चों में अपनी शक्ति तथा बुद्धि को नई चीजों में लगाने की प्रवृत्ति अधिक होती है। वे अक्सर नए ढंग की चित्रकारी तथा शिल्पकारी करते पाए जाते हैं और उससे उनमें एक तरह से सर्जनात्मक अंतःशक्तियों का विकास होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे सुसमैन (1988) का मत है कि हालाँकि इस ढंग की सर्जनात्मक अंतःशक्तियों का बीज प्रारंभिक बाल्यावस्था में ही बो दिया जाता है, इसका पूर्ण विकास तब तक नहीं होता है जब तक कि बच्चे की उम्र 10-12 साल की नहीं हो जाती है।

पूर्व बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य

पूर्व बाल्यावस्थाके विकासात्मक कार्य निम्नलिखित है-

1. चलना सीखना
2. ठोस आहार लेना सीखना
3. बोलना सीखना
4. मल-मूत्र त्याग करना सीखना
5. यौन अंतरों तथा यौन शालीनता को सीखना
6. शारीरिक संतुलन बनाए रखना सीखना
7. सामाजिक एवं भौतिक वास्तविकता के सरलतम संप्रत्यय को सीखना
8. अपने-आपको माता-पिता, भाई-बहनों तथा अन्य लोगों के साथ सांवेगिक रूप से संबंधित करना सीखना
9. सही तथा गलत के बीच विभेद करना सीखना तथा अपने में एक विवेक विकसित करना।

उत्तर बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य-

1. साधारण खेलों के लिए आवश्यक शारीरिक कौशल को सीखना।
2. अपने-आपके प्रति एक हितकर मनोवृत्ति विकसित करना।
3. अपनी ही उम्र के साथियों के साथ् मिलना-जुलना सीखना।
4. उपयुक्त पुरूषोचित तथा स्त्रियोचित यौन भूमिकाओं को सीखना।
5. पढ़ना, लिखना तथा गिनती करना से संबंधित मौलिक कौशल विकसित करना।
6. दिन-प्रतिदिन की सुचारू जिंदगी के लिए आवश्यक संप्रत्ययों को सीखना।
7. नैतिकता, मूल्य तथा विवेक को सीखना।
8. व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त करने की कोशिश करना।
9. सामाजिक समूहों एवं संस्थानों के प्रति मनोवृत्ति विकसित करना।

3.7 किशोरावस्था

किशोरावस्था बाल-काल की अन्तिम अवस्था होती है। सम्पूर्ण बाल-विकास में इस अवस्था का बहुत ही महत्व समझा जाता है। यह अवस्था प्रायः तेरह से उन्नीस वर्ष के बीच की अवस्था मानी जाती है। इसके बाद परिपक्वता का प्रारम्भ होता है। इस अवस्था की अनेक विशेषतायें होती हैं जिनमें दो प्रमुख हैं- सामाजिकता और कामुकता। इन्हीं से सम्बन्धित अनेक परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं। यह अवस्था कई दृष्टियों से शारीरिक और मानसिक उथल-पुथल से भरी होती है। इसे शैशव की पुनरावृत्ति भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में बाल्यावस्था की स्थिरता और शांति नहीं दिखलाई पड़ती। स्वभाव से भावुक होने के कारण किशोर बालक न तो अपना शारीरिक और न ही मानसिक समायोजन उचित रूप से स्थापित कर पाता है।

किशोरावस्था विकास की अत्यन्त महत्वपूर्ण सीढ़ी है। किशोरावस्था का महत्व कई दृष्टियों से दिखाई देता है।प्रथम यह युवावस्था की ड्योढ़ी है जिसके ऊपर जीवन का समस्त भविष्य आधारित होता है। द्वितीय यह विकास की चरमावस्था है। तृतीय यह संवेगात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस अवस्था में बालक में अनेकों परिवर्तन होते रहते हैं तथा विभिन्न विशेषताएं परिपक्वता तक पहुँच जाती है। किशोरावस्था के लिए अंग्रेजी का शब्द किशोरावस्था वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति बाल्यावस्था के बाद पदार्पण करता है।किशोरावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में विकास की गति अत्यधिक तीव्र होती है।

किशोरावस्था अत्यंत संक्रमणकाल की अवधि होती है। इस अवस्था में किशोर स्वयं को बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य अनुभव करता है जिस कारण वह न तो बालक और न ही प्रौढ़ की तरह व्यवहार कर पाता है फलतः वह अपने व्यवहार को निश्चित करने में कठिनाई का अनुभव करता है। किशोरावस्था में अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक,संवेगात्मक एवं व्यवहारिक परिवर्तन एवं विकास दिखाई देते हैं। इन परिवर्तनों के कारण उनकी रुचियों, इच्छाओं आदि भी परिवर्तित हो जाती हैं। इन्हीं सब कारणों किशोरावस्था का जीवन के विकास कालों में काफी महत्व है।

किशोरावस्था में किशोरों में अपने मित्र समूह के प्रति मैत्री भाव की प्रधानता होती है। पूर्व बाल्यावस्था तक यह भावना बालक की बालक के प्रति तथा बालिकाओं की बालिकाओं के प्रति ही होती थी, परन्तु उत्तर बाल्यावस्था से परस्पर विपरीत लिंग के लिये आकर्षण उत्पन्न हो जाता है और वे एक दूसरे के सामने स्वयं को सर्वोत्तम रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न करने लगते हैं।

किशोरावस्था कामुकता के जागरण, संवेगात्मक अस्थिरता, विकसित सामाजिकता, कल्पना-बाहुल्य तथा समस्या-बाहुल्य की अवस्था मानी जाती है। जैसा ऊपर संकेत किया गया है, किशोर बालक और बालिका में घोर शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होते हैं। उनके संवेगात्मक,

सामाजिक और नैतिक जीवन का स्वरूप ही बदल जाता है। उनके हृदय स्फूर्ति और जोश से भर जाते हैं और संसार की प्रत्येक वस्तु में उन्हें एक नया अर्थ दिखलायी पड़ने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो किशोरावस्था में प्रविष्ट होकर बालक एक नया जीवन ग्रहण करता है।

किशोरावस्था के लिए विकासात्मक कार्य-

1. दोनों यौन की समान उम्र के साथियों के साथ नया एवं एक परिपक्व संबंध कायम करना।
2. उचित पुरूषोचित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएँ सीखना।
3. माता-पिता तथा अन्य वयस्कों से हटकर एक सांवेगिक स्वतंत्रता कायम करना।
4. किसी व्यवसाय का चयन करना तथा उसके लिए अपने-आपको तैयार करना।
5. जीवन की प्रतियोगिताओं के लिए आवश्यक संप्रत्यय तथा बौद्धिक कौशलताओं को सीखना।
6. पारिवारिक जीवन तथा शादी के लिए अपने-आपको तैयार करना।
7. सामाजिक रूप से उत्तरदायी व्यवहार का निर्धारण करना तथा उसे प्राप्त करने की भरपूर कोशिश करना।
8. आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की ओर अग्रसर होना।

किशोरावस्थाकी विशेषताएं

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को अधिक महत्वपूर्ण अवस्था बताया है और अधिकतर शिक्षक इस बात से सहमत है कि उन्हें अपने शिक्षण कार्यो में सबसे अधिक चुनौती इस अवस्था के शिक्षार्थियों से प्राप्त होती है। किशोरावस्था 13 साल की उम्र से प्रारंभ होकर 19 साल तक की होती है और इस तरह से इस अवधि में तरूणावस्था या प्राक्किशोरावस्था, प्रारंभिक किशोरावस्था तथा उत्तर किशोरावस्था तीनों ही सम्मिलित हो जाते हैं। इस किशोरावस्था में भी किशोरों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित है-

1. **किशोरावस्था एक महत्वपूर्ण अवस्था है-** किशोरावस्था को हर तरह से एक महत्वपूर्ण अवस्था माना गया है। यह वह अवस्था है जिसका छात्रों में तात्कालिक प्रभाव तथा दीर्घकालीन प्रभाव दोनों की देखने को मिलता है। इस अवस्था में शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों तरह के प्रभाव बहुत स्पष्अ रूप से उभरकर सामने आते हैं। अपने तीव्र शारीरिक विकास के कारण ही इस अवस्था में किशोर अपने-आपको वयस्क से किसी तरह से कम नहीं समझता तथा जैसा कि पियाजे (1969) ने कहा है, तीव्र मानसिक विकास होने के कारण बालक वयस्क के समाज में अपने-आपको संगठित मानता है और वह एक नई मनोवृत्ति, मूल्य तथा अभिरूचि विकसित करने में सक्षम हो पाता है।

2. **परिवर्ती अवस्था होती है**-किशोरावस्था सचमुच में बाल्यावस्था तथा वयस्कावस्था के बीच की अवस्था है। इस अवस्था में किशोरों को बाल्यावस्था की आदतों का परित्याग करके उसकी जगह नई आदतों, जो अधिक परिपक्व तथा सामाजिक होती है, को सीखना होता है। इस दिशा में शिक्षकों की अहम भूमिका होती है। शिक्षक वर्ग में उचित दिशानिर्देश प्रदान कर उन्हें एक परिपक्व तथा सामाजिक मनोवृत्ति कायम करने में मद्द करते हैं जो किशोरों को एक स्वस्थ समयोजन में काफी सहायक सिद्ध होती है।
3. **किशोरावस्था में एक अस्पष्ट वैयक्तिक स्थिति होती है**-इस अवस्था में किशोरों की वैयक्तिक स्थिति अस्पष्अ होती है और उसे स्वयं ही अपने द्वारा की जाने वाली सामाजिक भूमिका के बारे में संभ्रांति होती है। सचमुच एक किशोर अपने-आपको न तो बच्चा समझता है और न ही पूर्ण वयस्क। जब वह एक बच्चा के समान व्यवहार करता है तो उसे तुरन्त कहा जाता है कि उसे ठीक ढंग से व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि वह अब बच्चा नहीं रह गया है। जब वह वयस्क के रूप में व्यवहार करता है तो उससे कहा जाता है कि वह अपनी उम्र से आगे बढ़कर नहीं व्यवहार करे, क्योंकि यह अच्छा नहीं लगता है। इसका नतीजा यह होता है कि किशोरों में अपने द्वारा की जाने वाली वैयक्तिक भूमिका के बारे में संभ्रांति मौजूद रहती है। इरिक्सन (1964) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ‘‘जिस विशिष्टता का किशोर स्पष्टीकरण चाहते हैं, वे हैं-वह कौन है, उसकी समाज में क्या भूमिका होगी? वह बच्चा है या वयस्क है?’’
4. **किशोरावस्था एक समस्या उम्र होती है**-ऐसे तो हर अवस्था की अपनी समस्याएँ होती है, परन्तु किशोरावस्था की समस्या लड़कों तथा लड़कियों, दोनों के लिए ही अधिक गंभीर होती है। इसके मुख्य दो कारण बताए गए है। पहला, उससे पिछली अवस्था यानी बाल्यावस्था में बालकों की समस्याओं का समाधान अंशतः शिक्षकों तथा माता-पिता द्वारा कर दिया जाता था। अतः, वे समस्याओं के समाधान के तरीकों से अनभिज्ञ होते हैं। फलतः, वे किशोरावस्था की अधिकतर समस्याओं का समाधान ठीक ढंग से नहीं कर पाते। दूसरा कारण यह बतलाया गया है कि किशोर प्रायः अपनी समस्या का समाधान करने का भरपूर प्रयास करते हैं जिसमें प्रायः उन्हें असफलता ही हाथ लगती है, क्योंकि सचमुच इन समस्याओं का सही ढंग से समाधान करने की क्षमता तो उनमें होती नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि किशोरावस्था में व्यक्ति समस्या से घिरा रहता है।
5. **किशोरावस्था विशिष्टता की खोज का समय होता है**-किशोरावस्था में किशोरों में अपने साथियों के समूह से थोड़ी विशिष्ट एवं अलग पदवी बनाए रखने की प्रवृत्ति देखी गई है। इस प्रवृत्ति के कारण वे अपने साथियों से भिन्न ढंग का ड्रेस पहनने तथा नए ढंग के साइकिल या स्कूटर आदि का प्रयोग करने पर अधिक बल डालते हैं। इसे इरिक्सन (1964) ने ‘अहम पहचान की समस्या’ कहा है।

6. **अवास्तविकताओं का समय** -किशोरावस्था में अक्सर व्यक्ति ऊँची-ऊँची आकांक्षाएँ एवं कल्पनाएँ करता है जिनका वास्तविकता से कम मतलब होता है। वे अपने बारे में तथा दूसरों के बारे में वैसा ही सोचते है जैसा कि वे सोचना पसंद करते हैं न कि जैसी वास्तविकता होती है। इस तरह की अवास्तविक आकांक्षाओं से किशोरों में संवेगात्मक अस्थिरता भी उत्पन्न हो जाती है। रसियन (1975) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि किशोरों में जितनी ही अधिक अवास्तविक आकांक्षाएँ होती हैं, उतनी ही उनमें अधिक कुंठा तथा क्रोध, विशेषकर उस परिस्थिति में अधिक होती है जब वे यह समझते हैं कि वे उस लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाए जिस पर वे पहुँचना चाहते थे।
7. **वयस्कावस्था की दहलीज होती है**-किशोरावस्था एक तरह से वयस्कावस्था की दहलीज होती है क्योंकि इस अवस्था के समाप्त होते-होते, अर्थात 19 साल की अवस्था में किशोरों के मन में यह बात बैठ जाती है कि अब वे वयस्क हो गए हैं और उन्हें अब वयस्कता से संबंधित व्यवहार करने चाहिए। शायद यही कारण है कि वे इस उम्र में धूम्रपान, मंदिरापान, औषधि सेवन, यौन क्रियाओं आदि में स्वतंत्र रूप से भाग लेने लगते हैं।

3.8 प्रौढ़ावस्था

प्रौढ़ावस्था का प्रसार 20 से 40 वर्ष तक समझा जाता है। इस अवस्था को नये कर्तव्यों और बहुमुखी उत्तरदायित्व की अवस्था समझा जाता है। व्यक्ति इसी अवस्था में बड़ी-बड़ी उपलब्धियों की ओर दत्तचित्त होता है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब वह विभिन्न परिस्थितियों के साथ अपना स्वस्थ समायोजन स्थापित कर सकने में सफल हो। अन्य अवस्थाओं की भाँति प्रौढ़ावस्था में भी समायोजन की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। व्यक्ति को अपने परिवार के सदस्यों, सम्बन्धियों, वैवाहिक जीवन तथा व्यवसाय के साथ स्वस्थ समायोजन स्थापित करने की आवश्यकता पड़ती है। जिन्हें अपने बाल्यकाल में माँ-बाप का अनावश्यक संरक्षण मिला होता है वे इस अवस्था में जल्दी आत्मनिर्भर नहीं हो पाते और फलस्वरूप उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। वैवाहिक समायोजन ठीक न होने से प्रायः कुछ समाजों में तलाक की घटनाएँ देखने को मिलती है। व्यक्ति को अपने व्यवसाय में सफल और संतुष्ट होने के लिए उसकी उपलब्धियाँ ही नहीं वरन् समुचित समायोजन की क्षमता भी आवश्यक होती हैं।

3.9 मध्यावस्था

मध्यावस्था 41 से 60 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति के भीतर कुछ विशेष शारीरिक और मानसिक परिवर्तन देखे जाते हैं मध्यावस्था के प्रारम्भ में ही सामान्य स्त्री-पुरूषों के भीतर संतान उत्पन्न करने की क्षमता समाप्त सी हो जाती है। इसी अवस्था में व्यक्ति के भीतर ह्रास से लक्षण

दृष्टिगोचर होने लगते हैं। धीरे-धीरे व्यक्ति की रूचियाँ भी बदलने लगती हैं वह पहले से अधिक गंभीर और यथार्थवादी हो जाता है और उसकी धार्मिक निष्ठाओं में भी दृढ़ता आने लगती है। धनाज्र्रन के प्रति भी व्यक्ति अब प्रायः कम उत्सुक देखा जाता है। इस अवस्था में एक सामान्य कोटि का व्यक्ति सुख, शान्ति और प्रतिष्ठा का अधिक इच्छुक हो जाता है। जहाँ तक समायोजन का प्रश्न है, इस अवस्था में पहुँचकर व्यक्ति अपने व्यवसाय से प्रायः संतुष्ट हो जाता है। सामाजिक सम्बन्धों के प्रति भी उसकी मनोवृत्तियाँ सुदृढ़ हो जाती है। परन्तु उसे अपने पुत्र-पुत्रियों के विचारों, दृष्टिकोणों तथा आवश्यकताओं को ठीक-ठीक समझना जरूरी हो जाता है। जिन व्यक्तियों का समायोजन अपने परिवार के सदस्यों के साथ अच्छा होता है उन्हें मध्यावस्था और वृद्धावस्था में अभूतपूर्व मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

3.10 वृद्धावस्था

वृद्धावस्था जीवन की अंतिम अवस्था होती है। इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद समझा जाता है। शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास इस अवस्था में बड़ी ही तीव्र गति से होता है। शारीरिक शक्ति, कार्य क्षमता तथ प्रतिक्रिया की गति में काफी मंदता आ जाती है। शारीरिक परिवर्तनों के साथ ही घोर मानसिक परिवर्तन भी इस अवस्था में घटित होते हैं। वृद्धजनों की रूचियों और मनोवृत्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है। सामान्य बौद्धिक योग्यता, रचनात्मक चिन्तन तथा सीखने की क्षमताएँ शिथिल पड़ जाती हैं। वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति का भी बड़ी तेजी से लोप होने लगता है वृद्धजनों की रूचियाँ संख्या में घटकर कम हो जाती हैं और उनके लिए उच्चकोटि की उपलब्धियाँ असंभव हो जाती हैं। शारीरिक शक्ति और मानसिक क्षमताओं में मंदता आ जाने के कारण वृद्ध व्यक्तियों का समायोजन प्रायः निम्नस्तरीय और असंतोषजनक हो जाता है और फलस्वरूप अनेक वृद्धजन बालकालीन आचरण का प्रदर्शन करने लगते हैं। वृद्धावस्था में व्यक् िका सामाजिक सम्पर्क घट जाता है और वह सामाजिक कार्यक्रमों में भाग नहीं ले पाता। व्यावसायिक जीवन से अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद वृद्ध व्यक्ति ऐसा समझने लगता है मानो वह आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर है। अनेक वृद्धजनों के मत में यह धारणा कर लेती है कि समाज और परिवार में अब उनकी कोई आवश्यकता नहीं रही। अतः बुढ़ापे में एक प्रकार की उदासीनता का भाव विकसित होने लगता है। परन्तु जिन वृद्ध व्यक्तियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति जितनी उत्तम होती है और अपने को समाज और परिवार के लिए जितना अधिक उपयोगी समझते हैं उन्हें उतनी ही अधिक प्रसन्नता और मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

विकास के स्वरूप तथा विकास की उपर्युक्त प्रमुख अवस्थाओं का समुचित ज्ञान होना तीन दृष्टियों से आवश्यक है। विकासात्मक अवस्थाओं का ज्ञान होने से हमें यह पता रहता हैं कि बालक के भीतर विभिन्न आयु-स्तर पर किस प्रकार के परिवर्तन दिखलाई पड़ेंगे। साथ ही हम यह भी जान पाते हैं कि कोई शारीरिक अथवा मानसिक गुण किस अवस्था में पहुँचकर परिपक्व होगा। अतः हम उसके

समुचित विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तथा शिक्षण का प्रबन्ध कर सकते हैं ताकि उस गुण-विशेष का विकास सुन्दर से सुन्दर ढंग से हो सके। विकास के स्वरूप तथा उसकी अवस्थाओं के ज्ञान का एक दूसरा लाभ यह है कि इस ज्ञान के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि किस बालक का विकास सामान्य ढंग से चल रहा है और किस बालक का विकास सामान्य ढंग से। ऐसा निश्चित करना इसलिये सम्भव है, क्योंकि प्रायः सभी बालकों के विकास की प्रणाली समान ही होती है। यदि किसी बालक का विकास सामान्य ढंग से नहीं चलता तो उस सम्बन्ध में उचित व्यवस्था की जा सकती है। अन्त में, बालकों को विभिन्न प्रकार का निर्देशन देना भी तभी सम्भव हो पाता है जब हमें उनके विकास की विशेषताओं की जानकारी हो। किसी अवस्था-विशेष में पहुँच कर बालक के भीतर जिन शारीरिक-मानसिक क्षमताओं का उदय एवं विकास होता है उन्हीं को दृष्अि में रखते हुए उन्हें व्यक्तिगत, शिक्षा-सम्बन्धी अथवा व्यवसाय-सम्बन्धी निर्देशन दिया जा सकता है। अतः बालकों के पालन-पोषण, उन्हें समझने तथा उन्हें निर्देशन देने की दृष्टियों से विकास तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओं का वमुचित ज्ञान प्रत्येक माता-पिता, संरक्षक और शिक्षक के लिए श्रेयस्कर होता है।

स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. ____________ 20 से 40 वर्ष तक की अवस्था है।
2. _____________ में विकास की गति अधिक तीव्र होती है।
3. ______________ प्राक-स्कूल अवस्था भी कहते हैं।
4. माता-पिता द्वारा उत्तर- बाल्यावस्था को को________ कहा गया है।
5. मनोवैज्ञानिकों ने उत्तर- बाल्यावस्था को _________ कहा है।
6. किशोरावस्था की दो प्रमुख विशेषतायें क्या हैं?
7. मानव विकास की वह अवस्था जो 13 वर्ष से लेकर 19 वर्ष तक रहती है.................. कहताली है।
8. 7 से 12 वर्ष की अवधि को मानव विकास की .... अवस्था कहते हैं।
9. ''उचित पुरूषोचित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएं सीखना'' एक विकासात्मक कार्य है-
   i. बाल्यावस्था
   ii. किशोरावस्था की
   iii. वयस्कावस्था की
   iv. इनमें से किसी की नहीं
10. किस अवस्था में बच्चे खिलौनों से खेलना अधिक पसन्द करते हैं?
    i. पूर्व बाल्यावस्था
    ii. उत्तर बाल्यावस्था

iii. पूर्व किशोरावस्था
iv. उत्तर किशोरावस्था

11. मानव विकास की किस अवस्था को माता-पिता द्वारा एक ‘‘उत्पाती या उधमी अवस्था कहा गया है?
i. पूर्व बाल्यावस्था
ii. उत्तर बाल्यावस्था
iii. पूर्व किशोरावस्था
iv. उत्तर किशोरावस्था

3.11 सारांश

मानव विकास की निम्नलिखित महत्वपूर्ण अवस्थाएं हैं- गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, वयस्कावस्था, प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था, वृद्धावस्था। शैक्षिक दृष्टिकोण से बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था का विशेष महत्व है क्योंकि इन दोनों ही अवस्थाओं में व्यक्ति को आगामी जीवन के लिए आवश्यक व्यवहारों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

मानव विकास की प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएं होती है तथा अवस्था विशेष के अपने विकासात्मक कार्य होते हैं।

3.12 शब्दावली

1. **गर्भावस्था** - गर्भाधान से लेकर जन्म तक
2. **शैशवावस्था-** जन्म से लेकर 3 वर्ष तक की अवस्था को शैशवावस्था-कहते हैं।
3. **बाल्यावस्था-** 6 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक की अवस्था को बाल्यावस्था कहते हैं।
4. **किशोरावस्था-** 13 से 19 वर्ष तक की अवस्था को किशोरावस्था कहते हैं।
5. **प्रौढ़ावस्था-**20 से 40 वर्ष तक की अवस्था को प्रौढ़ावस्था कहते हैं।
6. **मध्यावस्था**- 41 से 60 वर्ष तक की अवस्था को मध्यावस्था कहते हैं।
7. **वृद्धावस्था**- जीवन की अंतिम अवस्था होती है, इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद होता है।
8. **गिरोह अवस्था:** उत्तर बाल्यावस्था जो 5-6 वर्ष से लेकर 10-12 वर्ष तक रहती है तथा जिसमें बच्चों में अपने गिरोह या समूह के अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है।

9. **विकासात्मक कार्य:** विकासात्मक कार्य वह कार्य है जो व्यक्ति की जिन्दगी की किसी खास अवधि में या अवधि के बारे में सम्बन्धित होता है तथा जिसकी सफल उपलब्धि से व्यक्ति में खुशी होती है और बाद के कार्यो को करने में उसे आनन्द की प्राप्ति होती है, परन्तु असफल होने से व्यक्ति में दुःख होता है, समाज से तिरस्कार मिलता है और बाद के कार्यो को करने में उसे कठिनाई भी होती है।

3.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. प्रौढ़ावस्था
2. गर्भावस्था
3. पूर्व- बाल्यावस्था
4. उत्पाती अवस्था
5. गिरोह अवस्था
6. किशोरावस्था की दो प्रमुख विशेषतायें हैं- सामाजिकता और कामुकता।
7. किशोरावस्था
8. पूर्व बाल्य
9. ii किशोरावस्था की
10. i पूर्व बाल्यावस्था
11. ii उत्तर बाल्यावस्था

3.14 संदर्भग्रन्थ

1. शिक्षा मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह - भारती भवन प्रकाशन, पटना
2. शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी-लाल एवं जोशी - आर.एल. बुक डिपो मेरठ
3. बाल मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या - अजीमुर्रहमान - मोतीलाल बनारसीदास पटना
4. मानव विकास का मनोविज्ञान - रामजी श्रीवास्तव
5. आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान - जे.एन.लाल
6. विकासात्मक मनोविज्ञान (हिन्दी अनुवाद) - ई.बी. हर्लोक

3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं का संक्षेप में वर्णन करें।

2. किशोरावस्था की विशेषताओं का उल्लेख करें तथा इस अवस्था के विकासात्मक कार्यो को रेखांकित करें।
3. विकासात्मक कार्य से आप क्या समझते हैं? पूर्व एवं उत्तर बाल्यावस्था के विकासात्मक कार्यो का विवरण दें।
4. टिप्पणी लिखें-
    i. बाल्यावस्था की विशेषताएं
    ii. किशोरावस्था

इकाई 4- ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त एवम इसका शैक्षिकनिहितार्थ (Jean Piaget's Theory of Cognitive Development And Its Educational Implications)

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 परिचय
4.4 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय
4.5 अपनी अधिगम प्रगति जानिए
4.6 संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ
4.7 अपनी अधिगम प्रगति जानिए
4.8 संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का मूल्यांकन
4.9 शैक्षिक निहितार्थ
4.10 सारांश
4.11 शब्दावली
4.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
4.13 सन्दर्भ ग्रंथ/पठनीय पुस्तकें
4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

विकासात्मक मनोविज्ञान के अनेक सिद्धान्तों में से एक बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त ज्याँ पियाजे (Jean Piaget) का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त है जिसका मूल उद्देश्य बच्चों के विकास के अंतर्गत जो क्रमिक परिवर्तन होते हैं, जिसके कारण मानसिक क्रियाएं और भी जटिल (Complex/ Sophisticated) हो जाती हैं, सरलता से व्याख्या करना है। संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन में ज्याँ पियाजे (Jean Piaget)का अभूतपूर्व योगदान है।

पियाजे ने अपने सिद्धान्त में शैशवस्था से वयस्कावस्था के बीच चिन्तन-क्रिया में जो विकास होते हैं व्याख्या किया है। प्रस्तुत इकाई में आप ज्याँ पियाजे (Jean Piaget) के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप-

1. संज्ञान का अर्थ स्पष्ट कर पायेंगे।
2. संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के महत्वपूर्ण संप्रत्यय (Important concepts) की व्याख्या कर सकेंगे।
3. ज्याँ पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या कर सकेंगे।
4. संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न अवस्थाओं के मध्य अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।
5. ज्याँ पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का मूल्यांकन कर सकेंगें।
6. ज्याँ पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का शैक्षिक निहितार्थ की व्याख्या कर सकेंगे।

4.3 परिचय

संज्ञान (Cognition) का तात्पर्य उन सारी मानसिक क्रियाओं से हैं जिसका संबंध चिंतन (Thinking), समस्या-समाधान, भाषा संप्रेषण तथा और भी बहुत सारे मानसिक प्रक्रिया से है। निस्सर (Neisser 1967)ने कहा है कि 'संज्ञान' संवेदी सूचनाओं (Sensory Information)को ग्रहण करके उसका रूपान्तरण (Transformation), विस्तारण (Elaboration), संग्रहण (Storage), पुनर्लाभ (Recovery) तथा इसके समुचित प्रयोग करने से होता है।

ज्याँ पियाजे (Jean Piaget) संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में कार्य करने वाले मनोविज्ञानिकों में सर्वाधिक प्रभावशाली माने जाते हैं। पियाजे का जन्म, 9 अगस्त सन् 1896 को स्विट्जरलैंड में हुआ था। उन्होंने जन्तु-विज्ञान (Zoology) में पी०एच०डी० की उपाधि की। मनोविज्ञान के प्रशिक्षणके दौरान वे अल्फ्रेड बिने (Alfred Binet) के प्रयोगशाला में बुद्धि-परीक्षण (Intelligence Tests) पर जब कार्य कर रहे थे उसी समय उन्होंने विभिन्न आयु के बच्चों के द्वारा अपने चारों ओर के बाह्य जगत के बारे में ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया का अध्ययन करना शुरू कर दिया। उन्होंने 1923 और 1932 के बीच पॉच पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिनमें उन्होंने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। पियाजे के सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता यह है कि बालक के ज्ञान के

विकास में वह खुद एक सक्रिय साझेदार की भूमिका अदा करता है और वह धीरे-धीरे वास्तविकता के स्वरूप को भी समझने लगता है।

4.4 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्ययों (Important concepts) को समझना आवश्यक है जिनका वर्णन निम्नवत है-

i. **स्कीमाटा (Schemata)** – पियाजे के अनुसार अनुभव (Experience) या व्यवहार (Behavior) को संगठित करने की ज्ञानात्मक संरचना को स्कीमाटा कहते हैं। एक नवजात शिशु में स्कीमाटा एक सहजात प्रक्रिया है, जैसे शिशु की चूसने की प्रतिक्रिया। बच्चा जैसे ही बाहरी दुनिया के साथ अन्त:क्रिया करना प्रारम्भ करता है, इन स्कीमाटा में भी तेजी से परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। धीरे-धीरे बच्चे स्कीमाटा के सहारे समस्या समाधान के नियम तथा वर्गीकरण करना जान लेते हैं। इस तरह स्कीमाटा का संबंध मानसिक संक्रिया (mental operation) से है।

ii. **संगठन (Organization)**– संगठन से तात्पर्य प्रत्यक्षीकृत तथा बौद्धिक सूचनाओं (perceptual and cognitive information) को सही तरीके से बौद्धिक संरचनाओं (cognitive structure) में व्यवस्थित करने से है जो इसे वाह्य वातावरण के साथ समायोजन करने में उसके कार्यों को संगठित करता है| व्यक्ति मिलनेवाली नयी सूचनाओं को पूर्व निर्मित संरचनाओं के साथ संगठित करने की कोशिश करता है, परन्तु कभी-कभी इस कार्य में सफल नहीं हो पाता है, तब वह अनुकूलन करता है।

iii. **अनुकूलन (Adaptation)** – पियाजे के अनुसार अनुकूलन वह प्रक्रिया है जिसमें बालक अपने को बाहरी वातावरण (External Environment) के साथ समायोजन करने की कोशिश करता है। यह एक जन्मजात, प्रवृत्ति (Inborn Tendency) है जिसके अंतर्गत दो प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं-

1. **आत्मसातीकरण (Assimilation)**
2. **समाविष्टिकरण (Accommodation)**

मूलरूप से आत्मसातीकरण एक नयी वस्तु अथवा घटना को वर्तमान अनुभवों में सम्मिलित करने की प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए यदि एक बालक के हाथ में टॉफी रख दिया जाता है तो उसे वह तुरंत मुँह में डाल देता है। क्योंकि उसे यह पता है कि टॉफी एक खाद्य वस्तु है। यहाँ बालक ने अनुकूलन के द्वारा खाने की क्रिया को आत्मसात कर रहा है

अर्थात् पुरानी बौद्धिक क्रिया को नवीन क्रिया के साथ समायोजित करता है। अनुकूलन की यह प्रक्रिया जीवनपर्यंत चलती रहती है।

समाविष्टिकरण (Accommodation)से तात्पर्य वह प्रक्रिया है, जिसमें बालक नये अनुभवों की दृष्टि से पूर्ववर्ती संरचना में सुधार लाने या परिवर्तन लाने की कोशिश करता है। जिससे वह वातावरण के साथ समायोजन कर सके। उदाहरण के लिए जब बालक को टॉफी के स्थान पर रसगुल्ला देते हैं तो बालक यह जानता है, टॉफी मीठी होती है पर अब वह अपने मानसिक सरंचना (Mental structure) में परिवर्तन लाता है, और इसमें नयी बातें जोड़ता है कि टॉफी और रसगुल्ले दोनों अलग-अलग खाद्य-पदार्थ हैं जबकि कि दोनों का स्वाद मीठा है।

आत्मसातीकरण तथा समाविष्टिकरण तभी संभव है जब वातावरण के उद्दीपक बालक के बौद्धिक स्तर (Intellectual level) के अनुरूप होते हैं।

iv. **साम्यधारण (Equilibration)** –साम्यधारण (Equilibration) वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक आत्मसातीकरण (Assimilation) और समाविष्टिकरण (Accommodation) के बीच संतुलन (Balance) स्थापित करता है। पियाजे के अनुसार अगर किसी बालक के सामने जब कोई समस्या आती है जिसका पूर्व अनुभव उसे नहीं था तो वह पूर्व अनुभूति के साथ उसे आत्मसात (Assimilate) करता है। फिर भी अगर समस्या का हल नहीं होता है तो वह अपने पूर्व अनुभव को अपने अनुसार रूपान्तरित (Modification) करता है। अर्थात् वह संतुलन कायम रखने के लिए आत्मसातीकरण और समायोजन दोनों प्रक्रिया करना शुरू कर देते हैं।

v. **संरक्षण (Conservation)** –प्याजे के अनुसार संरक्षण का अर्थ वातावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता को समझने और वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व के परिवर्तन में अन्तर करने की प्रक्रिया से है। दूसरे शब्दों में, संरक्षण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक में एक ओर वातावरण के परितर्वन तथा स्थिरता में अन्तर करने की क्षमता और दूसरी ओर वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व में परिवर्तन के बीच अन्तर करने की क्षमता से है।

vi. **संज्ञानात्मक सरंचना (Cognitive structure)** – प्याजे ने मानसिक योग्यताओं के सेट (Set) को संज्ञानात्मक संरचना की संज्ञा दी है। भिन्न-भिन्न आयु में बालकों की संज्ञानात्मक संरचना भिन्न-भिन्न हुआ करती है। बढ़ती हुई आयु के साथ यह संज्ञानात्मक संरचना सरल से जटिल बनती जाती है।

vii. **मानसिक प्रचालन (Mental Operation)** –मानसिक-प्रचालन का अर्थ संज्ञानात्मक संरचना की सक्रियता से है। जब बालक किसी समस्या का समाधान

करना शुरू करता है तो उसकी मानसिक संरचना सक्रिय बन जाती है। इसे ही मानसिक संक्रिया या मानसिक प्रचालन कहते हैं।

viii. **स्कीम्स (Schemes)** –प्याजे के सिद्धान्त का यह संप्रत्यय वास्तव में मानसिक प्रचालन (Mental operation) संप्रत्यय का बाह्य रूप है। जब मानसिक प्रचालन बाह्य रूप से अभिव्यक्त (Expressed) होता है तो इसी अभिव्यक्त रूप को स्कीम्स कहते हैं।

ix. **स्कीमा (Schema)** –प्याजे के अनुसार स्कीमा का अर्थ ऐसी मानसिक संरचना है, जिसका समान्यीकरण (Generalization) संभव हो। यह संप्रत्यय वस्तुत: संज्ञानात्मक संरचना तथा मानसिक प्रचालन के संप्रत्ययों से गहरे रूप से सम्बद्ध है।

x. **विकेन्द्रण (De centering)** –इस संप्रत्यय का संबंध यथार्थ चिंतन से है। विकेन्द्रण का अर्थ है कि कोई बालक किसी समस्या के समाधान के संबंध में किस सीमा तक वास्तविक ढंग से सोच-विचार करता है। इस संप्रत्यय का विपरीत (Opposite) आत्मकेन्द्रण (Ego centering) है। शुरू में बालक आत्मकेन्द्रित रूप से सोचता है और बाद में उम्र बढ़ने पर विकेन्द्रित ढंग से सोचने लगता है।

xi. **पारस्परिक क्रिया (Interaction)** –प्याजे के अनुसार बच्चों में वास्तविकता (Reality) को समझने तथा उसकी खोज करने की क्षमता न केवल बच्चों की प्रौढ़ता (Maturity) पर बल्कि उनके शिक्षण पर निर्भर करती है। यह दोनों की पारस्परिक क्रिया (Interaction)पर आधारित होती है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. अनुकूलन (Adaptation)के अंतर्गत दो प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं आत्मसातीकरण तथा ....
2. **...** संबंध यथार्थ चिंतन से है।
3. पियाजे का जन्म, 9 अगस्त सन् 1896 को .... में हुआ था।
4. .... ने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
5. मानसिक योग्यताओं के सेट (Set) को ....कहते हैं।

4.6 संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ (Stages of Cognitive Development)

1. संवेदी पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage)

2. पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational stage)
3. मूर्त्त-सक्रिय अवस्था (Period of concrete operation)
4. अपौचारिक सक्रिय अवस्था (Period of formal operation)

1. संवेदी-पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage)

यह अवस्था जन्म से दो साल तक की होती है। इस अवस्था में बालक कुछ संवेदी-पेशीय क्रियाएँ जैसे पकड़ना, चूसना, चीजों को इधर-उधर करना आदि स्वत: सहज क्रियाओं से व्यवस्थित क्रियाओं की ओर अग्रसित होता है। पियाजे के अनुसार इस अवस्था में शिशुओं का बौद्धिक और संज्ञानात्मक विकास निम्नलिखित छ: उप-अवस्थाओं से होकर गुजरता है-

i. पहली अवस्था को **प्रतिवर्त्त क्रिया की अवस्था (Stage of Reflex Actions)**कहा जाता है जो जन्म से एक महीना तक की होती है। इस प्रतिवर्त्त क्रिया की अवस्था में शिशु अपने को नये वातावरण में अभियोजन करने की कोशिश करता है। इस समय चूसने की क्रिया सबसे प्रबल होती है।

ii. दूसरी अवस्था को **प्रमुख वृत्तीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of secondary circular reaction)** कहा जाता है जो 1 से 4 महीने तक होती है। इस अवस्था में शिशुओं की प्रतिवर्त्त क्रियाएँ (Reflex activities) में कुछ हद तक परिवर्तन होता है। शिशु अपने को नये वातावरण में अभियोजन करने की कोशिश करता है। वह अपने अनुभवों को दुहराता है तथा उसमें रूपान्तरण लाने का प्रयास करता है। इसे प्रमुख (Primary)इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये प्रतिवर्त्त क्रियाएँ प्रमुख होती है एवं उन्हें वृतीय (Circular) इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन क्रियाओं को वे बार-बार दुहराते हैं।

iii. तीसरी अवस्था **गौण तृतीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of secondary circular reaction)** – होती है जो 4 से 8 महीने तक की होती है। इस अवस्था में शिशु ऐसी क्रियाएँ करता है जो रूचिकर होते हैं तथा अपने आस-पास के वस्तुओं को छूने की कोशिश करता है। जैसे चादर पर पड़ी खिलौना को पाने के लिए चादर को खींचकर अपने तरफ करता है, और फिर खिलौना को लेता है।

iv. चौथी अवस्था **गौण – स्कीमटा के समन्वय की अवस्था (Stage of coordination of secondary schemata)**जो 6 महीने से 12 महीने तक होती है। इस अवधि में शिशु अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सहज क्रिया को इच्छानुसार प्रयोग करना सीख जाता है। वह वयस्कों द्वारा किये गये कार्यों को अनुकरण

(Imitation)करने की कोशिश करता है। जैसे यदि हम बच्चों के सामने हाथ हिलाते हैं तो वह उसी तरह हाथ हिलाता है। वह इस अवधि में स्कीमटा का उपयोग कर एक परिस्थिति से दूसरे परिस्थिति के समस्या का हल करता है।

v. **तृतीय वृत्तीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Tertiary circular reaction)** – 12 महीने से 18 महीने तक होती है। इस अवस्था में बालक प्रयास एवं त्रुटि के आधार पर अपनी परिस्थितियों को समझाने की कोशिश करने से पहले सोचना प्रारंभ कर देता है। इस अवधि में बच्चों में उत्सुकता (Curiosity) उत्पन्न होती है तथा भाषा का भी प्रयोग करना शुरू कर देता है।

vi. **मानसिक संयोग द्वारा नए साधनों की खोज अवस्था (Stage of the new means through mental combination)** 18 महीनों से 2 साल तक में शिशु प्रतिमा (Image) का उपयोग करना सीख जाता है। अब वह खुद ही समस्या का हल प्रतीकात्मक चिंतन क्रिया (Symbolic thought process) द्वारा ढूँढ लेता है। इस अवस्था में संज्ञानात्मक विकास के साथ बौद्धिक-विकास भी बहुत तेजी से होता है।

2. **पूर्व सक्रियात्मक अवस्था (Pre operational stage)**

संज्ञानात्मक विकास की पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था लगभग दो साल से प्रारंभ होकर सात साल तक होती है। इस अवस्था में संकेतात्मक कार्यों की उत्पत्ति (Emergence of symbolic functions) तथा भाषा का प्रयोग (Use of language) होता है। पियाजे ने इस अवस्था को दो भागों में बॉटा है।

i. **प्राकसंप्रत्यात्मक अवधि (Pre conceptual period)** – जो कि 2 से 4 साल तक होता है। यह अवस्था वस्तुत: परिवर्तन की अवस्था है जिसे खोज (Exploration)की अवस्था भी कही जाती है। इस अवस्था में बच्चे जो संकेत (Symbol)का प्रयोग करते हैं वह थोड़ी-सी अव्यवस्थित (Disorganized)होती है। इस अवस्था में बच्चे बहुत सारी ऐसी क्रियाएँ करते हैं जिसे इससे पहले वह नहीं कर सकते थे। जैसे संकेत (Symbol), व चिन्ह (Signs)का प्रयोग कब और कहॉ किया जाता है। वे शब्दों (Words)का प्रयोग कर समस्याओं का समाधान करते हैं। बालक विभिन्न घटनाओं या कार्यो के संबंध में क्यों तथा कैसे (Why and How)जैसे प्रश्नों को जानने में रूचि रखते हैं। वे जिस कार्य को दूसरों के द्वारा करते हैं या होते देखते हैं उस कार्य को करने लगते है। उनमें बड़ों का अनुकरण (Imitation)करने की प्रवृति होती है। लड़के अपने पिता का अनुकरण कर स्कूटर चलाने या समाचार-पत्र पढ़ने तथा लड़कियॉ अपनी मॉ की तरह गुडियॉ को खिलाना, तैयार करना जैसे काम करते हैं। इस अवस्था में भाषा का सबसे ज्यादा विकास होता है जिसके लिए समृद्ध भाषायी

वातावरण (Rich verbal Environment)की जरूरत होती है जहॉं बालक को अपने भाषा के विकास के लिये अधिक अवसर मिल सके।

पियाजेनेप्राकसंप्रत्यातमक अवस्थाएॅं की दो परिसीमाएॅं (Limitations)बताई है जो निम्नलिखित हैं -

a) **जीववाद (Animism)** – में बालक निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव समझने लगता है उनके अनुसार जो भी वस्तुएं हिलता है या घूमता है वे वस्तुएॅं सजीव हैं। जैसे सूरज, बादल, पंखा ये सभी अपना स्थान परिवर्तन करते हैं, व पंखा घूमता है, इसलिए ये सभी सजीव हैं।

b) **आत्मकेन्द्रिता (Egocentrism)** – में बालक यह सोचता है कि यह दुनिया सिर्फ उसी के लिए बनाई गयी है। इस दुनियॉं की सारी चीजें उसी के इर्द-गिर्द घूमती हैं। वह खुद को सबसे ज्यादा महत्व देता है। पियाजे के अनुसार उसकी बोली (Speech) का लगभग 38% आत्मकेन्द्रित होता है।

ii. **अंतर्दर्शी अवधि (Intuitive period)** – यह अवधि 4 साल से 7 साल तक होता है। इस अवधि में बालक की चिन्तन और तार्किक क्षमता पहले से अधिक सृदृढ़ हो जाता है। पियाजे के अनुसार अंतर्दर्शी चिन्तन ऐसा चिन्तन है जिसमें बिना किसी तार्किक विचार द्वारा प्रक्रिया के किसी बात को तुरन्त स्वीकार कर लेना। अर्थात वह अगर कोई समस्या का हल करता है तो इसके समाधान का कारण वह नहीं बता सकता है। समस्या- समाधान में सन्निहित मानसिक प्रक्रिया के पीछे छिपे नियमों के बारे में उसकी जानकारी नहीं होती। पियाजे ने अंतर्दर्शी चिन्तन (Intuitive Thinking) के कुछ परिसीमाएॅं बताई हैं -

a) इस उम्र के बालकों के विचार अविलोमीय (Irreversible)होते हैं। अर्थात् बालक मानसिक क्रम के प्रारम्भिक बिन्दु पर पुन: लौट नहीं पाता है (Gupta &Gupta 2002)। जैसे अगर 4 साल के किसी बच्चा से कहा जाये कि तुम्हारी मम्मी जैसे अंकित की मौसी है, उसी तरह उसकी मम्मी तुम्हारी मौसी होगी यह बात उसे समझ में नहीं आएगी।

b) पियाजे के अनुसार उस उम्र के बच्चों में तार्किक चिन्तन की कमी रहती है, जिसे पियाजे ने संरक्षण का सिद्धान्त (Law of conservation)कहा है। जैसे अगर किसी वस्तु के आकार को बदल दिया जाये तो उसकी मात्रा पर उसका कोई प्रभाव नहीं होगा, इस बात की समझ उनमें नहीं होती है।

3. मूर्त सक्रिय अवस्था (Period of concrete operation) –

यह अवस्था 7 साल से 12 साल तक चलती है। इस अवस्था में बच्चे का अतार्किक चिन्तन संक्रियात्मक विचारों का स्थान ले लेता है। बच्चे अब जोड़ना (Addition)घटाना (Subtraction)

गुणा करना (Multiplication) और भाग करना (Division) कर सकते हैं। लेकिन अगर उसे शाब्दिक कथन (Verbal statement) के आधार पर मानसिक क्रियाएँ करने को कहा जाये तो वे नहीं कर सकते हैं। इस अवस्था के दौरान बालकों द्वारा तीन मानसिक निपुणता हासिल कर ली जाती है। ये तीन योग्यताएँ विचारों की विलोमता (Reversibility of Thought), संरक्षण (Conservation) तथा वर्गीकरण व पूर्ण अंश प्रत्ययों का उपयोग (Classification and part whole conception) हैं। इस अवस्था में विचारों की विलोमता में बालक सक्षम हो जाते हैं। भौतिक वस्तुओं में संरक्षण (Conservation in physical objects) बालकों की मानसिक प्रक्रिया का एक अंग बन जाता है। सबसे महत्वपूर्ण विकास उनकी क्रमबद्धता अर्थात विभिन्न वस्तुओं को उनके आकार व भार आदि के दृष्टि से अलग करना तथा छोटे से बड़े क्रम में वर्गीकरण करना इस अवस्था में होती है। इस अवस्था के दौरान बालक अंश तथा पूर्ण दोनों के संबंध में विचार करना प्रारंभ कर देता है। अर्थात् बालकों में यह क्षमता विकसित हो जाती है कि वह वस्तुओं को कुछ भागों में बांट सके और उस भागों के समस्या का समाधान तार्किक ढंग से कर सकें।

मूर्त्त सक्रिय अवस्था में बालक का ध्यान अपनी ओर से हटकर दूसरे की ओर जाने लगता है। अर्थात् उसके सामाजीकरण (Socialization)की शुरूआत होती है।
इस अवस्था में मानसिक विकास की दो सीमाएँ पायी जाती हैं-

a. इस अवस्था में बालक तार्किक चिन्तन (Logical Thinking) तभी कर सकते हैं जब उसके सामने वस्तु ठोस रूप से उपस्थित किया गया हो।
b. दूसरा, इस अवस्था में ठोस संक्रियात्मक चिन्तन की दूसरी परिसीमा यह है कि यह बहुत क्रमबद्ध नहीं होती है। किसी समस्या के तार्किक रूप से संभावित सभी समाधान के बारे में बालक नहीं सोच पाता है (ब्राउन तथा कूक,1986)।

4. **औपचारिक – सक्रिय अवस्था (Period of formal operations)**

यह संज्ञानात्मक विकास की अंतिमअवस्था है जो लगभग 11 साल से 15 साल की आयु तक होती है। इस अवस्था के दौरान बालक अमूर्त्त बातों के संबंध में तार्किक चिन्तन करने की क्षमता विकसित कर लेता है। इस अवस्था को किशोरावस्था (Period of Adolescence) कहा जाता है। बच्चे अब वर्तमान, भूत एवं भविष्य (Present Past & Future)के बीच अन्तर समझने लगते हैं। समस्या का समाधान सुव्यवस्थित ढंग से करने लगते हैं। इस अवस्था में बालक परिकल्पनाएँ (Hypothesis)बनाने के योग्य हो जाता है। उसकी व्याख्या करता है तथा व्याख्यान के आधार पर निष्कर्ष भी निकालता है। अब बालक बड़ों की उत्तर दायित्व लेने के योग्य हो जाता है। पियाजेके अनुसार इस अवस्था में बालकों में बौद्धिक संगठन अधिक क्रमबद्ध हो जाता है। बालक एक साथ अधिक से अधिक बातों को समझाने तथा उसका विचार करने में समर्थ हो जाता है। वे अपने बारे में

विचार करते हैं इसलिए वे अकसर स्व आलोचक बन जाते हैं। धीरे-धीरे उनमें नैतिकता के गुण भी विकसित होने लगता है जिसके आधार पर वे नैतिक निर्णय (Moral Judgment)भी लेने लगते हैं।

इस तरह पियाजे द्वारा बताई गई संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की चार अवस्थाएँ इस बात का द्योतक है कि किसी भी बालक का संज्ञानात्मक विकास चार विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरती है जिसमें कुछ बालकों का बौद्धिक विकास तीव्र गति से होता है। कुछ का औसत गति से तथा कुछ का धीमी गति से।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

6. संवेदी-पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage) जन्म से………… तक होती है|
7. ज्याँ पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की ....अवस्थाएँ होती हैं|
8. अंतर्दर्शी अवधि (Intuitive period) 4 साल से ....साल तक होता है।
9. पियाजेनेप्राकसंप्रत्यातमक अवस्थाएँ की दो परिसीमाएँ (Limitations)बताई है जीववाद तथा ....|
10. संज्ञानात्मक विकास की अंतिमअवस्था को ....कहते हैं जो लगभग 11 साल से 15 साल की आयु तक होती है।
11. बालक निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव समझने लगता है यह प्रक्रिया ....के नाम से जाना जाता है|
12. .... अवस्था में संकेतात्मक कार्यों की उत्पत्ति (Emergence of symbolic functions) तथा भाषा का प्रयोग (Use of language) होता है।
13. जब बालक यह सोचता है कि यह दुनिया सिर्फ उसी के लिए बनाई गयी है इस प्रकार की सोच को ....कहते हैं।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को किसी अन्य सिद्धान्त के साथ तुलना नहीं किया जा सकता है। यह सिद्धान्त हर तरह से सार्थक माना जाता है। यह सिद्धान्त इतना महत्वपूर्ण और लोकप्रिय होने के बावजूद कुछ आलोचकों ने इस सिद्धान्त की आलोचना की है।

4.8 संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का मूल्यांकन Evaluation of Theory of Cognitive Development

i. कुछ आलोचकों का कहना है कि कुछ ऐसे जटिल व्यवहार जैसे अनुकरण (Imitation)तथा संरक्षण (Conservation)शुरूआत में बच्चों में पायी जाती है फिर धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। इस तरह के व्यवहार की व्याख्या पियाजे के सिद्धान्त के आधार पर करना कठिन है।

ii. पियाजे के अनुसार अगर कोई बालक किसी समस्या का समाधान नहीं कर पाता है तो इसका यह मतलब लगा लिया जाता है कि उनमें संज्ञानात्मक दक्षता (Cognitive competence)की कमी है। आलोचकों का मानना है कि अगर भाषा में सुधार कर बच्चों को प्रश्न पूछा जाये तो उसका समाधान करने में वे सफल होंगे। इससे इस बात की पुष्टि होती है इस मामले में पियाजे की व्याख्या अधिक विश्वसनीय नहीं है।

iii. आलोचकों के अनुसार बालकों के व्यवहारों का प्रेक्षण (Observation) विधि जो पियाजे के द्वारा अपनाया गया है उनमें वस्तुनिष्ठता (Objectivity) की कमी है।

iv. चार्ल्सवर्थ (1968)का मानना है कि पियाजे ने बच्चों का क्रियात्मक गतिविधि (Motor activity)के प्रेक्षण के आधार पर उनका संज्ञानात्मक विकास का वर्णन किया है, लेकिन चार्ल्सवर्थ के अनुसार कोई भी गामक कौशल (Motoricskill)बच्चे की संज्ञानात्मक विकास के वर्णन में असमर्थ है। पियाजे के सिद्धान्त की समीक्षा करने पर पता चलता है कि यह सिद्धान्त सभी संस्कृतियों (Cultures)तथा सामाजिक-आर्थिक अवस्थाओं (Socio-economic conditions)के बच्चे के संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या समुचित रूप से करने में सफल नहीं है। हिल्गार्ड, ऐटकिंसन तथा ऐटकिंसन (Hilgard, Atkinson and Atkinson 1976) के अनुसार निम्न वर्ग के बच्चों (Lower-class children) में संरक्षात्मक संप्रत्ययों (Conservation concepts) का विकास मध्य वर्ग के बच्चे (Middle class children) से अधिक आयु में होता है। इसी तरह देहाती बच्चों में शहरी बच्चों की तुलना में संरक्षण-संप्रत्यय का विकास कम ही आयु में हो जाता है।

इस दिशा में यह देखने का प्रयास किया गया है कि विशेष प्रशिक्षण (Special training)के द्वारा संज्ञानात्मक अवस्थाओं (Cognitive stages)में सुधार लाकर बौद्धिक योग्यता की प्रगति की रफ्तार को तेज किया जा सकता है या नहीं। संरक्षण-संप्रत्यय (Conservation concepts) पर किये गये अध्ययनों से परस्पर विरोधी परिणाम मिले हैं। कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि परिक्षण से संप्रत्यय सीखने में सफलता मिलती है। परन्तु कुछ दूसरे अध्ययनोंसे पता चलता है कि संप्रत्यय को सिखाया नहीं जा सकता है। ग्लैमर तथा रेसनिक (Glaser and Resnick,1972) ने अपने अध्ययन में पाया कि निर्देशन-विधि (Instruction method) द्वारा संज्ञानात्मक विकास की रफ्तार तेज की जा सकती है। संज्ञानात्मक विकास की एक अवस्था को दूसरी अवस्था में परिवर्तित होना परिपक्वता (Maturation) पर निर्भर करता है। अत: जब बच्चे को उनकी परिपक्वता को ध्यान में रखकर निर्देशन दिया जाए तो अधिक अच्छा है।

अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संज्ञानात्मक विकास की समुचित व्याख्या करने में यह सिद्धान्त सफल नहीं है। पियाजे के सिद्धान्त के ढॉचा (Frame work) को स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु सभी संस्कृतियों के बच्चों को संज्ञानात्मक योग्यता के विकास के लिए उनकी चार अवस्थाओं को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। शोध कार्यों से पता चलता है कि संज्ञानात्मक योग्यता के विकास पर अनेक चरों (Variables) का प्रभाव पड़ता है। रैना (Raina, 1968), सिंह (Singh,1977),अहमद (Ahmed, 1980), आदि के अध्ययनों से स्पष्ट है कि सृजनात्मक चिन्तन (Creative thinking) के विकास पर सामाजिक आर्थिक स्थिति (SES) का गहरा प्रभाव पड़ता है। सेहगल (Sehagal, 1978), सिंह (Singh 1979), आदि ने अपने अध्ययन में देखा कि रचनात्मक चिन्तन के विकास पर स्थान (Locality) के विकास का सार्थक प्रभाव पड़ता है। रैना (Raina, 1982) के अनुसार लड़के तथा लड़कियों में संज्ञानात्मक योग्यता का विकास समानरूप से नहीं होता है। सक्सेना (Saxena 1982) ने अपने अध्ययन में पाया कि सम्पन्न बच्चों की अपेक्षा वंचित बच्चों (Deprived children) में अमूर्त विवेक (Abstract reasoning) तथा साहचर्य सीखने (Associative learning) की योग्यताएँ देर से विकसित होती हैं तथा सीमित होती हैं। इन सारे तथ्यों (Facts) के आलोक की समुचित व्याख्या पियाजे के सिद्धान्त से सम्भव नहीं है। इन्हीं त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए पासकौल लियोन (Pascaul-Leone, 1983) ने पियाजे के सिद्धान्त को संशोधित तथा परिमार्जित करके प्रस्तुत किया, जो पियाजे के मौलिक सिद्धान्त से अधिक संतोषजनक है।

इन सारे आलोचनाओं के बावजूद पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को पथ-प्रदर्शक माना जाता है।

4.9 शैक्षिक निहितार्थ

पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्तशिक्षण – अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है| इस सिद्धांत के शैक्षिक निहितार्थ निम्नवत हैं-

1. पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त बालकों के बौद्धिक विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है |
2. इस सिद्धांत के द्वारा शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाया जा सकता है|

3. संज्ञानात्मक विकास अवस्था के आधार पर पाठ्यक्रम के संगठन में यह सिद्धांत काफी मदद पहुँचाती है|
4. संज्ञानात्मक विकास की समुचित व्याख्या करने में यह सिद्धान्त एक सफल आधार प्रदान करता है।
5. पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त शैक्षिक शोध का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है|

4.10 सारांश

विकासात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त की महत्वपूर्ण भूमिका है। पियाजे के इसी सिद्धान्त के आधार पर बच्चों के क्रमिक विकास (Sequential Development) के बारे में जाना जाता है। पियाजे ने संज्ञानात्मक सिद्धान्त को वर्णन करते हुए यह कहा है कि बच्चे खुद अपने विकास में एक सक्रिय भूमिका अदा करते हैं और खुद को नये वातावरण में अभियोजनकरनेकी कोशिश करते हैं। पियाजे ने प्रत्येक विकासात्मक अवस्था (Developmental stages) का विस्तृत विवरण देते हुए कहा कि बच्चों में नयी-नयी स्कीमटा (Schemata) की उत्पत्ति आत्मसातीकरण (Assimilation) तथा समाविष्टिकरण (Accommodation) के बीच अन्त:क्रिया के कारण होता है।

आत्मसातीकरण (Assimilation) पुरानी अनुभवों को नयी अनुभवों के साथ समायोजित करने की प्रक्रिया है और समाविष्टिकरण (Accommodation) से तात्पर्य जिसमें बालक नये अनुभवों के अनुसार पुरानी संरचना में रूपान्तरण (Modification) करने की कोशिश करता है। ओर जब बालक आत्मसातीकरण और समाविष्टिकरण में संतुलन करने की चेष्टा करता है तो उस प्रक्रिया को साम्यधारणा (Equilibration) कहते है।

पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को चार अवस्था में विभाजित किया गया है-

i. **संवेदी-पेशीय अवस्था (Sensory motor stage)** जो जन्म से 2 साल तक की होती है। इस अवस्था में शिशु अपने सहजात प्रतिक्रिया को बदलने की कोशिश करता है। इस दौरान चूसने की क्रिया (Sucking behavior) प्रबल होती है। शिशु की बौद्धिक विकास बहुत तेजी से होता है। इस अवस्था में शिशु बड़ों की अनुकरण (Imitation) करता है तथा अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपनी क्रिया को दोहराना सीख जाता है। इस अवस्था में बालक प्रयास एवं त्रुटि

विधि का भी प्रयोग करता है। शिशु खुद ही समस्या का समाधान करना सीख जाता है।

ii. **पूर्व- संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational stage)** यह अवस्था दो साल से सात साल तक का होता है, जिसमें बच्चे संकेत (Symbols) का प्रयोग करते हैं जो शुरू-शुरू में अव्यवस्थित होते हैं। भाषा का प्रयोग करना सीख जाते हैं। इस अवस्था में तार्किक चिन्तन क्षमता और सुदृढ़ हो जाती है लेकिन पियाजे के अनुसार इस अवस्था की कुछ परिसीमाएँ हैं – जैसे जीववाद (Animism) आत्मकेन्द्रिता (Egocentrism) अविलोमीयता (Irreversibility) आदि।

iii. **मूर्त – सक्रिय अवस्था (Period of concrete operation)** यह अवस्था सात साल से 12 साल तक होती है, जिसमें बच्चों की अतार्किक चिन्तन संक्रियात्मक विचारों का स्थान ले लेता है। इस अवस्था में बालक विचारों के विलोमीयता में सक्षम हो जाते हैं। भौतिक वस्तुओं में संरक्षण करने योग्य हो जाते हैं। बालकों में क्रमबद्धता (Classification) के गुण भी इस अवस्था में पाये जाते हैं। परन्तु इस अवस्था में दो दोष भी पाये जाते हैं। (1) वे सक्रिय चिन्तन तभी कर सकते हैं जब उनके सामने ठोस वस्तु उपस्थित हों। तार्किक कथन (Verbal statement) के आधार पर समाधान नहीं कर सकते हैं।

iv. **औपचारिक सक्रिय अवस्था (Period of formal operation)**जो लगभग 11 साल से 15 साल तक होती है। इस अवस्था को किशोरावस्था (Period of Adolescence) कहा गया है। समस्या का समाधान व्यवस्थित ढंग से करता है तथा भूत, वर्तमान तथा भविष्य के बीच अन्तर समझने लगता है। इस अवस्था में बालक परिकल्पनाएँ बनाता है। उसकी व्याख्या करता है तथा निष्कर्ष भी निकालने की कोशिश करता है। उसकी सोच भी वयस्क जैसा हो जाता है। नैतिक तथा अनैतिक (Moral and Immoral) के अंतर को समझने लगता है।

इस तरह पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त के माध्यम से बौद्धिक विकास के हर अवस्था को विस्तृत ढंग से प्रस्तुत किया है।

4.11 शब्दावली

1. **संज्ञान (Cognition):**मानसिक प्रक्रिया जिसका संबंध चिंतन (Thinking), समस्या-समाधान, भाषा संप्रेषण तथा और भी बहुत सारे मानसिक प्रक्रियाओं से है।
2. **स्कीमाटा (Schemata):** अनुभव (Experience) या व्यवहार (Behavior) को संगठित करने की ज्ञानात्मक संरचना।

3. **संगठन (Organization):** प्रत्यक्षीकृत तथा बौद्धिक सूचनाओं (perceptual and cognitive information) को सही तरीके से बौद्धिक संरचनाओं (cognitive structure) में व्यवस्थित करना|
4. **अनुकूलन (Adaptation):** वह प्रक्रियाजिसमें बालक अपने को बाहरी वातावरण (External Environment) के साथ समायोजन करने की कोशिश करता है।
5. **आत्मसातीकरण (Assimilation)**: एक नयी वस्तु अथवा घटना को वर्तमान अनुभवों में सम्मिलित करने की प्रक्रिया है।
6. **समाविष्टिकरण (Accommodation):** वह प्रक्रिया जिसमें बालक नये अनुभवों की दृष्टि से पूर्ववर्ती संरचना में सुधार लाने या परिवर्तन लाने की कोशिश करता है।
7. **संरक्षण (Conservation):** वातावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता को समझने और वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व के परिवर्तन में अन्तर करने की प्रक्रिया।
8. **संज्ञानात्मक सरंचना (Cognitive structure):**मानसिक योग्यताओं का समूह।
9. **मानसिक प्रचालन (Mental Operation):** संज्ञानात्मक संरचना की सक्रियता।
10. **स्कीम्स (Schemes):** मानसिक प्रचालन (Mental operation) संप्रत्यय का बाह्य रूप।
11. **स्कीमा (Schema):** ऐसी मानसिक संरचना जिसका समान्यीकरण (Generalization) संभव हो।
12. **विकेन्द्रण (De centering):** यथार्थ चिंतन की क्षमता अर्थात कोई बालक किसी समस्या के समाधान के संबंध में किस सीमा तक वास्तविक ढंग से सोच-विचार करता है।
13. **जीववाद (Animism)**: निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव समझना |
14. **आत्मकेन्द्रिता (Egocentrism)**: खुद को केन्द्र में रखकर कोई निर्णय लेना|
15. **साम्यधारणा (Equilibration)**: आत्मसातीकरण और समाविष्टिकरण में संतुलन करने की प्रक्रिया।

4.12स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. समाविष्टिकरण 2. विकेन्द्रण 3. स्विट्ज़रलैंड 4. पियाजे 5. संज्ञानात्मक संरचना 6. दो 7. चार 8. सात 9. आत्मकेन्द्रिता 10. औपचारिक – सक्रिय अवस्था 11. जीववाद 12.पूर्व सक्रियात्मक अवस्था 13. आत्मकेन्द्रिता

4.13 संदर्भग्रंथ

1. श्रीवास्तव, डी०एन० व प्रीति वर्मा (2008), बाल मनोविज्ञान, बाल विकास, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
2. हर्लाक एलिजावेथ (1997) : विकास मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
3. सिंह,ए0के0 (2007): उच्चतर मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
4. मंगल, एस0 के0 (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
5. सिंह,ए0के0 (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन पब्लिसर्श।

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धानृत का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

   Critically evaluate the cognitive development theory of Piaget.
2. संज्ञानात्मक विकास से आप क्या समझते हैं ? पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास के अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।

   What do you mean by cognitive development? Describe the stages of cognitive development according to Piaget.
3. जन्म से किशोरावस्था तक बालकों में संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया कैसे संपन्न होती है, का वर्णन करें |

   Describe how cognitive development takes place among children from birth to adolescence.
4. पियाजे के सिद्धान्त के कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्ययों जैसे स्कीमाटा, संगठन, आत्मसातीकरण, समाविष्टिकरण तथा साम्यधारणा की व्याख्या कीजिए।

   Discuss some major concepts such as schemata, organization, assimilation, accommodation and equilibration of Piaget’s cognitive development theory.

इकाई 5- लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास का सिद्धान्त तथा इसका शैक्षिक निहितार्थ

Lawrence Kohlberg's Theory of Moral Development and Its Educational Implications

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 लॉरेन्स कोहलबर्ग
5.4 नैतिक विकास से संबंधित संप्रत्यय
5.5 कोहलवर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त
5.6 लारेंस कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त की अवधारणायें
5.7 अवस्था संप्रत्यय का महत्व
5.8 शैक्षिक निहितार्थ
5.9 लारेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त का मूल्यांकन
5.10 सारांश
5.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
5.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.13 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

वृद्वि एवं विकास की विशेषता प्रदर्शित करने वाला कुन्जी-पद, किसी व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व के संरचनात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों मे होने वाला परिवतन (Changes)है । विकास संरचनात्मक एवं क्रियात्मक सम्पूर्ण परिवर्तन से संबंधित है । इसे क्रमित एवं संगत परिवर्तन की प्रगतिशील श्रेणी के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है । प्रगतिशील (Progressive) पद परिवर्तनों की अभिदिशा जिससे वे पश्चगामी होने के बजाय अग्रगामी होते है , को व्यक्त करता है ।'क्रमित' एवं 'संगत' पदों से यह तार्त्पय है कि वे आगे बढते है या जीवन विस्तार की कालावधि की शारीरिक विकास, पेशीय विकास ,संज्ञानात्मक विकास, सामाजिक विकास, भावनात्मक

विकास तथा नैतिक विकास जैसी विभिन्न क्रियाओं में होने वाले परिवर्तनों की प्रवित्ति की व्याख्या करता है। जैसा कि विकास किसी व्यक्ति की संरचना एवं इसकी क्रियात्मकता में होने वाले मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तनों को सम्मिलत करता है , यह एक प्रकिया है जो कि जीवन की संकलपना से प्रारम्भ होकर मृत्यु तक चलती है या कह सकते है कि गर्भाशय से मकबरे तक चलती है । विकास की प्रक्रिया समय के सापेक्ष जीव में होने वाले मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तनों से अत्यधिक संबंधित है । समय के साथ-साथ एक शिशु वृद्वि एवं विकास के चरम पर होता है जिसे वयस्क कहते है। यह एक विशेष प्रवृत्ति (Trend) या तरीके का अनुसरण करता है । वृद्वि एवं विकास की प्रवृत्ति इसके सिद्धान्तीकरण के लिए हमेशा से ही विकासात्मक मनौवैज्ञानिकों का केन्द्रित क्षेत्र रहा है । व्यवहार के शारीरिक संज्ञानात्मक , भावनात्मक ,सामाजिक, नैतिक पक्षों के उम्र विशेष परिवर्तनों को जानने हेतु बालक की विकासात्मक गतिकी सम्बन्धी सिद्धान्त अत्यधिक सहायक हैं । आजकल ,नैतिक विकास का अध्ययन मनोवैज्ञानिक शोधों का एक केन्द्र -विन्दु बन गया है । परिणामस्वरूप विकास के इस क्षेत्र का वर्तमान ज्ञान नैतिक विकास के ढांचे का एक स्वच्छ एवं सम्पूर्ण चित्र तथा इस ढांचे से विचलन के कारणों को प्रस्तुत करता है। नैतिक विकास के क्षेत्र में, जीन पियाजे का नैतिक विकास सिद्धान्त, लारेन्स कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त, ब्रोन्फेन्ब्रेनर का नैतिक विकास सिद्धान्त विख्यात सिद्धान्तों में से कुछ सिद्धान्त हैं। नैतिक विकास को समझने हेतु यहां हम लारेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त की विभिन्न विमाओं की चर्चा करेगें।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप

1. नैतिकता के सही अर्थ को जानने म
2. नैतिक विकास की प्रकृति का वर्णन करने में,
3. लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त से सम्बन्धित विभिन्न सम्प्रत्ययों की व्याख्या करने में ,
4. लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त की विभिन्न अवस्थाओं के मध्य अंतर स्पष्ट करने में,
5. लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त के विवेचनात्मक मूल्यांकन करने में, तथा,
6. लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थो की सोदाहरण व्याख्या करने में, सक्षम होगें।

5.3 लॉरेन्स कोहलबर्ग

लॉरेन्स कोहलबर्ग का कार्य पियाजे के परम्परागत शोधों का एक अतुलनीय उदाहरण है। एक श्रेष्ठ विकासात्मक मनोवैज्ञानिक कोहलबर्ग ने नैतिक विकास पर प्रकाश डाला तथा नैतिक चिन्तन के अवस्था सिद्धान्त को प्रस्तावित किया। यह सिद्धान्त पियाजे की मूल धारणाओं, जो कि नैतिक परिप्रेक्ष्य में व्यवहार में परिवर्तनों के होने पर विचार करता हैं, से एक कदम आगे है।

कोहलबर्ग (जन्म 1927) ब्रान्क्सविली, न्यूयार्क में पले बढ़े तथा मस्साचुसेट्स की एन्डोवर अकेडमी (Andover Academy) -तेज तथा सामान्यतया सम्पन्न छात्रों हेतु एक निजी उच्च विद्यालय, से अध्ययन किये। सन् 1948 मे आप स्नातक उपाधि प्राप्त करने हेतु शिकागो विश्वविद्यालय (University of Chicago) में नामांकित हुए। आपने यह कार्य एक वर्ष में ही सम्पन्न कर लिया। आप मनोविज्ञान में ग्रेजुएट कार्य हेतु शिकागो में ही रूके। सर्वप्रथम आपकी सोच एक नैदानिक मनोवैज्ञानिक (Clinical Psychologist) बनने की रही। जबकि आप जल्द ही पियाजे के कार्यो में रूचि लेने लगे तथा सामाजिक विषयों पर बच्चों एवं किशोरों का साक्षात्कार लेना प्रारम्भ कर दिया। आपका शोध परिणाम एक डॉक्टोरल शोध-प्रबन्ध (1958) था जो कि आपकी नूतन नैतिक विकास के अवस्था सिद्धान्त के रूप में परिणित हुआ।

कोहलबर्ग, एक विनीत व्यक्ति हैं जो कि एक विशुद्ध विद्वान भी हैं, ने मनोविज्ञान एवं दर्शन शास्त्र के विस्तृत विषयों के लिए गहन एवं लम्बे समय तक अध्यापन कार्य किया। कोहलबर्ग ने शिकागो विश्वविद्यालय में सन् 1962 से 1968 तक अध्यापन किया और 1968 से हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अध्यापन में लगे रहे।

5.4 नैतिक विकास से संबंधित संप्रत्यय

लॉरेन्स कोहलबर्ग द्वारा विकसित नैतिक विकास के सिद्धान्त का विस्तरण प्रारम्भ करने से पूर्व हम नैतिकता, नैतिक व्यवहार, अनैतिक व्यवहार, निर्नैतिक व्यवहार, नैतिकता- अधिगम, नैतिक विकास एवं नैतिक न्याय के सही संप्रत्ययों को जानेंगे।

नैतिकता (Morality)

नैतिकता नैतिक मानक या नियम के अनुपालन तथा विरोध के संबंध को इंगित करती है। यह अधिकारों के मानक द्वारा जॉचे जाने वाले एक अभिप्राय, एक चरित्र, एक क्रिया, एक सिद्धान्त, या एक मनोभाव के गुणों से सम्बन्धित है। यह (नैतिकता) एक क्रिया का गुण है। जो इसे अच्छा बना देती है। नैतिकता अधिकार के अनुमोदित मानकों के किसी नियम का अनुपालन है। नैतिक

जिम्मेदारियों के नियमों या सिद्धान्तों, या व्यक्तियों के सामाजिक जीवन की जिम्मेदारियों को नैतिकता कहा जाता है।

नैतिक व्यवहार (Moral Behaviour)

नैतिक व्यवहार से तात्पर्य उस व्यवहार से है जो कि किसी सामाजिक समूह के नैतिक नियमों के अनुपालन में किया जाता है। नैतिक शब्द का अंग्रेजी पर्याय मॉरल (Moral) लैटीन शब्द मोर्सि (Mores) से बना है जिसका अर्थ आचरणों, रीति-रिवाजों तथा लोक प्रथाओं से है। नैतिक व्यवहार, नैतिक सम्प्रत्ययों- उन व्यवहारों के नियम के व्यवहार जिससे एक संस्कृति के लोग अभ्यस्त हो चुके हैं तथा जिससे समूह के सभी सदस्यों के अपेक्षित व्यवहार रचना का पता लगाया जाता है द्वारा नियन्त्रित होते हैं। (ई0बी0 हरलॉक, 1997)

नैतिकता-अधिगम (Morality Learning)

सामाजिक अनुमन्य आचरण के रूप में व्यवहार करना सीखना एक लम्बी, मन्द प्रक्रिया है जो किशोरों में विस्तृत होती है। यह बचपन के महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्यों में से एक है, छात्रों के विद्यालय में प्रवेश करने से पूर्व, उनसे यह आशा की जाती है कि यह सामान्य परिस्थितियों में उचित को अनुचित से अलग कर सकने में तथा चेतना के विकास का आधार बनाने में सक्षम है। बचपन के कालावधि के समाप्त होने से पूर्व, बच्चों से यह आशा की जाती है कि नैतिक निर्णयों को लेने हेतु वे मूल्यों का एक पैमाना तथा उनके निर्देशनार्थ चेतना का विकास कर लेगें।

नैतिक अधिगम के चार आवश्यक तत्व हैं:

1. समाज के नियमों, रीति रिवाजों तथा कानूनों के रूप में समाज के सदस्यों की सामाजिक प्रत्याशाओं को सीखना।
2. चेतना का विकास करना।
3. समूह की प्रत्याशाओं के अनुपालन में किसी व्यक्ति के व्यवहार के असफल होने पर अपराध-बोध एवं शर्मिन्दगी का अनुभव करना सीखना, तथा
4. समूह के सदस्यों के आशानुरूप सामाजिक अंतःक्रिया सीखने का अवसर प्राप्त करना।

सामान्यतः नैतिक व्यवहार सीखने की तीन विधियाँ हैः प्रयत्न एवं भूल अधिगम (Trial and Error learning) प्रत्यक्ष शिक्षण (Direct Teaching) तथा पहचान (Identification)

- प्रयत्न एवं भूल विधि योजना के बजाय एक सांयोगिक विधि है। यदि किसी का व्यक्ति व्यवहार समाजिक अपेक्षाओं से मेल नहीं करता है तो वह सामाजिक स्वीकृति हेतु अगले व्यवहार के लिए प्रयत्न करता है। यह ''आघात (Hit)'' या ''चूक (Miss)'' विधि है।

- समाजिक रूप से अनुमन्य तरीके में व्यवहार करना सीखने में, बच्चों को सर्व प्रथम विशेष परिस्थितियों में ठीक विशेष अनुक्रिया करना सीखना चाहिए। यह उनके द्वारा माता पिता तथा अन्य प्रभूत्व वाले लोगों द्वारा तय किये गये नियमों के अनुसरण द्वारा किया जाता है। इसे प्रत्यक्ष शिक्षण कहते हैं।
- जब बच्चे उन लोगों, जिनकी वे प्रशंसा करते हैं से तादात्म्य स्थापित करते हैं तो वे उन व्यवहार के तरीकों जिनका वे प्रेक्षण करते हैं, का उनसे अनुकरण- सामान्यतया अचेतन रूप में तथा बिना किसी दबाव में करते हैं। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, नैतिक व्यवहार अधिगम के रूप में पहचान (Identification) उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण हो जाता है।

अनैतिक व्यवहार (Immoral Behaviour)

अनैतिक व्यवहार वह व्यवहार है जो सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुपालन में असफल हो जाता है। इस प्रकार का व्यवहार सामाजिक प्रत्याशाओं की अनभिज्ञता के कारण नहीं होता अपितु सामाजिक मानक की अस्वीकृति या अनुपालन के कर्तव्य की भावना में कमी के कारण होता है।

निर्नैतिक व्यवहार (Unmoral Behaviour)

निर्नैतिक व्यवहार समूह के मानकों का इरादतन उल्लंघन करने के बजाय सामाजिक समूह के प्रत्याशाओं की अनभिज्ञता के कारण होता है। छोटे बच्चों के कुछ अभद्र व्यवहार अनैतिक होने के बजाय निर्नेतिक होते हैं।

नैतिक विकास (Moral Development)

किसी व्यक्ति के न्याय-बोध (Sense of Justice) का विकास ही नैतिक विकास है। नैतिक विकास व्यक्तियों के द्वारा नीतिपरक विषयों के बारे में तर्क करने के तरीकों एवं इस तर्क तथा उनके वास्तविक व्यवहार के मध्य सम्बन्धों को इंगित करता है। नैतिक विकास बौद्धिक तथा आवेगी (Impulsive) दोनो पक्षों को शामिल करता है। उचित और अनुचित की सही पहचान करना बच्चों को अवश्य सीखना चाहिए तथा जैसे ही बच्चे बड़े होते हैं उनके समक्ष शीघ्रातीत कोई चीज क्यों उचित है, अथवा क्यों अनुचित की व्याख्या अवश्य प्रस्तुत की जानी चाहिए। उन्हें सामुहिक क्रिया-कलापों में भाग लेने का अवसर भी प्रदान करना चाहिए। जिससे की वे समूह की प्रत्याशाओं के अनुरूप सीख सकें। जबकि यह ज्यादा महत्वपूर्ण है कि उन्हें उचित कार्य करने, जन कल्याण के लिए कार्य तथा अनुचित कार्य से बचने की प्रबल इच्छा का विकास करना चाहिए।

उचित नैतिकता का स्तर प्राप्त करने हेतु नैतिक विकास दो भिन्न चरणों में होता है:

- नैतिक व्यवहार का विकास तथा
- नैतिक संप्रत्ययों का विकास

नैतिक न्याय (Moral Judgement)

उचित एवम् अनुचित के निर्णय लेने की क्षमता नैतिक न्याय (Moral Judgement) है। प्रायोगिक रूप में नित्य ही हमे उचित और अनुचित के बारे में निर्णय लेना होता है। जब हम ऐसा करते हैं तो हम सामाजिक विषयों के बारे में तर्क करते है। किशोरों एवं वयस्को द्वारा की जाने वाली नैतिक तर्कणा तथा बच्चों द्वारा की जाने वाली नैतिक तर्कणा में प्रायः बिलकुल अन्तर होता है। वास्तव में पियाजे (1932) के कुछ प्रारम्भिक कार्य यह सुझाव देते हैं कि लोग अपनी नैतिक तर्कणा के विकास में चरण-दर-चरण गुजरते है जैसा कि वे संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं में करते हैं। पियाजे के कार्य के आधार पर लारेन्स कोहलवर्ग (1976) ने विभिन्न उम्र के लोगांे से नैतिक धर्मसंकटों (Moral Dilemmas) के समाधानों को पूछकर नैतिक तर्कणा के विकास का अध्ययन किया। नैतिक धर्मसंकटों का समाधान करना नैतिक न्याय करने की क्षमता को प्रदर्शि्रत करता है। नैतिक न्याय करने की क्षमता नैतिक विकास का अभिसूचक है। क्या एक व्यक्ति जो अपने भोजन का खर्च वहन नही कर सकता, को चोरी प्रारम्भ कर देनी चाहिए ? क्या एक व्यक्ति जो अपनी मर रही पत्नी के इलाज हेतु दवा के खर्च को वहन नही कर सकता, को दवा चुरा लेनी चाहिए ? क्या एक चिकित्सक को भयानक दर्द से पीड़ित एक घातक बिमार व्यक्ति को दया-मृत्यु दे देनी चाहिए ? क्या एक महत्वपूर्ण व्यक्ति का जीवन बचाना या ढेर सारे महत्वहीन व्यक्तियों का जीवन बचाना उत्तम है? नैतिक धर्मसंकटों के उदाहरण हैं। ये नैतिक धर्मसंकट नैतिक न्याय करने की क्षमता को निष्कर्षित करने में सहायक हैं और इसीलिए नैतिक विकास के सिद्धान्त के निर्माण में भी सहायक हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नैतिक अधिनियम के आवश्यक तत्व क्या है?
2. किसी व्यक्ति के __________ का विकास ही नैतिक विकास है।
3. उचित एवं अनुचित के निर्णय लेने की क्षमता _________ है।
4. नैतिक विकास के चरणों को लिखिए।

5.5 कोहलवर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त Kohlberg's theory of Moral Development

कोहलवर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त स्विस मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे द्वारा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का अनुकुलन मात्र है। लारेन्स कोहलबर्ग शिकागो विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान परास्नातक विद्यार्थी के रूप में इस प्रकरण पर कार्य करना प्रारम्भ कर दिये थे तथा जीवनपर्यन्त इस सिद्धान्त को विस्तृत एवं विकसित करते रहे।

इस सिद्धान्त के अनुसार, नैतिक तर्कणा नीतिपरक व्यवहार के लिए आधार है। इसकी छः चिन्हित विकासात्मक अवस्थायें हैं। प्रत्येक विकासात्मक अवस्था नैतिक धर्मसंकट की स्थिति में अनुक्रिया करने में अपनी पूर्ववर्ती अवस्था से अधिक उपयुक्त होती है। पूर्व में पियाजे द्वारा आयु पर किये गये अध्ययन से बहुत दूर कोहलवर्ग नैतिक न्याय के विकास का अनुसरण करते हैं। पियाजे संरचनात्मक अवस्था से तर्कणा तथा नैतिकता के विकास का दावा करते हैं। पियाजे के कार्य को आगे बढ़ाते हुए कोहलबर्ग ने पाया कि नैतिक विकास की प्रक्रिया मुख्यतः न्याय से संबंधित होती है तथा जीवन पर्यन्त चलती रहती है।

ने हिन्ज धर्मसंकट (Heinz Dilemma) जैसी कहानियों पर अध्ययन में विश्वास किया तथा व्यक्ति किसी समतुल्य नैतिक धर्मसंकट की परीस्थिति में छोड़ा जाता है तो अपनी अनुक्रियाओं को किस प्रकार से उचित सिद्ध करता है (तर्कसंगत बताता है) में रूचि लिया। तब उन्होंने प्रकट नैतिक तर्कणा के निष्कर्षों के बजाय उसकी अवस्थाओं का विश्लेषण किया तथा इसे छः विभिन्न अवस्थाओं की एक अवस्था के रूप में वर्गीकृत किया।

कोहलबर्ग की इन छः अवस्थाओं को सामान्यतः प्रत्येक दो अवस्थाओं के तीन स्तरों में समूहित किया जा सकता है प्राक्परम्परागत, परम्परागत तथा उत्तर परम्परागत (अवस्था विशेष रूप तालिका 1 में प्रस्ततुत की गयी है। कोहलबर्ग ने पियाजे की अवस्था प्रतिमान हेतु संरचनावादी आवश्यकताओं, जैसा कि पियाजे ने अपने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की व्याख्या किया, का अनुसरण किया है। अवस्थाओं का पश्च प्रत्यागमन अध्यधिक दुर्लभ है। किसी अवस्था को छोड़कर आगे नही बढ़ा जा सकता हैं क्योंकि पूर्ववर्ती अवस्थाओं से अधिक विस्तृत तथा विभेदित किन्तु उनसे समाकलित प्रत्येक अवस्थाएं एक नूतन एवं आवश्यक परिप्रेक्ष्य प्रदान करती हैं।

स्तर	अवस्था	स्तर विशेष उन्मुखीकरण	प्रमुख संबंध	आयु
प्राक्-परम्परागत	प्राक्नैतिक	दण्ड और	दण्ड से बचाव	4-10 वर्ष

		आज्ञाकारिता उन्मुखीकरण		
		स्वरूचि उन्मुखीकरण	स्वलाभ व्यवहार	
परम्परागत	सामाजिक नैतिकता	अर्न्तवैयाक्तिक सहमति	तथा अच्छा लड़का/ अच्छी लड़की दृष्टिकोण	10-13 वर्ष
		प्रभुत्व तथा सामाजिक क्रम संपोषण उन्मुखीकरण	कानून व्यवस्था नैतिकता	
उत्तर-परम्परागत	स्व-अनुमोदित नैतिकता	सामाजिक संविदा उन्मुखीकरण	लोकतात्रिकतः अनुमोदित कानून	13+ या मध्य या उत्तर प्रौढ़ता तक या कभी नही
		सार्वभौमिक नीतिपरक सिद्धान्त	सैद्धान्तिक चेतना	

5.6 लारेंस कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त की अवधारणायें

यह स्मरणीय है कि कोहलबर्ग पियाजे के समीपस्थ अनुसरणकर्त्ता हैं। तद्नुसार विकासात्मक परिवर्तन को सम्मिलित करते हुए कोहलबर्ग के सैद्धान्तिक प्रकथन अपने परामर्शदाताओं के विचारों को प्रतिबिम्बित करते हैं।

नैतिक विकासात्मक अवस्थायें परिपक्वन का उत्पाद नहीं हैं। क्योंकि अवस्था संरचनाये एवं अनुक्रम अनुवांशिक रूपरेखा के अनुसार साधारणतया रहस्योद्घाटन नहीं करती हैं। नैतिक विकासात्मक अवस्थायें समाजीकरण का उत्पाद नहीं हैं। क्योंकि सामाजिक अभिकर्त्ता (उदाहरणार्थ माता-पिता तथा शिक्षक) चिन्तन के नूतन तरीकों को प्रत्यक्षतः नहीं सीखाते हैं। वास्तव में, उसी अनुक्रम एवं उसके विशेष स्थान में प्रत्येक नूतन अवस्था संरचना को व्यवस्थित ढंग से सीखाने की कल्पना करना कठिन है।

ये अवस्थायें, वास्तव में, अपनी स्वयं की नैतिक समस्याओं के चिन्तन से प्रकट होती हैं। सामाजिक अनुभूतियाँ विकास को अवश्य प्रोत्साहित करती हैं परन्तु वे ऐसा हमारी मानसिक प्रक्रियाओं के उद्दीपन द्वारा करती हैं। जब हम दूसरों के साथ विचार-विमर्श तथा बहस करते हैं तो हम अपने

विचारों को प्रश्नचिन्ह लगते व चुनौतिपूर्ण पाते हैं और इसलिए ये नूतन, अधिक विस्तृत प्रकथनों के साथ प्रस्तुत होने को अभिप्रेरित होती हैं। नूतन अवस्थायें इस व्यापक विचार-बिन्दु को प्रकट करती हैं।(कोहलबर्ग व अन्य, 1975)

संज्ञानात्मक द्वन्द्व अथवा नैतिक धर्मसंकटों के समाधान का सामना नैतिक विकास में सार्थक सहयोग करता है। इसलिए किसी विशेष परिस्थिति में घसीटा गया व्यक्ति अपने दृष्टिकोण विरोधी कृछ तथ्यों को पाता हैं तथा वह इस प्रसंग में पुनर्चिन्तन के लिए बाध्य होता है। अतः उसके व्यवहार का नूतन तरीका उसकी नैतिकता हो जाती है।

कोहलबर्ग कर्त्तव्य पूर्ण अवसरों एवं दूसरों के विचार विन्दुओं के मनन के अवसरों के द्वारा होने वाले परिवर्तनों पर जोर देते हैं। (ई.जी., 1976) जैसे ही बच्चे एक दूसरे से अन्तःक्रिया करते हैं वे विचार बिन्दुओं में मतभेद करते हैं तथा सहकारी क्रिया-कलापों में उनका संयोजन किस प्रकार से किया जाय, को सीखते हैं। जैसे ही वे अपनी समस्याओं पर विचार विमर्श करते है तथा उनके अन्तरों को हल करते है वे न्यायोचितता के अपने संप्रत्ययीकरणों का विकास करते है।

कोहलबर्ग के अनुसार जब अन्तःक्रियाएं मुक्त एवं लोक-तान्त्रिक होती हैं तो ये अपना सर्वोत्तम कार्य प्रस्तुत करतीं हैं। ये बालक के नैतिक विकास में सार्थक योगदान प्रस्तुत करती हैं।

5.7 अवस्था संप्रत्यय का महत्व

पियाजे के प्रस्तावानुसार सत्य मानसिक अवस्थायें कुछ मापदण्डों को प्राप्त होती है जो कि निम्नवत् हैं-

1. गुणात्मकतः चिन्तन के विभिन्न तरीके
2. संरचित पूर्णतायें
3. निश्चर (Invariant) अनुक्रम में प्रगति
4. क्रमित समाकलनों के रूप में परिलक्षितः तथा
5. अन्योन्य-सांस्कृतिक (Cross-Cultured) सार्वभौमिक अनुक्रम

कोहलबर्ग, उनकी अवस्थायें किस प्रकार से इन सभी मापदण्डों को प्राप्त होती है, को प्रदर्शित करने के प्रयास में, इन मापदण्डों को बहुत गम्भीरता पूर्वक लिया। संक्षिप्त रूप मे संभी मापदण्डों पर विचार-विमर्श किया गया है।

1. गुणात्मक विभेदता (Qualitative Differences):

यह एक तथ्य है कि कोहलबर्ग की अवस्थाये आपस में दूसरे से भिन्न हैं। उदाहरणार्थ- अवस्था 1 की अनुक्रियाएं जो कि आज्ञाकारिता से प्रभुत्व तक केन्द्रित है वहीं अवस्था 2 की अनुक्रियाएं, जो कि

प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छया व्यवहार करने के लिए स्वतन्त्र है को प्रमाणित करती है, में बहुत अधिक भिन्नता है। ये दोनों अवस्थायें किसी मात्रात्मक विमा में भिन्न प्रतीत नहीं होतीं अपितु ये गुणात्मक रूप से भिन्न प्रतीत होती हैं।

2.संरचित पूर्णतायें:

''संरचित पूर्णताओं'' से कोहलबर्ग का यह तात्पर्य है कि अवस्थायें केवल पृथक्कृत अनुक्रियाएं नहीं हैं अपितु ये चिन्तन की सामान्य आकृतियॉ है जो कि विभिन्न प्रकार के विषयों (मुद्दों) में निरन्तर प्रदर्शित हांेगी।

3.निश्चर अनुक्रम (Invariant Sequence):

कोहलबर्ग, उनकी अवस्थाएं निश्चर अनुक्रम में प्रकट होती हैं, में विश्वास करते हैं। बच्चे हमेशा अवस्था 1 से अवस्था 2 में, अवस्था 2 से अवस्था 3 में तथा इसी प्रकार से आगे (बढ़ते) गुजरते हैं। बच्चे किसी अवस्था को छोड़कर अथवा समिश्रित क्रम में होकर आगे नहीं बढते हैं। सभी बच्चे आवश्यक रूप से उच्चतम् अवस्था तक नहीं पहुंचते, उनमें बौद्धिक उद्दीपन में कमी हो सकती है। परन्तु एक मात्रा तक वे इन अवस्थाओं से होकर गुजरते हैं तथा क्रम में ही आगे बढ़ते हैं।

4.क्रमित समाकलन (Hierarchic Integration)

कोहलबर्ग के कथनानुसार अवस्थायें क्रमित रूप में समाकलित होती है। इसका यह तात्पर्य है कि लोग प्रारम्भिक अवस्था में प्राप्त सूझ को नही खोते है अपितु वे इसे नूतन , व्यापक ढॉचे े में समाकलित करते है। उदाहरणार्थ अवस्था 4 के व्यक्ति अवस्था 3 के विचारो या तर्को को समझ सकते है, परन्तु वे अब इन्हे व्यापक मनन हेतु अधीनस्थ बना लेते हैं। क्रमित समाकलन का संप्रत्यय बहुत ही महत्पूर्ण है क्योंकि यह अनुक्रम अवस्था की अभिदिशा की व्याख्या करने में सक्षम बनाता है। चूंकि वह परिपक्वतावादी नही हैं, वे यह नही कह सकते हैं कि ये अनुक्रम जीन में पिरोये होते हैं। इसीलिए वे ये प्रदर्शित करना चाहते हैं कि प्रत्येक नूतन अवस्थाएं किस प्रकार सामाजिक विषयों (मुद्दों) के समाधान हेतु एक व्यापक ढाँचा प्रस्तुत करती हैं।

5.सर्वाभौमिक अनुक्रम (Universal Sequence)

सभी अवस्था सिद्धान्तकारो की तरह कोहलबर्ग अपनी आवस्थाओं के अनुक्रम को सार्वभौमिक मानते है। कोहलबर्ग यह प्रस्ताव करते हैं कि यह अवस्था अनुक्रम सभी संस्कृतियों में समान होगी तथा प्रत्येक अवस्था हेतु संप्रत्ययात्मक रूप से अगले से अधिक उन्नत है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. नैतिक विकास सिद्धान्त के अनुसार, ________ नीतिपरक व्यवहार के लिए आधार है।

6. कोहलबर्ग की नैतिक तर्कणा की अवस्थाओं के स्तरों के नाम लिखिए।

अब हम लारेन्स कोहलवर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त की अवस्थाओं एवं स्तरो पर सक्षिप्त विचार-विमर्श करेगें।

1.प्राक्-परम्परागत स्तर की नैतिकता (04-10 वर्ष)

विशेषतया बच्चों में प्राक्-परम्परागत स्तर की नैतिक तर्कणा सामान्य बात है। यद्यपि कि वयस्कों में भी इस प्रकार की तर्कणा प्रदर्शित (प्रकट) होती है। इस स्तर पर बच्चे क्रिया के प्रत्यक्ष परिणामों के द्वारा इसकी नैतिकता की परख करते हैं। या तो दण्ड से बचने या फिर पुरस्कार प्राप्त करने हेतु (इस प्रकार के निर्णय लेने के लिए) राजी किये जाते हैं। प्राक्-परम्परागत स्तर प्रथम एवं द्वितीय अवस्था के नैतिक विकास को शामिल करता है, तथा यह एक आत्मकेन्द्रित तरीके में सिर्फ स्वयं से सम्बन्धित है। प्राक्-परम्परागत नैतिकता वाला बच्चा उचित या अनुचित से सम्बन्धित समाज की प्रथाओं/परम्पराओं को अभी तक आत्मसात या ग्रहण नहीं कर पाता है परन्तु इसके बजाय वह बाह्य परिणामों, जो कि किसी क्रिया द्वारा प्राप्त हो सकते है, पर ज्यादा केन्द्रित होते हैं।

प्रथम अवस्था (आज्ञाकारिता एवं दण्ड प्रेरित): इस अवस्था में बच्चे स्वयं पर अपनी क्रियाओं की प्रत्यक्ष परिणामों पर केन्द्रित होते हैं। उदाहरणार्थ, एक क्रिया को नैतिकतः अनुचित समझा जाता है क्योंकि कर्त्ता दण्डित किया जाता है ‘‘पिछली बार मैं इस कार्य के लिए दण्डित किया गया इसलिए मैं इस कार्य को पुनः नहीं करूँगा। ’’ जिस कार्य के लिए दण्ड जितना कड़ा होता है वह कार्य उतना ही बुरा समझा जाता है। यह ‘आत्मकेन्द्रित’, पहचान की कमी होती हैं क्यो कि किसी व्यक्ति के स्वयं के विचार दूसरों से भिन्न होते हैं।

द्वितीय अवस्था (आत्म-रूचि उन्मुखित): प्राक्-नैतिक स्तर की द्वितीय अवस्था में बच्चों के नैतिक निर्णय आत्म-रूचि एवं दूसरे इसके बदले में क्या कर सकते हैं कि मान्यताओं पर आधारित होते हैं। इस अवस्था में उचित व्यवहार व्यक्ति की सर्वोत्तम रूचि जिस कुछ में है, द्वारा परिभाषित होती है। द्वितीय अवस्था की तर्कणा दूसरों की आवश्यकताओं में एक सीमा तक रूचि प्रदर्शित करती है परन्तु केवल उस बिन्दु तक जहॉ यह पुनः व्यक्ति की आत्म-रूचि हो सकती हैं परिणामस्वरूप दूसरों को महत्व देना आत्म सम्मान या निष्ठा पर आधारित नहीं होता है अपितु तुम मेरी पीठ खुजलाओ और मैं तुम्हारी खुजआऊँगा (तुम मेरी सहायता करो मैं तुम्हारी करूँगा) -विचार धारा पर आधारित होता है। प्राक्-परम्परागत अवस्था में एक सामाजिक परिप्रेक्ष्य की कमी सामाजिक अनुबन्ध (अवस्था पॉच), जैसा कि सभी कार्य व्यक्ति की स्वयं की आवश्यकताओं और रूचियों को पूरा करने का उद्देश्य रखते हैं, से बिल्कुल भिन्न है।

2.परम्परागत नैतिकता स्तर (10-13 वर्ष)

इस अवस्था में भी बच्चों का नैतिक न्याय (निर्णय) समाज में बनी परम्पराओं, नियमों एवं अधिनियमों तथा कानून व्यवस्थओं- दूसरों की पसन्द तथा नापसन्द के द्वारा नियन्त्रित होता है। परम्परागत स्तर नैतिक विकास की तृतीय एवं चतुर्थ अवस्था से बना है। परम्परागत नैतिकता उचित एवं अनुचित से संबंधित समाज की परम्पराओं की स्वीकृति द्वारा प्रदर्शित होता है। इस अवस्था में एक व्यक्ति नियमों का पालन करता है तथा समाज के मानकों का अनुसरण करता है जबकि आज्ञापालन या अवज्ञा का कोई भी परिणाम नहीं है।

तृतीय अवस्था (अन्तवैयक्ति संगति तथा अनुपालन प्ररित): नैतिक विकास के द्वितीय स्तर के प्रारम्भिक वर्षो में, बालक का नैतिक न्याय (निर्णय) दूसरों की स्वीकृति प्राप्त करने की इच्छा पर आधारित होता है। व्यक्ति दूसरों से स्वीकृति या अस्वीकृति, जैसा कि यह ज्ञात भूमिका के साथ समाज की अनुरूपता को प्रदर्शित करता है, को प्राप्त करने के लिए उत्सुक होते है। ये इन प्रत्याशाओं तक जीने हेतु एक ‘‘अच्छा लड़का’’ या ‘‘अच्छी लड़की ’’ बनने का प्रयास करते हैं। ये सीख लेते हैं कि ऐसा करने में अन्तर्निहित मूल्य होते हैं। तृतीय अवस्था की तर्कणा वैयक्तिक सम्बन्धों, जो कि अब सम्मान, कृतज्ञता तथा ‘‘ स्वर्णनियम’’ जैसी चीजों को सम्मिलित करता है, के पदों में इनके परिणामों के मूलयांकन द्वारा किसी कार्य की नैतिकता का निर्णय (न्याय) ले सकती है।

चतुर्थ अवस्था (प्रभुत्व एवं सामाजिक आज्ञापालन प्रेरित): परम्परागत नैतिकता स्तर के बाद के वर्षो में बच्चों के नैतिक न्याय (निर्णय) परम्पराओं ठीक वैसे ही जैसे कि सामाजिक व्यवस्था के नियमों एवं रीति- रिवाजों के द्वारा नियन्त्रित होते है। ये क्रियात्मक समाज को बनाये रखने में अपने महत्व के कारण, नियमों, अभियुक्तियों (Dictums) तथा सामाजिक परम्पराओं का पालन महत्वपूर्ण है, को सीखते हैं। इसलिए चतुर्थ अवस्था में नैतिक तर्कणा , तृतीय अवस्था में परिलक्षित वैयक्तिक स्वीकृति की आवश्यकता से परे है। यदि एक व्यक्ति किसी नियम का उलंघन करता है, शायद प्रत्येक लोक कर सकते हैं, इसलिए नियम-कानून को कायम रखना एक जिम्मेदारी एवं एक कर्त्तव्य है। जब कोई व्यक्ति किसी कानून को तोड़ता है, तो यह नैतिकतः अनुचित है।

3.नैतिकता का उत्तर परम्परागत स्तर (13 + आयु)

उत्तर परम्परागत स्तर को चरित्रवान (सिद्धान्ती) स्तर के नाम से जाना जाता है। यह नैतिक विकास की पाँचवी व छठीं अवस्था से मिलकर बना है। एक विकासशील अनुभूति है कि व्यक्तियों की समाज से अलग सत्ता है तथा व्यक्तियों के स्वयं के दृष्टिकोण समाज के विचारों से अग्रगामी हो सकते हैं। ये अपने स्वयं के सिद्धांतों के असंगत नियमों की अवज्ञा कर सकते हैं। ये लोग उचित एवं अनुचित से संबंधित अपने स्वयं के अमूर्त सिद्धांतों - वे सिद्धान्त जो कि जीवन, स्वतंत्रता एवं न्याय जैसे मूल मानवीय अधिकारों को विशेषतः शामिल करते हैं; के द्वारा अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उत्तर परम्परागत नैतिकता प्रदर्शित करने वाले लोग नियमों को उपयोगी परन्तु परिवर्तनशील प्रक्रम

के रूप में देखते हैं। आदर्शतः नियम सामान्य सामाजिक व्यवस्था को कायम रख सकते हैं तथा मानवाधिकारों की रक्षा कर सकतें हैं। नियम परम (Absolute) आदेश नहीं होते हैं जिनका पालन बिना प्रश्न के अवश्य होना चाहिए।

पंचम अवस्था (सामाजिक अनुबन्ध प्रेरित)- इस अवस्था में व्यक्ति का नैतिक निर्णय (न्याय) इस प्रकार से अंतःकरित (Internalized) होता है कि यदि वह प्राधिकारी की माँग आधारित सिद्धान्तों से सहमत होता है तो वह प्राधिकारी के लिए सकारात्मक अनुक्रिया करता है। इस अवस्था में व्यक्ति समझदारी पूर्वक चिन्तन करना, मानवाधिकारों का मूल्यांकन करना तथा समाज का कल्याण करना प्रारम्भ कर देता हैं इस अवस्था में दुनिया को विभिन्न विचारों, अधिकारो एवं मूल्यों वाला समझा जाता है। इस प्रकार के दृष्टिकोण का प्रत्येक व्यक्ति एवं समुदाय द्वारा अद्वितीय रूप से परस्पर सम्मान किया जाना चाहिए। कानून (नियम) राजाज्ञा के बजाय सामाजिक अनुबन्ध समझे जाते हैं। वे कानून जो आम कल्याण को प्रोत्साहित नहीं करते, "अधिकाधिक लोगों को अधिक कल्याण" प्राप्त होने की आवश्यकता हेतु परिवर्तित किये जाने चाहिए। इसे बहुमत निर्णय (Majority decision) और अटलनीय समझौते के द्वारा प्राप्त किया जाता है। जनतांत्रिक सरकार प्रतयक्षतः अवस्था पाँच की तर्कणा पर आधारित है।

षष्टम अवस्था (सार्वभौमिक नीति-परक सिद्धान्त प्रेरित)- इस अवस्था में नैतिक निर्णय (न्याय) को नियंत्रित करने वाले बल कूट-कूट कर भरे होते है। व्यक्ति के निर्णय अब चेतना आधारित हो जाते है तथा आदर (सम्मान), न्याय तथा समानता के सार्वभौमिक सिद्धान्तों में उसका विश्वास हो जाता है वास्तव में नैतिक तर्कणा सार्वभौमिक नीति-परक सिद्धान्तों के प्रयोग वाली अमूर्त तर्कणा पर आधारित होती है। कानून केवल तभी तक वैध है जब तक कि वह कानून न्याय में; तथा अनुचित नियमों के उलंघन की एवं जिम्मेदारी के साथ-न्याय की वचन बद्धता में क्रियान्वित होता है। अधिकार अनावश्यक है, जैसा कि सामाजिक अनुबन्ध जनतांत्रिक नैतिक व्यवहारों के लिए आवश्यक नहीं है। यद्यपि कि कोहलबर्ग कहते (आग्रह करते) है कि अवस्था छः अस्तित्व में होती है परन्तु जिन लोगों पर इस स्तर में नियमित रूप से क्रियान्वित की जाती है, में इसकी पहचान कठिन है।

5.8 शैक्षिक निहितार्थ Educational Implications

कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त यह सुझाव देता है कि नैतिक विकास आयु या अवस्था विशेष तथ्य है। बच्चे क्रमशः नैतिक न्याय के उच्चतम् सम्भव अवस्था तक प्रगति करते हैं। इसलिए इन में नैतिक मूल्यों को धारण कराने हेतु अवस्था विशेष नैतिक विकासात्मक कार्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

कोहलबर्ग विश्वास करते हैं कि बालक अपने चिन्तन को पुनर्संगठित करते हैं इसलिए वे अधिक क्रियाशील रहना चाहते हैं। पूर्ण नैतिक तर्कणा की क्षमता रखने हेतु छात्रों को अधिगम-परिस्थितियों में सक्रिय सहभागिता के अवसर प्रदान करना आवश्यक है।

वास्तव में कोहलबर्ग का मुख्य विचार है कि बालक अवस्थाओं से कैसे गुजरते हैं। वे उन विचारों, जो कि उनके चिन्तन को चुनौती देते हैं तथा उन्हे बेहतर तर्क करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं; के द्वारा ऐसा कर पाते हैं (कोहलबर्ग व अन्य, 1975)। यह नैतिक प्रोत्साहन से संबंधित वातावरण के संयोजन में बहुत सहायक होता है।

नैतिक धर्मसंकटों का (हल) प्रस्ताव नैतिक विकास की गति को बढ़ाता है इसलिए एक शिक्षक होने के नाते नैतिक धर्मसंकटों जिन्हें छात्रों द्वारा हल किया जाय की परिस्थितियाँ प्रदान की जानी चाहिए।

किसी समस्या के बारे में अधिक गहराई से चिन्तन करने की चुनौतियाँ भी नैतिक विकास की गति को बढ़ा देती है, इसलिए माता-पिता, शिक्षकों या अन्य आदर्शों को बच्चों के सामने हल करने हेतु समस्याओं को प्रस्तुत करना चाहिए।

एक व्यक्ति द्वारा किये गये नैतिक न्याय की कोटि उसकी उम्र पर निर्भर करती है। बालकों की विकासात्मक अवस्था के अनुसार, उन्हे नैतिक रूप से सक्षम (Competent) बनाने हेतु नैतिकता को प्रोत्साहित करने वाले वातावरण को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

पियाजे के साम्य (Equilibration) प्रतिमान की तरह कोहलबर्ग संज्ञानात्मक द्वन्द, जो कि नैतिक विकास में वृद्धि करता है, की विधि को मानते हैं। बालक एक विचार को उठाता है, विसंगत (असंगत) सूचानाओं द्वारा उलझ जाता है तथा फिर एक अधिक उन्नत एवं व्यापाक स्थिति उत्पन्न करके उलझन को हल करता है। यह विधि सुकरात की डायलेक्टिक (Dialectic) प्रक्रिया भी है। छात्र एक विचार प्रकट करता है, अघ्यापक उसके विचार की अपर्याप्तता दर्शाने हेतु प्रश्न पूछता है और फिर वे (बालक) उत्तम कथनों के सूत्रीकरण के लिए प्रोत्साहित होते हैं। इस तरह बालक नैतिक विकास की सिढ़ीयाँ उत्तरोत्तर चढ़ता रहता है।

बच्चों कि इसमें रूचि ही नैतिक विकास में अधिक परिवर्तन लाती है। जैसा कि यह प्रकथन पियाजे के सिद्धान्त तथा कोहलबर्ग के सिद्धान्त के निष्कर्षों पर आधारित हैं । बच्चे इसलिए विकास नहीं करते कि उनको बाह्य पुनर्बलनों द्वारा ढ़ाला गया है बल्कि यह विकास उनकी उत्सुकता की जागृति के कारण होता है। वे उन सूचनाओं में रूचि लेते है जो उनमें निहित संज्ञानात्मक संरचनाओं में पूर्णतः ठीक नहीं बैठते तथा इसी से अपने चिन्तन की पुनरावृत्ति के लिए प्रेरित होते हैं। इसलिए बच्चे की रूचि एवं उत्सुकता नैतिक साँचे में इनके विकास हेतु नैतिक पाठों के अन्तरण के दौरान (समय) बच्चों की रूचि एवं उत्सुकता को ध्यान (मस्तिष्क) में रखा जाना चाहिए।

बच्चों की नैतिक चिन्तन में प्रगति उनके समुदाय से संबंधित अनुभवों से बढ़ती है। उन्हें सामाजिक या सामुदायिक अनुभवों को अत्याधिक दिया जाना चाहिए जिससे कि उनके नैतिक विकास की गति त्वरित हो सके।

5.9 लारेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त का मूल्यांकन

पियाजे के अनुसरणकर्ता कोहलबर्ग ने नैतिक चिन्तन हेतु नवीन एवं अधिक विस्तृत अवस्था अनुक्रम को प्रस्तुत किया है। जब कि पियाजे ने मूलतः नैतिक चिन्तन की दो अवस्थाओं को पाया , जिसकी द्वितीय अवस्था प्रारम्भिक किशोरावस्था में परिलक्षित होती है। कोहलबर्ग ने किशोरावस्था एवं वयस्कावस्था में पूर्ण विकसित अतिरिक्त अवस्थाओं को बताया। उन्होने सुझाव दिया है कि कुछ लोग नैतिक चिन्तन की उत्तर परम्परागत स्तर तक पहुँचने के बावजूद अपने समाज को अधिक समय तक स्वीकार नहीं कर पाते परन्तु एक उत्कृष्ठ समाज की परिकल्पना हेतु स्वायत्तता पूर्वक एवं विचार पूर्वक चिन्तन करते हैं।

उत्तर परम्परागत नैतिकता का सुझाव सामाजिक विज्ञान में अनुपयोगी है। शायद इसे इस प्रकार के सुझाव हेतु एक संज्ञानात्म्क विकासात्मकवादीयों की सूची लिया इसके संज्ञानात्मक विकासात्मकवादी स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता से ज्याद प्रभावित हुए। जब कि ज्यादातर सामाजिक वैज्ञानिक समाज के द्वारा बच्चों के चिन्तन को ढ़ालने के तरकों से प्रभावित हुए। यदि बच्चे पर्याप्त मात्रा में स्वतन्त्र चिन्तन में व्यस्त होंगे तो वे परिणामतः अधिकारों, मूल्यों एवं सिद्धान्तों जिससे वे विद्यमान सामाजिक व्यवस्था का मूलयांकन करते है; की संकल्पनायें बनान प्रारम्भ कर देगें। शायद कुछ लोग यद्यपि कि सार्वभौमिक नीति परक सिद्धान्तों के बदले उसी समय प्रशासनिक अवज्ञा की वकालत करने वाले कुछ महान नैतिक नेतृत्वकर्त्ताओं एवं दार्शनिको को परिलक्षित करने वाले चिन्तन के प्रकारो में उन्नत होंगे।

कोहलबर्ग का सिद्धान्त एक उत्तम विवेचना को परिलक्षित करता है। सर्वप्रथम, सभी लोग उत्तर परम्परागत नैतिकता के संप्रत्यय के लिए उत्साहित नहीं होते, उदाहरणार्थ, होगन (1973, 1975) का अनुभव है कि समाज और कानून से ऊपर लोगों के अपने सिद्धान्तों को प्रतिस्थापित करना खतरनाक है। यह हो सकता कि इसी प्रकार बहुत से मनोवैज्ञानिक कोहलबर्ग पर प्रतिक्रया करें तथा यह प्रतिक्रिया उनके शोध की वैज्ञानिक श्रेष्ठता पर बहुत सी परिचर्चाओं को जन्म दे।

अन्य लोगों का तर्क है कि कोहलबर्ग की अवस्थायें सांस्कृतिक रूप से पूर्वाग्रह से ग्रसित है । उदाहरणार्थ सिम्पसन (1974) कहते है कि कोहलबर्ग ने पाश्चात्य दार्शनिक परम्परा पर आधारित अवस्था प्रतिमान को विकसित किया है तथा फिर बिना उनके विभिन्न नैतिक दृष्टिकोणों के स्तरों पर विचार किये अपाश्चात्य संस्कृति में इस प्रतिमान का प्रयोग किया है।

दूसरी आलोचना यह है कि कोलबर्ग का सिद्धान्त लिंग-पूर्वाग्रहित है। गिल्लीगन (1972) देखती है कि कोहलबर्ग की अवस्थाएं केवल पुरूषो के साक्षात्कार से व्युत्पन्न थी तथा वह आरोप लगाती है कि यह अवस्थाएं निश्चित रूप से पुरूष उन्मुखीकरण को प्रदर्शित करती है। पुरूषों के उन्नत नैतिक चिन्तन - नियमों, अधिकारों एवं अमूर्त सिद्धान्तों के चारो ओर घूमते हैं। औपचारिक निणर्य (न्याय) ही आदर्श है जिसमे सभी पक्ष एक दूसरे के दावे का निष्पक्ष तरीके से मूल्यांकन करते हैं। गिल्लिगन का तर्क है कि नैतिकता का यह संप्रत्यय नैतिक मुद्दों पर महिलाओं की आवाजों (मांगों) को समझने में असफल है।

गिल्लीगन कहती है कि महिलाओं के लिए नैतिकता अधिकारों एवं नियमों पर केन्द्रित नहीं होती अपितु यह अन्तर्वैयक्तिक संबंधों एवं सहानुभूति तथा खयाल (परवाह) करने के मूल्यों पर केन्द्रित होती है। अन्तर्वैयक्तिक न्याय आदर्श नहीं है अपितु यह अधिक सम्बंद्धित जीवन जीने का तरीका है। इसके अतिरिक्त महिलाओं की नैतिकता अधिक प्रसांगिक है, यह वास्तविकता,काल्पनिक धर्मसंकटों के बजाय जीवन्त संबंधों से संबंधित है।

विकास एक से अधिक रेखाओं के अनुदिश अग्रसर हो सकता है। नैतिक चिन्तन की एक रेखा तर्क, न्याय एवं सामाजिक संगठन पर तथा दूसरी अन्य रेखाएं अन्तर्वैयक्तिक संबंधों पर केन्द्रित होती है। कोहलबर्ग का सिद्धान्त इस प्रकार की गतिकी की व्याख्या करन मे असफल हो जाता है।

कोहलबर्ग के कार्य की अन्य आलोचनाएं भी हैं जो कि अपरिवर्तित अनुक्रम की समस्या, पीछे हटने का प्रचलन तथा चिन्तन एवं कार्य के मध्य संबंध जैसी आनुभाविक विषयों से संबंधित है।

चाहे जितनी भी आलोचनाएं एवं प्रश्न हों, इसमें कोई संदेह नहीं है कि कोहलबर्ग का कार्य उत्तम (महान) है। उन्होने सिर्फ नैतिक निर्णय की पियाजे की अवस्थाओं का विस्तार ही नही किया अपितु उन्होने यह कार्य बड़े ही उत्साह के साथ किया है। उन्होंने नैतिक तर्कणा के विकास का अध्ययन किया जैसा कि यह महान नैतिक दार्शनिकों के चिन्तन की ओर कार्य कर सकता है। इसलिए कोहलबर्ग ने नैतिक विकास, ऐसा ही हो सकता है जैसे चुनौतिपूर्ण दृष्टिकोणों को प्रस्तुत नहीं किया है यद्यपि कि सुकारात, काण्ट, या मॉर्टिन लूथर किंग की तरह कुछ अन्य लोगों ने नैतिक मुद्दों पर सोचना शुरू कर दिया होगा।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. प्राक-परम्परागत स्तर की प्रथम अवस्था____________ होती है।
8. प्राक-परम्परागत स्तर की द्वितीय अवस्था____________ होती है।
9. पियाजे के साम्य प्रतिमान की तरह कोहलबर्ग___________ की विधि को मानते हैं।

5.10 सारांश

कोहलबर्ग ने पियाजे के शोध कार्यों को आगे बढ़ाया तथा पियाजे के दो स्तरो वाले नैतिक विकास के स्थान पर तीन स्तरों वाले नैतिक विकास के सिद्धान्त का विस्तरण किया। कोहलबर्ग के तीन स्तरों का प्रत्येक स्तर दोनो स्तरों को सम्मिलित करता है।

प्रथम स्तर, "प्राक् परम्परागत नैतिकता," में बालक का व्यवहार बाह्य नियन्त्रणों के अधीन होता है। इस स्तर की प्रथम अवस्था 'अच्छा बालक नैतिकता' में, बालक आज्ञाकारिता एवं दण्ड-उन्मुख होता है तथा किसी कार्य की नैतिकता भौतिक परिणामों के पदों में निर्णित होती है। इस स्तर की द्वितीय अवस्था में, बालक पुरस्कारों को प्राप्त करने हेतु सामाजिक प्रत्याशाओं का अनुपालन करता है।

द्वितीय स्तर "परम्परागत नैतिकता" या 'परम्परागत नियमों एवं अनुपालन की नैतिककता है। इस स्तर की प्रथम अवस्था में; बालक दूसरों के अनुमोदन को प्राप्त करने हेतु नियमों का अनुपालन करता है तथा उनके साथ उत्तम संबंध बनाये रखता है। इस स्तर की द्वितीय अवस्था में, बालक यह विश्वास करते हैं कि यदि सामाजिक समूह सभी सदस्यों के लिए उचित नियमों को स्वीकार करता है तो उन्हें सामाजिक अस्वीकृति तथा निन्दा से बचने हेतु उनका (नियामों का) अनुपालन करना चाहिए।

तृतीय स्तर को कोहलबर्ग ने "उत्तर परम्परागत नैतिकता" या स्वानुमोदित सिद्धान्तों की नैतिकता नाम दिया। इस तरह की प्रथम अवस्था में;बालक विश्वास करता है कि सामाजिक मान्यताओं में लचीलापन होना चाहिए जो कि इसे परिष्कृत करना सम्भव बनाये तथा सामाजिक मानकों को परिवर्तित करे यदि यह सम्पूर्ण समूह के लिए लाभकारी सिद्ध होवे। इस स्तर की द्वितीय अवस्था में, लोग सामाजिक निन्दा के बजाय आत्मनिन्दा से बचने हेतु सामाजिक मानकों का अनुपालन तथा आदर्शों का आत्मीकरण, दोनों करते हैं। यह व्यक्तिगत इच्छाओं के बजाय दूसरां के लिए सम्मान पर आधारित एक नैतिकता है। लारेन्स कोहलबर्ग द्वारा प्रतिपादित नैतिक विकास का अवस्था सिद्धान्त निम्नवत् तालिका की सहायता से सारांशित किया जा सकता है।

स्तर	**अवस्था**	**स्तर विशेष उन्मुखीकरण**	**प्रमुख संबंध**	**आयु**
प्राक्-परम्परागत	प्राक्नैतिक	दण्ड और आज्ञाकारिता	दण्ड से बचाव	4-10 वर्ष

		उन्मुखीकरण		
		स्वरूचि उन्मुखीकरण	स्वलाभ व्यवहार	
परम्परागत	सामाजिक नैतिकता	अर्न्तवैयाक्तिक सहमति	तथा अच्छा लड़का/ अच्छी लड़की दृष्टिकोण	10-13 वर्ष
		प्रभुत्व तथा सामाजिक क्रम संपोषण उन्मुखीकरण	कानून व्यवस्था नैतिकता	
उत्तर-परम्परागत	स्व-अनुमोदित नैतिकता	सामाजिक संविदा उन्मुखीकरण	लोकतात्रिकतः अनुमोदित कानून	13+ या मध्य या उत्तर प्रौढ़ता तक या कभी नही
		सार्वभौमिक नीतिपरक सिद्धान्त	सैद्धान्तिक चेतना	

इस सिद्धान्त का नैतिक शिक्षा-कैसे और कब कार्यान्वित होना चाहिए, पर वृहत् प्रभाव है। नैतिक विकास की सटीक गतिकी को जानने हेतु इस सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना की गयी।

5.11स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. नैतिक अधिगम के चार आवश्यक तत्व हैं:
   a. समाज के नियमों, रीति रिवाजों तथा कानूनों के रूप में समाज के सदस्यों की सामाजिक प्रत्याशाओं को सीखना।
   b. चेतना का विकास करना।
   c. समूह की प्रत्याशाओं के अनुपालन में किसी व्यक्ति के व्यवहार के असफल होने पर अपराध-बोध एवं शर्मिन्दगी का अनुभव करना सीखना, तथा

d. समूह के सदस्यों के आशानुरूप सामाजिक अंतःक्रिया सीखने का अवसर प्राप्त करना।

2. न्याय-बोध
3. नैतिक न्याय
4. नैतिक विकास के चरण हैं:
    i. नैतिक व्यवहार का विकास तथा
    ii. नैतिक संप्रत्ययों का विकास
5. नैतिक तर्कणा
6. प्राक्परम्परागत, परम्परागत तथा उत्तर परम्परागत
7. आज्ञाकारिता एवं दण्ड प्रेरित
8. आत्म-रूचि उन्मुखित
9. संज्ञानात्मक द्वन्द

5.12संदर्भ ग्रन्थ सूची

7. कोहलबर्ग, एल0 (1963). दी डेवेलपमेन्ट ऑफ चिल्ड्रेन्स ओरिएन्टेशन टूवर्ड्स अ मॉरल ऑर्डरः सीक्वेन्स इन दी डेवेलमेन्ट ऑफ मॉरल थॉट, वीटा हुमाना, वैसेल.
8. कोहलबर्ग, एल0 (1969). स्टेजेज इन दी डेवेलपमेन्ट ऑफ मॉरल थॉट एण्ड एक्शन, न्यूयार्कः होल्ट.
9. कोहलबर्ग, एल0 (1973). स्टेजेज एण्ड एजींग इन मॉरल डेवेलपमेन्टः सम स्पेकुलेशन्स, जेरोन्टोलॉजिस्टअ.
10. हरलॉक, ई0वी0 (1997). चाइल्ड डेवेलपमेन्ट (6वॉ संस्करण). न्यू देहली, टाटा मैक ग्रॉ हिल एडिशन.
11. मंगल, एस0के0 (2005). एडवान्स्ड एजुकेशनल साइकॉलजी (2 सरा संस्करण), न्यू देहली प्रेन्टीस हॉल आफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड.
12. डब्ल्यू0 सी0 क्रेन (1985). थीयरीज ऑफ डेवेलपमेन्ट. प्रेन्टिस हॉल. पी0पी0 118-136
13. मॉर्गन, टी0सी0, किंग, ए0आर0, विज, आर0जे0 एण्ड स्कॉप्लर, जे0 (1993). इन्ट्रोडक्शन टू साइकॉलजी (7वॉ संस्करण) न्यू देहली, टाटा मैकग्रॉ हिल एडिशन

5.13निबन्धात्मक प्रश्न

11. नैतिक चिन्तन एवं नैतिक काग्र में विसंगतियॉ एक व्यक्ति के व्यक्तित्व में कुसमंजन को अग्रसर होती हैं। सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
12. कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त पियाजे के नैतिक विकास सिद्धान्त से एक कदम आग्रे है, कैसे?
13. शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों के सांपेक्ष कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
14. किसी अवस्था सिद्धान्त के अभिलक्षण क्या है? लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त के आलोक में इस पर विचार विमर्श कीजिए।
15. नैतिक विकास संज्ञानात्मक विकास से सार्थकतः सह-सम्बन्धित हैं। विभिन्न उदाहरणों की सहायता से इसकी व्याख्या कीजिए।
16. नैतिक धर्मसंकटों से आप क्या समझते हैं? प्राथमिक स्तर की कक्षा-परीस्थ्तियों से नैतिक धर्मसंकट के चार उदाहरण दीजिए।
17. नैतिक, अनैतिक तथा निर्नैतिक व्यवहार के पदों में सोदाहरण अन्तर स्पष्ट कीजिए।
18. नैतिक संप्रत्ययों एवं नैतिक व्यवहार के मध्य विसंगतियाँ सामान्य तथ्य हैं। बाल्यावस्था की विकासात्मक अवस्था से दो उदाहरण दीजिए।
19. लारेन्स कोहलबर्ग की नैतिक विकास सिद्धान्त की अवधरणायें क्या है? सक्षिप्त वर्णन कीजिए।
20. सिद्ध कीजिए कि, सही अर्थो में, लारेन्स कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त एक अवस्था सिद्धान्त है।
21. आप कैसे कह सकते हैं कि नैतिक विकास, आयु एवं अवस्था विशेष तथ्य है ? नैतिक न्याय (निर्णयों) की प्रकृति के आलोक में तर्क प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 6- जिरोम एस0 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त एवं इसका शैक्षिक निहितार्थ

Jerome S. Bruner's Theory of Cognitive Development and Its Educational Implications

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 जिरोम एस0 ब्रूनर एवम् संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त
6.4 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के मूलभूत आयाम
6.5 जे0एस0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का सिद्धान्त
6.6 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का शैक्षिक निहितार्थ
6.7 सारांश
6.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
6.9 सन्दर्भग्रन्थ
6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

वृद्धि एवं विकास, दोनों पद किसी व्यक्ति के व्यवहर एवं व्यक्तित्व के परिवर्तन को इंगित करते है। विकास, संरचनात्मक एवं क्रियात्मक, सम्पूर्ण परिवर्तन से संबन्धित है। विकास का बहुत ही विस्तृत अर्थ है तथा यह व्यक्ति, के जीवन विस्तार की कालावधि की विभिन्न विमाओ से शारीरिक विकास, चलन क्रिया विकास , संज्ञानात्मक विकास, सामाजिक विकास, भावात्मक विकास, और नैतिक विकास में परिवर्तनो की सामान्य प्रवृत्ति का वर्णन करता है । जैसा कि किसी व्यक्ति के गुणात्मक एव मात्रात्मक विकास क्रियात्मक एवं संरचनात्मक दोनो पक्षो को शामिल करता है एक प्रक्रिया है जो किसी जीव या जीवन के अति प्रारम्भिक अवस्थ से प्रारम्भ होती है। समय के अनुसार (साथ-साथ) जीव अपनी वृद्धि एवं विकास के चरम, जिसे परिपक्वता कहते है, को प्राप्त करता है। विकास के प्रक्रिया की सामान्य प्रवृत्ति का अन्वेषण विभिन्न विकासात्मक मनोवैज्ञानिको द्वारा इसकी वास्तविक गतिकी को जानने हेतु किया गया। परिणामस्वरूप , निश्चित विकासात्मक अवस्था किसी के व्यक्तित्व के एक या अन्य विमाओं में होने वाली विकासात्मक प्रक्रिया को जानने हेतु विभिन्न सिद्धान्तों का अविर्भाव हुआ। संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में, जीन पियाजे का

संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त, आसुबेल का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त, वाईगास्की का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त और जे0एस0 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त कुछ प्रमुख सिद्धान्त है। संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न पक्षों को जानने हेतु हम यहॉ जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विभिन्न पहलूओं पर चर्चा करेंगें।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्तआप

1. संज्ञान के अर्थों को जानने में
2. संज्ञानात्मक विकास की प्रकृति की वर्णन करने में
3. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न अवयवों की व्याख्या करने में
4. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विभिन्न अवस्थाओं के मध्य अन्तर स्पष्ट करने में
5. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ को सोदाहरण स्पष्ट करने में सक्षम होंगे।

6.3 जिरोम एस0 ब्रूनर एवम् संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त Jerome S. Bruner and his Theory of Cognitive Development

कोई भी विषय विकास की किसी भी अवस्था में इस प्रकार से सिखाया जा सकता है कि वह बालक के संज्ञानात्मक क्षमताओं में स्थापित होता हो। (जे0एस0ब्रूनर)

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक जिरोम सेमौर ब्रूनर (जन्म 1915) ने प्रत्यक्षण , संज्ञान एवं शिक्षा के अध्ययन में उल्लेखनिय योगदान दिया। वे अमेरिका एवं इंगलैण्ड के विश्वविद्यालयों में अध्ययन कार्य किये तथा शिक्षा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में बहुत सारी पुस्तकों एवं लेखोके रचयिता है।

जिरोम सेमौर ब्रूनर का जन्म अप्रवासी माता-पिता हरमन एवं रोज ब्रूनर से 1 अक्टूबर, 1951 को हुआ था। वे जन्मान्ध थे और शिशु शैशवास्था में ही दो मोतियाबिन्द आपरेशनोपरान्त भी रोशनी प्राप्त न कर सके। वे सर्वाजनिक विद्यालयो में दाखिला लिय उच्च विद्यालय से 1933 में स्नात्तक हुए और ड्यूक विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त किये। उन्होने 1973 में ड्यूक विश्वविद्यालय से बी0ए0 एवं 1941 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय से गार्डन अलपोर्ट के दिशा-निदेशन में की पी-एच0डी0 की उपाधि प्राप्त किया। वे द्वितीय विश्व- युद्ध के समय सुप्रीम हेडक्वार्टरस एलायड इक्सेपेडीशनरी कोर्स यूरोप के मनोवैज्ञानिक युद्ध विभाग में कार्यरत जनरल आईसेन हावर के

सानिध्य में सेवारत रहे। युद्धोपरान्त उन्होने 1945 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान संकाय से सेवारम्भ किया।

ब्रूनर, जिन्होंने बालकों के संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन किया, ने बालकों की बाहरी दुनिया के संज्ञानात्मक प्रदर्शन (प्रस्तुतीकरण) से संबंन्धित एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। ब्रूनर का सिद्धान्त वर्गीकरण पर आधारित है वर्गीकरण हेतु प्रत्यक्षीकरण , वर्गीकरण हेतु संप्रत्ययीकरण, वर्ग बनाने हेतु अध्ययन, वर्गीकरण हेतु निर्णय लेना'' ब्रूनर मानते है कि लोग दुनिया को उसकी समानताओं एवं विषमताओ के पदो में व्याख्यायित करते है।

वे दो प्रकार के चिन्तन क प्राथमिक तरीकों कथन माध्यम एवं रूपदर्शन माध्यम, का सुझाव देते हैं। कथन चिन्तन में मस्तिष्क क्रमागत , क्रिया - उन्मुख एवं विवरण प्रेरित विचार में व्यस्त होता है।

रूप दर्शन चिन्तन(Paradigmatic Thinking) में मन व्यवस्थित व वर्गीकृत संज्ञान को प्राप्त करने हेतु विशिष्टताओं का अतिक्रमण करता है। प्रथम स्थिति में चिन्तन कहानी एव ग्रीपिंग ड्रामा का रूप लेता है। बाद वाली स्थिति में चिन्तन तार्किक प्रवर्तकों (Logical operators) से जुड़े कथनों (Propositons) के रूप में संरचित है।

बालको के विकास पर अपने अनुसंधान (1966) में ब्रूनर ने प्रस्तुतीकरण के तीन तरीको को प्रस्तावित किया सक्रियता प्रस्तुतीकरण (क्रिया-आधारित), दृश्य प्रतिमा प्रस्तुतीकरण (प्रतिमा-आधारित) एवम् सांकेतिक प्रस्तुतीकरण (भाषा- आधारित) । ये प्रस्तुतीकरण के तीनो तरीके आपस में समाकलित होते हैं तथा केवल स्वतंत्रता पूर्वक क्रमिक होते हैं जिससे कि वे परस्पर अनुवादित हो सकें। सांकेतिक प्रस्तुतीकरण का अन्तिम तरीका है। ब्रूनर सिद्धान्त के अनुसार, यह तब प्रभावी होती है जब ये पदार्थ का सामना सक्रिया से दृश्य प्रतिमा, दृश्य प्रतिया से सांकेतिक प्रस्तुतीकरण की एक श्रेणी का अनुसरण करता है। यही क्रम वयस्क विद्यार्थीयो के लिए भी सत्य है। एक सही अनुदेशनात्मक चित्रकार ब्रूनर का कार्य यह भी सुझाव देता है कि एक विद्यार्थी (चाहे व बहुत ही कम उम्र का हो) किसी भी पाठ् को सीखने मे सक्षम होता है जब तक कि अनुदेशन उचित प्रकार से संगठित है। (पियाजे को मान्यताओं तथा दूसरे अवस्था के सिद्धान्तकारो के विपरीत) ब्लूम टैक्सोनामी की तरह एक कूट कृत (बवकपदह) करने का तन्त्र जिसमें लोग सम्बन्धित वर्गो की एक निश्चित क्रम में व्यवस्था बनाते है का सुझाव देते हैं। वर्गो का प्रत्येक उच्चतर अनुक्रमिक स्तर अधिक विशिष्ट बन जाती है प्रतिध्वनित बेन्जामीन ब्लूम टैक्सोनॉमी की ज्ञान प्राप्ति की समझ जैसे कि अनुदेशनात्मक स्कैफोल्डिंग से संबन्धित विचार। सीखने की इसी समझ के साथ, ब्रूनर एक चक्राकार पाठ्यचर्या, का प्रस्ताव करते हैं। एक अध्यापन उपागम जिससे प्रत्येक विषय या कौशल क्षेत्र का निश्चित समयान्तरालों पर प्रत्येक बार अधिक सतर्कता पूर्वक पुनरीक्षण किया जाता है। 1987 में आपको बालजन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह सम्मान आपके मानव मनोविज्ञान की प्रमुख समस्याओं पर किये गये शोध के लिया दिया गया। आपके अपने प्रत्येक शोध में मानव

की मनोवैज्ञानिक संकायों के सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक मूल्यों के विकास में मूल एवं वास्तविक योगदान दिया है।

जे0एस0 ब्रूनर द्वारा विकसित संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विस्तरण से पहले हमें संज्ञान एवं संज्ञानात्मक विकास के सही संप्रत्यय को जानना आवश्यक है।

संज्ञान (**Cognition**) उच्चतर स्तर का अधिगम है और इसमें यह प्रत्यक्षण, संग्रहीकरण एवं इन्द्रियों द्वारा संग्रहीत सूचनाओं की प्रक्रिया आदि सम्मिलित हैं यह उन सभी मानसिक प्रक्रियाओं को शामिल करता है जिससे स्वयं के, दूसरो के एवं वातावरण के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है एवं प्राप्त ज्ञान व्याख्यायित होता है। मानवीय चिन्तन प्रक्रियायें (प्रत्यक्षीकरण, तर्कणा तथा स्मरण) संज्ञान के उत्पाद हैं। संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं वह प्रक्रियाएं हैं जो ज्ञान एवं जागरूकता के लिए उत्तरदायी हैं। वे अनुभव, प्रत्यक्षणा और स्मृति (स्मरण) तथा ठीक वैसे ही प्रकट शाब्दिक चिन्तन की प्रक्रियाओं को साम्मिलित करते हैं। यह मस्तिष्क की आंतरिक संरचनाओं एवं उसकी क्रियाओं से सम्बन्धित है। ये आन्तरिक संरचनायें और प्रक्रियाएं संवेदन प्रत्यक्षणा, अवधान, अधिगम , स्मरण, भाषा, चिन्तन तथा तर्कणा को शामिल करते हुए ज्ञानार्जन एवं ज्ञान की उपयोगिता में साम्मिलित रहती हैं। ये सभी संज्ञान के विभिन्न पक्ष है। एक जीव के विशेष परीस्थितियों में प्रकट व्यवहार पर आधारित संज्ञान के क्रियात्मक अवयवों के बारे में सिद्धान्तों का संज्ञानात्मक वैज्ञानिक परीक्षण करते हैं तथा प्रस्तावित करते हैं।सम्पूर्ण जीवन में संज्ञान की व्यापक व्याख्या, ज्ञान-प्रेरित एवं ज्ञानेन्द्रिय प्रक्रियाओं तथा नियन्त्रित एवं स्वचालित प्रक्रियाओं के मध्य अन्तः क्रिया के रूप में की जा सकती है।

संज्ञानात्मक विकास (**Cognitive development**) बाल्यावस्था से किशोरवस्था से व किशोरावस्था वयस्कता तक स्मण, समस्या समाधान और निर्णय-लेना को शामिल करते हुए चिन्तन प्रक्रियाओं की संरचना है।

एक समय यह भी विश्वास किया जाता था कि शिशुओं में चिन्तन या जटिल विचारों को बनाने की क्षमता, में कमी होती है और जब तक ये भाषा नहीं सीख लेते तब तक बिना संज्ञान के होते है। परन्तु अब यह ज्ञात है कि बच्चे जन्म से ही अपने वातावरण के प्रति जागरूक होते है तथा सम्बन्धित गवेषणा में रूचि रखते हैं। जन्म से ही शिशु सक्रिय रूप से अधिगम करना शुरू कर देते ह (प्रत्यक्षणा एवं चिन्तन कौशल के विकास हेतु प्राप्त आकड़ो का प्रयोग करके) वे अपनी चारो तरफ की सूचनाओं को एकत्रित करते हैं, छटनी करते हैं एवं प्रक्रिया करते है।

इस प्रकार, संज्ञानात्मक विकास, एक व्यक्ति कैसे प्रत्यक्षण करता है, कैसे समझ चिन्तन करता है और अनुवांशिक एवं अधिगमित कारकों से अन्तःक्रिया के द्वारा प्राप्त अपनी दुनिया की समझ कैसेप्राप्त करता है, को निर्देशित करता हैं। सूचना की प्रक्रिया , बुद्धि, तर्कणा, भाषा विकास एवं स्मृति संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. ब्रूनर का सिद्धान्त _______ पर आधारित है।
2. बालको के विकास पर अनुसंधान में ब्रूनर के प्रस्तुतीकरण के तीन तरीको के नाम लिखिए।
3. सूचना की प्रक्रिया , बुद्धि, तर्कणा, भाषा विकास एवं स्मृति __________ के क्षेत्र है।

6.4 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के मूल भूत आयाम (Fundamental Aspects of Bruner's Theory of Cognitive Development)

ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की सटीक गतिकी को समझने हेतु निम्नलिखित कारक प्रमुख स्थान रखते हैं।

वर्गीकरण (Categorisation)

ब्रूनर के विचार वर्गीकरण पर आधारित हैः ''वर्गीकरण के लिए प्रत्यक्षण, वर्गीकरण के लिए संप्रत्यायीकरण , वर्गीकरण करने हेतु अधिगम, वर्गीकरण के लिए निर्णयीकरण'' । मस्तिष्क सूचनाओं का सरलीकरण कैसे करता है जो कि लघु-अवधि स्मृति में प्रवेश करता है , वर्गीकरण है। ब्रूनर ने आन्तरिक संज्ञानात्मक मानचित्रो की संरचना में सूचनाओं के वर्गीकरण पर ज्यादा जोर दिया। उनका विश्वास है कि प्रत्यक्षण, संप्रत्ययीकरण, अधिगम, निर्णयीकरण और अनुमानीकरण ये सभी वर्गीकरण में सम्मिलित होते है।

संगठन (Organisation)

संगठन से तात्पर्य सूचनाओं को कूटकृत तन्त्र में व्यवस्थित करने से है। कूट-कृत तन्त्र संवेदी निवेश को पहचानने हेतु प्रेषित वर्ग होते हैं। ये उच्चतर संज्ञानात्मक क्रियाएं, प्रमुख संगठनात्मक चर होते हैं। इससे परे तात्कालिक संवेदी ऑकड़े संबन्धित वर्गो के आधार पर अनुमान लगाने में सम्मिलित हैं। संबंन्धित वर्ग एक कूट-कृत तन्त्र बनाते है। ये संबन्धित वर्गो की क्रमबद्धित व्यवस्थाएं हैं। ब्रूनर ने एक कूट-कृत तंत्र का सुझाव दिया जिसमें लोग संबन्धित वर्गो की श्रेणी बद्ध व्यवस्था बनाते है। प्रख्यात बेन्जामीन ब्लूूम की ज्ञानार्जन की समक्ष एंव अनुदेशानात्मक स्कैफोल्डिंग से सम्बन्धित विचार के प्रत्येक क्रमागत उच्चतर स्तर और भी विशेष हो जाते है ।(ब्लूम टैक्सोनॉमी)

मानसिक प्रदर्शन के माध्यम (Modes of Mental Representations)

ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम है- दृश्य, शब्द तथा प्रतीक। बच्चे आन्तरिक सूचना संसाधन एवं संग्रहण तंत्र द्वारा बाहरी वास्तविकता के मानसिक प्रदर्शन का विकास करते हैं। मानसिक प्रदर्शन हेतु भाषा बहुत सहायक होती है।

भाषा (Language)

ब्रूनर के तर्क के अनुसार संज्ञानात्मक प्रदर्शन के आयाम भाषा से मदद प्राप्त करते हैं। उन्होंने भाषा-ज्ञान में सामाजिक व्यवस्था के महत्व पर जोर दिया इनके विचार पियाजें के विचारों के समान हैं, परन्तु वे विकास के सामाजिक प्रभावों पर ज्यादा जोर देते हैं। भाषा प्रतीकों का तंत्र है जो संज्ञानात्मक विकास या बृद्धि के विकास में मुख्य स्थान रखती है। यह आन्तरिक संप्रत्ययों के संचार में सहायक होती है।

शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य अन्तःक्रिया (Interaction Between Teacher and Taught)

शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य प्रगाढ़ अन्तःक्रिया, शिक्षार्थी के संज्ञानात्मक विकास में सार्थक अन्तर स्थापित करती है। समाज का कोई भी सदस्य शिक्षक हो सकता है। माता, पिता, मित्र या वह कोई जो कुछ सीखा सकता है, शिक्षक हो सकता है।

अधिगमकर्ता का अभिप्रेरण (Motivation of Learner)

ब्रूनर, पियाजे के बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के विचारों से प्रभावित थे। 1940 के दशक के दौरान उनके प्रारम्भिक कार्य आवश्यकता, अभिप्रेरण एवं प्रत्याशा (मानसिक प्रवृत्ति) और उनके प्रत्यक्षण पर प्रभाव पर केन्द्रित रहे। उन्होंने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि बच्चे सक्रिय समाधानकर्ता होते है तथा 'कठिन विषयों' के अन्वेषण में सक्षम होते है जैसा कि बच्चे आन्तरिक अभिप्रेरणा से ओत-प्रोत होते हैं। उन्होंने संज्ञानात्मक विकास के एक फलन के रूप में अधिगम हेतु अभिप्रेरणा का अन्वेषण किया। उन्होंने महसूस किया कि आदर्शतः विषय वस्तु में रूचि, अधिगम हेतु सबसे उपयुक्त (अच्छी) उद्दीपक है। ब्रूनर श्रेणी अथवा कक्षा श्रेणी-क्रम जैसे बाहरी प्रतिस्पर्धात्मक उद्देश्यों (goals) को प्रसन्द नही करते थे।

संरचनावादी प्रक्रिया की तरह अधिगम (Learning as Constructivist Process)

अधिगम वास्तविकताओं को संरचित करने की प्रक्रिया है जो कि अन्ततः संज्ञानात्मक विकास में जुड़ जाती है। ब्रूनर का सैद्धान्तिक ढ़ॉचा इस विषय-वस्तु पर आधारित है कि अधिगमकर्ता विद्यमान ज्ञान के आधार पर नये विचार या संप्रत्यय संरचित करते है। अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के आयामों में सूचनाओं का चयन एवं रूपान्तरण, निर्णयीकरण, परिकल्पनाएं बनाना और सूचनाओं एवं अनुभवों से अर्थ निकालना सम्मिलित है।

सूझपूर्ण एवं विशलेषणात्मक चिन्तन (Intuitive and analytic Thinking)

ब्रूनर का विश्वास है कि सूझपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक दोनों चिन्तन प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत किये जाने चाहिए। उनका विश्वास था कि सूझपूर्ण (अन्र्तज्ञात) कौशलों को कम-बल दिया जाता था और वे

प्रत्येक क्षेत्र में सूझ पूर्ण छलांग (कदम) हेतु विशेषज्ञों की क्षमताओं पर चिन्तन करते हैं। यह एक बिना विश्लेषणात्मक कदम के मुक्तिपूर्ण लेकिन तात्कालिक प्रतिपादन पर पहुंचने की बृद्धिपूर्ण तकनीकी है जिससे इस तरह के प्रतिपादन वैध या अवैध निष्कर्ष पाये जायेंगे। (दण्डपाणी, 2001) सूझपूर्ण चिन्तन बृद्धि पूर्ण अनुमान, अटकलों आदि से प्रदर्शित होती है।

खोज-अधिगम (Discovery learning)

खोज अधिगम संज्ञान की क्रियात्मक क्षमता को बढाता है। ब्रूनर में 'खोज-अधिगम' को विख्यात किया। खोज-अधिगम एक पूछ-ताछ आधारित संरचनावादी अधिगम सिद्धान्त है जो कि समस्या समाधान परिस्थितियों में होता है जहाँ अधिगमकर्ता अपने स्वयं की अनुभूतियों एवं विद्यमान ज्ञान के प्रयोग से तथ्यों, उनके सम्बन्धों एवं नये सत्यों को सीखने हेतु खोजता है। शिक्षार्थी वस्तुओं के जोड़-तोड़ एवं अन्वेषण से एवं वाद-विवाद से जूझकर या प्रयोगों को सम्पन्न करके (वातावरण) से अन्तःक्रिया करता है। परिणामस्वरूप, शिक्षार्थी स्वयं द्वारा अन्वेषित ज्ञान एवं संप्रत्ययों को आसानी से स्मरित कर सकेंगे (अन्तरणवादी प्रतिमान के विपरित)। प्रतिमान जो खोज-अधिगम पर आधारित है- निर्देशित- खोज , समस्या आधारित अधिगम, अनुकरण आधारित अधिगम, स्थिति आधारित अधिगम, अनुषंगिक अधिगम आदि को सम्मिलित करता है।

इस सिद्धान्त के प्रस्तावकों का विश्वास है कि खोज अधिगम के निम्नलिखित सहित कई लाभ है-

- सक्रिय विनियोजन को प्रोत्साहित करना।
- संज्ञानात्मक कौशलों को बढ़ावा देना।
- संज्ञानात्मक विकास की प्रगति को त्वरित करना।
- प्रेरण को प्रोत्साहित करना।
- स्वायत्तता, जिम्मेदारी, स्वतन्त्रता को प्रोत्साहन देना।
- समस्या-समाधान कौशलों एवं सृजनात्मकता का विकास करना।
- उचित अधिगम अनुभव

खोज अधिगम से हानियाँ भी हो सकती है जो कि निम्नवत् है:

- संज्ञानात्मक अतिभार उत्पन्न होना।
- बड़े समूहों व मन्द अधिगमकर्त्ताओं के लिए इसका कठिन अधिगम प्रक्रिया हो सकना
- सम्भावित भ्रान्त धारणायें
- समस्याओं एवं भ्रान्त धारणाओं को चिन्हित करने में शिक्षक असफल हो सकते है।

अनुभवजन्य अधिगम (Experientiol Learning)

अनुभवजन्य अधिगम बौद्धिक विकास में बहुत सहायक होती है। यह आगमनात्मक, अधिगमकर्त्ता-केन्द्रित एवं क्रिया-कलाप उन्नमुखित होती है। अनुभव के बारे में वैयक्तिक चिन्तन और दूसरी परिस्थितियों में अधिगमित ज्ञान का प्रयोग करने में योजनाओं का प्रतिपादन (सुत्रीकरण) प्रभावी अनुभवजन्य अधिगम के लिए क्रान्तिक (विवेचनात्मक) कारण है। अनुभवजन्य अधिगम में अधिगम के प्रक्रिया पर जोर दिया जाता है न कि अधिगम के उत्पाद पर संज्ञानात्मक विकास पर अधिगम की प्रक्रिया का अत्याधिक (अवश्य) प्रभाव होता है। अनुभवजन्य अधिगम को उन पांच चरणों वाले चक्र के रूप में देखा जा सकता है जिसमें सभी चरण आवश्यक है:-

- अनुभव करना (क्रिया कलाप का होना)
- साझा करना या प्रकाशित करना (प्रतिक्रियाएं एवं प्रेक्षण साझा किये जाते है)
- विश्लेषण करना या प्रक्रिया करना (ढॉचा एवं गति की निश्चित होती है।)
- निष्कर्ष निकालना या सामान्यीकरण करना। (सिद्धान्त व्युत्पन्न होते हैं),तथा
- विनियोग करना (applying) (नई परिस्थितियों में अधिगम के प्रयोग हेतु योजनाएं बनती है।)

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4. वर्गीकरण क्या है?
5. ब्रूनर ने आन्तरिक संज्ञानात्मक मानचित्रो की संरचना में ________ के वर्गीकरण पर ज्यादा जोर दिया।
6. ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम कौन से हैं?

6.5 जे0एस0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का सिद्धान्त (J.S. Bruner's Theroy of the Stages of Cognitive Development)

जिरोम ब्रूनर ने 1960 के दशक में संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त विकसित किया। उनका यह उपागम (पियाजे के विपरित) वातावरणीय एवं अनुभवजन्य कारकों को महत्व देता है। ब्रूनर सुझावित करते है कि बुद्धि का प्रयोग जैसे-2 किया जाता है चरण-दर-चरण परिवर्तनों की अवस्था में बौद्धिक क्षमता विकसित होती है। ब्रूनर का चिन्तन उत्तरोत्तर लेव वाइगास्त्की जैसे लेखकों द्वारा

प्रभावित हुआ और वे अन्त वैयक्तिक केन्द्र, जो कि उनका विषय रहा पर और अधिक विश्लेषणात्मक हुए और सामाजिक एवं राजनैतिक परीस्थितियों पर कम ध्यान दिए।

प्रक्रिया सिद्धान्तवादी जिरोम ब्रूनर (1973) संज्ञानात्मक विकास को आंशिक रूप से आन्तरिक प्रदशनों के बढ़ते हुए विश्वास के रूप में देखते हैं। ब्रूनर के अनुसार शिशुओं के पास बुद्धि का उच्चतम् क्रिया उन्नमुखित रूप होता है। वे किसी वस्तु को केवल उस स्तर तक जानते है जिससे कि वे उस पर क्रिया कर सकें। नवजात शिशु किसी वस्तु को उसके प्रत्यक्षण द्वारा जानते हैं और परिणामस्वरूप वे वस्तुओं घटनाओं के सुस्पष्ट प्रत्यक्षणात्मक विशेषताओं द्वारा दृढ़तापूर्वक प्रभावित होते हैं। बड़े बच्चे व किशोर वस्तुओं को अन्तरतः तथा प्रतिमानों के द्वारा जानते हैं। इसका अर्थ यह है कि वे इन मानसिक प्रतिमाओं को दिमाग (बुद्धि) (Mind) में रखने हेतु वस्तुओं एवं क्रियाओं के आन्तरिक प्रतिमाओं एवं प्रदर्शनों को विभाजित करने में सक्षम होते हैं। ब्रूनर बालक की बढ़ती हुई क्षमताएं वातावरण से कैसे प्रभावित होती है विशेषतया-प्रोत्साहन एवं दण्ड, जिसे लोग विशेष बुद्धि को विशेष प्रकार से प्रयोग करने हेतु प्राप्त करते है, मे रूचि रखते हैं। ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास की तीन अवस्थाओं को बताया।

प्रथम अवस्था को उन्होंने 'सक्रियता' (Enactive) नाम दिया। सक्रियता एक ऐसी अवस्था है, जिसमें एक व्यक्ति भौतिक वस्तुओं पर क्रिया करके एवं उन क्रियाओं के उत्पादों के द्वारा वातावरण को समझता है। द्वितीय अवस्था '' दृश्य प्रतिमा (Iconic) " कहलायी जिसमें प्रतिमानों एवं चित्रों के प्रयोग से अधिगम होता है।

अन्तिम अवस्था ''सांकेतिक" (Symbotic) अवस्था थी जिसमें अधिगमकर्त्ता अमूर्त पदों में चिन्तन करने की क्षमता का विकास करता है। इस त्रि-अवस्थीय मत के आधार पर ब्रूनर ने मूर्त, चित्रात्मक और फिर सांकेतिक क्रियाओं जो कि अधिक प्रभावी अधिगम को अग्रसर होगी, के संगठनात्मक प्रयोग की अनुशंसा की।

ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त पियाजे के सिद्धान्त से अत्यधिक साम्य रखता है परन्तु कुछ महत्वपूर्ण एवं स्पष्टतया मूल अन्तर भी हैं। पियाजे का कार्य 'क्या होता है' की व्याख्या से अत्याधिक संबंधित है। वे उस क्रिया विधि पर विचार करते हैं जिसमें मुख्यतः व्याख्याओं को स्पष्ट करने के क्रम में बुद्धि का विकास होता है। दूसरी तरफ ब्रूनर संज्ञानात्मक विकास ''कैसे" और ''क्यों" होता है के प्रश्नों से अपने आप को ज्यादा संबंधित रखते है। जबकि पियाजे वयस्कता प्रक्रियाओं को सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण कारकों और संस्कृति एवं शिक्षा को परिष्कारित कारकों के रूप में महत्व देते हैं। ब्रूनर इन अन्तिम दो को ज्यादा महत्व देते है। वे पियाजे के इस विचार से असहमत है कि महत्वपूर्ण अभिप्रेरक या बौद्धिक विकास में प्रभाव, जैविक हैं और दावा करते हैं कि यदि जैविक विकास व्यक्ति को अधिक सांमजस्यपूर्ण व्यवहार की ओर 'धकेलता' है तो वातावरण उसी दिशा में ''खिचता'' है। यहाँ ब्रूनर जोर दे रहे है कि बालक का अध्ययन केवल उसके अनुभव एवं वातावरण के परीक्षण के बिना एक अपूर्ण चित्र देने की सीमा है। जहाँ पियाजे केवल यह कहते है कि संज्ञानात्मक विकास व्यक्ति और वातावरण के मध्य एक अन्तःक्रिया महत्व देत है वहीं ब्रूनर इस

बिन्दु पर जोर देते हैं और महत्व देते हैं कि बालक का वातावरण ध्वनिक्षेपक की तरह हो जिससे बालक की क्षमताओं का विस्तार हो।

जबकि पियाजे की ही तरह ब्रूनर का विश्वास है कि विकासशील बालक अपने विकास में स्वयं सक्रिय भागीदारी निभाता है यद्यपि कि परिवार, शैक्षिक तन्त्र एवं बालक के मित्र भी। उदाहरण के लिए विकास को महत्व देने हेतु बालक अपनी स्वयं की दुनिया की समझ बनाता है। प्रत्यक्षण एक सक्रिय, संरचनात्मक प्रक्रिया है, हम कच्चे (अपरिष्कृत) संवेदी सूचनाओं से अनुमान लगाते है तथा निर्णय लेते है कि वास्तव में वहां क्या है। ठीक उसी तरह हम उद्दीपकों की प्रक्रिया करते है और हम अपनी स्वयं के निष्कर्ष बनाते है, इसलिए ब्रूनर विचार करते है कि हम अवश्य ही समझने और अपने वातावरण से अधिक सफलता पूर्वक अन्तःक्रिया करने के क्रम में अपनी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास करते हैं।

अपने वातावरण पर नियन्त्रण के योग्य होने के लिए हमें इसकी भविष्यवाणी करना सीखना होगा, अतः हमें अपने अनुभवों को प्रदर्शित करना और अन्तरतः संगठन करना सीखना होगा। जो कि पूर्णतः जो वाह्य वास्तविकतायें बनाते है उसके मानसिक प्रदर्शनों के प्रकारों (प्रतीकों) पर निर्भर करता है।

हम अपने वातावरण को प्रदर्शित करने की क्षमता का अन्तरतः विकास किस प्रकार से करते है और भविष्य में जो कुछ घटित होगा उसकी भविष्यवाणी करने में इन सूचनाओं का प्रयोग कैसे करते है, में ब्रूनर रूचि लेते रहे। इन्होंने तीन प्रकार के प्रदर्शनों को चिन्हित किया जो कि उनके विश्वास में संज्ञानात्मक विकास के आधार है। जिस क्रम में ये मनुष्य में प्रकट होते है उसी क्रम में ये व्याख्यायित होंगे। इनकी तुलना पियाजे के विकासात्मक अवस्थाओं से किया जाना चाहिए। पियाजे की प्रस्तावित अवस्थाएं, जैविक रूप से बालक स्वयं जितना कार्य करने की क्षमता रखता हैं, की व्याख्या करती हैं। जबकि ब्रूनर के प्रदर्शन के प्रकार व्यक्ति के वातावरण का उसका निष्कर्षण तथा भविष्यवाणी में होने वाले परिवर्तनों से अधिक सम्बन्धित हैं।

सक्रियता प्रदर्शन (Enactive Representation) बालक में प्रकट होने वाले प्रथम प्रकार के प्रदर्शन को ब्रूनर ने ‘सक्रियताप्रदर्शन’ (Enactive representations) का नाम दिया है। ‘चलन‘ या ‘पेशीय स्मरण‘ के लिए यह प्रथम प्रकार उपयोगी चिन्तन का तरीका है। भूत-अनुभवों को सांकेतिक रूप में संग्रहित नहीं किया जा सकता है। एक शिशु अपने भूत-अनुभवों को केवल पेशीय ढांचा (Motor Pattern) के रूप में व्यक्त (Represent) कर सकता है।

It might, for example, at one time have a string of rattling beads strung across its cot, and be able to make them rattle by hitting them with its hands. You might notice that when they are taken away it continues to move its hands as if

to hit them. It seems to show that it has some form of internal representations of its experience with the beads, and indicates this in motor form by repeating the motor patterns associated with them. No images of the beads need to be involved; this earliest form of internal representation does not seem to require the use of visual images.

प्रतिमा प्रदर्शन (Iconic Representations) दूसरे प्रकार के प्रकट होने वाले प्रदर्शन को प्रतिमा प्रदर्शन (Iconic Representations)नाम दिया गया। प्रतिमा का अंग्रेजी पर्याय आइकॉनिक (Iconic) है जो कि आइकन शब्द से बना है जिसका अर्थ है समानता या साम्य। ज्ञानेन्द्रियों तक पहुंचने वाले उद्दीपकों के विश्वसनीय प्रदर्शन के रूप में अब बालक दृश्य-श्रवण या स्पर्श-प्रतिमाओं को याद करने की क्षमता का विकास करता है। यह विधि वातावरण के बारे में सूचनाओं के संग्रहित करने की सबसे अच्छी विधि है। वे बच्चे जो प्रतिमा प्रदर्शन (Imaging)का प्रयोग करते हैं, चित्र व नामांकन के सुस्पष्ट विश्वसनीय प्रदर्शन बनाने में और आवश्यकतानुसार प्रत्यास्मरित करने में सक्षम होते हैं। दूसरी तरफ वे बच्चे जो प्रमिता नहीं बना पाते या प्रतिमा बनाने में बहुत कमजोर होते हैं नामांकन को याद करने में तथा इसे सही चित्र में स्थापित (Fit) करने में कठिनाई महसूस करते है क्योंकि शब्द अपने आप में किंचित इंगित नही कर पाते कि वे किस चित्र में स्थापित होंगे। प्रतिमा-कल्पना इतनी अपरिवर्तनीय (कठोर) है कि यह बालक को प्रायः वातावरण के भागों के केवल विशेष चित्रों को सीखने के लिए स्वीकृत करती है और वस्तुओं में निहित साम्यता को निष्कर्षित करना कठिन बना देती है। अतः प्रतिमा कल्पना करने वाले बच्चों को प्रतिमा-कल्पना न करने वाले बच्चों की अपेक्षा वस्तुओं का वर्गीकरण करने में अधिक कठिनाई होती है।

सांकेतिक प्रदर्शन (Symbolic Representation)सक्रियता (Enactive) तथा प्रतिमा (Iconic) दोनों प्रदर्शनों के साथ यह समस्या है कि ये सापेक्ष तथा कठोर (अपरिवर्तनीय) हैं, सक्रियता प्रदर्शन बालक को केवल पेशीय तरीका के रूप में वातावरण को निष्कार्षित करने में सक्षम बनाता है, जबकि प्रतिमा प्रदर्शन उसे केवल चित्र के रूप में वातावरण को प्रदर्शित करने में सक्षम बनाता है। चूंकि वातावरण निरन्तर परिवर्तनशील है, इसलिए केवल ये दोनों रूप सक्रियता तथा प्रतिमा, वातावरण की सभी सूचनाओं को प्रभावी रूप में कूट-कृत नहीं कर सकते एवं भविष्यवावणी करने में सक्षम नहीं हो सकते हैं।

सांकेतिक प्रदर्शन जैसा कि नाम से स्पष्ट है समस्या का समाधान प्रतीकों के प्रयोग द्वारा करते हैं। एक प्रतीक कुछ अतिरिक्त को प्रदर्शित करता है, उदाहरण के लिए दो व्यक्तियों का हाथ मिलाना यह प्रदर्शित करता है कि वे एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगें (हम प्रायः दाहिने हाथ को मिलाते है जिससे युद्ध की स्थिति में हथियार उठाये जाते है।) अतः ब्रूनर का विश्वास है कि मानव भाषा-शब्द एवं वाक्यों के रूप में प्रतीकोंका एक क्रम, जिससे इस निरन्तर परिर्वतनशील वातावरण की सूचनाओं

को प्रदर्शित एवं संग्रहित किया जा सकता है। 'सब्जीयाँ' शब्द कागज पर टंकित एक शब्द विन्यास मात्र हो सकता है किन्तु जब आप इसे पढते हैं तथा इसके अर्थ को निष्कर्षित करते है तो यह एक बड़ी मात्रा की सूचना का प्रत्यास्मरण करता है। वास्तव में ब्रूनर सांकेतिक प्रदर्शन के विकास में भाषा को एक महत्वपूर्ण सहायक उपकरण मानते हैं क्योंकि भाषा वर्गीकरण एवं क्रम निश्चित करने में हमें सक्षम बनाती है।ब्रूनर द्वारा प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का आरेखी प्रदर्शन यहाँ इस प्रकार से किया जा रहा है कि इसके निश्चित क्रम की सही कल्पना की जा सके।

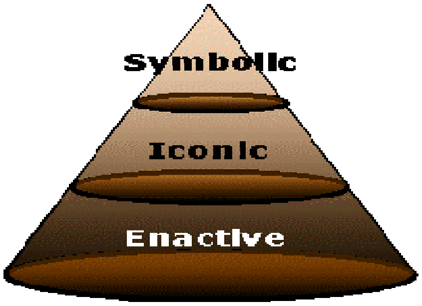

चित्र.1- संज्ञानात्मक विकास की तीन अवस्थाये (ब्रूनर)

- सक्रियता **(Enactive)**जहां एक व्यक्ति वस्तुओं पर संक्रिया के द्वारा वातावरण के बारे में सीखता है।
- प्रतिमा **(Iconic)**जहां अधिगम प्रतिमानों एवं प्रतिमाओं के द्वारा होता है।
- सांकेतिक **(Symbolic)**जो अमूर्त रूप में चिन्तन करने की क्षमता की व्याख्या करता है।

पियाजे एवं ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्तों में कुछ उभयनिष्ठ कारक हैं। अवस्थाओं के पदों में दोनों सिद्धान्तों के लिए तुलनात्मक तालिका निम्नवत दी गयी है।

पियाजे एवं ब्रूनर के सिद्धान्त के तुलान्तमक स्तर को प्रदर्शित करती तालिका:-

पियाजे के सिद्धान्त की अवस्थाये	**ब्रूनर के सिद्धान्त की अवस्थायें**
संवेदी पेशीय अवस्था	सक्रियता प्रदर्शन
प्राक्संक्रियात्मक अवस्था	प्रतिमा प्रदर्शन
ठोस संक्रिया की अवस्था	
औपचारिक संक्रिया की अवस्था	सांकेतिक प्रदर्शन

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. जिरोम ब्रूनर ने 1960 के दशक में _____________ का सिद्धान्त विकसित किया।
8. ब्रूनर की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के नाम लिखिए।
9. सक्रियता अवस्था क्या है?
10. ------------------- अवस्था में प्रतिमानों एवं चित्रों के प्रयोग से अधिगम होता है।
11. बालक में प्रकट होने वाले प्रथम प्रकार के प्रदर्शन को ब्रूनर ने ---------------------------- का नाम दिया है।

6.6 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का शैक्षिक निहितार्थ

जिरोम ब्रूनर ने शिक्षा की प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या सिद्धान्त के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनका कार्य औपचारिक, निरौपचारिक, अनौपचारिक शिक्षकों तथा उन सभी जीवन पर्यन्त अधिगम (LLL) से सम्बन्धित लोगों के लिए महत्वपूर्ण पाठों पर प्रकाश डालता है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के संगठन एवं इसे जारी रखने हेतु ब्रूनर का सिद्धान्त बहुत ही सहायक है। ब्रूनर सिद्धान्त के पदानुक्रमानुसार प्रभावी अधिगम-उत्पाद हेतु अधिगम अनुभवों को सक्रियता (Enactive) प्रतिमा (Iconic) सांकेतिक (Symbolic) क्रम में रखा जाना चाहिए। ठीक यही गुणार्थ, एक प्राचीन चीनी लोकोत्ति से भी संप्रेषित होती है।

‘‘ जो मैं सुनता हॅू, भूल जाता हॅू, (सांकेतिक प्रदर्शन)

जो मैं देखता हॅू, याद हो जाती है, (प्रतिमा प्रदर्शन)

जिसे मैं करता हॅू, समझ जाता हॅू।‘‘ (सक्रियता प्रदर्शन)

अतः शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में किसी भी अधिगम-पाठ का उचित तरीके से समझने हेतु ‘‘करके सीखना (Learning by doing) ‘‘विधि को प्राथमिकता देनी चाहिए।

यह एक स्थापित तथ्य भी है कि ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को, किये गये कार्य द्वारा सीखना (सक्रियता अधिगम माध्यम) दूसरे सीखने के तरीकों की तुलना में अधिक स्थायी होता है, को बल प्रदान करता है। लोगों को 10 प्रतिशत जो वे पढ़ते हैं, 20 प्रतिशत जो वे सुनते हैं, 30 प्रतिशत जो वे देखते है, 50 प्रतिशत जो वे देखते और सुनते हैं, 70 प्रतिशत जो वे कहते हैं या लिखित है तथा 90 प्रतिशत वे किसी कार्य को करके कहते है, याद रहता है। यह प्रतिशतता चित्र-2 में चित्रित की गयी है। यह अनुसंधान परिणाम शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की योजना बनाने व उसके क्रियान्वयन में बहुत सहायक होगी जो कि ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को बल प्रदान करती है।

लोग सक्षम हैं **लोग समान्यतया याद..........**

(अधिगम क्रिया कलाप) **(अधिगम उत्पाद)**

पढने का 10%

सुनने का 20%

देखने का 30%

देखने व सुनने का 50%

कहने (बोलने) व लिखने का 70%

करने का 90%

परिभाषित करना

सूची बनाना व्याख्या करना

वर्णन करना प्रदर्शित /व्यक्त करना

प्रयोग में लाना

अभ्यास

विश्लेषण करना

परिभाषित करना

सृजन करना

मूल्यांकन करना

चित्र.2 अधिगम के माध्यम से उसकी प्रभाविता को प्रदर्शित करता चित्र

एडगर डेल द्वारा विभाजित ''अनुभव शंकु'' भी ब्रूनर के सिद्धान्त का ही उत्पाद है। मानसिक प्रदर्शनों की प्रकृति के अनुसार एडगर डेल ने शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया परिस्थितियों में प्रयोग आने वाली दृश्य-श्रव्य सामग्रीयों को वर्गीकृत किया। जब डेल ने अधिगम और शिक्षण विधियों पर अनुसंधान किया तो पाया कि हम जो प्राप्त करते हैं उनमें से ज्यादातर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनुभवों के सत्य होते हैं। इन्हें 'सूची स्तम्भ (Pyramid) या 'चित्रीय यंत्र' के रूप में संक्षिप्त किया जा सकता है जिसे डेल ने ''अधिगम शंकु''कहा। उन्होंने कहा कि ''शंकु-यंत्र''अधिगम अनुभव का एक दृश्य-रूपक है जिसमें विभिन्न प्रकार के दृश्य-श्रव्य सामग्रीयाँ प्रत्यक्ष अनुभव से शुरू करके अमूर्तता के क्रम में व्यवस्थित होती हैं।

डेल की पुस्तक ''आडियो विजुवल मेथड्स इन टीचिंग''-1957 मूल नामांकन के दस वर्ग (अनुभवों के माध्यम) प्रत्यक्ष (Direct), सोद्देश्य अनुभव (Purposeful Experiences), आविष्कारित अनुभव (Contrived Experiences) नाटकीय सहभागिता (Dramatic Participation), प्रदर्शन (Demonstration), क्षेत्र भ्रमण (Field Trips), प्रदर्शनी चल चित्र (Motion Picture), रेडियो, ध्वन्यालेखन (Recordings) स्थिर चित्र, दृश्य संकेत (Visual Symbol) तथा शाब्दिक संकेत (Verbal Symbols) हैं। ये सभी ब्रूनर द्वारा अन्वेषित मानसिक प्रदर्शनों के उप वर्ग हैं। मध्यस्थ

अधिगम अनुभव के परिवर्तित प्रकारों के लिए डेल का वर्गीकरण तंत्र जो कि प्रभावी शिक्षण हेतु बहुत सहायक है, यहाँ प्रस्तुत है।

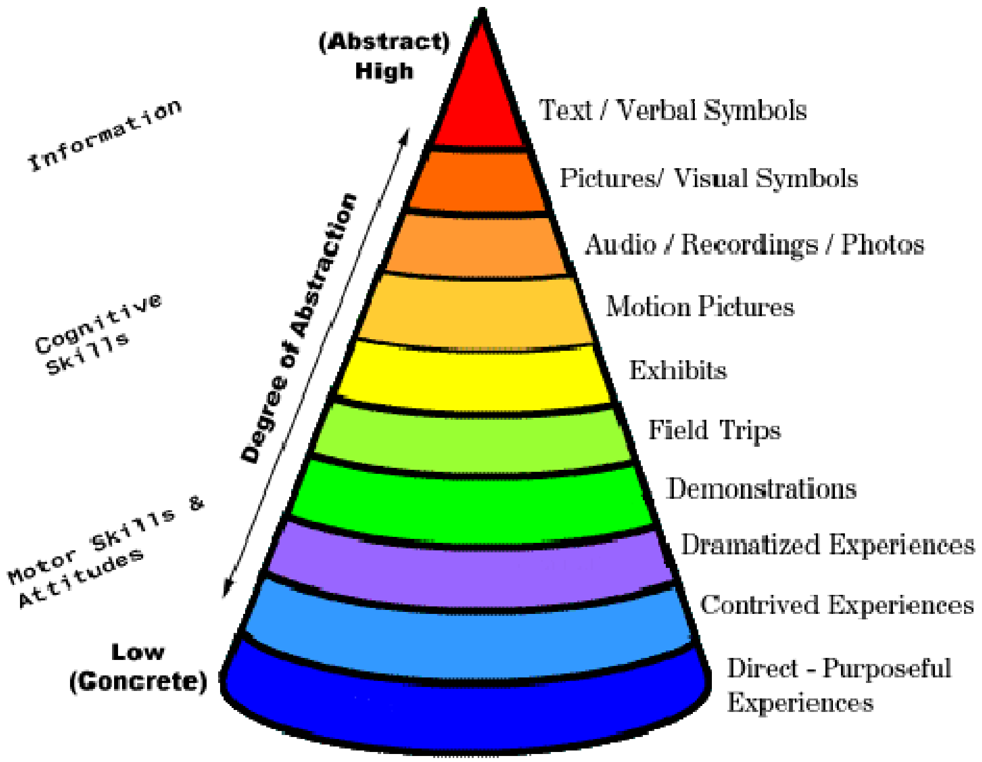

Graphic courtesy of Edward L. Counts, Jr.

चित्र.3 अध्यस्थ अधिगम अनुभव के परिवर्तित प्रकारों के लिए डेल का वर्गीकरण

कुण्डली पाठ्यचर्या Spiral Curriculum

शिक्षण-अधिगम की प्रभावशीलता बढ़ाने हेतु पाठ्यचर्या संगठन के माध्यम इसके बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू हैं। इसके लिए ब्रूनर ने 'कुण्डली पाठ्यचर्या का संप्रत्यय दिया। कुण्डली पाठ्यचर्या से तात्पर्य विचारों को बार-बार दुहराने का विचार, उस पर निर्माण और पूर्ण समझ तथा निपुणता के स्तर के विस्तार से है।'कुण्डली पाठ्यचर्या' -एक पाठ्यचर्या है जैसा कि यह विकास करती है, बारम्बार इस मूल विचार को दुहराया जाना चाहिए, उस पर तब तक निर्माण करती है जबतक कि छात्र पढ़े गये पाठ के औपचारिक यंत्र के पूर्णरूपेण सीख नहीं लेता है। अतः एक विषय की पाठ्यचर्या उस विषय को संरचना प्रदान करने वाले निहित सिद्धान्तों को प्राप्त कर सकने वाले अत्याधिक मूल समझ द्वारा ज्ञात होनी चाहिए (ब्रूनर, 1960) उत्तरोत्तर जटिल स्तरों पर किसी विषय

के सिद्धान्त को सरल स्तर से शुरू करना और तत्पश्चात अधिक जटिल स्तर तक प्रकरणों को दुहराना समझा जा सकता है।

ब्रूनर ने अपनी दो पुस्तकों- '' दि प्रासेस ऑफ एजूकेशनः टूवर्डस ए थियरी ऑफ इन्सट्रक्सन (1966)'' तथा ''दि रेलिवेन्स आफ एजूकेशन (1971)'' में अपने विकसित विचारों के उन तरीकों के बारे में वातावरण के मानसिक प्रतिमानों, जिन्हें शिक्षार्थी निर्मित करते हैं, उसकी व्याख्या करते है तथा स्थानान्तरण करते है को प्रभावित करते है को सम्मुख रखा। अनुदेशनात्मक कौशल जे0एस0ब्रूनर का मुख्य योगदान है। इसलिए शिक्षा प्रक्रिया की प्रभावी उत्पादकता हेत ब्रूनर का सिद्धान्त एक विशेष अध्याय ही है। किसी को अनुदेशित करना....... ध्यान देने योग्य परिणामों को प्राप्त करने का विषय नहीं है। इसके बावजूद यह ज्ञान की स्थापना को सम्भव बनाने वाली प्रक्रिया में सहभागिता करना सीखाता है। हम किसी विषय को छोटी-मोटी जीवन्त पुस्तकालय बनाने हेतु नहीं सीखाते अपितु इसलिए सीखाते है कि एक छात्र गणितीय तरीके से चिन्तन करें, इतिहासकारों की तरह किसी मुद्दो पर विचार करें और ज्ञान-प्राप्त करने की प्रक्रिया में भाग ले । जानना एक प्रक्रिया है न कि उत्पाद। (196672)

ब्रूनर के सिद्धान्त का कूटकृत तन्त्र, यह विचार कि लोग वातावरण (दुनिया) को अधिकाशतः साम्यता व अन्तर के पदों में निष्कर्षित करते है, प्रस्तुत करता है। यह संप्रत्यय उन शिक्षकों के लिए बहुत सहायक है, जो संप्रत्ययीकरण के सही गतिकी को जानना चाहते हैं।

ब्रूनर की मान्यता है कि प्रत्यक्षणा, सप्रत्ययीकरण, अधिगम, निर्णय-लेना तथा निष्कर्षण ये सभी वर्गीकरण को सम्मिलित करते है। शिक्षकों को अपने अनुदेशन के दौरान वर्गीकरण की प्रक्रिया पर केन्द्रित होना चाहिए जिससे कि संज्ञानात्मक प्रक्रिया प्रभावी बने।

ब्रूनर का विश्वास है कि छात्रों की संज्ञानात्मक कौशलों का विकास करने के लिए विचारों के सूझपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक चिन्तन, दोनों को प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

शिक्षण और अधिगम के लिए ब्रूनर का निहित सिद्धान्त जो कि मूर्त, चित्रात्मक तथा फिर सांकेतिक क्रियाकलापों का एक संयोग है, अधिक प्रभावी अधिगम की ओर ले जाता है। यह मूर्त अनुभवों से शुरू होकर चित्रों तक फिर अन्ततः सांकेतिक प्रदर्शनों का प्रयोग करने का एक क्रम (श्रेणी) है।

पियाजे के विपरीत ब्रूनर का प्रस्ताव यह है कि शिक्षकों को छात्रों के नये स्कीमा (Schemas) बनाने के सहायतार्थ सक्रियतापूर्वक हस्तक्षेप करना चाहिए। शिक्षकों को केवल तथ्य ही नही अपितु संरचना, अभिदिशा, परामर्श तथा अवलम्ब प्रदान करना चाहिए।

वाइगास्त्की की तरह ही ब्रूनर भी शिक्षकों द्वारा प्रदत्त स्कैफोल्डिंग (Scaffolding) या अवलम्ब के प्रयोग को प्रस्तावित करते है। इस प्रकार का अवलम्ब बालक को स्वतन्त्रता की कोटि (Degree of

Freedom) कम करना या कार्य का सरलीकरण, आभिदिशा अनुरक्षण (Direction Maintenance) या बालक की अभिप्रेरणा तथा प्रोत्साहन (Motivation & Encouragement)क्रान्तिक विशेषता का चिन्हिकरण या संम्बन्धित भागों/त्रुटियों की विशिष्टता और प्रदर्शन या अनुकृति (Imitation)के लिए प्रतिमान प्रदान करने के द्वारा समझ के उच्च स्तरों तक पहुॅचाने की स्वीकृति प्रदान करता है।

ब्रूनर एक विषय में सक्रिय समस्या समाधान प्रक्रिया के द्वारा श्रेणी पर जोर देते है। ब्रूनर कहते हैं कि शिक्षक सिर्फ तथ्यों को प्रस्तुत करने के बजाय निहित सिद्धान्तों एवं संप्रत्ययों को प्रस्तुत करते हैं। यह अधिगकत्ताओं को प्रदत्त सूचनाओं के परे जाने एवं स्वयं के विचार विकसित करने में सक्षम बनाता है। अतः शिक्षकों को अधिगमकर्त्ताओं में विषय के अन्दर एवं विषयों के मध्य कड़ियॉ (Links) बनाने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

12. ब्रूनर की दो पुस्तकों के नाम लिखिए

6.7 सारांश

जिरोम एस0 ब्रूनर शिक्षा पर अत्यधिक प्रभाव रखते रहे हैं। 1960 के दशक में ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त विकसित किया। उनका यह उपागम (पियाजे के विपरीत) वातावरणीय एवं अनुभवजन्य करकों को देखता है। ब्रूनर ने सुझाव दिया कि बुद्धि का प्रयोग जैसे -2 होता है बौद्धिक क्षमता चरण-दर-चरण परिवर्तनों के द्वारा स्तरों में विकसित होती हैं। ब्रूनर के बौद्धिक विकास के सिद्धान्त के तीन चरण निम्नवत है -

- सक्रियता (Enactive) जहॉ एक व्यक्ति वस्तुओं पर संक्रिया के द्वारा दुनिया के बारे में सीखता है।
- प्रतिमा (Iconic) जहॉ प्रतिमानों एवं चित्रों के माध्यम से अधिगम होता है।
- सांकतिक (Symbolic)जो मूर्त रूप में चिन्तन करने की क्षमता की व्याख्या करता है।

परिणामस्वरूप, जे0एस0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की विशेषताओं को निम्नवत गिनाया जा सकता है।

- जिरोम ब्रूनर सामाजिक संदर्भ में मस्तिष्क में ज्ञान की संरचना के रूप में संज्ञानात्मक विकास पर जोर देते है।

- ब्रूनर के प्रेक्षणानुसार इस दुनिया के ज्ञान को संरचित करने की प्रक्रिया एकान्त में नहीं होती अपितु सामाजिक संदर्भ में होती है।
- बालक एक सामाजिक प्राणी है और, इस सामाजिक जीवन द्वारा वह अनुभवों के निष्कर्षीकरण के लिए एक ढ़ाँचा तैयार करता है।
- ब्रूनर के अनुसार सभी अधिगमकर्ताओं के लिए कोई एक अद्वितीय क्रम नहीं है और किसी विशेष अवस्था में अनुकूल वातावरण, भूत-अनुभव, विकास की अवस्था, पदार्थ की प्रकृति और वैयक्तिक विभिन्ता को सम्मिलित करते हुए विभिन्न करकों पर निर्भर करेगी।
- प्रभावी पाठ्यचर्या बच्चों के लिए बहुत से अवसर एवं विकल्प प्रदान करती है और इसलिए संज्ञानात्मक विकास में सहायक है।
- बहु-उम्र व्यवस्था में बच्चों को अपने अधिगम- अनुभवों को चुनने का अवसर मिलता है।
- इसके अतिरिक्त , बहु-उम्र व्यवस्था में प्रयुक्त विभिन्न शिक्षण विधियॉ बच्चों को कई तरीकों से ज्ञान प्राप्त करने के अवसर प्रदान करती हैं।

ब्रूनर का सिद्धान्त पियाजे के सिद्धान्त से बहुत साम्यता रखता है। पियाजे की तरह ब्रूनर का सिद्धान्त भी बच्चे के शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में अधिक प्रयोज्य हैं। ब्रूनर के अनुसार शिक्षकों को बच्चे के शैक्षिक उद्देश्यों के लिए उसके आन्तरिक कल्पना विकास का उपयोग करना चाहिए। बच्चे को यह मानसिक कल्पना उसे उसके अनुभवों के संरक्षण एवं नये अनुभवों के साथ अग्रसर हाने में सक्षम बनायेगी। इस तरह, यह सिद्धान्त शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पर विशाल प्रभाव छोड़ता है। ब्रूनर के सिद्धान्त के व्यावहारिक पहलू को जानने हेतु इसके शैक्षिक निहितार्थ की चर्चा विस्तृत रूप में की गयी।

6.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. वर्गीकरण
2. ब्रूनर के प्रस्तुतीकरण के तीन तरीके निम्न हैं-
    i. सक्रियता प्रस्तुतीकरण (क्रिया-आधारित)
    ii. दृश्य प्रतिमा प्रस्तुतीकरण (प्रतिमा- आधारित)
    iii. सांकेतिक प्रस्तुतीकरण (भाषा- आधारित)
3. संज्ञानात्मक विकास
4. मस्तिष्क सूचनाओं का सरलीकरण कैसे करता है जो कि लघु-अवधि स्मृति में प्रवेश करता है , वर्गीकरण है।

5. सूचनाओं
6. ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम हैं- दृश्य, शब्द तथा प्रतीक।
7. संज्ञानात्मक विकास
8. ब्रूनर की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के नाम हैं-
   i. सक्रियता अवस्था (Enactive)
   ii. दृश्य प्रतिमा अवस्था (Iconic)
   iii. सांकेतिक अवस्था (Symbotic)
9. सक्रियता अवस्था एक ऐसी अवस्था है, जिसमें एक व्यक्ति भौतिक वस्तुओं पर क्रिया करके एवं उन क्रियाओं के उत्पादों के द्वारा वातावरण को समझता है।
10. दृश्य प्रतिमा
11. सक्रियताप्रदर्शन
12. ब्रूनर की दो पुस्तकों के नाम हैं –
    i. दि प्रासेस ऑफ एजूकेशनः टूवर्डस ए थियरी ऑफ इन्सट्रक्सन
    ii. दि रेलिवेन्स आफ एजूकेशन

6.9 सन्दर्भग्रन्थ

- ब्रूनर , जे0 (1960). दी प्रॉसेकस ऑफ एजूकेशन कैम्ब्रीज, एमएः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस हार्ले, 1995.
- ब्रूनर , जे0 एस0 (1966). टूवर्डस् अ थीयरी ऑफ इन्स्ट्रक्शन, कैम्ब्रीज, मास0 वेल्काप्प प्रेस 176 + x ग पेजेज.
- ब्रूनर , जे0 एस0 (1971). दी रेलीवेन्स ऑफ एजूकेशन , न्यूयार्कः नार्टन,
- ब्रूनर , जे0 (1996). दी कल्चर ऑफ एजूकेशन, कैम्ब्रीज, मास0ः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 224 + xvi पेजेज.
- ब्रूनर , जे0 (1973). गोइंग बियॉन्ड दी इन्फार्मेशन गीवेन, न्यूयार्कः नार्टन.
- ब्रूनर , जे0 (1983). चाइल्ड्स टॉक: लर्निंग टू यूस लैंग्वेज, न्यूर्याक: नार्टन.
- ब्रूनर , जे0 (1986). एक्चुअल माइन्ड्स, पॉसिबल वर्ल्ड्स, कैम्ब्रीज, एम एः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

6.10निबंधात्मक प्रश्न

1. संज्ञान' से आप क्या समझते है ? संज्ञानात्मक प्रक्रिया के पाँच उदाहरण लिखिए।

2. आप यह कैसे कह सकते है कि संज्ञान में परिवर्तन मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों होता है? उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट कीजिए।
3. अधिगम और बौद्धिक विकास में वर्गीकरण कैसे सहायक है?
4. आप मानसिक प्रदर्शन से क्या समझते है? सभी तीन प्रकार के मानसिक प्रदर्शनों केलिए उपर्युक्त उदाहरण दीजिए।
5. ज्ञान की क्रियात्मक क्षमता की वृद्धि में खोज अधिगम कैसे सहायक है?
6. क्या आप इस कथन से सहमत है कि ''अधिगम प्रक्रिया अनुभवों की पुनर्रचना है? सोदाहण व्याख्या कीजिए।
7. सांकेतिक अवस्था (जो केवल सक्रियता एवं प्रतिमा अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात आती है) को प्राप्त करना संज्ञानात्मक विकास का उच्चतम स्तर है, को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
8. एक शिक्षक या अनुदेशक रूप में आप ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को कैसे प्रयोग कर सकेंगें?

इकाई-7 सीखना या अधिगम: प्रत्यय , अधिगम के सिद्धांत

Learning: Concept, Theories of Learning

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 अधिगम का अर्थ एवं परिभाषा
7.4 अधिगम के सिद्धान्त
7.5 थार्नडाईक का (संबन्धवाद) प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त
7.6 पावलव का शास्त्रीय अनुबन्ध का सिद्धान्त
7.7 स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त
7.8 शास्त्रीय एवं सक्रिय अनुबंधन में अन्तर
7.9 सारांश
7.10 शब्दावली
7.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
7.12 सन्दर्भग्रन्थ
7.13 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

सीखना या अधिगम एक बहुत ही व्यापक एवं महत्वपूर्ण शब्द है। मानव के प्रत्येक क्षेत्र में सीखना जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक पाया जाता है। दैनिक जीवन में सीखने के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। सीखना मनुष्य की एक जन्मजात प्रकृति है।प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में नये अनुभवों को एकत्र करता रहता है, ये नवीना अनुभव, व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसलिए यह अनुभव तथा इनका उपयोग ही सिखना या अधिगम करना कहलाता है। इस इकाई में आप अधिगम के विभिन्न सिद्धांतों का अध्धयन करेंगे तथा उनके शैक्षिक निहितार्थों को जान पायेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

1. अधिगम का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगें।
2. अधिगम की परिभाषा दे पायेंगें।
3. अधिगम की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगें।
4. थार्नडाईक के सीखने के सिद्धान्त का वर्णन कर पायेंगें।
5. अधिगम के सिद्धान्तों की चर्चा कर पायेंगें।
6. पावलोव के शास्त्रीय अनुबन्धन के सिद्धान्त की व्याख्या कर पायेंगें।
7. स्किनर के क्रिया अनुबंधन के सिद्धान्त का वर्णन कर पायेंगें।
8. विभिन्न सिद्धान्तों के शैक्षिक निहितार्थ लिख पायेंगें।

7.3 अधिगम का अर्थ एवं परिभाषा Meaning and Definition ofLearning

अधिगम या सीखना एक बहुत ही सामान्य और आम प्रचलित प्रक्रिया है। जन्म के तुरन्त बाद से ही व्यक्ति सीखना प्रारम्भ कर देता है और फिर जीवनपर्यन्त कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है।

सामान्य अर्थ में 'सीखना' व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। (Learning refers to change in behaviour) परन्तु सभी तरह के व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना या अधिगम नहीं कहा जा सकता।

वुडवर्थ के अनुसार,"नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया, सीखने की प्रक्रिया है। "

"The process of acquiring new knowledge and new responses in the process of learning." **-Woodworth**

गेट्स एवं अन्य के अनुसार, "अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन लाना ही अधिगम या सीखना है।"

"Learning is the modification of behavior through experience and training."

क्रो एवं क्रो के अनुसार , "सीखना या अधिगम आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।"

"Learning is the acquisition of habits knowledge and attitudes."

क्रॉनवेक के अनुसार, “सीखना या अधिगम अनुभव के परिणाम स्वरूप व्यवहार में परिवर्तन द्वारा व्यक्त होता है।”

“Learning is shown by a change in behavior as a result of experience.”

मॉर्गन और गिलीलैण्ड के अनुसार, “अधिगम या सीखना, अनुभव के परिणाम स्वरूप प्राणी के व्यवहार में कुछ परिमार्जन है, जो कम से कम कुछ समय के लिए प्राणी द्वारा धारण किया जाता है।”

“Learning is some modification in the behaviour of the organism as a result of experience which is retained for at least ascertain period of time.”

जी.डी. बोआज के अनुसार, “सीखना या अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान एवं दृष्टिकोण अर्जित करता है जो कि सामान्य जीवन की माँगोंकोपूरा करने के लिए आवश्यक है।”

“Learning is the process by which the individual acquires various habits, knowledge and attitudes that are necessary to meet the demand of life in general.”

हिलगार्ड के अनुसार,“सीखना या अधिगम एक प्रक्रम है जिससे प्रतिफल परिस्थिति से प्रतिक्रिया के द्वारा कोई क्रिया आरम्भ होती है या परिवर्तित होती है, बशर्ते कि क्रिया में परिवर्तन की विशेषताओं को जन्मजात प्रवृत्तियों,परिपक्कता और प्राणी की अस्थायी अवस्थाओं के आधार पर न समझाया जा सकता हो।”

“Learning is the process by which an activity originates or is changed through reacting to an encountered situation, provided that the characteristics of the change in activity cannot be explained on the basis of native tendencies, maturation or temporary status of organism.”

ब्लेयर,जोन्स और सिम्पसन के अनुसार,“व्यवहार में कोई परिवर्तन जो अनुभवों का परिणाम है और जिसके फलस्वरूप व्यक्ति आने वाली स्थितियों का भिन्न प्रकार से सामनाकरता है- अधिगम कहलाता है।”

“Any change of behaviour which is a result of experience and which causes people to face later situation differently may be called learning.” – Blair, Jones and Simpson

सरटैन,नार्थ, स्ट्रेंज तथा चैपमैन के अनुसार के अनुसार:- " सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभूति या अभ्यास के फलस्वरूप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है।"

Learning may be defined as the process by which a relatively enduring change in behavior occurs as experience or practice".

मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कॉपलर के अनुसार:- "अभ्यास या अनुभूति के परिणामस्वरूप व्यवहार में होने वाले अपेक्षाकृत स्थायी परविर्तन को सीखना कहा जाता है।"

Learning can be defined as any relatively permanent change in behavior that occurs as a result of experience".

ऊपर की परिभाषाओं एवं अनेक अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गयी लगभग समान परिभाषाओं का यदि एक संयुक्त (analysis) विश्लेशण किया जाय, तो सीखने का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। इस तरह के विश्लेषण करने पर हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

(i) **सीखना व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है (Learning is the change in behaviour):-** प्रत्येक सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होता है। अगर परिस्थिति ऐसी है जिसमें व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन नहीं होता है, तो उसे हम सीखना नहीं कहेंगें। व्यवहार में परिवर्तन एक अच्छा एवं अनुकूली (adaptive) परिवर्तन भी हो सकता है या खराब में कुसमंजित (Maladaptive) परिवर्तन भी हो सकता है।

(ii) **व्यवहार में परिवर्तन अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है (The change in behaviour occurs as a function of practice or experience) :-** सीखने की प्रक्रिया में व्यवहार में जो परिवर्तन होता है, वह अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है।

(iii) **व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है (There is relatively permanent change in behaviour) :-** ऊपर दी गयी परिभाषाओं में इस बात पर विशेष रूप से बल डाला गया है कि सीखने में व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है।

7.4अधिगम के सिद्धान्त

सीखने के आधुनिक सिद्धान्तों को निम्नलिखित दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

(अ) व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्त (Behavioural Associationist Theories)

(ब) ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त (Cognitive Organisational Theory)

विभिन्न उद्दीपनों के प्रति सीखने वाले की विशेष अनुक्रियायें होती हैं। इन उद्दीपनों तथा अनुक्रियाओं के साहचर्य से उसके व्यवहार में जो परिवर्तन आते हैं उनकी व्याख्या करना ही पहले प्रकार के सिद्धान्तों का उद्देश्य है। इस प्रकार के सिद्धान्तों के प्रमुख प्रवर्तकों में थोर्नडाइक, वाटसन और पैवलोव तथा स्किनर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जहाँ थोर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित विचार प्रणाली को संयोजनवाद (Connectionism) के नाम से जाना जाता है, वहाँ वाटसन और पैवलोव तथा स्किनर की प्रणाली को अनुबन्धन या प्रतिबद्धता (Conditioning) का नाम दिया गया है।

दूसरे प्रकार के सिद्धान्त सीखने को उस क्षेत्र में, जिसमें सीखने वाला और उसका परिवेश शामिल होता है, आये हुये परिवर्तनों तथा सीखने वाले द्वारा इस क्षेत्र के प्रत्यक्षीकरण किये जाने के रूप में देखते हैं। ये सिद्धान्त सीखने की प्रक्रिया में उद्देश्य (Purpose), अन्तर्दृष्टि (Insight) और सूझबूझ (Understanding) के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार के सिद्धान्तों के मुख्य प्रवर्तकों में वर्देमीअर (Werthemier), कोहलर (Kohler), और लेविन (Lewin) के नाम उल्लेखनीय है।

इस इकाई में आप व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धानतों का अध्ययन करेंगे।

7.5 थार्नडाईक का (संबन्धवाद) प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त

थार्नडाइक (Thorndike) को प्रयोगात्मक पशु मनोविज्ञान (experimental psychology) के क्षेत्र में एक प्रमुख मनोवैज्ञानिक माना गया है। उन्होंने सीखने के एक सिद्धान्त का प्रतिपादन (1898) में अपने पीएच0डी0 शोध प्रबन्धन (Ph. D. thesis) जिसका नाम 'एनिमल इन्टेलिजेन्स'(Animal intelligence) था, में किया। टॉलमैन (Tolman, 1938) ने थार्नडाइक के इस सिद्धान्त पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि उनका यह सिद्धान्त इतना पूर्ण तथा वैज्ञानिक था कि उस समय के अन्य सभी मनोवैज्ञानिकों ने थॉर्नडाइक को अपना प्रारम्भ बिन्दु (starting point) माना था।

थॉर्नडाइक ने सीखना की व्याख्या करते हुए कहा है कि जब कोई उद्दीपक (stimulus) व्यक्ति के सामने दिया जाता है तो उसके प्रति वह अनुक्रिया (response) करता है। अनुक्रिया सही होने से उसका संबंध (connection) उसी विशेष उद्दीपक (stimulus) के साथ हो जाता है। इस संबंध को सीखना (learning) कहा जाता है तथा इस तरह की विचारधारा को संबंधवाद

(Connectionism) की संज्ञा दी गयी है। थार्नडाइक के अधिगम के सिद्धांत को प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत तथा सबन्धवाद के नाम से जाना जाता है।

थार्नडाइक ने उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि अनेक प्रयोग करके किया है। उनके प्रयोग बिल्ली, कुत्ता, मछली तथा बन्दर पर अधिकतर किये गये हैं। इन सभी प्रयोगों में बिल्ली पर किया गया प्रयोग काफी मशहूर है। इस प्रयोग में एक भूखी

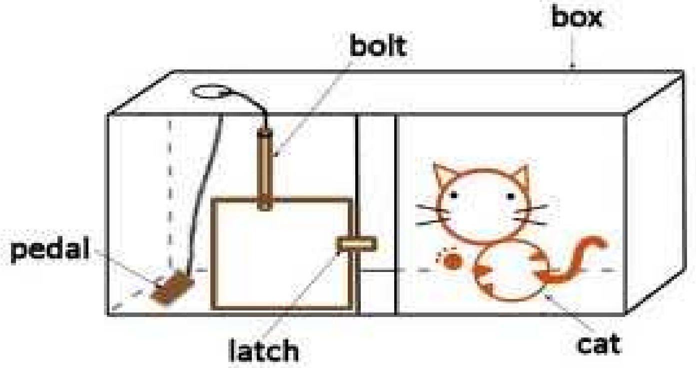

बिल्ली को एक पहेली बॉक्स में बन्द कर के रखा गया। इस बॉक्स के अन्दर एक चिटकिनी (knob) लगी थी, जिसको दबाकर गिरा देने से दरवाजा खुल जाता था। दरवाजे के बाहर भोजन रख दिया गया था। चूँकि बिल्ली भूखी थी, अत: उसने दरवाजा खोलकर भोजन खाने की पूरी कोशिश करना प्रारंभ कर दी। प्रारंभ के प्रयासों (trials) में जब बिल्ली को बॉक्स के अन्दर रखा गया, तो बहुत सारे अनियमित व्यवहार जैसे उछलना, कूदना, नोचना, खसोटना आदि होते पाये गए। इसी उछल-कूद में अचानक उसका पंजा चिटकिनी पर पड़ गया जिसके दबने से दरवाजा खुल गया और बिल्ली ने बाहर निकलकर भोजन कर लिया। बाद के प्रयासों (trials) में बिल्ली द्वारा किये जाने वाले अनियमित व्यवहार अपने आप कम होते गये तथा बिल्ली सही अनुक्रिया (यानी सिटकिनी दबाकर दरवाजा खोलने अनुक्रिया) को बॉक्स में रखने के तुरन्त बाद करते पायी गयी।

थॉर्नडाइक ने सीखने के सिद्धान्त में तीन महत्वपूर्ण नियमों का वर्णन किया है जो निम्नांकित है:-

1. अभ्यास का नियम (Law of exercise)
2. तत्परता का नियम (Law of readiness)
3. प्रभाव का नियम (Law of effect)

इन सभी का वर्णन निम्नांकित है:-

1. **अभ्यास का नियम (Law of exercise) :-** यह नियम इस तथ्य पर आधारित है कि अभ्यास से व्यक्ति में पूर्णता आती है (Practice makes man perfect) । हिलगार्ड तथा

बॉअर (Hilgard & Bower, 1975) ने इस नियम को परिभाषित करते हुए कहा है, " अभयास नियम यह बतलाता है कि अभ्यास करने से (उद्दीपक तथा अनुक्रिया का) संबंध मजबूत होता है (उपयोग नियम) तथा अभ्यास रोक देने से संबंध कमजोर पड़ जाता है या विस्मरण हो जाता है (अनुपयोग नियम) इस व्याख्या से बिलकुल ही यह स्पष्ट है कि जब हम किसी पाठ या विषय को बार-बार दुहराते है तो उसे सीख जाते हैं। इसे थॉर्नडाइक ने उपयोग का नियम (law of use) कहा है। दूसरी तरफ जब हम किसी पाठ या विषय को दोहराना बन्द कर देते हैं तो उसे भूल जाते हैं। इसे इन्होंने अनुपयोग का नियम (law of disuse) कहा है।

2. **तत्परता का नियम (Law of readiness) :-** इस नियम को थॉर्नडाइक ने एक गौण नियम माना है और कहा है कि इस नियम द्वारा हमें सिर्फ यह पता चलता है कि सीखने वाले व्यक्ति किन-किन परिस्थितियों में संतुष्ट होते हैं या उसमें खीझ उत्पन्न होती है। उन्होंने इस तरह की निम्नांकित तीन परिस्थितियों का वर्णन किया है-
   i. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर रहता है और उसे वह कार्य करने दिया जाता है, तो इससे उसमें संतोष होता है।
   ii. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर रहता है परन्तु उसे वह कार्य नहीं करने दिया जाता है, तो इससे उसमें खीझ (annoyance) होती है।
   iii. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर नहीं रहता है परन्तु उसे वह कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है, तो इससे भी व्यक्ति में खीझ (annoyance) होती है।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि संतोष या खीझ होना व्यक्ति के तत्परता (readiness) की अवस्था पर निर्भर करता है।

3. **प्रभाव नियम (Law of effect):-** थार्नडाइक के सिद्धान्त का यह सबसे महत्वपूर्ण नियम है। इसकी महत्ता को ध्यान में रखते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसके सिद्धान्त को प्रभाव नियम सिद्धान्त (Law of effect theory) भी कहा है। इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी अनुक्रिया या कार्य को उसके प्रभाव के आधार पर सीखता है। किसी कार्य या अनुक्रिया का प्रभाव व्यक्ति में या तो संतोषजनक (satisfying) होता है या खीझ उत्पन्न करने वाला (annoying) होता है।प्रभाव संतोषजनक होने पर व्यक्ति उस अनुक्रिया को सीख लेता है तथा खीझ उत्पन्न करने वाला होने पर व्यक्ति उसी अनुक्रिया को दोहराना नहीं चाहता है। फलत: उसे वह भूल जाता है।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि प्रभाव नियम के अनुसार व्यक्ति किसी अनुक्रिया को इसलिए सीख लेता है क्योंकि व्यक्ति में उस अनुक्रिया को करने के बाद संतोषजनक प्रभाव (satisfying effect) होता है।

इन प्रमुख नियमों के अलावा भी थॉर्नडाइक ने सहायक नियमों (subordinate laws) का भी प्रतिपादन किया परन्तु ये सभी नियम बहुत महत्वपूर्ण नहीं हो पाये क्योंकि वे स्पष्ट रूप से प्रमुख नियमों से ही संबंधित थे। संक्षेप में, इन सहायक नियमों का वर्णन इस प्रकार है:-

i. **बहुक्रिया (Multiple response):-** इस नियम के अनुसार किसी भी सीखने की परिस्थिति में प्राणी अनेक अनुक्रिया (response) करता है जिसमें से प्राणी उन अनुक्रिया को सीख लेता है जिससे उसे सफलता मिलती है।
ii. **तत्परता या मनोवृत्ति (Set or attitude):-** तत्परता या मनोवृत्ति से इस बात का निर्धारण होता है कि प्राणी किस अनुक्रिया को करेगा, किस अनुक्रिया को करने से कम संतुष्टि तथा किस अनुक्रिया को करने से अधिक संतुष्टि आदि मिलेगी।
iii. **सादृश्य अनुक्रिया (Response by similarity or analogy):-** इस नियम के अनुसार प्राणी किसी नयी परिस्थिति में वैसी ही अनुक्रिया को करता है जो उसके गत अनुभव या पहले सीखी गयी अनुक्रिया के सदृश होता है।
iv. **साहचर्यात्मक स्थानान्तरण (Associative shifting):-** इन नियम के अनुसार कोई अनुक्रिया जिसके करने की क्षमता व्यक्ति में है, एक नये उद्दीपक (stimulus) से भी उत्पन्न हो सकती है। यदि एक ही अनुक्रिया को लगातार एक ही परिस्थिति में कुछ परिवर्तन के बीच उत्पन्न किया जाता है तो अन्त में वही अनुक्रिया एक बिलकुल ही नये उद्दीपक से भी उत्पन्न हो जाती है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. सामान्य अर्थ में 'सीखना' ________ में परिवर्तन को कहा जाता है।
2. थॉर्नडाइक के सीखने के सिद्धांत को ______________ के नाम से जाना जाता है।
3. थॉर्नडाइक ने सीखने के तीन महत्वपूर्ण नियमों के नाम लिखिए।
4. थॉर्नडाइक ने सीखने के सहायक नियमों के नाम लिखिए।
5. जब हम किसी पाठ या विषय को बार-बार दुहराते है तो उसे सीख जाते हैं, इसे थॉर्नडाइक ने ______________ कहा है।
6. जब हम किसी पाठ या विषय को दोहराना बन्द कर देते हैं तो उसे भूल जाते हैं, इसे थॉर्नडाइक ने ______________ कहा है।

अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों की तुलना में अनुबंधन पर अत्यधिक प्रायोगिक कार्य हुए हैं। अनुबंधन को ऐसे साहचर्यात्मक या अधिगम प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें नवीन प्रकार के उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों का निर्माण करना सीखा जाता है। (Conditioning is the process by which conditioned response are learned-Hilgard et.al., 1975)

7.6 पावलव का शास्त्रीय अनुबन्धन का सिद्धान्त , प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन (Classical or Pavlovian Conditioning)

आई0पी0 पैवलव (I.P. Pavlov) एक रूसी शरीर- वैज्ञानिक (physiologist) थे जिन्होंने अपनी जीवन-वृत्ति (career) हृदय के कार्यो के अध्ययन से शुरू की परन्तु बाद में उन्होंने पाचन क्रिया (digestion) के दैहिकी (physiology) का विशेष रूप से अध्ययन करना प्रारम्भ किया और उनका यह अध्ययन इतना महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय हुआ कि 1904 में इसके लिए उन्हें नोबल पुरस्कार (Nobel Prize) भी दिया गया। बिलकुल ही संयोग से (incidentally) पैवलव ने इन अध्ययनों के दौरान लारमय अनुबन्धन (salivary conditioning) की घटना (phenomenon) का अध्ययन किया और इससे संबंधित सीखने के एक सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया जिसे अनुबन्धित अनुक्रिया सिद्धान्त (conditioned response theory) कहा जाता है।

पैवलव ने अपने सीखने के सिद्धान्त का आधार अनुबन्धन (conditioning) को माना है। पैवलव के सीखने के इस अनुबन्धन सिद्धान्त को शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त (classical conditioning theory) या प्रतिवादी अनुबन्धन सिद्धान्त (Respondent conditioning theory) या टाइप- एस (Type- S) अनुबन्धन भी कहा जाता है। इसे क्लासिकल अनुबंधन इसलिए कहा जाता है क्योंकि पैवलव ने ही अधिगम का क्लासिक प्रयोगशाला अध्ययन किया था।

क्लासिकल अनुबन्धन में प्रतिमान की शुरूआत एक उद्दीपक (stimulus) तथा इससे उत्पन्न अनुक्रिया के बीच के संबंध से होता है। पैवलव के अनुसार जब कोई स्वाभाविक एवं उपर्युक्त उद्दीपक को जीव के सामने उपस्थित किया जाता है तो वह उसके प्रति एक स्वाभाविक अनुक्रिया (natural response) करता है। जैसे गर्म बर्तन को छूते ही हाथ खींच लेना तथा भूखा होने पर भोजन देखकर मुँह में लार आना, कुछ ऐसी अनुक्रियाओं (responses) के उदाहरण है। जब इस स्वाभाविक एवं उपयुक्त उद्दीपक के ठीक कुछ सेकेण्ड पहले एक दूसरा तटस्थ उद्दीपक (neutral stimulus) बार-बार उपस्थित किया जाता है तो कुछ प्रयास (trials) के बाद उस तटस्थ उद्दीपक द्वारा ही स्वभाविक अनुक्रिया (लार आना या हाथ खींच लेना जो सिर्फ स्वाभाविक उद्दीपक के प्रति होती थी) उत्पन्न होने लगती है। जैसे, एक भूखे व्यक्ति के सामने घंटी बजाकर बार-बार भोजन दें तो कुछ प्रयासों के बाद मात्र घंटी बजते ही उस व्यक्ति के मुँह में लार आना प्रारंभ हो

जायेगा। पैवलव के तटस्थ उद्दीपक (घंटी) तथा स्वाभाविक अनुक्रिया (लार आना) के बीच स्थापित इस नये साहचर्य को सीखने की संज्ञा दिया है।

पैवलव का यह निष्कर्ष कि यदि तटस्थ उद्दीपक (neutral stimulus) को किसी उपयुक्त एवं स्वाभाविक उद्दीपक (neutral stimulus) के साथ बार-बार दिया जाता है तो तटस्थ उद्दीपक के प्रति व्यक्ति वैसी ही अनुक्रिया (responses) करना सीख लेता है जैसा कि वह उपयुक्त एवं स्वाभाविक उद्ददीपक के प्रति करता है। यह निष्कर्ष एक प्रयोग पर आधारित है ।

पैवलव का प्रयोग

संक्षेप में प्रयोग इस प्रकार था – एक भूखे कुत्ते को एक ध्वनि- नियंत्रित प्रयोगशाला में एक विशेष उपकरण के सहारे खड़ा कर दिया गया । कुत्ते के सामने भोजन लाया जाता था और चूंकि कुत्ता भूखा था इसलिए भोजन देखकर उसके मुँह में लार आ जाती थी । कुछ प्रयासों (trials) के बाद भोजन देने के 4 या 5 सेकेण्ड अर्थात् 400 या 500 मिलीसेकेण्ड पहले एक घंटी बजायी जाती थी। यह प्रक्रिया कुछ दिनों तक दोहरायी गयी तो यह देखा गया कि बिना भोजन आये ही मात्र घंटी की आवज पर कुत्ते के मुॅह से लार निकलना शुरू हो गया। पैवलव के अनुसार कुत्ता घंटी की आवज पर लार के स्राव करने की क्रिया को सीख लिया है। उनके अनुसार घंटी की आवाज (उद्दीपक) तथा लार के स्राव (अनुक्रिया) के बीच एक साहचर्य (association) कायम हो गया जिसे अनुबन्धन (conditioning) की संज्ञा दी गयी।

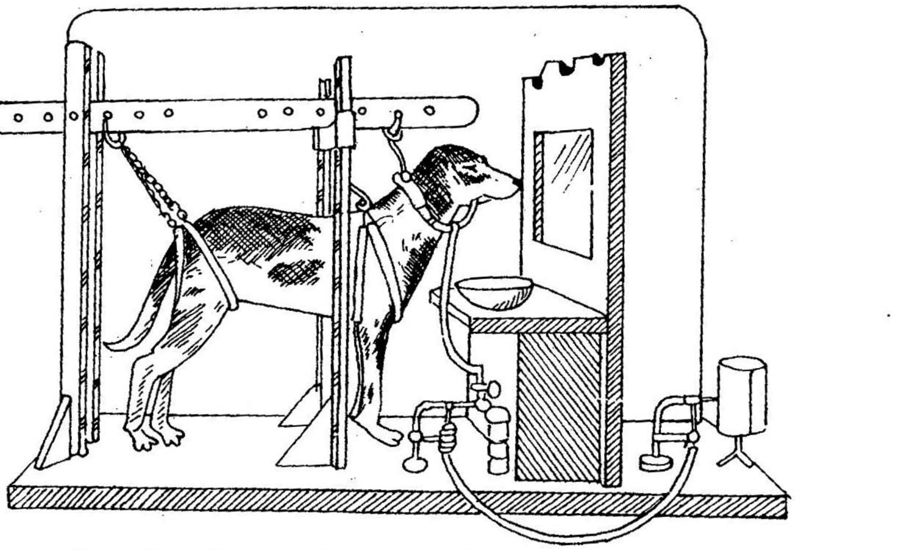

चित्र —प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन का प्रायोगिक प्रारूप : पैवलाव (1927) पर आधारित

स्वाभाविक उद्दीपक (Unconditional or Unconditioned stimulus: UCS)

स्वाभाविक उद्दीपक वैसे उद्दीपक को कहा जाता है जो बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण (training) के ही प्राणी में अनुक्रिया उत्पन्न करता है । जैसे, पैवलव के प्रयोग में भोजन एक स्वाभाविक उद्दीपक (UCS) है जो लार स्राव करने की अनुक्रिया बिना किसी प्रशिक्षण का ही करता है ।

स्वाभाविक अनुक्रिया (Unconditioned response: UCR

स्वाभाविक अनुक्रिया वैसी अनुक्रिया को कहा जाता है जो स्वाभाविक उद्दीपक द्वारा उत्पन्न किया जाता है । जैसे, पैवलव के प्रयोग में भोजन देखकर कुत्ते के मुँह में लार का स्राव का होना एक स्वाभाविक अनुक्रिया है।

अनुबन्धित उद्दीपक (Conditional stimulus or Conditioned stimulus:

CS:अनुबन्धित उद्दीपक वैसे उद्दीपक को कहा जाता है जिसे यदि स्वाभाविक उद्दीपक के साथ या उससे कुछ सेकेण्ड पहले लगातार कुछ प्रयासों (trials) तक दिया जाता है, तो वह उद्दीपक स्वाभाविक उद्दीपक के समान ही अनुक्रिया उत्पन्न करना प्रारंभ कर देता है। किसी भी उद्दीपक को अनुबन्धित उद्दीपक कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि वह प्राणी की ज्ञानेन्द्रिय के पहुँच के भीतर हो, यानी जिसे देखा जा सके, सुना जा सके, स्पर्श किया जा सके। पैवलव के प्रयोग में घंटी की आवाज एक अनुबन्धित उद्दीपक (conditioned stimulus) का उदाहरण है।

अनुबन्धित अनुक्रिया (Conditioned response: CR)

जब अनुबन्धित उद्दीपक (CS) स्वाभाविक उद्दीपक (unconditioned stimulus) के साथ संयोजित (paired) किया जाता है तो कुछ प्रयायों के बाद अनुबंधित उद्दीपक (CS) के प्रति प्राणी ठीक वैसी ही अनुक्रिया करता है जैसा कि वह स्वाभाविक उद्दीपक (UCS) के प्रति करता था। इस तरह की अनुक्रिया को अनुबन्धित अनुक्रिया (conditioned response) कहा जाता है। पैवलव के प्रयोग में (बिना भोजन देखे ही) घंटी की आवाज सुनने पर जो लार के स्राव की अनुक्रिया होती थी, वह अनुबन्धित अनुक्रिया (conditioned response) का उदाहरण है।

उद्दीपक सामान्यीकरण (Stimulus generalization)

सीखने के प्रारंभ के प्रयासों (trials) में ऐसा देखा गया है कि सिर्फ मूल अनुबंधित उद्दीपक (original conditioned stimulus) के प्रति ही प्राणी अनुक्रिया नहीं करता है बल्कि उससे मिलते-जुलते अन्य उद्दीपकों के प्रति भी उसी ढंग से अनुक्रिया करता है। इसे ही उद्दीपक सामान्यीकरण की संज्ञा दी जाती है। हाउस्टन (Houston, 1976) ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है, "उद्दीपक सामान्यीकरण की घटना में किसी एक उद्दीपक के प्रति अनुबंधित अनुक्रिया उसी तरह के दूसरे उद्दीपकों से भी उत्पन्न होने लगती है"। एक उदाहरण लिया जाये- मान लिया जाय कि किसी प्रयोग में कुत्ते में 1000 Hertz tone or Hz (हर्जटोन) की आवाज पर भोजन देकर लार

स्राव की अनुक्रिया को अनुबंधित (conditioned) किया जाता है। यह 1000 Hz की आवाज मूल अनुबंधित उद्दीपक (original conditioned stimulus)का उदाहरण है। इस तरह के अनुबन्धन (conditioning) के दौरान यदि कुत्ते के सामने 1200 Hz, 1100 Hz, 900 Hz, तथा 800 Hz की आवाज दिया जाय तो कुत्ते में पहले के समान ही जार स्राव की अनुक्रिया होगी। इसे ही उद्दीपक सामान्यीकरण (stimulus generalization) की संज्ञा दी जाती

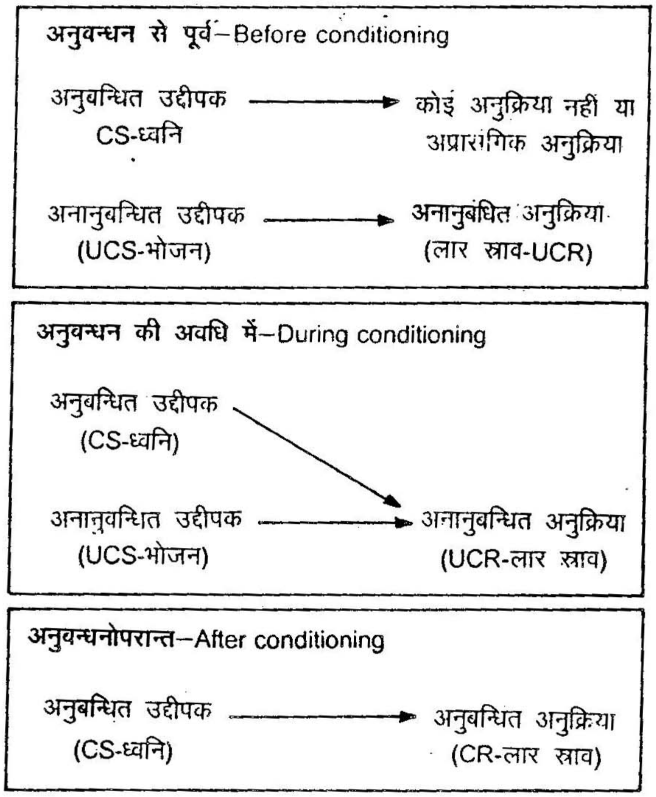

चित्र —प्राचीन अनुबंधन का चित्रण। CS एवं UCS में साहचर्य स्थापित हो जाने पर प्रयोज्य CS के प्रति भी लार स्राव करने लगता है। CS के प्रति लार-स्राव को UCR कहा जाता है।

विभेदन (Discrimination)

विभेदन की घटना (phenomenon) उद्दीपक सामान्यीकरण (stimulus generalization) के ठीक विपरित घटना है। जैसे-जैसे सीखने के लिए दिये जाने वाले प्रयासों (trial) की संख्या बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे प्राणी मूल अनुबंधित उद्दीपक (original conditioned stimulus) तथा अन्य समान उद्दीपकों (similar stimuli) के बीच स्पष्ट अन्तर या विभेद कर लेता है। इसके परिणाम

स्वरूप प्राणी सिर्फ मूल अनुबंधित उद्दीपक के प्रति ही अनुक्रिया करता है, अन्य समान उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया नहीं करता है। इसे ही विभेदन (discrimination) की संज्ञा दी जाती है।

विलोपन, स्वत: पुनर्लाभ, बाह्य अवरोध निवारण तथा पुनर्अनुबन्धन Extinction, Spontaneous recovery, External disinhibition and Reconditioning):- पैवलव ने अपने प्रयोग में पाया कि प्राणी (organism) में अनुबन्धन (conditioning) उत्पन्न होने के बाद जब सिर्फ CS (घंटी) दिया जाता है और UCS (भोजन) नहीं दिया जाता है और इस प्रक्रिया को लगातार कई प्रयासों (trials) तक दोहराया जाता है तो धीरे-धीरे सीखी गयी अनुक्रिया की शक्ति कम होने लगती है। दूसरे शब्दों में कुत्ता धीरे-धीरे घंटी की आवाज पर लार का स्राव कम करते जाता है। अन्त में, एक ऐसा भी प्रयास (trials) आता है जहॉ घंटी बजती है परन्तु लार का स्राव बिलकुल ही नहीं होता है। पैवलव ने इस तरह की घटना (phenomenon) को विलोपन (extinction) की संज्ञा दी है।

विलोपन से ही संबंधित एक दूसरी घटना (phenomenon) है जिस पर भी मनोवैज्ञानिकों ने अधिक बल डाला है और वह है स्वत: पुनर्लाभ (spontaneous recovery) की घटना। पैवलव तथा उनके शिष्यों ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों में पाया है कि जब किसी सीखी गयी अनुक्रिया का आंशिक रूप से विलोपन (partial extinction) हो जाता है और उसके कुछ समय बीतने के बाद यदि पुन: CS (घंटी) दिया जाता है, तो प्राणी (कुत्ता) फिर से CR (लार का स्राव) करते पाया जाता है हालांकि ऐसी परिस्थिति में किया गया लार स्राव की मात्रा पहले के समान अधिक नहीं होती है। इस तरह से स्वत: पुनर्लाभ में हम पाते हैं कि विलोपन के कुछ समय के बाद CS देने पर विलोपित CR अपने आप पुन: प्राणी द्वारा किया जाता है।

पुनर्बलन (Reinforcement):- पैवलोवियन अनुबन्धन में पुनर्बलन का एक महत्वपूर्ण स्थान है। पैवलव के प्रयोग में भोजन एक प्रकार का पुनर्बलन है जो कुत्ते को लार स्राव (salivation) की अनुक्रिया करने के लिए प्रेरित करता है। सचमुच में भोजन यहॉ एक मुख्य पुनर्बलन (primary reinforcement) का उदाहरण है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा क्लासिकी अनुबंधन की आलोचना निम्नांकित कारकों (factors) के आधार पर की गयी है। प्रमुख आलोचनाऍं निम्नांकित है:-

1. पैवलव एक उद्दीपक अनुक्रिया पुनर्बलन सिद्धान्तवादी (stimulus- response reinforcement theorist) है। अत: इनके अनुसार सीखने के लिए अर्थात् उद्दीपक एवं अनुक्रिया में संबंध स्थापित करने के लिए पुनर्बलन (Reinforcement) का होना अनिवार्य है। अत: टालमैन, हॉनजिक एवं ब्लौजेंट आदि मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि सीखने के लिए पुनर्बलन (Reinforcement) की आवश्यकता नहीं होती है।

2. पैवलव के सिद्धान्त पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सीखने की प्रक्रिया में पुनरावृत्ति (repetition) का महत्व अधिक है। पैवलव के प्रयोग में एक तटस्थ उद्दीपक (घंटी) तथा स्वाभाविक उद्दीपक (भोजन) को साथ-साथ कई बार दुहराने के बाद ही कुत्ता घंटी की आवाज पर लार स्राव करने की अनुक्रिया को सीखा था। परन्तु अक्सर यह देख गया है कि व्यक्ति के कुछ पल ऐसे भी होते हैं जहॉ वह मात्र एक ही बार की अनुभूति में सीख लेता है।
3. कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि पैवलव के सिद्धान्त में प्राणी को एक ऐसी प्रयोगात्मक परिस्थिति में रखा जाता है जहॉ वह पूर्णरूपेण निष्क्रिय (passive) होता है। पैवलव का कुत्ता एक ऐसे उपकरण के सहारे बॅधा होता है जिसमें उसे एक निष्क्रिय भूमिका करनी होती है। अगर प्रयोगात्मक परिस्थिति ऐसी होती जिसमें प्राणी सक्रिय होकर घूम-फिर सकता है (जैसा कि स्कीनर-बक्स में होता है), तो वैसी परिस्थिति में सीखने की व्याख्या इतनी यांत्रिक (mechanical) नहीं होती जितनी की पैवलव ने अपने सिद्धान्त में किया है।
4. कुछ आलोचकों का मत है कि पैवलव द्वारा प्रतिपादित सीखना एक अस्थायी तथा आंशिक रूप से प्राणी के व्यवहार में परिवर्तन करता है। कुत्ता घंटी की आवाज पर तभी तक लार स्राव करता था जब तक घंटी की आवाज के बाद उसे भोजन दिया जाता है। जब भोजन दिया जाना बन्द कर दिया गया तो कुत्ते में भी लार स्राव की अनुक्रिया धीरे-धीरे लुप्त हो गयी। इतना ही नहीं, पैवलव के सिद्धान्त के अनुसार किसी अनुक्रिया को सिखलाने के लिए एक विशेष प्रकार की प्रयोगात्मक परिस्थिति का होना अनिवार्य है जो हमेशा संभव नहीं भी हो सकता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी पैवलव का सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है और अन्य दूसरे मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते समय इनके तथ्यों एवं संप्रत्ययों (concepts) से प्रेरणा ली है।

उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त के अनुसार सीखने की प्रक्रिया में प्राणी उद्दीपक (या समस्या) तथा अनुक्रिया (response) के बीच एक संबंध (connection) स्थापित करता है। कुछ ऐसे सिद्धान्तवादियों का मत है कि उद्दीपक तथ अनुक्रिया के बीच में जो संबंध स्थापित होता है, उसका आधार पुनर्बलन (reinforce) होता है। जब सही अनुक्रिया के करने के बाद प्राणी को पुनर्बलन दिया जाता है, तो इसका प्रभाव (effect) यह होता है कि भविष्य में प्राणी उस उद्दीपक के सामने आने पर वही अनुक्रिया करता है। यही कारण है कि इस सिद्धान्तों को उद्दीपक-अनुक्रिया प्रभाव सिद्धान्त (stimulus-response effect theories) या पुनर्बलन सिद्धान्त (reinforcement theory) भी कहा जाता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. आई0पी0 पैवलव (I.P. Pavlov) एक रूसी -------------------- थे।
8. पैवलव द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को --------------------------- कहा जाता है।
9. पैवलव ने अपने सीखने के सिद्धान्त का आधार-------------------- को माना है
10. वह उद्दीपक जो बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण के ही प्राणी में अनुक्रिया उत्पन्न करता है ------------------------ कहा जाता है।

7.7 स्किनर का क्रियाप्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त (Theory of Operant Conditioning) या नैमित्तिक अनुबंधन (Instrumental Conditioning)

स्किनर (1938) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त नैमित्तिक अनुबंधन, सक्रिय अनुबन्धन या क्रिया प्रसूत अनुबन्धन भी कहा जाता है। यह प्राचीन अनुबंधन की अपेक्षा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक है। प्राचीन अनुबंधन में वांछित व्यवहार उत्पन्न करने के लिए सम्बन्धित उद्दीपक पहले प्रदर्शित किया जाता है। इसके विपरीत सक्रिय अनुबंधन की अवधारणा यह है कि प्राणी को वांछित उद्दीपक या परिणाम प्राप्त करने या कष्टादायक उद्दीपक से बचने के लिए प्रत्याशित, उचित या सही अनुक्रिया (व्यवहार) पहले स्वयं प्रदर्शित करना होता है। अर्थात् उद्दीपक या परिस्थिति के निमित्त प्राणी द्वारा किया जाने वाला व्यवहार ही परिणाम का स्वरूप निर्धारित करता है। इसी कारण इसे नैमित्तिक अनुबंधन कहते हैं (Hulse et. al. 1975)। इसी आधार पर इसे संक्रियात्मक या क्रियाप्रसूत अधिगम (Operant learning) भी कहा जाता है (Hilgard and Bower, 1981)। पोस्टमैन एवं इगन (1967) ने भी लिखा है कि नैमित्तिक अनुबंधन में धनात्मक पुनर्बलन (S+) का प्राप्त होना या नकारात्मक पुनर्बलन (S-) से बचना इस बात पर निर्भर (Contingent) करता है कि किसी अधिगम परिस्थिति में प्रयोज्य कैसा व्यवहार (उचित/अनुचित) करता है।

स्किनर का प्रयोग

चूहों पर प्रयोग करने के लिए उन्होंने एक विशेष बक्से के आकार का एक यनत्र बनाया जिसे उन्होंनेक्रियाप्रसूत अनुबन्धन कक्ष (Operant conditioning) की संज्ञा दी, लेकिन बाद में इसको स्किनर बक्स (Skinner Box) कहा गया। वास्तव में थार्नडाईक के द्वारा प्रयुक्त पहेली पिंजरा (Rezze Box) का एक सुधरा और विकसित रूप था। स्किनर बक्श के अन्दर जालीदार फर्श (Grid flood) प्रकाशव ध्वनि व्यवस्था (Light and Sound Arrangement) लीवर (Lever) तथा भोजन तश्तरी (Food Cup) होता है।

स्किनर के लीवरबक्स में लीवर को दबाने पर प्रकाश या किसी विशेष आवाज होने के साथ-साथ भोज-तश्तरी में थोड़ा-सा भाजन आ जाता है। प्रयोग के अवलोकनों को लिपिबद्ध करने के लिए लीवरका सम्बन्ध एक ऐसी लेखन व्यवस्था (Recoding System) में रहता है जो प्रयोगकेबीच में समय के साथ-साथ लीवर दबाने की आवृत्ति की संचयी ग्राफ (Cumulative Graph) के रूप में अंकित करती रहती है।

प्रयोग हेतु स्किनर ने एक भूखे चूहे को स्किनर बाक्स में बन्द कर दिया। प्रारम्भ में चूहाबक्स में इधर-उधर घूमता रहा तथा उछल-कूद करता है। इसी बीच में लीवर दब गया, घण्टी की आवाज हूई और खाना तश्तरी में आ गया। चूहा तुरन्त भोजन को नहीं देख पाता है लेकिन बाद में देखकर खा लेताहै। इसी तरह कई प्रयासों के उपरान्त वह लीवर दबाकर भोजन गिराना सीख जाता है। इस प्रयोग में चूहा लीवर दबाने के लिए स्वतन्त्र होता है वह जितनी बार लीवर दबाएगा घण्टी की आवज होगी और भोजन तश्तरी में गिर जाएगा। स्किनर ने भोजन प्राप्त करने के बाद से समय अन्तराल में लीवर दबाने के चूहे के व्यवहार का विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाला कि भोजन रूपी पुनर्वलन (Reinforcement) चूहे को लीवर दबाने के लिए प्रेरित करता है एवं पुनर्बलन के फलस्वरूप चूहा लीवर दबाकर भोजन प्राप्त करना सीख जाता है। अर्थात क्रिया प्रसूत (Operant Response) के बाद पुनर्बलित उद्दीपक (Reinforcement Stimulus) दिया जाता है तो प्राणी उसे बार-बार दोहराता है और इस प्रकार से मिले पुनर्बलन से सीखने में स्थायित्व आ जाता है।

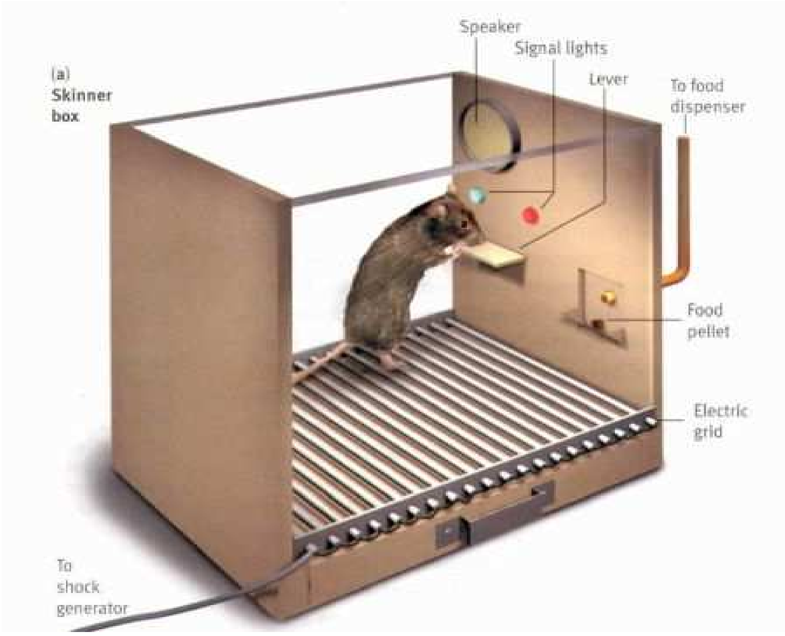

सक्रिय अनुबंधन में पुनर्बलन (Reinforcement in Operant Conditioning)

नैमित्तिक अनुबंधन, सक्रिय अनुबंधन या संक्रियात्मक अनुबंधन में प्रबलनों की विशेष भूमिका होती है। जैसे-उचित या सही व्यवहार (अनुक्रिया) किये जाने पर धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement) की आपूर्ति की जाती है या अनुचित व्यवहार किये जाने पर नकारात्मक उद्दीपक (दण्ड) का उपयोग किया जाता है ताकि उसकी पुनरावृत्ति न हो सके। प्रबलनों को चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. **धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement)** - कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्रयोज्य को प्राप्त होता है। जैसे-अच्छे अंक प्राप्त करना। यह सम्बन्धित व्यवहार के प्रदर्शन की संभावना में वृद्धि करता है।
2. **नकारात्मक पुनर्बलन (Negative Reinforcement)** - किसी उचित व्यवहार के प्रदर्शित होने पर कष्टप्रद वस्तु की आपूर्ति रोक देना। इससे उचित व्यवहार के घटित होने की संभावना बढ़ती है। जैसे-शरारत कर रहे किसी बच्चे को तब जाने देना जब वह नोक-झोंक बन्द कर दे।
3. **धनात्मक दण्ड (Positive Punishment)** - किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर किसी कष्टप्रद वस्तु या उद्दीपक को प्रस्तुत करना। जैसे-परीक्षा में कम अंक प्राप्त करने पर छात्रा की प्रशंसा न करना या निन्दा करना। इससे अनुचित व्यवहार की पुनरावृत्ति की संभावना घटती है।
4. **नकारात्मक दण्ड (Negative Punishment)** - किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना। इससे अनुचित व्यवहार की संभावना घटती है। जैसे-उदण्ड व्यवहार कर रहे बालक को टीवी देखने से रोक देना।

पुनर्बलन अनुसूची (Schedule of Reinforcement) -

पुनर्बलन की आपूर्ति कई रूपों में की जा सकती है।

1. **स्थिर अनुपात सूची (fixedratioSchedule) -** निश्चित संख्या में अनुक्रिया करने पर पुरस्कार देना।
2. **परिवर्तनीय अनुपात अनुसूची (variableratioSchedule)** - भिन्न-भिन्न संख्या में अनुक्रियाएँ करने पर पुरस्कार देना।
3. **स्थिर अन्तराल अनुसूची (fixedintervalSchedule) -** एक निश्चित अन्तराल पर पुरस्कार की आपूर्ति करना।
4. **परिवर्तनीय अन्तराल अनुसूची (variableintervalSchedule)** - भिन्न-भिन्न अन्तरालों पर पुनर्बलन या पुरस्कार की आपूर्ति करना।

प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन की प्रक्रियाओं में कुछ विशेष प्रकार की घटनाएँ प्राप्त होती हैं। इन्हें अनुबंधन के गोचर कहा जाता हैं।

1. विलोप (Extinction) - विलोप का आशय किसी सीखी हुई अनुक्रिया को समाप्त या बन्द करने से है। प्रयोगों में यह देखा गया है कि यदि प्रयोज्यों द्वारा अनुबंधित उद्दीपकों (CS) के प्रति अनुक्रिया (CR) करने पर पुनर्बलन (पुनर्बलन) न दिया जाय तो इससे अनुक्रिया की मात्रा में कमी आती है और यदि ऐसे प्रयास की पुनरावृत्ति की जाती रहे तो अनुक्रिया की मात्रा क्रमशः घटती जाती है और एक अवस्था ऐसी आती है जबकि प्रयोज्य अनुक्रिया प्रदर्शित करना बन्द कर देता है। इसी गोचर को विलोप का नाम दिया जाता है (Pavlov, 1927; Skinner, 1938)। इससे स्पष्ट है कि अनुबंधित अनुक्रिया करने पर पुनर्बलन या पुनर्बलन से वंचित करने पर इसका अनुक्रिया के प्रदर्शन की संभावना पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रसंग में कुछ निष्कर्ष भी प्राप्त हुए हैं।

1) यदि विलोप की प्रक्रिया न प्रयुक्त की जाय तो अनुबंधित का प्रदर्शन दीर्घ अन्तरालों पर भी होता है। अर्थात् मात्रा समय व्यतीत होने से अनुक्रिया में ह्रास कम होता है (Hilgard and Humphreys, 1938; Wundt, 1937; Razarn, 1939; Skinner,1950)।
2) यदि अनुबंधित अनुक्रिया का अत्यधिक प्रशिक्षण किया गया है तो विलोप विलम्ब से होता (Elson, 1938; Osgood, 1953)।
3) यदि विलोप के समय प्रयासों के बीच मध्यान्तर (Interval) दीर्घ रहा है तो विलोप सरलता से नहीं होगा (रिनाल्ड्स, 1945 ; रोहट, 1947)।
4) प्रारम्भ में विलोप की गति अधिक और बाद में मन्द हो जाती है (Osgood,1953)।
5) जिन अनुक्रियाओं को सीखने में परिश्रम अधिक लगता है उनका विलोप शीघ्र होता है (केपहार्ट आदि, 1958)।
6) सतत पुनर्बलन की अपेक्षा आंशिक पुनर्बलन की दशा में सीखी गई अनुक्रिया का विलोप विलम्ब से होता है (हम्फ्रीज, 1939)।
7) वितरित विधि से सीखी गई अनुक्रिया का विलोप विलम्ब से होता (रिनाल्ड्स, 1954)।
8) अवसादी (Depressive) - दवाओं के प्रयोगों में यह भी देखा गया है। उत्तेजक दवाओं के उपयोग से विलोप विलम्ब से होता है (स्कीनर, 1935)।

2. स्वतः पुनरावर्तन (Spontaneous Recovery) -अनुबंधन के प्रयोगों में यह भी देखा गया है कि यदि विलोप की प्रक्रिया पूरी होने के कुछ समय बाद अनुबंधित उद्दीपक पुनः प्रस्तुत किया जाय तो अनुबंधित अनुक्रिया (CR) की कुछ न कुछ मात्रा प्रदर्शित होती है। इससे स्पष्ट है कि अनुक्रिया के पुनः प्रदर्शित होने में केवल विश्राम कारक का महत्व है। इस गोचर को स्वतः पुनरावर्तन कहते है (देखिए चित्रा 7.14)। पैवलाव (1927) एवं एलसन (1938) ने क्रमशः प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधनों में स्वतः पुनरावर्तन गोचर प्राप्त किया है। इस प्रसंग में भी कुछ निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. स्वतः पुनरावर्तन से प्राप्त अनुक्रिया की मात्रा कभी भी शत प्रतिशत नहीं होती है।
2. यदि मध्यान्तर (विश्राम) दीर्घ रखा जाय तो अनुक्रिया की मात्रा अपेक्षाकृतअधिक प्राप्त होती है।
3. स्वतः पुनरावर्तन विश्राम का परिणाम है।
4. स्वतः पुनरावर्तन का सम्बन्ध विलोप से है।

3. अवरोध (Inhibition) -जिन कारकों का अनुबंधन पर बाधक प्रभाव पड़ता है उन्हें अवरोध का नाम दिया जाता है। अवरोध प्रभाव अनेक प्रकार के हो सकते हैं। यथा, बाह्य अवरोध - यदि अधिगम के समय अप्रासंगिक कारक सक्रिय होकर अधिगम को अवरोधित करते हैं तो उन्हें बाह्य अवरोध कहा जाता है (जैसे, शोर का बाधक प्रभाव)। पैवलाव ने यह निष्कर्ष भी दिया है कि लार स्राव के समय उनकी उपस्थिति का अनुक्रिया पर अवरोधक प्रभाव पड़ता था। इसके अतिरिक्त विलम्ब का अवरोध भी पाया जाता है। ऐसा पाया गया है कि अनुबंधित उद्दीपक के प्रदर्शन के समय पर अनुक्रिया की मात्रा पूरी नहीं प्राप्त होती है परन्तु जैसे-जैसे अनानुबंधित उद्दीपक के प्रस्तुत होने का समय समीप आता जाता है वैसे-वैसे अनुक्रिया की मात्रा बढ़ती है। इसे विलम्ब का अवरोध कहते हैं। अर्थात् अनानुबंधित उद्दीपक के प्रदर्शन का समय भी अनुक्रिया की मात्रा को प्रभावित करता है।

अनुबंधित अवरोध- यदि अनुबंधित उद्दीपक के साथ कोई नया उद्दीपक सम्बद्ध कर दिया जाय परन्तु ऐसे प्रयासों में पुनर्बलन न दिया जाय तो प्रयोज्य ऐसी दशा मे अनुक्रिया बन्द कर देता है। जैसे, स्वर उद्दीपक के प्रति अनुबंधित अनुक्रिया का प्रशिक्षण देने के बाद यदि स्वर के साथ कोई नया उद्दीपक (जैसे-स्पर्श) भी दिया जाय परन्तु अनुक्रिया होने पर पुनर्बलन न दिया जाय तो आगे चलकर स्वरस्पर्श की दशा में अनुक्रिया अवरोधित होती है। अतः इसे अनुबंधित अवरोध कहते है।

अवरोध के प्रभाव को समाप्त भी किया जा सकता है। ऐसा करने से अवरोधित अनुक्रिया की मात्रा में वृद्धि होती है। ऐसे गोचर को अनावरोध कहते हैं। ऐसा करने के लिए एक नवीन तटस्थ उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है और इस दशा में पुनर्बलन किया जाता है। इससे विलुप्त अनुक्रिया का पुनः प्रदर्शन होने लगता है तथा अनुक्रिया की मात्रा भी बढ़ती है। वुडवरी (1943) ने नैमित्तिक अनुबंधन में भी इसको प्राप्त किया है।

4. संकलन प्रभाव (Summationeffect)- यदि एक अनुक्रिया दो अनुबंधित उद्दीपकों के प्रति अनुबंधित की गई है तो दोनों उद्दीपकों को एक साथ प्रस्तुत करने पर प्राप्त होने वाली अनुक्रिया की मात्रा में वृद्धि होती है। अर्थात् अनुक्रिया की मात्रा अलग-अलग उद्दीपकों के प्रति प्राप्त होने वाली मात्रा के बराबर भी हो सकती है (Pavlov,1927)। एनिन्जर (1952) ने नैमित्तिक अनुबंधन में भी यह प्रभाव प्राप्त किया है। इसे संकलन प्रभाव कहा जाता है।

5. सामान्यीकरण (Generalization)- उद्दीपकों के परिवर्तित होने पर अनुक्रियाओं का उत्पन्न होना या उद्दीपकों के स्थिर रहने पर अनुक्रिया प्रतिमान का परिवर्तित होना सामान्यीकरण कहा जाता

है। प्राचीन एवं नैमित्तिक दोनों ही अनुबंधनों में यह गोचर पाया जाता है। सामान्यीकरण प्रमुख प्रकार निम्नांकित है -

(i) उद्दीपक सामान्यीकरण (StimulusGeneralization) - इससे तात्पर्य है कि यदि मूल अनुबंधित उद्दीपक (CS) से भिन्न परन्तु मिलता-जुलता नया उद्दीपक प्रस्तुत किया गया जाय तो उसके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया प्राप्त होगी। जैसे, यदि एक निश्चित तीव्रता के प्रकाश (जैसे, L5) के प्रति अनुक्रिया अनुबंधित की जाय और बाद में कुछ नये प्रकाश उद्दीपक (जैसे, L1,L2,L3,L4,L5,L6,L7,L8,L9) प्रस्तुत किये जायें तो उनके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया हो सकती है। जैसे-जैसे मूल एवं नवीन उद्दीपकों में समानता सम्बन्धी वृद्धि होगी, वैसे-वैसे अनुबंधित के उत्पन्न होने की संभावना भी बढ़ेगी (Hovland, 1937; Candland, 1968)। इससे स्पष्ट है कि उद्दीपक सामान्यीकरण की प्रवणता या मात्रा मूल एवं नवीन उद्दीपकों में समानता की मात्रा पर निर्भर करती है (इप्सटीन एवं वर्सटीन, 1966; वर्सटीन, 1967)। गटमैन एवं कैलिश (1956) ने कबूतरों पर प्रयोग करके नैमित्तिक अनुबंधन में भी यह गोचर प्राप्त किया है।

(ii) अनुक्रिया सामान्यीकरण (ResponseGeneralization) - इस गोचर की दशा मे उद्दीपक पूर्ववत् रहता है, परन्तु अनुक्रिया प्रतिमान परिवर्तित होता है। जैसे- बेखटरेव (1932) ने कुत्ते को विद्युत आघात से बचने के लिए एक पैर उठाने का प्रशिक्षण दिया और उसके बाद वह पैर बाँध दिया गया। इस बार प्रयोज्य ने आघात से बचने के लिए दूसरा पैर उठाया जबकि वह पैर उठाने का प्रशिक्षण नहीं दिया गया था। यहाँ स्पष्ट है कि उद्दीपक पूर्ववत् था परन्तु अनुक्रिया का प्रतिमान परिवर्तित हो गया। अन्य लोगों ने भी यह गोचर प्राप्त किया है (जैसे-जैसे, 1924; हल 1943; बानू, 1958)।

(iii) विलोप का सामान्यीकरण (Generalizationof Extinction) - यदि एक दशा में दो या दो से अधिक अनुक्रियाओं का अनुबंधन कराया गया हो तो उसमें किसी एक का विलोप कर देने से अन्य अनुक्रियाओं का विलोप सरलता से हो जाता है (वास एवं हल, 1934)।

6. विभेदन (Discrimination) - दिए गए उद्दीपकों में अन्तर सीखकर उनके प्रति भिन्न-भिन्न व्यवहार करना विभेदन कहा जाता है। जैसे, यदि एक उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया करने पर पुरस्कार और दूसरे के प्रति अनुक्रिया करने पर दण्ड दिया जाय तो प्रयोज्य प्रथम को धनात्मक उद्दीपक (S+) एवं द्वितीय को नकारात्मक उद्दीपक (S-)के रूप में मूल्यांकित करेगा और नकारात्मक उद्दीपक के प्रति व्यवहार करना बन्द कर देगा। अर्थात् वह दोनों उद्दीपकों में अन्तर स्थापित कर लेगा। लैश्ले (1930) ने चूहों पर प्रयोग करके निष्कर्ष दिया है कि विभेदन अधिगम में पुनर्बलन का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यदि प्रशिक्षणोपरान्त कुछ नवीन उद्दीपक प्रस्तुत किये जायें तो प्रयोज्य उनमें से उस उद्दीपक के प्रति व्यवहार करेगा जो प्रशिक्षण अवधि के धनात्मक उद्दीपक (S+) से मिलता-जुलता होगा। अन्य उद्दीपकों के प्रति वह व्यवहार नहीं करेगा। इससे संकेत मिल रहा है कि विभेदन सीखना

सामान्यीकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। इस गोचर पर अनेक लोगों ने कार्य किया है (जैसे-हल, 1952; स्पेन्स, 1942; हेनिंग, 1962; मैथ्यूज, 1966य मैकिन्टश, 1965)।

7. उच्चक्रम अनुबंधन (Higher Order of Conditioning) - यदि मूल अनुबंधित उद्दीपक (CS) के साथ कोई नया उद्दीपक युग्मित किया जाय तो प्रयोज्य उसके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया (SR) करने लगता है। इस गोचर को उच्च क्रम अनुबंधन का नाम दिया गया है। पैवलाव (1927) एवं बेखटेरव (1932) ने इसका प्रायोगिक अध्ययन भी किया है।

क्रिया प्रसूत अनुबन्ध और शिक्षा Operant Conditioning and Education

क्रिया प्रसूत अधिगम का शिक्षा में कई प्रकार से प्रयोग होता है।

1. **पुनर्बलन (Reinforcement):** इस अधिगम में अभ्यास द्वारा क्रिया पर विशेष बल दिया जाता है। यह आवश्यक है कि शिक्षक बालक को उचित कार्य के लिए समय-समय पर पुनर्बलन करते रहना चाहिए।
2. **सीखने का स्वरूप प्रदान करना (Shaping the Behaviour):**इास सिद्धान्त के माध्यम से शिक्षक बालक के सीखे जाने वाले व्यवहार को स्वरूप प्रदान करता है।
3. **शब्द भण्डार (Vocabulary):** बालकों में शब्द भण्डार को बढ़ाने के लिए क्रियाप्रसूत अधिगम सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है।
4. संतोष**(Satisfaction) :** काम की समाप्ति पर या सफलता मिलने पर प्रसन्नता होती है जिससे संतोष प्राप्त होता है और जो क्रिया को बल देता है।
5. **निदानात्मक शिक्षण (Remedial Training):** क्रिया प्रसूत सिद्धान्त मन्द बुद्धि वाले तथा मानसिक रोगियों को आवश्यक व्यवहार के सीखने में सहायता देता है।
6. **पद विभाजन (Small Steps):**क्रिया प्रसूत अधिगम में सीखी जाने वाली क्रिया को कई छोटे-छोटे सोपानों में बाँट लिया जाता है। शिक्षा में इस विधि का प्रयोग करके सीखने की गति तथा सफलता में वृद्धि की जा सकती है।
7. **अभिक्रमिक अधिगम (Programmed Learning)**: सीखने के अन्तर्गत अभिक्रमित सम्बन्धी विधि प्रकाश में आई है जिसको कि क्रिया प्रसूत अनुबन्ध द्वारा गति दी जा सकती है।
8. **परिणाम की जानकारी (Knowledge of Result):** स्किनर के विचारानुसार यदि व्यक्ति को कार्य के परिणामों की जानकारी होती है तो उसके सीखने में इसका काफी प्रभाव पड़ता है उसका व्यवहार प्रभावित होता है। घर के कार्य में संशाधन का भी छात्र के सीखने की गति तथा गुण पर प्रभाव पड़ता है।

9. **अभिप्रेरणा (Motivation):** स्किनरका यह सिद्धान्त अभिप्रेरणा पर बल देता है। अत: शिक्षक का कार्य हे कि वह बालकों को, विषय-वस्तु के उद्देश्य को स्पष्ट करके, उद्देश्य पूर्ति के लिए प्रोत्साहित करता रहे। बालक सदैव क्रियाशील रहें इसके लिए उन्हें प्ररणाप्रदान करना चाहिए।
10. अभ्यास और पुरनावृत्ति : शिक्षक को बालक को सीखने के लिए अभ्यास एवं पुरावृत्ति जैसीविधियों पर विशेष बल देना चाहिए।

आलोचना

1. मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि पशुओं पर किये गये प्रयोगों के आधार पर उसकी समानता सामाजिक अधिगम परिस्थितियों से कैसे की जा सकती है।
2. क्रिया-प्रसूत (Operant) और उत्तेजक या उद्दीपन प्रसूत (Respondent) में भ्रम रहता है जिससे क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन और उद्दीपन प्रसूत अनुबन्धन में साफ अन्तर नहीं किया जा सकता है।
3. स्किनर ने क्रिया-कलाप और अधिगम (Performance and Learning) में कोई अन्तर नहीं करते हैं जबकि कई मनोवैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पुनर्बलीकरण सीखने की अपेक्षा अक्ष्यत: क्रिया-कलाप को प्रभावित करता है।

7.8 प्राचीन एवं सक्रिय अनुबंधन में अन्तर

दोनों विधियों में पाये जाने वाले अन्तर इस प्रकार हैं –

प्राचीन अनुबंधन	नैमित्तिक अनुबंधन
1. इसके द्वारा सरल व्यवहारों का ही अधिगम होता है। 2. इसमें प्राणी को दो उद्दीपकों के बीच साहर्च सीखना पड़ता है (जैसे, प्रकाश एवं भोजन में सम्बन्ध सीखना)। अतः इसे उद्दीपक प्रकार (S-type) का सीखना कहते हैं। 3. प्राचीन अनुबंधन में उद्दीपकों के बीच सान्निध्य (Contiguity) का प्रभाव साहचर्य पर पड़ता है। अर्थात्, समयकारक (UCS CS का अन्तराल) का इसमें विशेष महत्व है।	1. इसके द्वारा जटिल व्यवहारों का भी अधिगम किया जा सकता है। 2. इसमें उद्दीपक तथा अनुक्रिया में साहचर्य सीखा जाता है। अतः इसे अनुक्रिया-प्रकार (R-type) का अधिगम कहा जाता है। 3. नैमित्तिक अनुबंधन में प्रभाव का नियम कार्य करता है। जैसे, अनुक्रिया करने का पुरस्कार प्राप्त होने पर उद्दीपक अनुक्रिया सम्बन्ध दृढ़ होता है। 4. नैमित्तिक अनुबंधन में प्राणी को स्वयं उचित अनुक्रिया करके पुनर्बलन प्राप्त करना होता

4. प्राचीन अनुबंधन में व्यवहार उत्पन्न होने के लिए उद्दीपक पहले दिया जाता है। इसे प्रतिकृत व्यवहार कहते हैं। 5. प्राचीन अनुबंधन में अनैच्छिक क्रियाओं (Involuntary actions) का ही अधिगम किया जाता हैं। इस पर स्वायत तंत्रिका तंत्र का नियंत्रण रहता है (जैसे, लार स्राव)। 6. यदि प्रत्येक प्रयास में पुरस्कार न दिया जाय तो अनुक्रिया का अनुबंधन कठिन हो जाता है।	है। इसे घटित (Emitted) या संक्रियात्मक (Operant) व्यवहार कहते हैं। 5. नैमित्तिक अनुबंधन में ऐच्छिक क्रियाओं का अधिगम होता है। इन पर केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (CNS) का नियंत्रण रहता है। 6. नैमित्तिक अनुबंधन में सतत के स्थान पर आंशिक पुनर्बलन से भी सरलतापूर्वक अधिगम होता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

11. नैमित्तिक अनुबंधन में _________________ की विशेष भूमिका होती है।
12. कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्राप्त होता है_________________ कहलाता है।
13. किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना _________________ कहलाता है।
14. स्किनर द्वारा दी गयी पुनर्बलन अनुसूची के नाम लिखिए।

7.9 सारांश

अधिगम या सीखना एक बहुत ही सामान्य और आम प्रचलित प्रक्रिया है। जन्म के तुरन्त बाद से ही व्यक्ति सीखना प्रारम्भ कर देता है और फिर जीवनपर्यन्त कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है।

सामान्य अर्थ में 'सीखना' व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। (Learning refers to change in behaviour) परन्तु सभी तरह के व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना या अधिगम नहीं कहा जा सकता।

थॉर्नडाइक ने सीखना की व्याख्या करते हुए कहा है कि जब कोई उद्दीपक (stimulus) व्यक्ति के सामने दिया जाता है तो उसके प्रति वह अनुक्रिया (response) करता है। अनुक्रिया सही होने से उसका संबंध (connection) उसी विशेष उद्दीपक (stimulus) के साथ हो जाता है। इस संबंध को सीखना (learning) कहा जाता है तथा इस तरह की विचारधारा को संबंधवाद (Connectionism) की संज्ञा दी गयी है।

थॉर्नडाइक ने सीखने के सिद्धान्त में तीन महत्वपूर्ण नियमों का वर्णन किया है

1. अभ्यास का नियम (Law of exercise)
2. तत्परता का नियम (Law of readiness)
3. प्रभाव का नियम (Law of effect)

अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों की तुलना में अनुबंधन पर अत्यधिक प्रायोगिक कार्य हुए हैं। अनुबंधन को ऐसे साहचर्यात्मक या अधिगम प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें नवीन प्रकार के उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों का निर्माण करना सीखा जाता है।

पैवलव ने अपने सीखने के सिद्धान्त का आधार अनुबन्धन (conditioning) को माना है। पैवलव के सीखने के इस अनुबन्धन सिद्धान्त को क्लासिकी अनुबन्धन सिद्धान्त (classical conditioning theory) या प्रतिवादी अनुबन्धन सिद्धान्त (Respondent conditioning theory) या टाइप- एस (Type- S) अनुबन्धन भी कहा जाता है। इसे क्लासिकी अनुबंधन इसलिए कहा जाता है क्योंकि पैवलव ने ही अधिगम का क्लासिक प्रयोगशाला अध्ययन किया था।

क्लासिकल अनुबन्धन में प्रतिमान की शुरूआत एक उद्दीपक (stimulus) तथा इससे उत्पन्न अनुक्रिया के बीच के संबंध से होता है। पैवलव के अनुसार जब कोई स्वाभाविक एवं उपर्युक्त उद्दीपक को जीव के सामने उपस्थित किया जाता है तो वह उसके प्रति एक स्वाभाविक अनुक्रिया (natural response) करता है।

स्किनर (1938) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त नैमित्तिक अनुबंधन कहा जाता है। यह प्राचीन अनुबंधन की अपेक्षा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक है।

नैमित्तिक अनुबंधन या संक्रियात्मक अनुबंधन में प्रबलनों की विशेष भूमिका होती है। सक्रिय अनुबंधन की अवधारणा यह है कि प्राणी को वांछित उद्दीपक या परिणाम प्राप्त करने या कष्टादायक उद्दीपक से बचने के लिए प्रत्याशित, उचित या सही अनुक्रिया (व्यवहार) पहले स्वयं प्रदर्शित करना होता है। अर्थात् उद्दीपक या परिस्थिति के निमित्त प्राणी द्वारा किया जाने वाला व्यवहार ही परिणाम का स्वरूप निर्धारित करता है।

7.10 शब्दावली

1. **अधिगम:**यह वह प्रक्रिया है जिसमें एक उत्तेजना, वस्तु या परिस्थिति के द्वारा एक प्रत्युत्तर प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यह प्रत्युत्तर एक प्राकृतिक या सामान्य प्रत्युत्त है।
2. **प्राचीन अनुबंधन:**उत्तेजना और अनुक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित करने की प्रथम विधि प्राचीन अनुबंधन है। यह वह अधिगम प्रक्रिया है जिसमें एक स्वाभाविक एवं एक तटस्थ

उद्दीपक के बीच साहचर्य सीखकर अनुबंधित उद्दीपक के प्रति वह अनुक्रिया प्राणी करने लगता है जो पहले केवल अनानुबंधित उद्दीपक के प्रति करता था।

3. **नैमित्तिक अनुबंधन:**नैमित्तिक अनुबंधन वह कोई भी सीखना है, जिसमें अनुक्रिया अवलम्बित पुनर्बलन पर आधारित हो तथा जिसमें प्रयोगात्मक रूप से परिभाषित विकल्पों का चयन सम्मिलित न हो।
4. **पुरस्कार प्रशिक्षण:**पुरस्कार प्रशिक्षण से तात्पर्य है, उचित या शुद्ध अनुक्रिया करके पुरस्कार या धनात्मक पुनर्बलन प्राप्त करना।
5. **पुनर्बलन:** ऐसी कोई वस्तु, कारक या उद्दीपक है जिसके प्रयुक्त किये जाने पर प्रक्रिया की सम्भाव्यता प्रभावित होती है।
6. **धनात्मक पुनर्बलन:**कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्रयोज्य को प्राप्त होता है।
7. **नकारात्मक पुनर्बलन:**किसी उचित व्यवहार के प्रदर्शित होने पर कष्टप्रद वस्तु की आपूर्ति रोक देना।
8. **धनात्मक दण्ड:**किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर किसी कष्टप्रद वस्तु या उद्दीपक को प्रस्तुत करना।
9. **नकारात्मक दण्ड:**किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना।
10. **विलोप:**किसी सीखी हुयी अनुक्रिया को समाप्त या बन्द करने से है।
11. **स्वतः पुनरावर्तन:**अनुबंध के प्रयोगों में यह देखा गया है कि यदि विलोप की प्रक्रिया पूरी होने के कुछ समय बाद अनुबंधित उद्दीपक पुनः प्रस्तुत किया जाय तो अनुबंधित अनुक्रिया की कुछ न कुछ मात्रा प्रदर्शित होती है। इस गोचर को स्वतः पुनरावर्तन कहते हैं।
12. **अवरोध:**जिन कारकों का अनुबंधन पर बाधक प्रभाव पड़ता है उन्हें अवरोध का नाम दिया जाता है।
13. **संकलन प्रभाव:**यदि एक अनुक्रिया दो अनुबंधित उद्दीपकों के प्रति अनुबंधित की गयी है, तो दोनों उद्दीपकों को एक साथ प्रस्तुत करने पर प्राप्त होने वाली अनुक्रिया की मात्रा में वृद्धि होती है, इसे संकलन प्रभाव कहते हैं।
14. **सामान्यीकरण:**उद्दीपकों के परिवर्तित होने पर अनुक्रियाओं का उत्पन्न होना या उद्दीपकों के स्थिर रहने पर अनुक्रिया प्रतिमान का परिवर्तित होने सामान्यीकरण कहा जाता है।
15. **विभेदन:**दिये गये उद्दीपकों में अन्तर सीखकर उनके प्रति भिन्न-भिन्न व्यवहार करना विभेदन कहलाता है।

16.**उच्चक्रम अनुबंधन:**यदि मूल अनुबंधित उद्दीपक के साथ कोई नया उद्दीपक युग्मित किया जाय तो प्रयोज्य उसके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया करने लगता है। इस गोचर को उच्चक्रम अनुबंधन कहा जाता है।

7.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. व्यवहार
2. थॉर्नडाइक ने सीखने के तीन महत्वपूर्ण नियमों के नाम हैं-
    i. अभ्यास का नियम (Law of exercise)
    ii. तत्परता का नियम (Law of readiness)
    iii. प्रभाव का नियम (Law of effect)
3. थॉर्नडाइक ने सीखने के सहायक नियमों के नाम हैं-
    i. बहुक्रिया (Multiple response)
    ii. तत्परता या मनोवृत्ति(Set or attitude)
    iii. सादृश्य अनुक्रिया (Response by similarity or analogy)
    iv. साहचर्यात्मक स्थानान्तरण (Associative shifting)
4. थार्नडाइक के अधिगम के सिद्धांत को प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत तथा सबन्धवाद के नाम से जाना जाता है।
5. उपयोग का नियम
6. अनुपयोग का नियम
7. शरीर- वैज्ञानिक
8. अनुबन्धित अनुक्रिया सिद्धान्त
9. अनुबन्धन
10. स्वाभाविक उद्दीपक
11. प्रबलनों
12. धनात्मक पुनर्बलन
13. नकारात्मक दण्ड
14. स्किनर द्वारा दी गयी पुनर्बलन अनुसूची के नाम निम्न हैं-
    i. स्थिर अनुपात सूची
    ii. परिवर्तनीय अनुपात अनुसूची
    iii. स्थिर अन्तराल अनुसूची
    iv. परिवर्तनीय अन्तराल अनुसूची

7.12 सन्दर्भग्रन्थ

1. मंगल, एस0 के0 (2009) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, पी0एच0आई0 लर्निग प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. गुप्ता एस.पी. ;(2002) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
3. शुक्ल ओ.पी.;(2002) शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन।
4. सिंह , अरूण कुमार (.2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. चौहान, एस0 एस0 (2000) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

7.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये।
2. क्रिया प्रसूत अनुबंधन का वर्णन कीजिए।
3. क्रिया प्रसूत अनुबंधन में प्रबलनों की विशेष भूमिका का वर्णन कीजिए।
4. प्राचीन अनुबंधन क्या है? प्राचीन एवं क्रिया प्रसूत अनुबंधन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

इकाई-8गेस्टाल्ट मनोविज्ञान, अधिगम के संज्ञानात्मक सिद्धान्त तथा उनके शैक्षिक निहितार्थ
Gestalt Psychology, Cognitive Theories of Learning andtheir Educational Implications

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्त
 8.3.1 अन्तर्दृष्टि अधिगम का गेस्टाल्ट सिद्धान्त
 8.3.2 उत्पत्ति
 8.3.3 अन्तर्दृष्टि या सूझ अधिगम के सिद्धान्त
 8.3.4 कोहलर के प्रयोग
 8.3.5 अन्तर्दृष्टि अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ
8.4 कुर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त
 8.4.1 शैक्षिक निहितार्थ
8.5 टालमैन का चिन्ह अधिगम सिद्धान्त
 8.5.1 अधिगम के प्रकार
 8.5.2 टालमैन के अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है जिसमें संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण तथा चिन्तन प्रक्रिया के बारे में अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक दृष्टिकोण व्यवहार के

उद्देश्य, जानने की प्रक्रिया, समझने की प्रक्रिया तथा तर्क पर जोर देता है। सर्वप्रथम गेस्टाल्ट मनोविज्ञानवादियों ने संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के सिद्धांतों एवं विचारों का प्रत्यक्षीकरण, अधिगम तथा चिन्तन में प्रयोग किया। वे इन प्रक्रियाओं की व्याख्या में पारम्परिक सम्बन्धवादी सिद्धान्त के विरूद्ध थे। सन् 1930 तथा 1940 के दशक में ई0 सी0 टालमैन ने अधिगम के संज्ञानात्मक दृष्टिकोण तथा व्यवहारवादी सिद्धान्तों के संयुक्त रूप में प्रस्तुत किया। टालमैन ने विभिन्न प्रकार की भूल-भूलैयाओं (Mazes)में चूहों के ऊपर अनेक प्रयोग करके अपने अधिगम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उसका मानना था कि चूहे उपकरणों के संज्ञानात्मक नक्शा (Cognitive Map)का विकास करके अधिगम करते हैं।

संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्तों के अनुसार शिक्षण एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अधिगमकर्त्ता में समझ या अन्तर्दृष्टि का विकास किया जाता है। इन सिद्धान्तों के अनुसार अधिगम अधिगमकर्ता के संज्ञानात्मक क्षेत्र की पुर्नरचना हैं जिसके द्वारा अर्थपूर्ण सम्बन्धों के निर्माण पर जोर दिया जाता है। कक्षागत अनुभव विद्यार्थियों के व्यक्तिगत उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से सम्बन्धित होते है। विद्यार्थियों को अर्थपूर्ण सम्बन्धों को खोजने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ताकि वे अपने प्रयास के परिणामों के बारे में जान सके। संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्तों के अन्तर्गत मैक्स वरथीमर (Max Wertheimer)बोल्फगैंग कोहलर (Wolfgang Kohlar)तथा कुर्ट कोफ्का (Kurt Koffka)के द्वारा गेस्टाल्ट सिद्धान्त या अर्न्तदृष्टि सिद्धान्त, कुर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त तथा टालमैन का चिन्ह सिद्धान्त आते हैं जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है-

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्तों के बारे में जान पाऐंगे।
2. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान तथा इसके शैक्षिक निहितार्थ से परिचित हो पाऐंगे।
3. अधिगम के कुर्ट लेविन के क्षेत्र सिद्धान्त तथा इसके शैक्षिक निहितार्थों को स्पष्ट कर पाऐंगे।
4. टालमैन के अधिगम सिद्धान्त तथा इसके शैक्षिक निहितार्थों की व्याख्या कर पाऐंगे।

8.3 संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्त

8.3.1 अन्तर्दृष्टि अधिगम का गेस्टाल्ट सिद्धान्त Gestalt Theory of Learning by Insight

गेस्टाल्ट (Gestalt) जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है समग्न, पूर्णाकृतिक या पूर्णाकार (whole)। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार ''एक गेस्टाल्ट या आकृति पूर्ण होती है, जिसकी विशिष्टताएँ

पूर्णता की आन्तरिक प्रकृति द्वारा निर्धारित होती है, न कि उसके वैयक्तिक तत्वों की विशेषताओं द्वारा।''

(A Gestalt or form is a whole, which characteristics are determined not by characteristics of its individual elements, but by the internal nature of the whole).

इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों में मैक्स वरथीमर (Max Wertheimer), वोल्फगेंग कोहलर (Wolfgang Kohler) तथा कुर्ट कोफ्का (Kurt Koffka) प्रमुख गेस्टाल्ट मनोविज्ञानवादी हैं। इसे अन्तर्दृष्टि सिद्धान्त या सूझ सिद्धान्त (Insight Theory) के नाम से भी जाना जाता है। गेस्टाल्टवादियो के अनुसार प्राणी (Organism) सम्पूर्ण परिस्थिति को एक समग्न रूप में देखता है। जब कोई समस्या आती है तब प्राणी उद्दीपक को अनुक्रिया से सम्बन्धित करके नहीं सीखता है वरन् वह सम्पूर्ण परिस्थितियों को देखकर समस्या का समाधान खोजता है। प्राणी समस्या का समाधान अपनी अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ (Insight) से खोजता है। सूझ से तात्पर्य किसी परिस्थिति में विभिन्न पक्षों के बीच सम्बन्धों को देखने अथवा परिस्थिति के केन्द्रीय भाव को समझ लेने से है। सूझ प्रायः अचानक अथवा स्वतः स्फूर्त (Spontaneous) ढंग से आती है तथा इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती है।

गेस्टाल्टवादियों के अनुसार नवीन सूझ की क्षमता विकसित करने की अथवा पूराने सूझ को सुधारने की प्रक्रिया को सीखना या अधिगम कहा जाता है। इसके अन्तर्गत प्राणी सम्पूर्ण परिस्थिति (Gestalt) के प्रत्यक्षीकरण के प्रति अनुक्रिया करता है। गेस्टाल्टवादियों ने सूझ की प्रक्रिया को किसी परिस्थिति में आये परिवर्तनों या घटित घटनाओं को ऐसे क्रमबद्ध व तार्किक रूप से व्यवस्थित करने के रूप मे स्वीकार किया हैं जिससें परिस्थिति के विभिन्न अंगो के बीच संरचनागत सम्बन्ध (Structural Relationship) ज्ञात हो सके। वस्तुतः व्यवहारवादियों के द्वारा प्रस्तुत की गई अवधारणाओं से असंतुष्ट होकर संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम को यांन्त्रिक क्रिया (उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त) के स्थान पर जानबूझकर (Deliberate) तथा चेतन प्रयास (Conscious Effect) वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया। गेस्टाल्टावादियों के अनुसार ''हम अवयवी (Whole) से अवयव (Part) की ओर जाते है, अवयव से अवयवी की ओर नहीं है।''

8.3.2 उत्पत्ति

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का उद्भव बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में जर्मनी में हुआ था। सर्वप्रथम गेस्टाल्ट का सम्प्रत्यय क्रिश्चियन वोन हरेनफेल्स (Von Ehrenfels) द्वारा दिया गया था। गेस्टाल्ट का विचार जोहान वोल्फगैंग (Johann Wolfgang) वोन गोथे (Von Goethe) इमैन्युल काँट (Immanuel Kant)] मैक्स वरथीमर (Max Wertheimer) तथा अर्नेस्ट मैक (Ernst Mach) के सिद्धान्तों में पाया जाता है।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में कुर्ट कोफ्का, मैक्स बरथीमर तथा बोल्फगैंग कोहलर (कार्ल स्टूम्फ के छात्र) ने वस्तु या परिस्थिति को उसके सम्पूर्ण अवयवों या तत्वों के साथ समग्न रूप मे देखा। उनके अनुसार सर्वप्रथम प्रत्यक्षीकरण (Perception) प्राणी को सम्पूर्ण (Whole) का होता है, तत्पश्चात् प्राणी को प्रत्यक्षीकरण किसी वस्तु या परिस्थिति के अवयवों (Parts) का होता है।

8.3.3 अन्तर्दृष्टि या सूझ अधिगम के सिद्धान्त Principles of Insight Learning

1. **प्रैग्नॉज का सिद्धान्त (Principles of Pragnanz)** - गेस्टाल्ट अधिगम का मौलिक सिद्धान्त प्रैग्नॉज का सिद्धान्त है, जिसके अनुसार हम अपने अनुभवों को नियमित, क्रमिक, सममित तथा सरल रूप में व्यवस्थित करने की प्रवृत्ति रखते हैं। इस मौलिक सिद्धान्त के आधार पर गेस्टाल्टवादियों ने निम्नलिखित नियमों का प्रतिपादन किया है-
   i. **समाप्ति या समापन का नियम (Law of Closure)-** इस नियम के अनुसार मस्तिष्क नियमितता में वृद्धि हेतु या नियमित आकृति ;त्महनसंत थ्पहनतमद्ध बनाने हेतु उन तत्वों या अवयवों का अनुभव कर सकता है जो इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं है।
   ii. **समानता का नियम (Law of Similarity)-** इस नियम के अनुसार मस्तिष्क रूप, रंग या आकार के आधार पर समान तत्वों को सम्पूर्णता या सम्पूर्ण वस्तु के रूप में व्यवस्थित कर सकता है।
   iii. **समीपता का नियम (Law of Proximity)**-मस्तिष्क स्थानीय (Spatial) या कालिक (Temporal)समीपता के आधार पर विभिन्न तत्वों को सम्पूर्ण रूप या आकृति में प्रत्यक्षीकरण कर सकता है।
   iv. **सममितता का नियम (Law of Symmetry)-** इसे आकृति-आधार सम्बन्ध का नियम (Figure-Ground Relationship) भी कहते हैं। सममित आकृति या प्रतिबिम्ब दूर-दूर होने के बावजूद भी सम्पूर्ण रूप मे दिखती है।
   v. **निरन्तरता का नियम (Law of Continuity)**-मस्तिष्क दृश्य, श्रव्य एवं गतिकीय प्रतिरूपों (Patterns) को निरन्तर बनाये रखता है।
   vi. **सामान्य भाग्य या परिणाम का नियम (Law of Common Fate)-** मस्तिष्क एक ही दिशा मे घूमते हुए तत्वों को सम्पूर्ण रूप में या ईकाई के रूप में देखता है।
2. **सम्पूर्णता का सिद्धान्त (Principles of Totality)**-मस्तिष्क सचेतन अनुभवों को तत्वों या टुकड़ो में न लेकर समग्न या सम्पूर्ण रूप में देखता है या प्रत्यक्षीकरण करता है, जिसमें प्रत्येक तत्व-अनुभव सम्पूर्ण अनुभव से अर्थपूर्ण एवं नवीन ढंग से सम्बन्धित रहता है।

3. **मनोभौतिक समरूपता का सिद्धान्त (Principles of Psychophysical Isomorphism)-** इस सिद्धान्त के अनुसार सचेतन अनुभव (Conscious Experience) तथा मस्तिष्क क्रियाओं (Cerebral activity) के बीच सहसम्बन्ध पाया जाता है।

8.3.4 कोहलर के प्रयोग (Kohlar's Experiment)

कोहलर के प्रयोगों द्वारा उसके सूझ के सिद्धान्त को समझा जा सकता है। कोहलर के द्वारा चिम्पांजियो (Apes) पर अनेक प्रयोग किये गये, जिनमें चार प्रयोग प्रमुख हैं जिनका विवरण प्रस्तुत हैं-

प्रयोग-1

इस प्रयोग में एक चिम्पांजी, जिसका नाम सुल्तान था, एक पिंजरे में बंद कर दिया गया तथा पिंजरे के अन्दर एक छड़ी रख दी गयी थी। पिंजरे के बाहर कुछ केले रख दिये गये थे। केला देखकर सुल्तान पिंजरे के अन्दर उछल-कूद करना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु केला उसकी पहुँच से बाहर था। अचानक वह उठा तथा छड़ी की मदद से केलों को पिंजड़े के पास खींच लिया तथा केले प्राप्त करने में सफल हो गया। सुल्तान को केले व छड़ी के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सूझ मिल गई।

प्रयोग-2

एक दूसरे प्रयोग में पिंजरे के अन्दर दो छड़ी रख दिये गये थे जिन्हें एक दुसरे से जोड़ा जा सकता था। पिंजरे के बाहर पहले प्रयोग की तुलना में कुछ ज्यादा दूरी पर केले रख दिये गये थे, जिन्हें दोनो छड़ी की सहायता से पिंजरे के अन्दर खींचा जा सकता था। सुल्तान ने पहले एक छड़ी की सहायता से बारी-बारी से केलों को खींचने को प्रयास किया परन्तु वह असफल रहा। अचानक वह दोनों छडियों को एक दूसरे से जोड़ने में सफल हो गया तथा इस संयुक्त छड़ी की सहायता से केलों को पिंजड़े के अन्दर खींचने में सफल हो गया।

प्रयोग-3

इस प्रयोग में प्रायोगिक परिस्थिति में कुछ परिवर्तन कर दिया गया था। केलों को पिजंडे के छत से टाँग दिया गया था जिसके अन्दर सुल्तान बंद था तथा एक बक्सा रखा हुआ था। सुल्तान ने पहले उछलकर केले प्राप्त करने का प्रयास किया परन्तु वह केले प्राप्त करने में असफल रहा। अचानक उसने बक्से को केलों के नीचे रखकर तथा बक्से के ऊपर चढ़ कर केले प्राप्त करने मं े सफल हो गया। इस तरह से सुल्तान ने सूझ की सहायता से केलों तथा बक्से के बीच सम्बन्ध स्थापित किया।

प्रयोग-4

इस प्रयोग मे कोहलर ने पिजंड़े के अन्दर एक ही जगह दो बक्से रख दिये तथा सुल्तान कोदोनों बक्सों की सहायता से केलों को प्राप्त करना था क्योकिं इस प्रयोग में केले प्रयोग-3 की तुलना में अधिक ऊँचाई पर टाँगे गये थें। कुछ देर की असफल उछलकूद के बाद अचानक सुल्तान ने बक्सों को एक दूसरे के ऊपर रखकर तथा उस पर चढ़कर केले प्राप्त करने में सफल हो गया।

कोहलर के उपरोक्त प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि सूझ उत्पन्न होने लिए समस्या के विभिन्न तत्वों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना तथा सम्पूर्ण परिस्थिति पर विचार करना आवश्यक है। दूसरा निष्कर्ष यह निकला कि शुरूआत में समस्या के समाधान हेतु प्रयास एवं त्रुटि विधि का प्रयोग किया गया, जिसमें असफल होने पर सूझ का प्रयोग किया गया। परन्तु एक बार सूझ सिद्धान्त का प्रयोग करने के उपरान्त आगे समस्या समाधान में सूझ के प्रयोग की सम्भावना बढ़ जाती है। अधिगम के गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त में मुख्य बिन्दु 'सूझ का विकास' है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति तथा उसके आस-पास का वातावरण मनोवैज्ञनिक क्षेत्र बनाते है, जिसमें व्यक्ति सम्पूर्ण क्षेत्र की पुर्नरचना एवं प्रत्यक्षीकरण करके सूझ उत्पन्न करता है।

वस्तुतः कोहलर तथा अन्य गेस्टाल्टवादियों के द्वारा किये गये प्रयोगों ने समस्या-समाधान (Problem Solving) जैसे उच्च स्तरीय अधिगम में बुद्धि तथा अन्य संज्ञानात्मक योग्यताओं की भूमिका को स्पष्ट कर दिया। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार अधिगम एक उद्देश्यपूर्ण, खोजपरक तथा सृजनात्मक क्रिया है, जिसमें प्राणी विशिष्ट उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया न करके सम्पूर्ण परिस्थिति तथा उसमें विद्यमान प्रमुख तत्वों के बीच अर्थपूर्ण सम्बन्धों (Meaningful Relationships) के प्रति अनुक्रिया करता है। यर्कस (Yerks)(1927) के अनुसार, सूझ अधिगम की निम्नलिखित विशेषताएँ है-

1. समस्यात्मक परिस्थिति का होना तथा सर्वेक्षण आवश्यक है।
2. समस्यात्मक परिस्थिति के प्रति उत्सुकता, पुनः शान्त तथा एकाग्रचित अवधान अभिवृत्ति।
3. प्रयास अनुक्रिया (Trial Mode of Response)
4. एक प्रयास के असफल या अपर्याप्त रहने पर अचानक दूसरी प्रयास या अनुक्रिया करना।
5. प्रायः लक्ष्य तथा समस्या समाधान के प्रति अवधान केन्द्रित करना।
6. क्रान्तिक बिन्दु की उपस्थिति जिस पर प्राणी अचानक, प्रत्यक्ष तथा निश्चित रूप से आवश्यक अनुक्रिया सम्पादित करता है।
7. अनुकूल या उपयुक्त अनुक्रिया का निरन्तर प्रयास करना।
8. समस्यात्मक परिस्थिति के प्रमुख तत्वों के बीच अर्थपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता तथा क्षमता का होना।

9. सूझ अधिगम का प्रमुख सिद्धान्त प्रैग्नाँज (Pragnanz) का सिद्धान्त है। इसके अनुसार अधिगम की प्रक्रिया घटित होने के लिए प्राणी के मनोवैज्ञानिक क्षेत्र मे तनाव या बलों के बीच असंतुलन का होना जरूरी है तथा प्राणी अधिगम प्रक्रिया के द्वारा उस तनाव को दूर करता है।

8.3.5 अन्तर्दृष्टि अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ

Educational Implication of Theory of Insight Learning

शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों में गेस्टाल्ट सिद्धान्त के निम्नलिखित उपयोग सम्भव हैं-

1. **अवयवी से अवयव की तरफ (From Whole to Parts)**
   शिक्षक को किसी प्रकरण, उपप्रकरण, समस्या, चित्र आदि का प्रस्तुतीकरण आंशिक रूप से नहीं बल्कि समग्न रूप से करना चहिए। छात्र अंशो ;चंतजेद्ध को नहीं बल्कि समग्न परिस्थिति या प्रकरण को पहले समझाता है। शिक्षक को कक्षा में पढ़ाते समय समस्या या प्रकरण के विभिन्न तत्वों के बीच उपस्थित अर्थपूर्ण सम्बंधो पर जोर देना चाहिए। शिक्षक को कक्षा में बालकों को ऐसे अवसर देने चाहिए, जिसमें बालक स्वयं परिस्थितियों का अवलोकन करके तथा सूझ के द्वारा खोज करके सीखने की तरफ अग्रसर हो सके। शिक्षक को छात्र के सम्मुख समस्या को पूर्ण रूप में प्रस्तुत करना चाहिए जैसे-गणित में पूरी समस्या प्रस्तुत की जाय, न कि उसका सिर्फ खण्ड या सूत्र।

2. **समस्या-समाधान उपागम (Problem-Solving Approach)** गेस्टाल्ट सिद्धान्त स्मरण एवं रहने की प्रवृत्ति का विरोध करता है। शिक्षक के कक्षा मे छात्रों को अपनी चिन्तन शक्ति, सृजनात्मक अवलोकन की क्षमता तथा समस्या-समाधान की योग्यताओं के प्रयोग के अवसर प्रदान करने चाहिए। छात्रों को उद्देश्यपूर्ण, खोजपरक एवं सृजनात्मक अधिगम के अवसर मिलने चाहिए। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में 'क्या' तथा 'कब' की जगह 'क्यो' तथा 'कैसे' को महत्व दिया जाना चाहिए। कक्षा में शिक्षक के द्वारा हयूरिस्टिक विधि, खोज विधि प्रोजेक्ट विधि, विश्लेषणात्मक विधि, समस्या-समाधान विधि इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए। इन विधियों के द्वारा छात्र-छात्राओं में बुद्धि, सृजनात्मकता, कल्पना, तर्क शक्ति, समस्या-समाधान की योग्यता इत्यदि संज्ञानात्मक योग्यताओ का विकास किया जा सकता है।
3. **एकीकृत उपागम (Integrated Approach)**
   पाठ्यक्रम या पाठ्यवस्तु के सभी तत्वों के बीच अर्थपूर्ण सम्बन्ध होना चाहिएं। पाठ्यक्रम के सभी विषयों एवं क्रियाओं के बीच समवन्य होना चाहिए। यह सिद्धान्त अनुभवों के

संगठन एवं पूर्णता पर बल देता है, इसलिए शिक्षक को शिक्षार्थी के अनुभवों को पुर्नसंगठित करने में सहायता देनी चाहिए।

4. **अभिप्रेरणात्मक पक्ष (Motivational Aspect)**

   शिक्षक द्वारा छात्र में जिज्ञासा तथा रूचि उत्पन्न करने का प्रयास किया जाना चाहिए। अध्यापक द्वारा विद्यार्थी को तब तक प्रोत्साहित करते रहना चाहिए, जब तक सूझ के द्वारा समस्या का हल न निकल आए। छात्र को प्रत्येक कक्षागत क्रिया के विशिष्ट उद्देश्य से पूर्णरूपेण परिचित कराया जाना चाहिए। शिक्षक को अपने छा्त्रों कालक्ष्य एवं सम्बन्धित चरों के बीच अर्थपूर्ण सम्बन्ध विकसित करने में मदद करनी चाहिए। शिक्षक को अपने पाठ का प्रस्तुतीकरण छा्त्रों के पूर्व ज्ञान से जोड़कर करना चाहिए जिससे छात्रों की रूचि एवं अवधान पाठ में बना रहें। यह विधि कठिन विषयों जैसे गणित, विज्ञान आदि के लिए उपयोगी सिद्ध हुयी है। गणित का नया प्रश्न हल करने में छात्र अपनी सूझ द्वारा सूत्रों या तरीकों का प्रयोग करता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. गेस्टाल्ट (Gestalt) किस भाषा का शब्द है?
2. गेस्टाल्ट (Gestalt) शब्द का क्या है अर्थ है?
3. अर्न्तदृष्टि अधिगम सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया है?
4. गेस्टाल्टवादियों के अनुसार अधिगम क्या है?
5. अन्तर्दृष्टि अधिगम के सिद्धान्तों के नाम लिखिए।
6. गेस्टाल्ट अधिगम का मौलिक सिद्धान्त कौन सा है? प्रैग्नॉज का सिद्धान्त है।
7. प्रैग्नॉज के सिद्धान्त के आधार पर गेस्टाल्टवादियों ने किन नियमों का प्रतिपादन किया?

8.4 कुर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त Kurt Lewin's Field Theory of Learning

कुर्ट लेविन (1890-1947) एक जर्मन मनोवैज्ञानिक थे, जिन्होंने पावलोव, स्कीनर आदि से अलग हटकर व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या उसके जीवन क्षेत्र (Life Space)के आधार पर किया। एक व्यक्ति का जीवन क्षेत्र उसके मनोवैज्ञानिक बलों पर निर्भर करता है। इसमें व्यक्ति, उसकी जरूरतें, तनाव, विचार तथा उसका वातावरण आते है। लेविन के अनुसार, एक व्यक्ति अपने जीवन क्षेत्र के केन्द्र-बिन्दु पर होता है और उसका प्रभाव निरन्तर उस पर पड़ता है। लेविन के अनुसार, ''जीवन क्षेत्र

में होने वाले किसी भी परिवर्तन या परिमार्जन को व्यवहार या अधिगम कहते है।'' (Behavior or learning means any change or modification in life space).वातावरण का तात्पर्य प्राकृतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञनिक वातावरण से है, जिसमें व्यक्ति लगातार संर्घष करता रहता है तथा उससे प्रभावित होता है।

कुर्ट लेविन के संज्ञानात्मक क्षेत्र सिद्धान्त को क्षेत्र मनोविज्ञान (Field Psychology)टोपोलोजिकल मनोविज्ञान (Topological Psychology) या वेक्टर मनोविज्ञान (Vector Psychology)भी कहते हैं। कुर्ट लेविन के अनुसार क्षेत्र का तात्पर्य मानव के उस सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक जगत् से है जिसके अर्न्तगत वह रहता है तथा किसी समय विशेष में भ्रमण करता है। इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक संसार में व्यक्ति स्वयं, उसके विचार, तथ्य, धारणायें, कल्पनायें, विश्वास तथा इच्छाएँ इत्यदि आती है। यह क्षेत्र प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग होता है।

लेविन के अनुसार, व्यक्ति के अपने कुछ आन्तरिक बल या आवश्यकताएँ होती है जबकि क्षेत्र के अपने कुछ दबाव (Pressures), खिचांव (Pulls) या माँग (Demands) होती हैं जो परस्पर एक दूसरे के साथ अन्तः क्रिया करके एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यक्ति क्षेत्र के जिन खीचावों या बलों के प्रति अनुक्रिया करता है उसे ही व्यक्ति का जीवन क्षेत्र (Life Space) कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की कुछ आवश्यकताएँ या आकांक्षा होती है जो व्यक्ति के व्यवहार की दिशा निर्धारित करती हैं तथा वह दिशा व्यक्ति को लक्ष्य (Goal) की ओर मोड़ देती हैं, जो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं। व्यक्ति जब तक अवरोधों (Barriers) को पार करके लक्ष्य (Goal) प्राप्त नही कर लेता, तब तक उसे पूरा करने के लिए निरन्तर प्रत्यनशील रहता है। लक्ष्य प्राप्ति के पश्चात व्यक्ति पुनः अपने वातावरण में लौट आता है, जब तक कि पुनः नयी आकांक्षा या आवश्यकता उत्पन न हों।

क्षेत्र मनोविज्ञान में वेक्टर (Vector) प्रत्यय के द्वारा लेविन ने किसी लक्ष्य (Goal) को प्राप्त करने के लिए जीवन स्पेस (Life Space) में विद्यमान प्रवृत्तियों की सापेक्षिक सामर्थ्यो (Relative Strengths) को इंगित करने के लिए प्रयुक्त किया। लेविन के क्षेत्र सिद्धान्त में वैलेन्स (Valance) विभिन्न क्षेत्रों की तथा आकर्षण शक्तियों (Attracting Forces)तथा निकर्षण शक्तियों (Repelling Forces) को बताते हैं। लेविन के अनुसार, वैलेन्स दो प्रकार के होते है- धनात्मक तथा ऋणात्मक। प्राणी धनात्मक वैलेन्स वाली वस्तु को प्राप्त करना चाहता है तथा ऋणात्मक वैलेन्स वाली वस्तु से दूर रहना चाहता है।

जीवन क्षेत्र में विद्यमान दबावों व खिचावो से प्रभावित होते हुए व्यक्ति अपने लक्ष्य की प्राप्ति में आ रही बाधाओं का निराकरण करता है। बार-बार की सफलता से व्यक्ति का आकांक्षा स्तर ऊपर उठता है तथा बार-बार की असफलता से आकांक्षा स्तर नीचे गिरता है। नीचे दिये चित्र द्वारा व्यक्ति, क्षेत्र, जीवन क्षेत्र तथा वेक्टर के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया हैं।

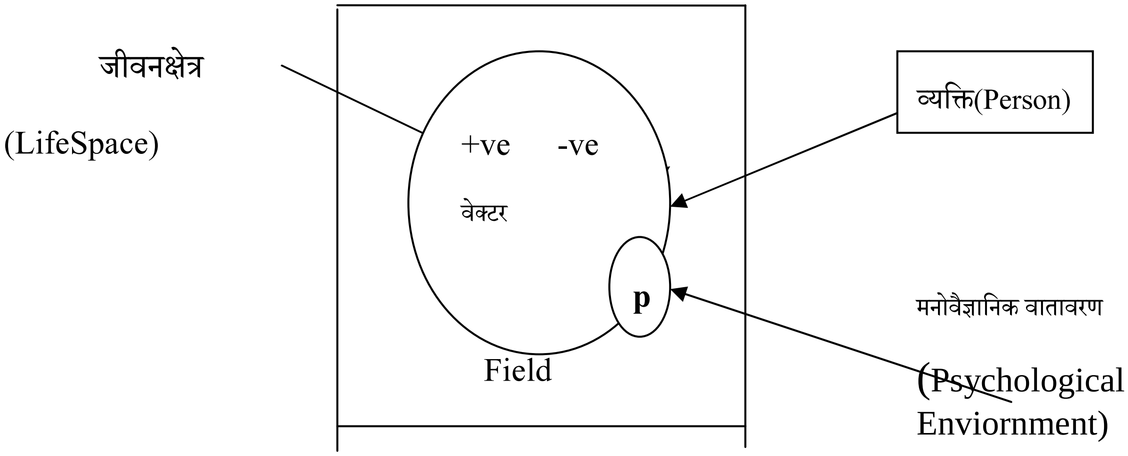

(लेविन के विभिन्न प्रत्ययों का रेखाचित्रीय निरुपण)

स्रोत: गुप्ता (2004), पृ0 335।

लेविन के अनुसार, जीवन क्षेत्र के संज्ञानात्मक संरचना में परिवर्तन ही अधिगम या सूझ का विकास हैं। (Development of insightful learning is a change in cognitive structure of life space). अधिगम प्रक्रिया के फलस्वरूप प्राणी के जीवन क्षेत्र मे विभेदकता (Differentiation) आती रहती है, अर्थात् अधिगम के द्वारा प्राणी अपने जीवन क्षेत्र को यथासम्भव विभेदक बनाने का प्रयास करता रहता है। बचपन में बालक कम विभेदक होता है, परन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता है उसका प्रत्यक्षण क्षेत्र (Perceptual Field) विभदेक तथा व्यापक होता जाता है। किसी समस्या के आने पर व्यक्ति तनाव में आ जाता है तथा उसका तनाव ही समस्या समाधान की आवश्यकता को जन्म देता है। यह आवश्यकता ही प्राणी को अपने जीवन क्षेत्र को पुर्नगठित करने अथवा उसमें संशोधन करने के लिए क्रियाशील बनाती है। परिणास्वरूप समस्या समाधान के लिए एक नई अन्तर्दृष्टि या सूझ मिलती है। इस सूझ का विकास या संज्ञानात्मक संरचना मंे वांछित परिवर्तन ही अधिगम है, परन्तु यह परिवर्तन सदैव ही केवल एक बार के उद्बोधन से नहीं आ पाते हैं। अतः प्रायः संज्ञानात्मक संरचना में वांछित परिवर्तन हेतु प्रयासों की पुनरावृत्ति की अवश्यकता होती है, परन्तु अधिक पुनरावृत्ति अधिगम मे सहायक नहीं होती, बल्कि संज्ञानात्मक संरचनाएँ अव्यवस्थित हो सकती हैं।

8.4.1 शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications)

लेविन के अनुसार सीखने की क्रिया में लक्ष्य, अभिप्रेरणा, आकांक्षा तथा वातावरणीय परिस्थितियों की प्रमुख भूमिका होती है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सम्पूर्ण परिस्थिति के प्रत्यक्षण एवं

अवलोकन पर जोर देता हैं, जो समस्या-समाधान की ओर अग्रसर करती हैं। लेविन के अनुसार सीखना समस्याओं का समाधान करना है। शिक्षक अपने छात्रों को अधिगम के लक्ष्यों तथा बाधाओं को स्पष्ट रूप से बताये तथा लक्ष्यों को सरल रूप में प्रस्तुत करें। कुछ प्रमुख शैक्षिक निहितार्थ निम्नलिखित हैं-

1. **पुरस्कार तथा दण्ड Reward & Punishment**

   लेविन ने अधिगम की क्रिया में मनोवैज्ञनिक वातावरण तथा प्रेरणा को अधिक महत्व दिया है। लेविन ने अधिगम के मार्ग मे आने वाली बाधाओं को भी महत्व दिया है। पुरस्कार से प्रेरित होकर बालक किसी कार्य को करने के लिए अधिक प्रत्यनशील होता है तथा दण्ड के भय से बालक अधिगम के प्रेरित नहीं होता है। अतः दण्ड देते समय ध्यान रखा जाना चाहिए कि यह बालकों मे भय उत्पन्न न करें। अतः शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में दण्ड तथा पुरस्कार का प्रयोग सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिए।

2. **सफलता तथा असफलता (Success & Failure)**

   इस सिद्धान्त के अनुसार किसी कार्य की सफलता या असफलता व्यक्ति के अहं समावेशन (Ego Involvement)आकांक्षा स्तर तथा मनोवैज्ञानिक संतुष्टि पर निर्भर करती हैं। व्यक्ति के आकांक्षा स्तर के बहुत कम या अधिक होने पर सीखने की प्रक्रिया में बाधाएँ (Hurdles) आती हैं। अतः छात्रों के आकांक्षा स्तर को एक उपयुक्त स्तर (Reasonable Level) पर बनाये रखना चहिए। लेविन के अनुसार, बहुत आसान कार्य में सफलता तथा बहुत कठिन कार्य मे विफलता क्रमशः सफलता तथा विफलता अनुभव नहीं है। अधिगमकर्त्ता के लिए सफलता का अर्थ निम्न हैं-

   - लक्ष्यों की प्राप्ति।
   - लक्ष्यों के क्षेत्र में प्रवेश या लक्ष्यों की प्राप्ति के समीप पहुँचना।
   - लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में प्रगति करना।
   - सामाजिक रूप से स्वीकृत लक्ष्य का चुनाव करना।

3. **अभिप्रेरणा (Motivation)**

   किसी कार्य या क्रिया की पुनरावृत्ति संज्ञानात्मक संरचना तथा आवश्यकता-तनाव प्रणाली दोनों मे परिवर्तन लाती है। परिणास्वरूप लक्ष्य के आकर्षण मे परिवर्तन आ जाता है। लेविन इसे लक्ष्य के आकर्षण वैलेन्स (Goal attractiveness valence) मे परिवर्तन कहते हैं। वैलेन्स निम्नलिखित में से किसी एक प्रकार से परिवर्तित हो सकता है-

   - लक्ष्य के आकर्षण में परिवर्तन हो सकता है, यदि लक्ष्य से सम्बन्धित क्रिया या कार्य की पुनरावृत्ति व्यक्ति के परितृत्त (Satiate) होने तक हो।

- सफलता तथा विफलता के पूर्व अनुभव लक्ष्यों के चुनाव को प्रभावित करते हैं।

अतः शिक्षक द्वारा कक्षा में पुनरावृत्ति या अभ्यास कार्य की बारम्बारता सुनिश्चित करनी चाहिए जिससे छात्रों में लक्ष्य प्रप्ति की अभिप्रेरणा बनी रहे तथा छात्रों द्वारा अच्छे लक्ष्यों के चुनाव को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में अभिप्रेरणा पर विशेष जोर देता है।

4. स्मृति **(Memory)**- लेविन क्षेत्र सिद्धान्त स्मृति के बारे में निम्नलिखित तथ्य बताता है-
   - कार्य जो उद्देश्यपूर्ण ;ळवंस व्तपमदजमकद्ध या अर्थपूर्ण नहीं होते है, उनका स्मरण नही हो पाता है।
   - मनोवैज्ञानिक तनाव के कारण अपूर्ण कार्य पूर्ण कार्य की तुलना मे स्मृति में अच्छी तरह से बने रहते हैं।
   - वह कार्य जो अनेक आवश्यकताओं की संतुष्टि प्रदान करते हैं, स्मृति में अच्छी तरह से बने रहते हैं तथा जो कार्य सिर्फ एक आवश्यकता की संतुष्टि करते हैं, स्मृति में लम्बे समय तक नहीं रह पाते हैं।

अतः अध्यापक को चाहिए कि वह अधिगम के लिए उचित वातावरण प्रस्तुत करें तथा छात्रों के सम्मुख सीखने के एवं शिक्षण के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करें। वह छात्रों को समस्या का स्पष्ट ज्ञान भी दें जिससे छात्र उसे हल करने के लिए प्रेरित हों। यह सिद्धान्त सीखने में अवरोधों के महत्व को स्वीकार करता है। अतः सीखने के कार्य में या अधिगम क्रिया में कुछ कठिनाई का होना आवश्यक है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8. कुर्ट लेविन के संज्ञानात्मक क्षेत्र सिद्धान्त को और किस नाम से जाना जाता है?
9. लेविन के अनुसार, अधिगम क्या है?

8.5 टालमैन का चिन्ह अधिगम सिद्धान्त (Tolman's Sign Learning Theory)

एडवर्ड चेस टालमैन (Edward Chace Tolman) (1886-1956) ने सीखने के व्यवहारवादी (Behaviorisitc) तथा संज्ञानात्मक सिद्धान्तों (Cognitive Theories) के एक सम्मिश्रण के रूप में चिन्ह अधिगम सिद्धान्त (Sign Learning Theory) का प्रतिपादन सन् 1932 में किया। उसके अनुसार व्यवहार वस्तुनिष्ठ रूप से निर्धारणीय उद्देश्य के अनुसार नियमित होता है। टालमैन ने

व्यवहार का अध्ययन करने के लिए आणविक अभिगमन (Molecular Approach) के स्थान पर एकीकृत अभिगमन (Molar Approach) का प्रयोग किया। उसने व्यवहारवादियों की तरह व्यवहार को छोटे-छोटे इकाइयों में विभक्त करने के स्थान पर उसका समग्न रूप में (as a whole) अध्ययन करने पर बल दिया। टालमैन ने व्यवहार को उद्देश्यपूर्ण परिपूर्णता वाली संज्ञानात्मक प्रक्रिया के रूप में अध्ययन करने पर बल दिया। लक्ष्य केन्द्रित व्यवहार पर बल देने के कारण ही टालमैन के अधिगम सिद्धान्त को उद्देश्यपूर्ण व्यवहारवाद (Purposive Theory)से भी जाना जाता है। साथ ही इस सिद्धान्त को अन्य नामों जैसे चिन्ह गेस्टाल्ट सिद्धान्त, प्रत्याशा सिद्धान्त तथा उद्देश्य सिद्धान्त से जाना जाता है। उसके सिद्धान्त का वर्णन उसकी पुस्तकों Purposive behaviour in Animals & Men (1932), Drives Towards War (1942) तथा Collected papers in Psychology (1951) में मिलता हैं।

टालमैन के अनुसार सीखने की प्रक्रिया में प्राणी अपनी संज्ञानात्मक योग्यताओं (Cognitive Abilities) के द्वारा सम्पूर्ण उद्दीपक परिस्थिति का एक मानसिक चित्र (Cognitive Map) विकसित कर लेता हैं। संज्ञानात्मक चित्र किसी दी गई परिस्थिति में लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उपलब्ध सूचनाओं का एक मानसिक विवरण होता है। लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्राणी उपलब्ध विभिन्न पथों में से सबसे छोटे पथ का अनुसरण करता है। इसे टालमैन ने न्यूनतम प्रयास का नियम (Principle of Least Effect) का नाम दिया। अपने प्रयासों तथा अन्वेषण से प्राणी एक घटना को दूसरी घटना से अथवा एक संकेत या चिन्ह (Sign) को दूसरे संकेत से जोड़ने का ढंग खोजने का प्रयास करता है। इसीलिए टालमैन के अधिगम सिद्धान्त को चिन्ह अधिगम या चिन्ह समग्न अधिगम सिद्धान्त (Sign Gestalt Learning Theory)के नाम से जाना जाता है।

टालमैन के अनुसार प्राणी सीखने की प्रक्रिया के दौरान विशिष्ट उद्दीपकों के लिए विशिष्ट अनुक्रिया करना नहीं सीखता है, अपितु प्राणी लक्ष्य प्राप्ति हेतु उन स्थानों को सीखता है जहाँ पर वस्तुएँ होती हैं अर्थात् प्राणी किसी निश्चित अनुक्रिया क्रम (Fixed Movements Sequence)को न सीखकर समग्न परिस्थितियों को समझकर वांछित लक्ष्य की प्रप्ति हेतु पूर्ण पथ को सीखता है तथा वातावरण की आवश्यकतानुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। टालमैन ने अधिगम व्यवहार को उद्देश्यपरक माना तथा प्राणी के व्यवहार में प्रशिक्षण एवं अभ्यास या अनुभव के द्वारा परिमार्जन सम्भव है। सीखते समय प्राणी अनुक्रिया केन्द्रित न होकर लक्ष्य केन्द्रित होता है। परिणामस्वरूप सीखते समय प्राणी अपने प्रयासों के प्रतिफल के रूप में कुछ पाने की प्रत्याशा अवश्य रखता है, जिसे टालमैन ने प्रत्याशित पुरस्कार कहा है। प्रतिफल के रूप में प्रत्याशित पुरस्कार पाने पर अधिगम व्यवहार पुष्ट होता है जबकि प्रत्याशित पुरस्कार नहीं पाने पर अधिगम व्यवहार में अवरोध एवं भग्नाशा उत्पन्न होता है। टालमैन ने लुप्त अधिगम का भी समप्रत्यय दिया जो व्यवहार में परिलक्षित होने के पूर्ण काफी समय तक सुप्तावस्था में रहता है परन्तु प्राणी को उपयुक्त परिस्थिति या अभिप्रेरणा मिलने पर वह इस प्रकार का लुप्त अधिगम प्रर्दशित करनें में सक्षम हो पाता है।

8.5.1 अधिगम के प्रकार (Types of Learning)

टालमैन ने अपने अधिगम सिद्धान्त का सन् 1949 में पुनरीक्षण किया तथा अपने शोध पत्र "There is more than one kind of learning"में अधिगम के छः प्रकारों में विभेद किया था जिनका विवरण नीचे दिया गया हैं-

1. **कैथेक्सिस (Cathexis)**
   कैथेक्सिस से अभिप्राय एक ऐसी अर्जित प्रवृत्ति से है जिसमें प्राणी कुछ विशेष वस्तुओं (धनात्मक या ऋणात्मक) को कुछ विशेष प्रणोदों (जैसे भूख) से सम्बन्धित करता है।

2. **तुल्यता विश्वास(Equivalence Belief)-**
   इस प्रकार के अधिगम में प्राणी किसी सहायक लक्ष्य या वस्तु से वही प्रेरणा प्राप्त करता है जो वह मुख्य लक्ष्य या वस्तु से प्राप्त करता है। टालमैन के अनुसार तुल्यता विश्वास अधिगम में दैहिक प्रणोद (Physiological Drive) की तुलना में सामाजिक प्रणोद (Social Drive) की भूमिका अधिक प्रभावी होता है।

3. **क्षेत्र प्रत्याशा (Field Expectancy)**

   क्षेत्र प्रत्याशा अधिगम तब विकसित होता है जब कोई निश्चित वातारण परिस्थिति उसके सम्मुख बार-बार प्रस्तुत होती है। जैसे रास्ते में किसी विशेष वस्तु या चिन्ह के मिलने पर प्राणी आशा करता है कि आगे भी कोई अन्य वस्तु या चिन्ह प्राप्त होगा। इस प्रकार के अधिगम मे एकमात्र पुरस्कार, प्राणी की प्रत्याशा (Expectancy) का पूरा होना है।

4. **क्षेत्र संज्ञान ढंग(Field Cognition Mode)-**

   इस प्रकार के अधिगम में प्राणी समस्या समाधान हेतु अपने प्रत्याक्षणात्मक क्षेत्र (Perceptual Field) को नये ढंग से सुव्यवास्थित करता है।

5. **प्रणोद विभेदन(Drive Discrimination)**
   इस प्रकार के अधिगम में प्राणी विभिन्न प्रकार के प्रणोदों मे विभेद करते हुए प्रत्येक के लिए एक विशेष प्रकार की अनुक्रिया करना सीखता है अर्थात् प्रणोद तथा सम्बन्धित अनुक्रिया के बीच निश्चित सम्बन्ध पाया जाता है।
6. **पेशीय प्रारूप(Motor Pattern)**
   इस प्रकार के अधिगम में प्राणी के व्यवहार के साथ कुछ विशेष पेशीय पारूप अनुबन्धित (Conditioned) हो जाते है।

8.5.2 टालमैन के अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ

Education Implications of Tolman's Theory of Learning

टालमैन चिन्ह अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक अभिप्रेतार्थ निम्नलिखित हैं-

1. अध्यापक को अधिगम क्रिया के लक्ष्य तथा महत्व को भलीभँाति छात्रों के सम्मुख स्पष्ट कर देना चाहिए, जिससे बालक अधिगम में रूचि ले सकें।
2. यह सिद्धान्त प्रारम्भिक कक्षाओं के अधिगम के लिए अधिक उपयोगी है।
3. छात्रों को अधिगम के दौरान संज्ञानात्मक नक्शा विकसित करने में शिक्षक को मदद करनी चहिए। छात्रों को सिखाते समय समझ तथा अवबोध पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।
4. शिक्षक को उद्देश्य निर्देशित क्रियाओं के माध्यम से शिक्षण करना चाहिए।
5. शिक्षक के द्वारा अधिगम में वाहय पुरस्कार या अभिप्रेरणा के साथ ही साथ आन्तरिक अभिप्रेरणा पर भी बल दिया जाना चाहिए।
6. बालकों को ऐसे अवसर मिलने चाहिए जिसमें छात्र स्वयं अपने प्रत्यक्षणात्मक क्षेत्र का पुर्नसंगठन कर सकें तथा अपने व्यवहार में परिमार्जन कर सकें।
7. शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में वातारणीय परिस्थितियों, प्रणोद, पूर्व अधिगम या अनुभव इत्यादि पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।
8. प्रभावी अधिगम हेतु शिक्षण की क्रियाओं तथा विधियों पर बल दिया जाना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

10. चिन्ह अधिगम सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया है?
11. टालमैन के अनुसार व्यवहार कैसे नियमित होता है?
12. टालमैन ने व्यवहार का अध्ययन करने के लिए .... के स्थान पर................... का प्रयोग किया।
13. टालमैन के अधिगम को कितने प्रकारों में विभेद किया?
14. टालमैन द्वारा दिए गये अधिगम के प्रकारों के नाम लिखिए।

8.6 सारांश

अधिगम अभ्यास तथा अनुभव के द्वारा अधिगमकर्त्ता के व्यवहार में वांछित एवं अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन की प्रक्रिया है। इसे विभिन्न वर्गो में बाँटा जा सकता है, जैसे अनुबन्धित, प्रयास एवं त्रुटि, सूझ अधिगम, श्रृखंला अधिगम, शब्दिक अधिगम, पेशीय कौशल अधिगम, संज्ञानात्मक अधिगम इत्यादि।

गेस्टाल्टवादियों का सूझ अधिगम सिद्धान्त मानव अधिगम को उद्देश्यपूर्ण, लक्ष्य केन्द्रित तथा व्यक्ति के संज्ञानात्मक शक्तियों पर आधारित मानता है। कोहलर ने चिम्पांजी पर किये गये प्रयोगों के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाला-

1. अधिगमकर्त्ता अधिगम क्रियाओं एवं परिस्थितियों को समग्न रूप में (as a whole) देखता है
2. परिस्थिति में सम्मिलित सभी प्रमुख कारकों एवं सम्बन्धों का मूल्यांकन करता है।
3. तत्पश्चात समस्या के अन्तर्दृष्टि या सूझ समाधान की खोज करता है।

कुर्ट लेविन के अनुसार, अधिगमकर्त्ता के प्रतयक्षणात्मक संगठन या जीवन क्षेत्र में पुर्नसंगठन या परिमार्जन की प्रक्रिया अधिगम है। उसने अधिगम में अभिप्रेरणा तथा लक्ष्य के आर्कषण की भूमिका को बताया। व्यक्ति वांछित लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु अपने जीवन स्पेस के संरचना को पुर्नसंगठित करता है। किसी व्यक्ति का भावी व्यवहार इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने संज्ञानात्मक संरचना में पूर्व अनुभव तथा नयी सूझ के आधार पर किस तरह वांछित परिवर्तन लाता है।

टालमैन के अनुसार अधिगम का आधार अवबोध तथा संज्ञानात्मक नक्शे या चित्र का विकास है, न कि अनुबन्धन या एस-आर सम्बन्ध का निर्माण करना। एक व्यक्ति किसी विशेष उद्दीपक के प्रति विशेष अनुक्रिया करना नहीं सीखता है अपितु उन स्थानों को सीखने का प्रयास करता है जहाँ वस्तुएँ होती है। वस्तुतः अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति अनुक्रिया केन्द्रित न होकर लक्ष्य केन्द्रित होता है। प्राणी किसी निश्चित अनुक्रिया क्रम को न सीखकर समग्न परिस्थितियों को समझकर वान्छित लक्ष्य की प्रप्ति हेतु विभिन्न वैकल्पिक पथों में से किसी एक न्यूनतम पथ का चुनाव करना सीखता है तथा वातावरण की आवश्यकतानुसार अपने व्यवहार में परिर्वतन लाने का प्रयास करता है। टालमैन ने लुप्त अधिगम का भी समप्रत्य दिया जिसे प्राणी उपयुक्त परिस्थिति या अभिप्रेरणा मिलने पर वह इस प्रकार का लुप्त अधिगम प्रर्दशित करनें में सक्षम हो पाता है।

8.7 शब्दावली

1. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है जिसमें संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण तथा चिन्तन प्रक्रिया के बारे में अध्ययन किया जाता है।
2. गेस्टाल्ट (Gestalt)-जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है समग्न, पूर्णाकृतिक या पूर्णाकार।
3. जीवन क्षेत्र - व्यक्ति जिन खीचावों या बलों के प्रति अनुक्रिया करता है उसे ही व्यक्ति का जीवन क्षेत्र (Life Space) कहते हैं

8.8 स्वमूल्यांकनहेतुप्रश्नोंकेउत्तर

1. गेस्टाल्ट जर्मन भाषा का शब्द है।
2. गेस्टाल्ट (Gestalt) शब्द का अर्थ है समग्न, पूर्णाकृतिक या पूर्णाकार।
3. इस सिद्धान्त के प्रतिपादक मैक्स वरथीमर, वोल्फगेंग कोहलर तथा कुर्ट कोफ्का हैं।
4. गेस्टाल्टवादियों के अनुसार नवीन सूझ की क्षमता विकसित करने की अथवा पूराने सूझ को सुधारने की प्रक्रिया को सीखना या अधिगम कहा जाता है।
5. अन्तर्दृष्टि अधिगम के सिद्धान्तों के नाम हैं-
   i. प्रैग्नॉज का सिद्धान्त
   ii. सम्पूर्णता का सिद्धान्त
   iii. मनोभौतिक समरूपता का सिद्धान्त
6. गेस्टाल्ट अधिगम का मौलिक सिद्धान्त प्रैग्नॉज का सिद्धान्त है।
7. प्रैग्नाँज के सिद्धान्त के आधार पर गेस्टाल्टवादियों ने निम्नलिखित नियमों का प्रतिपादन किया है-
   i. समाप्ति या समापन का नियम
   ii. समानता का नियम
   iii. समीपता का नियम
   iv. सममितता का नियम
   v. निरन्तरता का नियम
   vi. सामान्य भाग्य या परिणाम का नियम
8. कुर्ट लेविन के संज्ञानात्मक क्षेत्र सिद्धान्त को क्षेत्र मनोविज्ञान]टोपोलोजिकल मनोविज्ञान या वेक्टर मनोविज्ञान भी कहते हैं।
9. लेविन के अनुसार, जीवन क्षेत्र के संज्ञानात्मक संरचना में परिवर्तन ही अधिगम या सूझ का विकास है।
10. एडवर्ड चेस टालमैन ने चिन्ह अधिगम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
11. टालमैन के अनुसार व्यवहार वस्तुनिष्ठ रूप से निर्धारणीय उद्देश्य के अनुसार नियमित होता है।
12. आणविक अभिगमन , एकीकृत अभिगमन
13. टालमैन के अधिगम को छः प्रकारों में विभेद किया।
14. टालमैन द्वारा दिए गये अधिगम के प्रकारों के नाम हैं-
    i. कैथेक्सिस
    ii. तुल्यता विश्वास
    iii. क्षेत्र प्रत्याशा
    iv. क्षेत्र संज्ञान ढंग

v. प्रणोद विभेदन
vi. पेशीय प्रारूप

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अग्रवाल, जे0 सी0 (2003) एसेन्शियलस ऑफ एजुकेशनल साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. बोल्स, राबर्ट सी0 (1973) लर्निंग थियरी, होल्ट रिनेहार्ट, न्यूयार्क।
3. चौहान, एस0 एस0 (2000) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
4. गुप्ता, एस0 पी0 (2004) उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
5. हेलेन, आई. स्केन्डर (1968) कन्टेमपोरेरी एजुकेशनल साइकोलोजी, जाँन विली एण्ड सन्स, न्यूयार्क।
6. हिलगार्ड, ई0 आर0 तथा बोवर, जी0 एस0 (1974) थियरीज ऑफ लर्निंग (चतुर्थ सं.), एप्लेटन, न्यूयार्क।
7. लेविन, एम0 जे0 (1970) साइकोलोजी-ए बायोग्रैफिकल एप्रोच, मैकग्रा-हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क।
8. मंगल, एस0 के0 (2009) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, पी0एच0आई0 लर्निगं प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
9. सिंह , अरूण कुमार (.2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
10. टालमैन, ई0 सी0 (1932) परपजिव बिहैवियर इन एनिमल्स एण्ड मेन, सेन्चूरी पब्लिकेशन, न्यूयार्क।

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. सूझ अधिगम सिद्धान्त तथा इसके शैक्षिक निहितार्थ की व्याख्या कीजिए।
2. गेस्टाल्ट अधिगम सिद्धान्त के प्रमुख नियमों को लिखिए तथा उसका शैक्षिक अभिप्रेतार्थ भी बतलाइए।
3. टालमैन के चिन्ह अधिगम सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए तथा इसके शैक्षिक निहितार्थ का वर्णन कीजिए।
4. टालमैन के अनुसार अधिगम के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
5. कुर्ट लेविन के क्षेत्र अधिगम सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। इसके शैक्षिक अभिप्रेतार्थ का भी वर्णन कीजिए।

6. अधिगम की प्रक्रिया में सूझ के महत्व को स्पष्ट कीजिए। इस सम्बन्ध में किये गये कुछ प्रयोगों का भी वर्णन कीजिए।

इकाई 9-गेनेकीसीखनेकीदशायें,मैसलोकासीखनेकामानवीयमनोविज्ञान

Gagne's Conditions of Learning, Maslow's Humanistic Psychology Of Learning

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 सीखने की दशाएं (राबर्ट गेने)
9.4 सीखने का अर्थ (गेने)
9.5 सीखने की परिभाषाएं
9.6 अधिगम से संबंधित अवधारणाएं
9.7 गेनेद्वारा प्रतिपादित समस्या समाधान सीखने की श्रृंखला
9.8 मानव अधिगम योग्यताओं का वर्गीकरण
9.9 मानवीय परिवेश में सीखना
9.10 मैसलो का आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त
9.11 मैसलो की आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त की आलोचना
9.12 सारांश
9.13 शब्दावली
9.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.16 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.17 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

सीखना एक व्यापक शब्द है। सीखना जन्मजात प्रतिक्रियाओं पर आधारित होता है। व्यक्ति जन्मजात प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर जो भी क्रियाएं करता है, वह अपनी परिस्थितियों से समायोजन स्थापित करने के लिए होती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सीखना एक मानसिक प्रक्रिया है। मानसिक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति व्यवहारों के द्वारा होती है। मानव-व्यवहार अनुभवों के आधार पर

परिवर्तित और परिमार्जित होता रहता है। सीखने की प्रक्रिया में दो तत्व निहित हैं-परिपक्वता और पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता। उदाहरणार्थ-यदि बालक के सामने एक जलती अंगीठी रखी है तो वह उसे जिज्ञासावश छूता है और छूते ही उसका हाथ जल जाता है, इसलिए वह हाथ को तेजी से हटा लेता है और कभी उसके पास नहीं जाता, क्योंकि उसने अपने अनुभव से सीख लिया कि आग उसे जला देगी। इस प्रकार सीखना पूर्व अनुभव द्वारा व्यवहार में प्रगतिशील परिवर्तन है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि सीखना ही शिक्षा है। सीखना और शिक्षा एक ही क्रिया की ओर संकेत करते हैं। दोनों क्रियाएं जीवन में सदा और सर्वत्र चलती रहती है। बालक परिपक्वता की ओर बढ़ता हुआ, अपने अनुभवों से लाभ उठाता हुआ, वातावरण के प्रति जो उपयुक्त प्रतिक्रिया करता है, वही 'सीखना' है। जैसा कि ब्लेयर, जोन्स और सिम्पसन ने कहा है-

''व्यवहार में कोई परिवर्तन जो अनुभवों का परिणाम है और जिसके फलस्वरूप व्यक्ति आने वाली स्थितियों का भिन्न प्रकार से सामना करता है-सीखना कहलाता है।''

"Any change of behaviour which is a result of experience and which causes people to face later situations differently may be called learning."

सीखने के स्वरूप एवं अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई परिभाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः-

1. सीखने का अर्थ व सीखने की दशाएं की दशाओ को समझ सकोगे (रावर्ट गेने)।
2. अधिगम से संबंधित अवधारणाएं व गेने द्वारा प्रतिपादित समस्या समाधान सीखने की श्रृंखला को समझ सकेगे।
3. मानव अधिगम योग्यताओं के वर्गीकरण को समझ सकेगे।
4. गेने द्वारा प्रतिपादित समस्या समाधान सीखने की श्रृंखला को जान पायगे।
5. मैसलो का आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त को समझ सकेगे।

9.3 सीखनेकीदशाएं (रावर्टगेने)-

यह सिद्धान्त सीखने के विभिन्न प्रकारों तथा स्तरों को प्रतिपादित करता है। इस वर्गीकरण का महत्व यह है कि विभिन्न प्रकार का सीखना विभिन्न प्रकार के अधिगम के लिए अनुदेशन की आवश्यकता होती है। गेने ने सीखने को पांच मुख्य वर्गो में विभाजित किया है:- मौखिक सूचना, बौद्धिक कौशल, संज्ञात्मक रणनीति, सत्यात्मक कौशल तथा अभिवृत्तियां।

प्रत्येक प्रकार के अधिगम हेतु विभिन्न प्रकार की आन्तरिक व बाह्य दशायें आवश्यक होती हैं। उदाहरण के लिए संज्ञात्मक रणनीति को सीखने व समस्या समाधान हेतु विकसित किये जाने वाले निराकरण को अभ्यास करने के अवसर मिलने चाहिए। अभिवृत्तियों को सीखने हेतु अधिगमकर्ता को विश्वसनीय रोल मॉडल उपलब्ध होने चाहिए अथवा प्रभावशाली तर्कों की आवश्यकता होती है। बौद्धिक कौशलों में अधिगम से संबंधित कार्यो का निराकरण जटिलता के आधार पर पदानुकृमित किया जा सकता है।

गेने के अनुसार बौद्धिक कौशलों हेतु सीखने से संबंधित कार्य इस प्रकार हैं:- सांकेतिक सीखना, उद्दीपन अनुक्रिया सीखना, सरल श्रृंखला का सीखना, शाब्दिक साहचर्य का सीखना, विभेदीकरण सीखना, सम्प्रत्य सीखना, नियम सीखना, समस्या समाधान।

इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त के 9 अनुदेशन से संबंधित क्रियाओं और उनके संगति का संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का उल्लेख भी निम्न प्रकार किया गया है:-

1. अवधान (आवधान की प्राप्ति)
2. प्रत्यांशा (अधिगमकर्ता को उद्देश्यों के बारे में सूचित करना
3. पुनःप्राप्ति (पूर्व अधिगम का प्रत्यास्मरण)
4. चयनात्मक प्रत्यक्षीकरण (उद्दीपक उपस्थिति)
5. शाब्दिक कुटीकरण (अधिगमकर्ता को निर्देशन देना)
6. अनुक्रिया (दक्षता की प्राप्ति)
7. पुर्नवलन (प्रष्टपोषण प्रदान करना)
8. पुनःप्राप्ति (दक्षता का मूल्यांकन)
9. सामान्यीकरण (अधिगमस्थानान्तरण व अधिगम के संबंधों को मजबूत करना)

9.4 सीखनेकाअर्थ (गेने)

गेने के अनुसार मानव-अधिगम एक जटिल प्रक्रिया है। इस जटिलता को समझने के लिए अधिगम की दशाएं व समस्त अनुदेशन क्रियाओं को समझना आवश्यक है। जब तक अधिगम की दशायें पूर्ण नहीं होंगी, तब तक किसी भी अनुक्रिया को सीखा नहीं जा सकता। अधिगम मानवीय बौद्धिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण अवयव है। गेने द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को अधिगम को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है:-

1. अधिगम एक संचयी प्रक्रिया है। अर्थात् सर्वप्रथम हम आसान कार्यो को सीखते हैं, उसके बाद ही जटिल कार्यो को सीख पाते हैं। कोई भी संप्रत्यय सीखने हेतु हम 'सरल से जटिल' सूत्र का अनुसरण करते हैं। मानवीय बौद्धिक विकास मानवीय अभिक्षमता का जटिल निर्माण है।

2. अधिगम के द्वारा एक व्यक्ति समाज का एक कार्यात्मक सदस्य बन सकता है।
3. अधिगम द्वारा विभिन्न प्रकार के मानव व्यवहार को सीखा जा सकता है। अधिगम हेतु व्यक्ति की आन्तरिक दशायें व व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है, जिम्मेदार होती है। अर्थात् अधिगम व्यक्ति के बाह्य व आन्तरिक दशाओं का प्रतिफलन है।

9.5 सीखनेकीपरिभाषाएंDefinitions Of Learning

मॉर्गन और गिलीलैण्ड के अनुसार- ''सीखना, अनुभव के परिणामस्वरूप प्राणी के व्यवहार में कुछ परिमार्जन है, जो कम से कम कुछ समय के लिए प्राणी द्वारा धारण किया जाता है।''

गेट्स व अन्य. सीखनाए अनुभवए और प्रशिक्षण के परिणाम्स्वरुप व्यावहार मे परिर्वतन है।

वुडवर्थ - नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओ को प्राप्त करने की प्रक्रिया सीखने की प्रक्रिया है।

स्किनर - प्रगतिशील व्यवहार दृव्यवस्थापन की प्रक्रिया को सीखना कहते है।

मनोवैज्ञानिक बोआज (Boaz)- ''अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान एवं दृष्टिकोण, सामान्य जीवन की मांगों की पूर्ति के लिए अर्जित करता है।''

"Learning is the process which the individual acquires various habits, knowledge and attitudes that are necessary to meet the demand of life in general." **- Prof. Boaz.**

वुडवर्थ के अनुसार - ''जब किसी नये कार्य का करना सबलीकृत हो जाता है और कालान्तर की क्रियाओं में वह पुनः प्रकट होता है, तो उस नये कार्य का करना सीखना कहलाता है।''

"Learning consists in doing something new provided the new activity is reinforced and reappears in latter activities..." **- Wood Warth.**

9.6 अधिगमसेसंबंधितअवधारणाएं

अधिगम एवं अनुदेशन के प्रति गेने ने निम्नलिखित अभिधारणायें विकसित की हैं:-

1. चूंकि अधिगम एक जटिल व विविधतापूर्ण कार्य है, इसलिए विभिन्न अधिगम परिणाम के लिए अलग-अलग अनुदेशन की आवश्यकता होती है।
2. अधिगम की घटनाएं इस कदर अधिगमकर्ता पर घटित होती हैं कि वे अधिगम या सीखने हेतु विशिष्ट दशाओं को जन्म देती हैं। नये कौशलों को सीखने हेतु जो भी अधिगमकर्ता से

संबंधित आन्तरिक दशायें चाहिए, वे अधिगम की आन्तरिक दशायें कहलाती हैं और जो भी बाह्य उद्दीपकों (वातावरण), जिनकी मदद से आन्तरिक दशायें समर्गित होती हैं, फलस्वरूप अधिगम प्रक्रिया पूर्ण होती हैं, वे अधिगम की बाह्य दशायें कहलाती हैं।

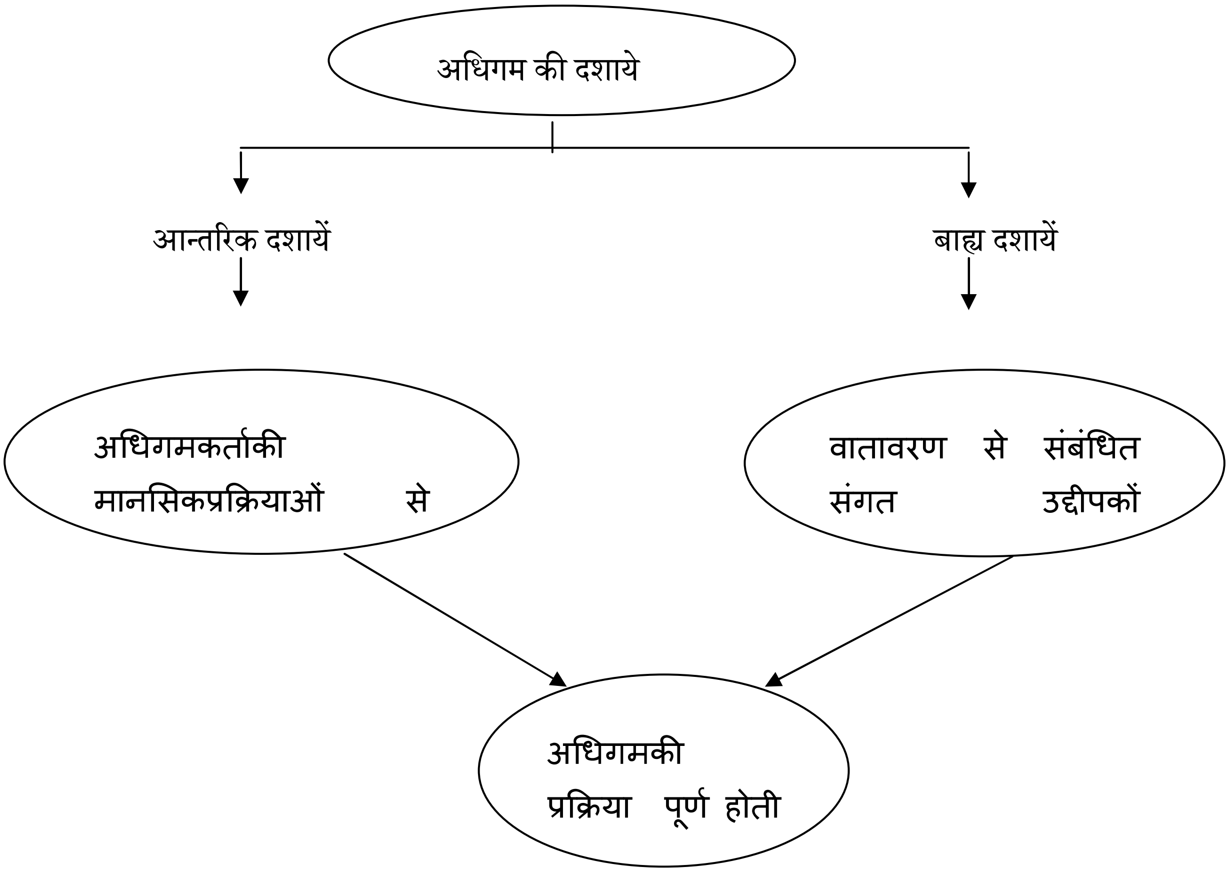

अधिगम का पदानुक्रम यह परिभाषित करता है कि कौन सी बौद्धिक कुशलता सीखी जानी है व इस हेतु अनुदेशन का क्रम क्या होगा ?

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. गेने द्वारा प्रतिपादित कार्य विश्लेषण को कितने भागों में बांटा गया है:-

   a. 6 b. 8

b. 10 d. 12

2. गेने द्वारा प्रतिपादित ‘सरल श्रृंखला का सीखना’ किस पद/क्रम (Steps) पर आता है?

a. प्रथम b. दूसरे
c. तीसरे d. छठे

3. गेने द्वारा प्रतिपादित ‘समस्या समाधान सीखना’ किस पद/क्रम (Steps) पर आता है?

a. दूसरे b. चौथे c. छठे d. आठवें

4. अधिगम की कौन सी दशायें प्रभावित करती हैं ?

a. आन्तरिक दशायें
b. बाह्य दशायें
c. दोनों दशायें

5. ‘‘सीखना आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।’’ यह परिभाषा है:-

a. स्किनर b. वुडअर्थ

c.क्रानवेक d. क्रो और क्रो

9.7 गैनेद्वाराप्रतिपादितसमस्यासमाधानसीखनेकीश्रृंखला

1. सांकेतिक सीखना
2. उद्दीपन अनुक्रिया सीखना
3. शाब्दिक साहचर्य सीखना
4. विभेदीकरण सीखना
5. सप्रत्यय सीखना
6. नियम सीखना
7. समस्या समाधान सीखना

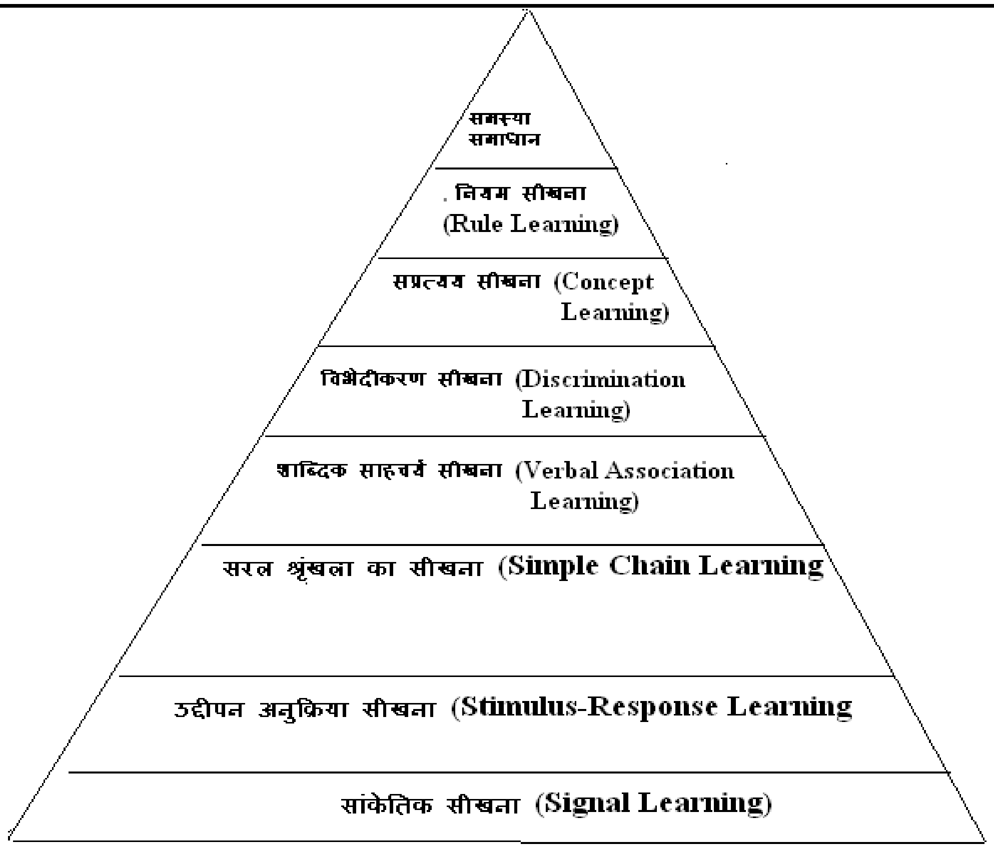

1. सांकेतिक सीखना **(Signal Learning)**

सांकेतिक सीखना क्लासिकी अनपुबंधन सीखना के समान होता है, जिसमें कोई तटस्थ उद्दीपन के साथ कोई स्वाभाविक उद्दीपन (Natural Stimulus or Unconditional Stimulus) को एक साथ कई बार दिया जाता है। जैसे-पैवलव के क्लासिकी अनुबंधन प्रयोग में घंटी की आवाज (एक तटस्थ उद्दीपन) तथा भोजन (स्वाभाविक उद्दीपन) के साथ-साथ कुछ प्रयास तक देने पर कुत्ता मात्र घंटी की आवाज पर लार का स्राव करना सीख गया था। इस तरह का सीखना सांकेतिक सीखना के उदाहरण हैं। पैवलव के क्लासिकी अनुबंधन को मनोवैज्ञानिकों ने टाईप एस अनुबंधन (Type-S Conditioning) भी कहा है।

2. उद्दीपन अनुक्रिया सीखना**(Stimulus Response Learning)**

उद्दीपन अनुक्रिया सीखना में प्राणी किसी उद्दीपन के प्रति एक ऐच्छिक क्रिया (Voluntary Response) किया करता है, जिसका परिणाम उसे सुखद प्राप्त होता है। वह धीरे-धीरे उस उद्दीपन के प्रति वही अनुक्रिया करना सीख जाता है। स्कीनर का क्रिया प्रसूत अनुबंधन था, जिसे साधनात्मक अनुबंधन (Instrumental Conditioning) भी कहा जाता है। जिसमें स्कीनर बॉक्स (Skinner Box) में चूहा लिवर दबाने की प्रक्रिया को सीख लेता है। स्कीनर के साधनात्मक अनुबंधन को मनोवैज्ञानिकों ने टाईप-आर अनुबंध (Type-R Conditioning) भी कहा है।

3. सरल श्रंखला का सीखना **(Stimulus Response Learning)**

इस तरह के सीखना से तात्पर्य एक क्रम (Sequence) में होने वाले अलग-अलग कई उद्दीपन अनुक्रिया संबंधों के सेट से बताया है। इस प्रकार का सीखना पेशीय सीखना (Motor Learning) में पाया जाता है। जैसे-कार चलाना, दरवाजा खोलना, तबला बजाना आदि ऐसे पेशीय सीखना के उदाहरण हैं। जिसमें कई छोटी-छोटी अनुक्रियायें एक क्रम में होती हैं। जब ये सारी अनुक्रियायें आपस में संबंधित होती हैं, तब व्यक्ति कार चला पाता है। दरवाजा खोल पाता है या तबला बजा पाता है।

4. शाब्दिक साहचर्य सीखना **(Verbal Association Learning)**

इसमें व्यक्ति को उद्दीपनों अनुक्रिया का ऐसा क्रम (Sequence) सीखना होता है, जिसमें शाब्दिक अभिव्यक्ति (Verbalization) निहित होती है। जैसे-कविता याद करना, शब्दावली सीखना, कहानी याद करना आदि शाब्दिक साहचर्य के उदाहरण हैं।

5. विभेदीकरण सीखना **(Learning Discrimination)**

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसमें व्यक्ति विभिन्न उद्दीपनों के प्रति विभिन्न अनुक्रिया करना सीखता है। जैसे-बालकों द्वारा त्रिभुज एवं चर्तुभुज में अंतर सीखना, अलजबरा तथा अंकगणित में अंतर सीखना, फुटबाल तथा क्रिकेट बाल में अंतर सीखना आदि, विभेदीकरण सीखना के कुछ उदाहरण हैं।

6. संप्रत्यय सीखना **(Concept Learning)**

कई वस्तुओं के सामान्य गुणों के आधार पर कोई विशेष अर्थ को सीखना संप्रत्यय सीखना कहा जाता है। जैसे-भालू, बाघ, सिंह, सियार शब्दों में एक सामान्य गुण अर्थात् इनमें जंगली पशु का संप्रत्यय छिपा है। यहां जंगली पशु के संप्रत्यय को सीखना संप्रत्यय का जाता है।

7. नियम सीखना **(Rule Learning)**

नियम (Rule or Principle)का सीखना एक महत्वपूर्ण सीखना है। इस तरह का सीखना संप्रत्यय सीखना पर आधारित होता है। नियम से दो या दो से अधिक (Concepts) के बीच एक नियमित संबंध भण्डार विकसित होता है। जैसे-बालकों द्वारा व्याकरण, गणित, विज्ञान आदि के विभिन्न नियमों का सीखना इसी तरह के सीखने की श्रेणी में आता है।

8. समस्या समाधान सीखना **(Problem Solving Learning)**

समस्या समाधान सीखना गेने के श्रृंखलाबद्ध सीखना की सबसे ऊपरी अवस्था (Highest Stage) है। इस तरह के सीखना में व्यक्ति किसी नियम (Principle or Rule) का उपयोग करके कोई समस्या का समाधान करता है और एक नये तथ्य को सीखता है।

नोट - गेने (Gagne 1965) ने सीखने के आठ महत्वपूर्ण तथ्य दिये हैं। इसमें चौथी अवस्था के सीखना अर्थात् शाब्दिक साहचर्य (Verbal Association) का सीखना तथा इनसे ऊपर के अन्य सभी स्तरों का सीखना ही शिक्षकों के लिए अधिक महत्वपूर्ण है।

9.8 मानवअधिगमयोग्यताओंकावर्गीकरण

गेने द्वारा सीखने के लिए पांच क्रियाओं व दशाओं को बताया गया है। जैसे-शाब्दिक सूचना, बौद्धिक कौशल, संज्ञानात्मक आव्यूह रचना, अभिवृत्तियां तथा गामक कौशल।

प्रत्येक प्रकार के सीखने के लिए विभिन्न प्रकार की आन्तरिक व बाहरी दशाओं की आवश्यकता होती है। ग्रेडलर द्वारा 1997 में गेने की सीखने की दशाओं को निम्न चार्ट द्वारा बताया गया है:-

मानवीय योग्यताओं के प्रकार (Typesof Human Capability)	दशाएं **(Conditions)**	अनुदेशन हेतु मुख्य सिद्धान्त **(Principles for Instructional Events)**
शाब्दिक सूचना (Verbal Information)	संचित सूचना की पुनः प्राप्ति जो अधिगमकर्ता की आन्तरिक दशाओं को समर्थित करे। • संगठित सूचनाओं की पूर्व	• सूचना के कूटीकरण हेतु अर्थपूर्ण संदर्भ उपलब्ध कराना। • सूचना को इस प्रकार

	उपस्थिति नई सूचनाओं को संसाधित करने हेतु आव्यूह रचना।	संगठित करना कि वह हिस्सों में सीखी जा सके।
बौद्धिक कौशल (Intellectual Skills)	मानसिक संक्रियाएं जिन पर व्यक्तिगत रूप से वातावरण का प्रभाव होता है। • विभेदन • मूर्त व परिभाषित संप्रत्यय • नियम अनुप्रयोग • समस्या समाधान • ये आन्तरिक दशायें निम्न प्रकार से अधिगम को समर्थित करती हैं:- • पूर्व आवाश्यक कौशलों का प्रत्यास्मरण • नवीन अधिगम हेतु विभिन्न प्रकार की अनुक्रियायें • भिन्न प्रकार की परिस्थितियों व सन्दर्भो में नवीन कौशलों का अनुप्रयोग	• अलग-अलग मूर्त उदाहरणों तथा नियमों को उपलब्ध कराना। • उदाहरणों से विभिन्न प्रकार से अंर्तक्रिया करने के अवसरों को उपलब्ध कराना। • सीखने वालों का नयी परिस्थितियों में मूल्यांकन करना।
संज्ञानात्मक आव्यूह रचना (Cognitive Strategies)	आन्तरिक दशायें जिसके द्वारा अधिगमकर्ता अपनी सोच व अधिगम को नियंत्रित व नियमित करता है। • कार्य विशिष्ट • सामान्य • प्रशासित	• कार्य विशेषित होने पर रणनीति का वर्णन करना। • कार्य के सामान्य होने पर रणनीति प्रदर्शित करना। • पृष्टपोषण व सहायता के साथ रणनीति विशिष्ट अभ्यास का अवसर प्रदान करना।

अभिवृत्ति (Attitude)	आन्तरिक दशायें अर्थात् अधिगमकर्ता की पूर्ववृत्ति जो कि उसके कार्य चयन को प्रभावित करता है।	• ऐसा मॉडल प्रदान करना जो सकारात्मक व्यवहार और पुनर्वलन पर आधारित होकर क्रियाशील हो। • सीखने वाले के द्वारा व्यवहार प्रदर्शित करने पर उसे पुनर्वलन उपलब्ध कराना।
गामक कौशल (Motor Skills	शारीरिक क्रियाओं को क्रमबद्ध तरीके से सम्पादित करने की योग्यता। इसके अंतर्गत तीन स्तर हैं:- • क्रियाओं की क्रमबद्धता को सी,खना • क्रियाओं का अभ्यास करना • वातावरण से प्रत्युत्तर प्राप्त होने पर क्रियाओं को संशोधित करना	• उपनियमित कार्यवाही की स्थापना एवं मानसिक पूर्वाभ्यास करना। • सही प्रष्टपोषण सहित कौशलों की अनेक पुनरावृत्तियों को व्यवस्थित करना।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

6. पैवलव के क्लासिकी अनुबंधन को मनोवैज्ञानिकों ने क्या कहा है ?
7. स्कीनर के साधनात्मक अनुबंधन को मनोवैज्ञानिकों ने क्या नाम दिया है ?
8. समस्या समाधान ऊपरी अवस्था है अथवा निम्न ?
9. गेने ने मानवीय योग्यताओं को कितने भागों में बांटा है ?
   A. तीन B. चार C.पांच D. छः
10. शीरीरिक क्रियाओं को क्रमबद्ध तरीके से सम्पादित करने की योग्यता कहलाती है -
    A. गामक कौशल B. अभिवृत्ति
    C. संज्ञात्मक आव्यूह रचना D. बौद्धिक कौशल
11. मानसिक संक्रियायें जिन पर व्यक्तिगत रूप से वातावरण का प्रभाव होता है, कहा जाता है
    A. शाब्दिक सूचना B. बौद्धिक कौशन

C. संज्ञात्मक आव्यूह रचना D. गामक कौशल

9.9 मानवीयपरिवेशमेंसीखना (मासलो) (Learning in Humanistic Perspectives)

मानव एक जागृत प्राणी है, वह जीवन भर सीखता रहता है और अपने सीखे हुए ज्ञान को आने वाली पीढ़ी को स्थानान्तरित करता रहता है। मनोवैज्ञानिक मासलो 1968 और रोजर 1983 ने बताया कि मनुष्य अपनी आकांक्षा और आवश्यकताओं के आधर पर सीखता है। इसके लिए मजबूत धारणा, आत्मसम्मान तथा आत्म यर्थाथीकरण का होना आवश्यक है। मनुष्य को उच्च स्तर पर पहुंचने के लिए सही दिशा या मार्ग का ज्ञान होना आवश्यक है। मासलो के अनुसार जब व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति व उनसे संतुष्ट हो जाता है तब वह अपनी उच्च आकांक्षायें, आत्मसम्मान और यर्थाथीकरण के बारे में सोचेगा। उनका सिद्धान्त इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति क्या अपील कर रहा है अर्थात् वह किस वस्तु की कमी महसूस कर रहा है। जैसे-एक छात्र जो थका, भूखा, प्यासा, चिन्तित, धमकाया हुआ है, वह पूर्ण रूप से सीखने में अपनी शक्ति नहीं लगा सकता। जबकि दूसरा छात्र पूर्ण सुरक्षित व स्वस्थ है, वह उस छात्र की अपेक्षा अधिक सीख पायेगा। रोजर ने बताया कि छात्रों की आवश्यकता के अनुसार उन्हें सीखने का स्वतंत्रतापूर्वक मौका दिया जाए और अध्यापकों से उनके व्यक्तिगत संपर्क अच्छे होने चाहिए और अध्यापक को छात्रों की भावनाओं को पहचानकर उनके साथ घुल-मिल जाना चाहिए। अध्यापक की भूमिका छात्र की पसन्द को ध्यान में रखते हुए उनके उचित मार्गदर्शन दिया जाना चाहिए। एक वयस्क सीखने वाले द्वारा इन सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिए। जैसे-सक्रिय, आत्म निर्देशित, समस्या केन्द्रि्रत, अनुभव से संबंधित, प्रासंगिक रूप में जरूरती, आन्तरिक रूप से प्रेरित, प्रभावशाली तरीके से सीखने का वातावरण उसमें होना आवश्यक है, तभी अधिगम अधिक होगा।

9.10 मैसलोकाआवश्यकताअनुक्रमिकतासिद्धान्त Maslow's Theory Of Hierarchy Of Needs

मैसलो (1943, 1954) ने अभिप्रेरणा संबंधी जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, उसे आवश्यकता अनुक्रमिता सिद्धान्त कहते हैं। यह एक काफी लोकप्रिय सिद्धान्त रहा है। इसकी मान्यता है कि व्यक्ति का व्यवहार विभिन्न प्रकार के प्रेरकों या आवश्यकताओं द्वारा निर्देशित होता है। मैसलो के अनुसार आवश्यकताओं का विकास एक निश्चित क्रम में होता है। सर्वप्रथम निम्न क्रम आवश्यकताओं (Low Order Needs) का और उसके बाद उच्च क्रम आवश्यकताओं (Higher Order Needs) का विकास होता है। इनके विकास का क्रम निम्नवत् होता है। विकास का क्रम निम्न रूप में प्रदर्शित किया गया है:-

1. दैहिक आवश्यकताएं (Physiological Needs)
2. सुरक्षात्मक आवश्यकताएं (Safety Needs)
3. सम्बन्धन की आवश्यकताएं (Need of Belongingness)
4. सम्मान की आवश्यकता (Need of Esteem)
5. संज्ञात्मक आवश्यकताएं (Cognitive Needs)
6. सौन्दर्यबोधी आवश्यकताएं (Aesthetic Needs)
7. आत्मसिद्धि की आवश्यकता (Need of Self-Actualization)

मैसलो के अनुसारकि दैहिक एवं सुरक्षात्मक आवश्यकताएं निम्न (Lower) और शेष उच्च्व (Higher) आवश्यकताएं हैं। सामाजिक जीवन में इन्ही का महत्व अधिक होता है।

मैकग्रेगर (1957) के अनुसार मैस्लो के सिद्धान्त के मुख्य अभिग्रह निम्नांकित हैं:-

1. आवश्यकताओं के विकास में एक निश्चित क्रम पाया जाता है। निम्न (Lower)आवश्यकताओं की संतृप्ति के बाद ही उच्च्व (Higher) आवश्ययकताओं का प्रादुर्भाव होता है। अर्थात् जब तक निचली आवश्यकता की पूर्ति तथा विकास नहीं हो जाता है तब तक उच्च आवश्यकताएं सक्रिय प्रेरक का कार्य नहीं करती हैं।

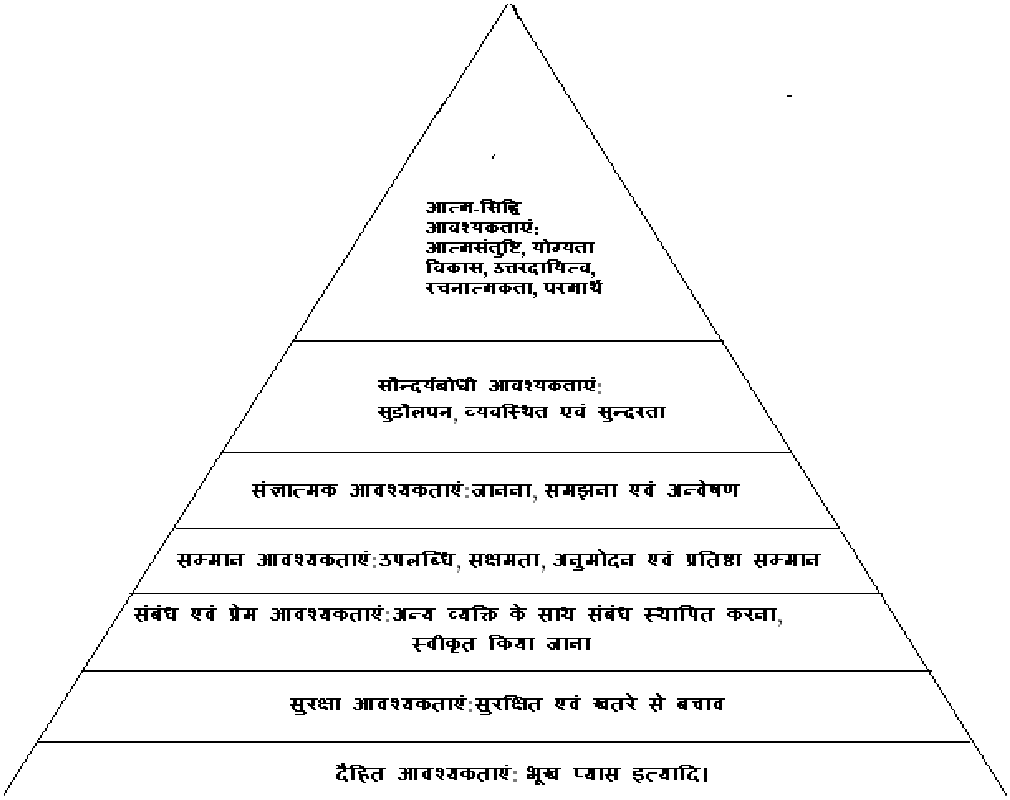

2. वयस्क प्रेरक जटिल होते हैं। अर्थात् उनमें व्यवहार के निर्धारण मे कोई एक अकेला प्रेरक ही कार्य नहीं करता है, बल्कि एक समय पर एक से अधिक प्रेरक सक्रिय रहते हैं।
3. जिस आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है वह प्रेरक नहीं रह जाती है। असंतुष्ट आवश्यकताएं ही प्रेरक का कार्य करती हैं। किसी निम्न आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर ही उच्च आवश्यकता का विकास होता है।
4. निम्न आवश्यकताओं की पूर्ति का निश्चित साधन होता है। जैसे-भूख की पूर्ति भोजन से होगी, परन्तु उच्च आवश्यकताओं की पूर्ति अनेकानेक रूपों में हो सकती है। जैसे-सम्मान पाने के लिए कोई नेता, कोई वैज्ञानिक, कोई अधिकारी तो कोई लेखक बनना पसन्द कर सकता है या एक के अतिरिक्त और भी माध्यमों का सहारा ले सकता है।
5. व्यक्ति विकास या वृद्धि (Growth) चाहता है। कोई भी व्यक्ति केवल दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित नहीं रहना चाहता है। सामान्यतः व्यक्ति उच्च स्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है।

निम्न क्रम आवश्यकताएं **(Lower Order Needs)**

1. दैहिक आवश्यकताएं **(Physiological Needs)&** इन्हें भौतिक आवश्यकताएं भी कहा जाता है। अस्तित्व की रक्षा के लिए ये अत्यावश्यक हैं। भूख, प्यास तथा यौन आवश्यकताएं इसी वर्ग में आती हैं। इनकी पूर्ति आवश्यक होती है। इनमें अत्यतिधक प्रेरक क्षमता होती है। जीवन की रक्षा के लिए इनकी पूर्ति आवश्यकत होती है। एक कहावत भी है, यदि पेट ही नहीं भरता है तो व्यक्ति आगे की क्या सोच पाएगा (Maslow, 1943)।
2. सुरक्षात्मक आवश्यकताएं **(Safety Needs)&-** दैहिक आवश्यकताओं की अपेक्षित रूप में पूर्ति होने के पश्चात् व्यक्ति में सुरक्षा आवश्यकताओं का प्रभाव दिखाई पड़ने लगता है। व्यक्ति अपनी तथा अपनी वस्तुओं की सुरक्षा चाहता है। जैसे-आग से सुरक्षा, दुर्घटना से बचना, आर्थिक सुरक्षा, चौरी से बचाव एवं स्वास्थ्य की सुरक्षा इत्यादि।

उच्च क्रम आवश्यकताएं **(Higher Order Needs)**

3. सम्बन्धन आवश्यकता ; **(Belongingness Needs -** निम्न क्रम की आवश्यकताओं के विकसित हो जाने के बाद सामाजिक या सम्बन्धन आवश्यकताओं का विकास प्रारम्भ होता है। व्यक्ति स्वभावतः सामाजिक होता है। वह लोगों के साथ संबन्धन स्थापित करके उनका स्नेह, प्रेम एवं सहयोग पाना चाहता है। कुछ लोगों में ये आवश्यकताएं अधिक तो कुछ में कम प्रबल पाई जाती हैं। इन पर सामाजिक परिवेश का भी प्रभाव पड़ता है।
4. सम्मान की आवश्यकता **(Esteem Needs)&** प्रत्येक व्यक्ति जीवन में मान-सम्मान, प्रतिष्ठा तथा सफलता आदि प्राप्त करना चाहता है। उसमें आत्म-निर्भरता एवं स्वतंत्रता की भावना भी विकसित होने लगती है। इसे आत्म-सम्मान (Self Esteem) की इच्छा कहा जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति अपने संबंधियों तथा अन्य लोगों के भी सम्मान की इच्छा रखता है। अर्थात् सम्मान की आवश्यकता के दो पक्ष है-आत्म सम्मान एवं अन्य व्यक्तियों का सम्मान।
5. संज्ञात्मक आवश्यकताएं **(Cognitive Needs)-** इसके अंतर्गत जानना, समझना, जिज्ञासा, एवं अन्वेषण आदि को रखा जाता है। मानव जीवन में इनका काफी अधिक महत्व है।
6. सौन्दर्यबोधी आवश्यकताएं **(Aesthetic Needs)-** व्यक्ति के जीवन में सौन्दर्यानुभूति का विशेष महत्व है। वह स्वयं को, अपनी वस्तुओं को तथा अपने परिवेश को व्यवस्थित एवं सुन्दरतायुक्त देखना चाहता है। सभ्य समाज में इसे विशेष महत्व दिया जाता है।

7. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता **(Self-actualization Needs)**- इसे सर्वोच्च आवश्यकता माना जाता है। इसे जीवन का परम ध्येय ;न्सजपउंजम ळवंसद्ध भी कहा जाता है। जिन लोगों में यह इच्छा प्रबल होती है, वे समाज में अति विशिष्ट स्थान प्राप्त करते हैं। इसका आशय व्यक्ति द्वारा अपनी क्षमता का पूरा विकास करना है। व्यक्ति जो बन सकता है, वह बनने की इच्छा ही आत्म-सिद्धि की इच्छा कही जाती है। ;भ्ंउचजवदए 1981द्ध। इसी इच्छा की प्रबलता के कारण कोई महान संगीतकार, कोई कवि, कलाकार, कोई नेता और कोई युगपुरूष (जैसे-गांधी जी) बनता है।

9.11 मैसलोकीआवश्यकताअनुक्रमिकतासिद्धान्तकीआलोचना

मनोवैज्ञानिकों ने मैसलो (Maslow) के आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त को निम्नांकित कारकों के आधार पर आलोचित किया है:-

A. आलोचकों का मत है कि मैसलो (Maslow) ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन वैसे आंकड़ों (Data)के आधार पर किया जिसे वे ऊपरी वर्ग (Upper Class) तथा मध्यम वर्ग के लोगों से प्राप्त किया था। अतः उनका सिद्धान्त इन दो वर्गों के लोगों के लिए काफी उचित है। परन्तु निम्न वर्ग के लोगों या वैसे लोगों पर जो कम विकसित हैं तथ गरीब हैं, पर लागू नहीं होता। क्योंकि ऐसे लोगों की शारीरिक आवश्यकताएं कभी पूर्णतः संतुष्ट नहीं हो पाती हैं। फलस्वरूप वे अनुक्रम (Hierarchy) के आगे की आवश्यकताओं के बारे में सोच भी नहीं पाते हैं।
B. मैसलो (Williams & Page, 1989) ने अपने सिद्धान्त में यह पूर्व कल्पना की है कि सभी मनुष्य उनके द्वारा बताये गये पांच आवश्यकताओं में निचली स्तर से ऊपरी स्तर की ओर आगे बढ़ते हैं। आलोचकों का मत है कि मैसलो अपनी इस पूर्व कल्पना (Assumption) को प्रयोगात्मक रूप से जांच कर नहीं दिखला सके। इतना ही नहीं, मैसलो ने यह भी पूर्व कल्पना (Assumption) की थी कि व्यक्ति अनुक्रम (Hierarchy) के अगले स्तर (Next Level) पर तभी पहुंचता है जब वह उसके ठीक पिछले स्तर पर की आवश्यकता की संतुष्टि कर लेता है। आलोचकों ने बतलाया है कि हमेशा ऐसा ही हो यह आवश्यक नही है। ऐसा भी हो सकता है कि सबसे निम्न स्तर की आवश्यकताओं की संतुष्टि करने के बाद उसमें तीसरे स्तर की आवश्यकता न उत्पन्न होकर चौथे स्तर की आवश्यकता उत्पन्न हो जाय। इस तथ्य की संतुष्टि विलियम्स एवं पेज (Williams & Page, 1989) के प्रयोगात्मक अध्ययन से हो चुका है।
C. मैसलो (Maslow) ने जिन मानवीय आवश्यकताओं (Human Needs) का वर्णन किया है, उनके दैहिक या शारीरिक (Physiological) तथा मनोवैज्ञानिक (Psychological)

आधारों (Bases) को नहीं बतलाया गया है। उदाहरणस्वरूप, भूख की आवश्यकता को ही ले लीजिए। व्यक्ति में भूख की आवश्यकता होती है परन्तु किन-किन शारीरिक परिवर्तनों (Physiological Changes) से यह उत्पन्न होता है, इसका वर्णन उन्होंने नहीं किया है।

D. मैसलो (Maslow) ने अपने सिद्धान्त के समर्थन में व्यक्तियों के मात्र केस इतिहास (Case History) को प्रस्तुत किया है। उन्होंने इसके लिए कोई प्रयोगात्मक सबूत (Experimental Evidence) नहीं दिया है। फलतः उनकी सिद्धान्त की मान्यता थोड़ी कम हो जाती है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी मैसलो का आवश्यकता-पदानुक्रम सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना गया है क्योंकि उनका सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है जो अभिप्रेरण (Motivation) की व्याख्या करने में जैविक (Biological)], सामाजिक (Social), व्यवहारपरक (Behavioral)] प्रभावों (Impacts) को सम्मिलित करता है। इसे कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे- बेरोन (Baron,1992) आवश्यकता-पदानुक्रम सिद्धान्त को मानव अभिप्रेरणों के बीच के संबंधों की व्याख्या करने का न कि यह पूर्वकथन करने का कि अमुक समय में कौन-सा अभिप्रेरक अधिक प्रबल होगा, एक असाधरण सिद्धान्त माना है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

12. मैसलो के सिद्धान्त का नाम लिखिए।
13. मैसलो के सिद्धान्त में कितनी आावश्यकताओं का वर्णन किया गया है?
14. निम्नक्रम की दो आवश्यकताओं के नाम लिखिए।
15. उच्चक्रम की अंतिम आवश्यकता का नाम लिखिए।
16. मैसलो का सिद्धान्त किस वर्ष प्रतिपादित किया गया है?

9.12 सारांश(Summary)

सीखने के व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन होता है। स्थायी परिवर्तन उस परिवर्तन को कहा जाता है, जो एक खास समय तक स्थायी रहता है। उस खास समय की कोई निश्चित अवधि नहीं होती है। सीखने की प्रक्रिया में प्राणी एक उद्दीपक से दूसरे उद्दीपक तथा दूसरे उद्दीपक से तीसरे उद्दीपक और इस तरह से लक्ष्य तक के सभी उद्दीपकों के बीच एक अर्थपूर्ण संबंध (Meaningful Relation) स्थापित करना सीखता है।

गेने द्वारा बतलाए गये सभी आठ प्रकार के सीखने की एक खास विशेषता यह है कि वे सभी श्रृंखलाबद्ध क्रम (Hierarchical Order) में होते हैं। श्रृंखला में सबसे ऊपर समस्या समाधान सीखना (Problem Solving Learning) है तथा सबसे नीचे सांकेतिक सीखना (Single Learning) है। श्रृंखला या पिरामिड (Pyramid) के किसी भी स्तर पर सीखने की प्रक्रिया होने के

लिए यह आवश्यक है कि उसके नीचे के सभी प्रकार के सीखना हो चुके हैं। जैसे श्रृंखला के पांचवे स्तर पर विभेदीकरण सीखना है। जिसे सम्पन्न होने के लिए उसके नीचे के चारों तरह के सीखने की प्रक्रिया का सम्पन्न होना आवश्यक है।

मासलो ने सीखने में सात सिद्धान्तों का वर्णन किया है। एक के बाद अगले पद पर आगे बढ़ा जाता है। सीखने के लिए आज छात्रों व अध्यापकों में अच्छे संबंधों का होना आवश्यक माना गया है। क्योंकि आज छात्र केन्द्रित शिक्षा, विषय चयन की स्वतंत्रता, सीखने में जिम्मेदारी का अहसास और उसको आनन्दमयी वातावरण दिया जाना आवश्यक है। अध्यापक को छात्रों की समस्या का निराकरण, शोध आधारित क्षेत्र, जिज्ञासा पर आधारित पाठ्यक्रम का सही मार्गदर्शन देने की जिम्मेदारी है। आज शिक्षा अध्यापक केन्द्रित न होकर छात्र केन्द्रित शिक्षा हो रही है। आज छात्र को सीखने के लिए निम्न बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है:-

1. अधिगम के लिए अधिगमकर्ता के साथ संबंध स्थापन
2. प्रभावशाली अधिगम वातावरण का निर्माण।
3. अधिगमकर्ता को अपनी अधिगम आवश्यकता की पहचान के लिए प्रोत्साहन।
4. अधिगम विषय व विधि निर्धारण के लिए अधिगमकर्ता की राय को सम्मिलित करना।
5. अधिगमकर्ता को अपने अधिगम शैली के संदर्भ में मूल्यांकन करने को प्रोत्साहित करना।
6. अधिगमकर्ता को अपने अधिगम उद्देश्य को विकसित करने को प्रोत्साहित करना।
7. अधिगमकर्ता को तकनीकी व पाठ्यक्रम तैयार करने में शामिल करना।
8. अधिगमकर्ता को सीखने की योजना बनाने के लिए मदद करना।

9.13 शब्दावली

- उद्दीपन अनुक्रिया सीखना (Stimulus Response Learning)
- सम्प्रत्यय सीखना (Concept Learning)
- संज्ञानात्मक आवश्यकताएं (Cognitive Needs)

इसके अंतर्गत जानना, समझना, जिज्ञासा एवं अन्वेषण आदि को रखा जाता है। मानव जीवन में इनका काफी महत्व है।

- आत्मसिद्धि की आवश्यकता- यह मानव की सर्वोच्च आवश्यकता होती है। इसे जीवन का परम ध्येय (Ultimate Goal) भी कहा जाता है। व्यक्ति द्वारा अपनी क्षमता का पूरा विकास करना होता है। व्यक्ति जो बन सकता है, बनने की इच्छा ही आत्मसिद्धि की इच्छा कही जाती है।

9.14 स्वमूल्यांकनहेतुप्रश्नोंकेउत्तर

1. b- 8
2. c- तीसरे
3. d- आठवें
4. c - दोनों दशायें
5. d- क्रो और क्रो
6. टाइप एस अनुबन्ध (Type S Conditioning)
7. टाइप आर अनुबन्ध (Type R Conditioning)
8. ऊपरी अवस्था
9. (C) पांच
10. A गामक कौशल
11. बौद्धिक कौशन
12. मैसलो का आवश्यकता अनुक्रमिता सिद्धान्त (Maslow's Theory of Hierarchy of Needs)
13. (7)
14. निम्न क्रम आवश्यकताएं (Lower Order Needs)
    a. दैहिक आवश्यकताएं (Physiological Needs)
    b. सुरक्षात्मक आवश्यकताएं (Safety Needs)
15. उच्च क्रम आवश्यकताएं (Higher Order Needs)\
    i. सौन्दर्यबोधी आवश्यकताएं (Aesthetic Needs)
    ii. आत्मसिद्धि की आवश्यकताएं (Self-Actualization Needs)
16. मैसलो का सिद्धान्त 1954 में प्रतिपादित किया गया था।

9.15 संदर्भग्रन्थसूची/सहायकउपयोगीपाठ्यसामग्री

1. सिंह अरूण कुमार (1998), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना, पृष्ठ-593-605
2. पाठक पी.डी. (2005), शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
3. सारस्वत (डॉ.) मालती (1997), शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, आलोक प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ-524-635
4. शर्मा डॉ. वी.एल. सक्सेना, डॉ. आर.एन., शिक्षा शास्त्र, सूर्या प्रकाशन, मेरठ

5. शोध पत्र-पत्रिकाएं, जरनल, इन्टरनेट, सीडी, टेप आदि।
6. सिंह अरूण कुमार (2005), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली
7. सिंह डॉ. आर.एन. (2011), आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली

9.16 निबन्धात्मकप्रश्न

1. **सीखने का अर्थ बताते हुए सीखने की दशाओं को विस्तृत रूप में लिखिए।**
2. गेने द्वारा अधिगम का अर्थ बताते हुए अधिगम से संबंधित अवधारणाओं को विस्तार रूप में समझाईये।
3. गेने द्वारा प्रतिपादित समस्या समाधान सीखने की श्रृंखला का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. मानव अधिगम योग्यताएं कितने प्रकार की हैं, उनका स्पष्ट रूप से वर्गीकरण कीजिए।
5. मानवीय परिपेक्ष्य में अधिगम से आप क्या समझते हैं। मैसलो के आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
6. मैसलो के आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
7. मैसलो के सिद्धान्त की पदक्रमानुसार व्याख्या कीजिए।
8. सीखने से आप क्या समझते हैं। सीखने के लिए किन परिस्थितियों का होना आावश्यक होता है।

इकाई 10 स्नायु विज्ञान के क्षेत्र में सम्पन्न शोध कार्यों के परिणामों के शैक्षिक निहितार्थ

Educational Implications of Research Findings from the Field of Neuro Science

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण हेतु उपकरण
10.4 मस्तिष्क के सन्दर्भ में प्राप्त जानकारियाँ
10.5 मस्तिष्क की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक पोषक तत्व
10.6 मस्तिष्क सम्बन्धी अन्य तथ्य
10.7 मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध
10.8 लिंग भिन्नता और मस्तिष्क
10.9 बोल-चाल सम्बन्धी भाषा का विशिष्टीकरण
10.10 मस्तिष्क और कलाएँ
10.11 कलाओं का शिक्षण क्यों आवश्यक है ?
10.12 सांराश
10.13 शब्दावली
10.14 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर
10.15 संदर्भ ग्रन्थ
10.16 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

मानव व्यवहार एक जटिल प्रक्रिया है। एसको अंतर्विश्यक उपगमों की मदद से ही समझा जा सकता है। व्यवहारिक विज्ञान व प्राकृतिक विज्ञान ने मानव व्यवहार को समझने में काफी सहायता की है। मानव व्यवहार आनुवांशिक गुणों अ वातावरन जा प्रतिफल होता है। मानव व्यवहार चाहे वो संज्ञानात्मक, भावात्मक या मनोगत्यात्मक हो

जीवविज्ञान की न्यूरोविज्ञान शाखा में हुए शोधों ने इसे समझने में अग्रसारित किया है। न्यूरोविज्ञान ने मान मस्तिष्क के करिश्माई गुणों को समझने में सफल्ता प्राप्त की है और इससे मानव व्यवहार की जटिलतम गुत्थियों को भी सुलझा लिया गया है। प्रस्तुत इकाई में आप न्यूरोविज्ञान के क्षेत्र में हुए निष्कर्षों को जान पायेंगे जिससे मानव व्हवहार के जऐविक आभार को समझने में आपको सहायता मिलेगी।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. मस्तिष्क की संरचना एवं कार्यप्रणाली के अध्ययन में उपयोग में लाये जाने वाले उपकरणों के नाम लिख सकेंगे।
2. मानव मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ आधारभूत सूचनाओं का वर्णन लकर सकेंगे।
3. मस्तिष्क के दो गोलारद्धों के मध्य अंतर को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. लिंग भिन्नता और मस्तिष्क के गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता की व्याख्या कर सकेंगे।
5. बोल-चाल सम्बन्धी भाषा का विशिष्टीकरण के व्याख्या कर सकेंगे।
6. कलाओं का शिक्षण के महत्व को जान पायेंगे।

10.3 मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण हेतु उपकरण

आर्युविज्ञान के उन्नत उपकरणों ने जीवन्त तथा अधिगम में संलग्न मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण को सम्भव कर दिया है। दो प्रकार के उपकरण निर्मित किये जा चुके हैं-

टाइप 1:- मस्तिष्क की संरचना के अध्ययन में उपयोग में लाये जाने वाले उपकरण मस्तिष्क की आंतरिक संरचना के कम्प्यूटर निर्मित चित्रों को प्राप्त करने हेतु निम्नलिखित दो तकनीकों को उपयोग में लाया जा रहा है:-

(अ) कम्प्यूटेराइज्ड एक्सियल टोमोग्राफी (Computerized Axial Tomography- CAT

(ब) मैग्नेटिक रेज़ोनेन्स इमेजिगं (Magnetic Resonance Imaging- MRI

टाइप 2:- मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के अध्ययन में उपयोग में लाये जाने वाले उपकरण इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तकनीकों को उपयोग में लाया जा रहा है:-

(अ) इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राफी (Electroencephalography)- EEG

(ब) मैग्नेटोइनसेफेलोग्राफी (Magnetoencephalography) –MEG

(स) पोजीट्रोन ऐमिशन टोनोग्रोफी (Positron Emission Tomography)- PET

(द) फंक्सनल मैग्नेटिक रेजीनेन्स इमेजिगं (Functional Magnetic Resonance Imaging)- FMRI

(य) फंक्सनल मैग्नेटिक रेजीनेन्स स्पेक्ट्रोस्कोपी (Functional Magnetic Resonance Spectroscopy)- FMRS

अधिगम के जैविक शास्त्र (Biology of Learning) से सीखने की प्रक्रिया को समझने, उसे सहज-सरल-सुगम बनाने की विधियों को विकसित करने में सफलता प्राप्त होने की अपार सम्भावनाएँ हैं।

10.4 मस्तिष्क के सन्दर्भ में प्राप्त जानकारियाँ

मस्तिष्क के सन्दर्भ में पिछले कुछ वर्षो में प्राप्त जानकारियों से ज्ञात हुआ है कि-

- मस्तिष्क प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अपने को निरंतर पुर्नसंगठित करता रहता है। यह प्रक्रिया स्नायुनमनीयता कहलाती है। यह जीवन पर्यन्त चलती है, परन्तु मानव जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में अतितीव्र होती है। शिशु को घर-परिवार में प्राप्त अनुभवों, उस स्नायु परिपथ को प्रभावित करते हैं, जो यह निश्चित करता है कि विद्यालय में तथा बाद के जीवन में मस्तिष्क कैसे और क्या सीखता है।
- मानव मस्तिष्क बोल-चाल की भाषा (Spoken Language) को कैसे ग्रहण करता है।
- संवेग सीखने, स्मृति तथा पुर्नस्मरण को कैसे प्रभावित करते हैं।
- शाररिक क्रियाएँ एवं व्यायाम मनोदशा में सुधार कैसे करती हैं, मस्तिष्क के द्रव्यमान में कैसे वृद्धि करती हैं तथा संज्ञानात्मक कार्यप्रणाली को कैसे उन्नत करती हैं।
- किशोरावस्था में मानव मस्तिष्क में वृद्धि तथा विकास कैसे होता है तथा इस अवस्था में व्यवहार के सन्दर्भ में पुर्वानुमान लगाने में आने वाली कठिनाइयों को कैसे और अधिक अच्छे ढंग से समझा जा सकता है।
- निद्रा से वंचित होने तथा तनाव के सीखने तथा स्मृति पर क्या प्रभाव पड़ते हैं।

स्नायु विज्ञान में लगातार होती जा रही उन्नति के सन्दर्भ में अब यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षाशास्त्र के अर्न्तगत मानव मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ आधारभूत सूचनाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया जाय। सभी शिक्षक स्नायु विज्ञानी नहीं हो सकते हैं, लेकिन सभी शिक्षक उस व्यवसाय से सम्बन्धित अवश्य हैं जिसका कार्य मानव मस्तिष्क को प्रतिदिन परिवर्तित करना है। अत: जितना अधिक वे मानव मस्तिष्क के बारे में जानेंगें उतना ही उन्हें उसे परिवर्तित करने में सफलता मिलेगी।

मानव मस्तिष्क एक अदभुत सरंचना है। इसमें अन्त सम्भावनाएँ हैं तथा यह वास्तव में रहस्यमय है। प्राप्त अनुभवों के आधार पर यह निरंतर स्वयं को परिविर्तित तथा पुर्नपरिवर्तित करता

रहता है। बाह्य जगत से सूचनाएँ प्राप्त न होने की दशा में भी यह स्वंय कार्य कर सकता है। यद्यपि यह इतनी ऊर्जा भी उत्पन्न नहीं करता है कि जिससे एक छोटा सा भी बल्ब जल सके तथापि यह इस धरती का सर्वाधिक शक्तिशाली यंत्र है।

एक प्रौढ़ मानव मस्तिष्क मात्र 1.36 किलोग्राम का ही होता है। यह एक छोटे से चकोतरे के आकार का होता है तथा अखरोट की आकृति जैसा होता है। यह आपकी हथेली में समा सकता है। खोपड़ी के अन्दर यह झिल्लियों में सुरक्षित रहता है तथा रीढ़ की हड्डी के ऊपरी भाग में अवस्थित रहता है। मस्तिष्क निरंतर कार्य में लगा रहता है-

उस समय में भी जब हम सोये हुए होते हैं। यद्यपि यह हमारे शरीर के द्रव्यमान का मात्र 2 प्रतिशत के लगभग ही होता है तथापि यह हमारी कुल कैलोरी के लगभग 20 प्रतिशत का उपभोग कर लेता है।

किशोरावस्था में संवेगी के बाहुल्य को नियंत्रित करने के लिये उत्तरदायी मस्तिष्क प्रणाली पूर्ण रूप से संक्रियात्मक नहीं होती है। यह एक महत्वपूर्ण कारण है जिसकी वजह से किशोर-किशोरियॉ अपने संवेगो के अत्यधिक नियन्त्रण में रहती हैं और इसी वजह से वे अधिक जौखिम युक्त व्यवहारों की ओर उन्मुख हो जाती है।

पाठ्यक्रम सामग्री के संज्ञानात्मक संयन्त्रण में स्वयं को केन्द्रित करने में निम्नलिखित की वजह से कठिनाई होती है-

- नींद की कमी- निद्रा वंचित
- भूखे होने की स्थिति – भोजन वंचित
- प्यासे होने की स्थिति- जल से वंचित

महत्वपूर्ण तथा संवेगो से जुड़ी घटनाएँ दीर्घ अवधि तक याद रहती हैं।

10.5 मस्तिष्क की क्रियाशीलता के लिएआवश्यक पोषक तत्व

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि मस्तिष्क के अन्दर की दो सरंचनाएँ जो दीर्घ अवधि की स्मृति के लिए उत्तरदायी होती हैं वे मस्तिष्क के संवेगात्मक भाग में स्थित होती हैं। मस्तिष्क कोशिकाएँ इंधन के रूप में आक्सीजन तथा ग्लूकोज का उपयोग करती हैं। मस्तिष्क का कार्य जितना अधिक चुनौतीपूर्ण होता है मस्तिष्क उतने ही अधिक इंधन का उपयोग करता है। अत: मस्तिष्क की सर्वोच्च क्रियाशीलता हेतु यह महत्वपूर्ण है कि इन पदार्थो को उपयुक्त मात्रा में लिया जाये। रक्त में आक्सीजन तथा ग्लूकोज की कमी आलस्य और निद्रा को उत्पन्न करती है। ग्लूकोज युक्त पदार्थ (फल इसके सबसे अच्छे श्रोत हैं) कार्य सम्पन्न करने की प्रक्रिया को तीव्र करते हैं तथा क्रियात्मक स्मृति, अवधान और माँसपेशियों के कार्यो को ठीक प्रकार से सम्पन्न करने में सहायक हो सकते हैं।

जल, मस्तिष्क की क्रियाशीलता के लिये आवश्यक है। तंत्रिका संकेतों के मस्तिष्क में प्रवाह हेतु शरीर को जल की आवश्यकता होती है। शरीर में जल की कमी से इन संकेतों की गति

तथा प्रभावशीलता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त जल से फेफड़ों में तरावट रहती है और इसकी वजह से रक्त में आक्सीजन स्थानान्तरित होती है। यह अत्यन्त चिंता का विषय है कि कई विद्यार्थी (तथा उनके अध्यापक) न तो प्रात:काल पर्याप्त ग्लूकोज युक्त नाश्ता करते हैं और न ही दिन में पर्याप्त जल पीते हैं। ग्लूकोज तथा जल मस्तिष्क की क्रियाशीलता हेतु आवश्यक हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मस्तिष्क की संरचना के अध्ययन में उपयोग में लाई जाने वाली तकनीकों के नाम लिखिए।
2. मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के अध्ययन में उपयोग में लाई जाने वाली किन्हीं दो तकनीकों के नाम लिखिए।
3. एक प्रौढ़ मानव मस्तिष्क मात्र __________ किलोग्राम का ही होता है।
4. मस्तिष्क हमारी कुल कैलोरी के लगभग _________ प्रतिशत का उपभोग कर लेता है।
5. मस्तिष्क कोशिकाएँ इंधन के रूप में ____________ का उपयोग करती हैं।
6. ग्लूकोज तथा ________ मस्तिष्क की क्रियाशीलता हेतु आवश्यक हैं।

10.6 मस्तिष्क सम्बन्धी अन्य तथ्य

अब कुछ अन्य तथ्यों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

- यदि कोई मानव मस्तिष्क जन्म से लेकर दो वर्ष की आयु तक आंखों के माध्यम से दृश्यात्मक उद्दीपक प्राप्त नहीं करता है तो यह बच्चा हमेशा के लिए दृष्टिहीन हो जायेगा। जन्म से लेकर बारह वर्ष की आयु तक सुनने से वंचित रह गया तो कभी भी कोई भाषा नहीं सीख पायेगा।
- बुद्धि, सामाजिकता अथवा विखंडितमनस्कता तथा आक्रामकता सम्बन्धी आनुवांशिक प्रवृत्तियों को पालन-पोषण के तौर-तरीकों तथा वातावरण से प्रभावित किया जा सकता है।
- मानव मस्तिष्क भाषा के प्रति आनुवांशिक रूप से पूर्व निर्धारित (predisposed)होता है।

जैसा पहले माना जाता था कि नवजात शिशु का मस्तिष्क खाली स्लेट (Clean Slate- Tabula Rasa)होता है वैसा नहीं है। मस्तिष्क के कुछ भाग विशिष्ट उद्दीपकों हेतु पूर्व निर्धारित होते हैं। बोल-चाल की भाषा के सन्दर्भ में ऐसा ही है। बोल-चाल की भाषा को प्राप्त करने की खिड़की जन्म के तुरन्त बाद से ही खुल जाती है और लगभग 10-12 वर्ष खुली रहती है। इस उम्र के बाद किसी भाषा को प्राप्त करना कठिन हो जाता है। ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि व्याकरण को पकड़ने की मानव योग्यता के लिए भी प्रारम्भिक वर्षो में एक विशिष्ट खिड़की सम्भवत: होती है। अत: विद्यालय में

किसी दूसरी भाषा के शिक्षण में देरी करना उपयुक्त नहीं है। यह कार्य जितनी जल्दी प्रारम्भ कर दिया जाय उतना ही अच्छा है।

शिशु के मस्तिष्क में जन्म के समय से ही संख्या ज्ञान सम्बन्धी विशिष्ट भाग उपलब्ध रहता है। अंक सम्बन्धी चिन्तन के लिए पूर्ण रूप से क्रियाशील भाषा सम्बन्धी योग्यता की आवश्यकता नहीं है। मानव मस्तिष्क नये-नये उद्दीपकों को पसन्द करता है। यदि लगातार एक ही प्रकार के उद्दीपक सामने आते हैं तो मस्तिष्क की रूचि उनमें कम होती चली जाती है।

मल्टी मीडिया युक्त वातावरण विद्यार्थियों के ध्यान को विभाजित कर देता है। विद्यार्थी एक समय में कई चीजों पर ध्यान तो देते हैं परन्तु वे किसी एक चीज पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते।
याद रखना और सीखना जैविक प्रक्रियाएँ हैं न कि यांत्रिक प्रक्रियाएँ।

संवेग इन प्रक्रियाओं तथा सृजनात्मकता के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। यदि विद्यार्थी को सीखी गयी सामग्री से सृजनात्मक विचारों तथा वस्तुओं को उत्पन्न करने के अवसर प्रदान किये जायें तो इससे उन्हें समझने में अधिक आसानी होती है और वे सीखने में आनन्द प्राप्त करते हैं।

देखने, सुनने, गंध ग्रहण करने, स्पर्श करने तथा चखने से सम्बन्धित पाँच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त मानव शरीर में आन्तरिक संकेतों को पहचानने के लिये विशिष्ट व्यवस्था है। कान के अन्दर तथा माँसपेशियों में शारिरिक गति तथा शरीर की स्थिति को समझने के लिये भी व्यवस्था विद्यमान है।

विद्यार्थी पाठ्यवस्तु पर ध्यान केन्द्रित कर सकें इसके लिए आवश्यक है कि वे स्वयं को शारिरिक और संवेगात्मक रूप से सुरक्षित महसूस करें।

संवेग ध्यान केन्द्रित करने तथा सीखने को निरंतर प्रभावित करते हैं। संवेगों को बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से उपयोग में लाने को सीखना महत्वपूर्ण हैं।आवेगों को नियंत्रित करना, परितोषण को लंबित रख सकना, भावनाओं को व्यक्त कर सकना, मानव-सम्बन्धों का उचित प्रबन्धन करना तथा तनाव को कम कर सकने के सन्दर्भ में भी विद्यार्थियों को शिक्षित करना आवश्यक है।जीवन में सफलता प्राप्त कर सकने तथा योग्यताओं का सम्यक और महत्तम उपयोग करने के लिये संवेगों के उचित प्रबन्धन से विद्यार्थियों को परिचित कराना होगा।

मानव मस्तिष्क उन सूचनाओं को ही संचय करता है जो उसके लिये अर्थपूर्ण तथा महत्व की होती है।

विद्यार्थी सीखने से सम्बन्धित उन क्रियाओं में भागीदारी करते हैं जिनसे उन्हें सफलता मिलती है। जहॉं असफल होने का भय रहता है विद्यार्थी उन क्रियाओं से बचने का प्रयास करते हैं।

मानव मस्तिष्क में सूचनाओं को संचित रखने की असीम क्षमता है। जिस प्रकार माँसपेशियाँ व्यायाम करने से सुदृढ़ होती हैं उसी प्रकार मस्तिष्क भी उपयोग में लाये जाने से अधिकाधिक सूचनाओं का संग्रह कर सकता है।

स्नायु विज्ञानियों के अनुसार बुद्धि एकल इकाई (singular entity) न होकर विभिन्न प्रकार की होती है। मानव प्राणी विविध प्रकार से बुद्धिमान हो सकते हैं।

विस्मरण सीखने में सदैव बाधक नहीं है। अधिक महत्वपूर्ण तथा अर्थपूर्ण अनुभवों को संचित रखने के लिये गैर जरूरी बातों का विस्मरण उपयोगी सिद्ध होता है।

शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था में बाल मस्तिष्क की बोलचाल की भाषा को ग्रहण करने की अत्यधिक क्षमता होती है। इस आयु में एक से अधिक भाषाओं को पकड़ना अपेक्षतया सरल होता है। लेकिन इस आयु में टेलीविजन उपकरण का अधिक उपयोग बाद में पढ़ने की योग्यता तथा अंक सम्बन्धी गणनाएँ करने की योग्यता को कम कर देता है।

10.7 मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध Two Hemispheres of Brain

मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध (Hemisphere) प्राप्त सूचनाओं को अलग-अलग प्रकार से संश्लेषित-विश्लेषित करते हैं। वास्तव में मानव मस्तिष्क कुछ इकाइयों का एक समूह है। इन इकाइयों द्वारा प्राप्त सूचनाओं को प्रशाधित (processing)किया जाता है। बोलने की क्रिया, आंकिक गणनाओं की क्रिया, चेहरों को पहचानने की क्रिया हेतु मस्तिष्क में अलग-अलग इकाइयाँ विद्यमान हैं। प्राप्त सूचनाओं को मस्तिष्क एक एकल इकाई (Singular Unit)के रूप में प्रशाधित नहीं करता है और न ही सभी विभिन्न इकाइयामँ अलग-अलग प्रकार की सूचनाओं को प्रशाधित कर सकती हैं।

मस्तिष्क के दायें और बायें गोलार्द्ध के कार्य अलग-अलग हैं। मस्तिष्क में स्थित महासंयोजिका(Corpus Callosum) इन दो गोलार्द्धों के मध्य स्मृति तथा सीखने की साझेदारी करवाती है। ये दो गोलार्द्ध सूचनाओं को संग्रहित एवं संसाधित भिन्न-भिन्न तरीके से करते हैं।

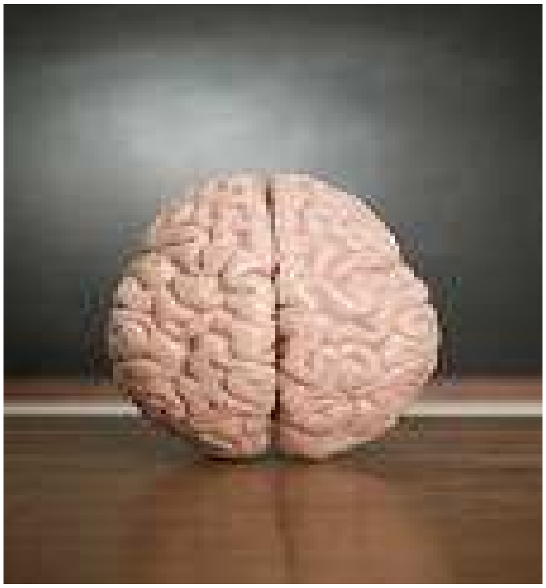

गोलार्द्धों के कार्य	
बायाँ गोलार्द्ध	**दायाँ गोलार्द्ध**
विश्लेषण - Analysis	Holistic- समग्र
क्रम - Sequence	Patterns- पैटर्न
समय - Time	Spatial– स्थानिक
वाक्- Speech	Context of language- भाषा का संदर्भ
शब्दों की पहचान- Recognizes Words	Recognizes faces- चेहरों को पहचानना
अक्षरों की पहचान- Recognizes Letters	Recognizes places– स्थानों को पहचानना
अंकों की पहचान- Recognizes Numbers	Recognizes objects- वस्तुओं को पहचानना
बाह्य उद्दीपकों को प्रशाधित करता है- Processes External stimuli	Processes internal messages- आन्तरिक संवादों को प्रशाधित करता है

मस्तिष्क के ये दो गोलार्द्ध यद्यपि सूचनाओं को भिन्न-भिन्न प्रकारसे संशाधित करते हैं तथापि जटिल कार्यों को ये मिल-जुलकर सम्पादित करते हैं।

मस्तिष्क गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता के सन्दर्भ में अधिकतर व्यक्तियों में अन्तर पाया जाता है। कुछ दायें गोलार्द्ध को वरीयता देते हैं और कुछ बायें गोलार्द्ध को। वरीयता में इस अन्तर के कारण व्यक्तित्व, योग्यताएँ और सीखने के ढंग प्रभावित होते हैं।

शिक्षक के लिये विद्यार्थी की गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता की जानकारी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस जानकारी से विद्यार्थी के सीखने के ढंग के आधार पर शिक्षण कार्य करने से विद्यार्थी को अधिक सहायता प्रदान की जा सकती है।

यहाँ आपका यह जानना आवश्यक है कि गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता का बुद्धि तथा सीखने की योग्यता से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार यह भी सत्य नहीं है कि दायें हाथ का अधिक उपयोग करने वाले व्यक्ति (Right handed people) बायें गोलार्द्ध वरीयता वाले होते हैं। बायें हाथ का अधिक उपयोग करने वाले व्यक्ति (Left handed people) दायें गोलार्द्ध वरीयता वाले होते हैं।

10.8 लिंग भिन्नता और मस्तिष्क (Gender difference and the brain):-

एक ही प्रकार के कार्य को करते समय महिला और पुरूष अपने-अपने मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भागों का उपयोग करते हैं। महिला मस्तिष्क दो गोलार्द्धों के मध्य संवाद में बेहतर होता है तथा पुरूष मस्तिष्क प्रत्येक गोलार्द्ध के अन्दर के संवाद में बेहतर होता है। अधिकतर महिलाओं तथा पुरूषों में भाषा सम्बन्धी क्षेत्र बायें गोलार्द्ध में होता है लेकिन महिलाओं को दायाँ गोलार्द्ध भी भाषा के प्रसाधन हेतु सक्रिय रहता है। महिलाओं के मस्तिष्क में भाषा सम्बन्धी क्षेत्र में न्यूरोन्स का घनत्व पुरूषों की तुलना में अधिक होता है।

टेस्टोस्टेरोन ग्राह्यकों (Testosterone receptors)से परिपूर्ण एमिगडाला (amygdala), जो संवेगात्मक उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रिया करता है, किशोरियों की तुलना में किशारों में अधिक तीव्रता से बढ़ता है और इसका पूर्ण आकार किशोरों में अधिक बड़ा होता है। किशोरों द्वारा अपेक्षतया अधिक बाह्य आक्रामक व्यवहारों को प्रदर्शित करने का सम्भवत: एक आंशिक कारण यह ही है।

संवेगात्मक घटनाओं का पूर्ण विवरण याद रख सकने की योग्यता महिलाओं में अधिक होती है जबकि ऐसी घटनाओं का मुख्य पक्ष अथवा सार याद रखने की योग्यता पुरूषों में अधिक होती है।

पूर्व किशोरावस्था की बालिकाओं में भाषा सम्बन्धी योग्यता, अर्थगणितीय गणनाएँ सम्बन्धी योग्यता तथा क्रमबद्ध कार्यों के सम्पादन की योग्यता बालकों की अपेक्षा अधिक होती है। महिलाओं में दूसरों के संवेगों को पहचानने की योग्य्यता अधिक होती है।

अधिकतर महिलाएँ बायें गोलार्द्ध वरीयता (left-hemisphere preference)वाली होती हैं तथा अधिकतर पुरूष दायें गोलार्द्ध वरीयता(left-hemisphere preference) वाले होते हैं।

महिलाओं की तुलना में बायें हाथ का अधिक उपयोग करने में पुरूषों की संख्या अधिक होती है। महिला मस्तिष्क मुख्य रूप से सहानुभूति के प्रति अधिक उन्मुख होता है जबकि पुरुष मस्तिष्क व्यवस्थाओं की समझ तथा निर्माण हेतु अधिक उन्मुख होता है।

यह स्मरण रखना होगा कि गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता में अन्तर होते हुए भी किसी भी कार्य का सफलतापूर्वक सम्पादन किसी के द्वारा भी किया जा सकता है। इसी प्रकार व्यक्तियों अथवा समूहों को अनिवार्य रूप से गोलार्द्ध वरीयता वर्गों में विभाजित करना भी उपयुक्त नहीं है। प्राथमिक स्तर के अधिकतर विद्यालय बायें गोलार्द्ध वरीयता के अनुरूप निर्मित हैं। समय सारिणी, तथ्यों तथा नियमों के अनुसार चलाये जाने वाले ये विद्यालय मौखिक शिक्षण आधारित होते हैं। अत: बायें गोलार्द्ध वरीयता वाले विद्यार्थियों (जिनमें बालिकाओं की संख्या अधिक होती है) को ये विद्यालय अधिक पसन्द आते हैं और बालक इन विद्यालयों में स्वयं को असहज महसूस करते हैं। सम्भवत:

यह भी एक कारण है कि माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में बालिकाओं की तुलना में बालकों में अनुशासनहीनता अधिक मिलती है।

10.9 बोल-चाल सम्बन्धी भाषा का विशिष्टीकरण (Spoken Language Specialization)

विश्व की लगभग 6500 बोलियों हेतु जिन स्वरों और व्यंजनों की आवश्यकता है उन सभी का उच्चारण दुनिया का प्रत्येक मानव कर सकता है।

विभिन्न बोलियों का निर्मित होना तथा तदनुरूप उच्चारण कर सकना एक बेहद जटिल प्रक्रिया है। बोले जाने वाले एक वाक्य को निर्मित कर उसका उच्चारण करने में मस्तिष्क के विभिन्न भागों (ब्रोकाज एरिया तथा वरनिकी एरिया) सहित बायें गोलार्द्ध में बिखरे तंत्रिका तंत्रों (Neural Net Works) का उपयोग होता है।

संज्ञाओं का प्रसाधन पैटर्नस् के एक सैट द्वारा किया जाता है। सर्वनामों को दूसरे अलग न्यूरल नैटवर्क्स से प्रसाधित किया जाता है। वाक्य संरचना जितनी क्लिष्ट होती है, मस्तिष्क के उतने ही अधिक भाग सक्रिय होते हैं।

एक शिशु के मस्तिष्क के न्यूरोन्स इस दुनिया की सभी भाषाओं की ध्वनियों के सन्दर्भ में प्रतिक्रिया देने की क्षमता युक्त होते हैं। प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी नॉम चोम्सकी (Noam Chomsky)का मानना है कि मानव मस्तिष्क में वाक्य संरचना के नियमों के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया करने हेतु पूर्वनियोजित परिपथ (pre programmed circuits)विद्यमान रहते हैं।

शब्दों के अर्थ पकड़ने के लिये बाल मस्तिष्क को जीवन्त मानव अर्न्तक्रिया की आवश्यकता होती है। मानव जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में बोल चाल की भाषा ग्रहण करने की योग्यता उच्चतम होती है। अत: अभिभावकों द्वारा संवाद सम्बन्धी क्रियाओं यथा बातचीत, गायन तथा पढ़ने से युक्त वातावरण बच्चों के लिये सृजित किया जाना चाहिए।

मातृ भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा में बोलने की योग्यता अर्जित करने के लिये जीवन के प्रारम्भिक वर्ष सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं। यद्यपि बाद में भी दूसरी भाषा में बोलने की योग्यता अर्जित की जा सकती है लेकिन यह कार्य कालान्तर में कठिन होता जाता है। क्या पढ़ना एक प्राकृतिक क्रिया है?

वास्तव में नहीं ! शीघ्रता पूर्वक तथा ठीक प्रकार से बोल –चाल की भाषा अर्जित करने की योग्यता आनुवांशिक हार्डवायरिंग (genetichardwiring) तथा विशेषीकृत सेरिब्रल भागों (specialized cerebral areas) के इस कार्य में केन्द्रित होने का प्रतिफल है। लेकिन मस्तिष्क में ऐसा कोई भाग नहीं है जो पढ़ने के लिए विशेषीकृत हो। वास्तव में पढ़ना मानव विकास की यात्रा में अपेक्षाकृत नयी

क्रिया है। पढ़ना जींस के कोडेड स्ट्रक्चर (coded structure) में अभी समावेशित नहीं हुआ है, क्योंकि यह क्रिया (पढ़ना) 'अस्तित्व कौशल' (survival skill) अभी तक नहीं पायी है।
शोध परिणामों से ज्ञात हुआ है कि दूसरी भाषा में बोलने की योग्यता अर्जित करने से मातृ भाषा में बोलने की योग्यता पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता है। अनेक शोध कार्य बताते हैं कि वास्तव में इससे मातृभाषा में बोलने की योग्यता पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है।

10.10 मस्तिष्क और कलाएँ (The brain and the Arts)

इस पृथ्वी ग्रह में अतीत की या वर्तमान की कोई ऐसी संस्कृति नहीं है, जिसमें कलाएँ विद्यमान न हो। जबकि कुछ शताब्दियों पूर्व तथा आज भी कई संस्कृतियॉ ऐसी हैं जिनमें 'लिखने-पढ़ने' की योग्यता विद्यमान नहीं है। वास्तव में 'कलाएँ' (जिनके अन्तर्गत नृत्य, संगीत, नाटक तथा दृश्य-कला (विजुवल आर्ट्स) आते हैं) मानव अनुभव की बुनियाद हैं तथा मानव अस्तित्व के लिये आवश्यक हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो 40000 वर्ष पूर्व के गुफा मानव समुदायों से लेकर 21 वीं शताब्दी के अत्याधुनिक मानव समूहों में ये "कलाएँ" क्यों विद्यमान रहतीं ? इनका निरन्तर मौजूद रहना सम्भवत: यह प्रदर्शित करता है कि इनका हमारे अस्तित्व में बने रहने में कुछ न कुछ योगदान अवश्य है।

10.11 कलाओं का शिक्षण क्यों आवश्यक है ?

- मानव के संज्ञानात्मक, संवेगात्मक तथा शारिरिक विकास में 'कलाएँ' महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं।
- इन कलाओं में संलग्न होने के अवसर प्रदान करना विद्यालयों का प्रमुख उत्तरदायित्व है।
- एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में ये कलाएँएक उच्च कोटि के मानव अनुभव प्रदान करती हैं।

छोटे बच्चे खेलने के लिए जो कुछ करते हैं- गाना, ड्राइंग, नृत्य- सभी प्राकृतिक कलाओं के रूप हैं। ये क्रियाएँ सभी ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करती हैं तथा मस्तिष्क को सीखने की क्रिया में सफलता प्राप्त करने में सहायता करती हैं। बच्चों के विद्यालय में आने पर इन क्रियाओं को चलते रहना चाहिए तथा उनमें यथा सम्भव वृद्धि की जानी चाहिए।

मस्तिष्क में संज्ञानात्मक विकास हेतु निश्चित भाग गीत-संगीत के लय-ताल, ड्राइंग-पेंटिंग की क्रिया में संलग्न होने से विकसित होते हैं। खेल-कूद में संलग्न होने के अवसर मिलने से शारिरिक कौशलों में वृद्धि होती है तथा इससे संवेगात्मक विकास में भी सहायता प्राप्त होती है।

चित्रकला में संलग्न होने के अवसर मिलने पर बच्चे मानव अनुभवों के विभिन्न प्रकारों को समझ सकते हैं। वे यह जान पाते हैं कि मानव अपनी संवेदनाओं को विभिन्न प्रकार से कैसे व्यक्त करते हैं। साथ ही वह चिंतन करने के जटिल एवं सूक्ष्म तरीकों को भी विकसित करने में सक्षम हो जाते हैं।

कलाओं में संलग्न होना मात्र भावात्मक ही नहीं है। कहीं बहुत गहरे इसका संज्ञानात्मक महत्व भी है। चिंतन करने हेतु आवश्यक उपादान भी इससे उपलब्ध होते हैं-

- पैटर्न की पहचान और विकास।
- देखी गयी तथा सोची गयी चीजों का मानसिक प्रतिनिधित्व।
- सांकेतिक दृश्यों-कल्पित वर्णनों की समझ।
- बाह्य जगत का सूक्ष्म अवलोकन।
- जटिलता से अर्मूतता की ओर उन्मुख होना।

'कला' सीखने के अनुभवों को प्रतिदिन के कार्यों के जगत से जोड़ती हैं। विचारों को उत्पन्न करने की योग्यता, जीवन में विचारों को लाने तथा दूसरों तक उन्हें पहुॅचाने की योग्यता कार्यस्थल में सफलता प्राप्ति हेतु महत्वपूर्ण हैं।

संगीत

संगीत से आन्नद प्राप्त करना मानव का जन्मजात गुण है। जीवन के प्रारम्भिक वर्षो से ही इस गुण की झलक मिलने लगती है।

मस्तिष्क में संगीत के लिये विशिष्ट स्थान निर्धारित है। संगीत के प्रति प्रतिक्रिया जन्मजात है तथा इसके मजबूत जैविक आधार हैं।संगीत बौद्धिक तथा संवेगात्मक उद्दीपन कर मस्तिष्क पर शक्तिशाली प्रभाव डालता है। संगीत सुनने से पुर्नस्मरण, ध्यान, कल्पनशीलता पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है।

अन्य अकादमिक विषयों की तुलना में गणित का संगीत से सीधा सम्बन्ध है। संगीत की ट्रेनिंग मस्तिष्क के उन्हीं भागों को क्रियाशील करती है जो गणितीय प्रक्रियाओं के प्रशाधन में संलग्न होते हैं। गणित में उपलब्धि तथा संगीत शिक्षण के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है।पढ़ने की योग्यता तथा संगीत शिक्षण के मध्य भी घनिष्ठ सम्बन्ध पाया गया है।

व्यायाम (खेलकूद)

संज्ञानात्मक सीखने के लिए शारिरिक कसरत महत्वपूर्ण है। एक परीक्षा में सम्मिलित होने से पहले हल्के व्याया उपयोगी है। कुछ ही समय का हल्का-फुल्का व्यायाम भी मस्तिष्क की क्रियाशीलता में वृद्धि कर देता है। पौष्टिक भोजन, संतुलित आहार, ग्लूकोज से परिपूर्ण फल, पर्याप्त मात्रा में पानी, सीखने की क्रिया को सहज, सरल तथा सुगम बना सकते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. मानव मस्तिष्क__________ के प्रति आनुवांशिक रूप से पूर्व निर्धारित होता है।
8. याद रखना और सीखना ___________ प्रक्रियाएँ हैं ।
9. मानव मस्तिष्क उन सूचनाओं को ही संचय करता है जो उसके लिये _________ होती है।
10. बायें गोलार्द्ध के कोई दो कार्य लिखिए।
11. दायें गोलार्द्ध के कोई दो कार्य लिखिए।
12. मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध _________ कार्यों को मिल-जुलकर सम्पादित करते हैं।
13. दायें हाथ का अधिक उपयोग करने वाले व्यक्ति __________ गोलार्द्ध वरीयता वाले होते हैं।
14. बायें हाथ का अधिक उपयोग करने वाले व्यक्ति ___________ गोलार्द्ध वरीयता वाले होते हैं।
15. अधिकतर महिलाएँ __________ गोलार्द्ध वरीयता वाली होती हैं

10.12 सांराश

आर्युविज्ञान के उन्नत उपकरणों ने जीवन्त तथा अधिगम में संलग्न मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण को सम्भव कर दिया है।अधिगम के जैविक शास्त्र (Biology of Learning) से सीखने की प्रक्रिया को समझने, उसे सहज-सरल-सुगम बनाने की विधियों को विकसित करने में सफलता प्राप्त होने की अपार सम्भावनाएँ हैं। मस्तिष्क प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अपने को निरंतर पुर्नसंगठित करता रहता है। यह प्रक्रिया स्नायुनमनीयता कहलाती है।

स्नायु विज्ञान में लगातार होती जा रही उन्नति के सन्दर्भ में अब यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षाशास्त्र के अर्न्तगत मानव मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ आधारभूत सूचनाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया जाय। जितना अधिक वे मानव मस्तिष्क के बारे में जानेंगें उतना ही उन्हें उसे परिवर्तित करने में सफलता मिलेगी।

एक प्रौढ़ मानव मस्तिष्क मात्र 1.36 किलोग्राम का ही होता है। यह एक छोटे से चकोतरे के आकार का होता है तथा अखरोट की आकृति जैसा होता है। मस्तिष्क निरंतर कार्य में लगा रहता है- उस समय में भी जब हम सोये हुए होते हैं। यद्यपि यह हमारे शरीर के द्रव्यमान का मात्र 2 प्रतिशत के लगभग ही होता है तथापि यह हमारी कुल कैलोरी के लगभग 20 प्रतिशत का उपभोग कर लेता है।

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि मस्तिष्क के अन्दर की दो सरंचनाएँ जो दीर्घ अवधि की स्मृति के लिए उत्तरदायी होती हैं वे मस्तिष्क के संवेगात्मक भाग में स्थित होती हैं। मस्तिष्क कोशिकाएँ इंधन के रूप में आक्सीजन तथा ग्लूकोज का उपयोग करती हैं। मस्तिष्क का कार्य जितना अधिक चुनौतीपूर्ण होता है मस्तिष्क उतने ही अधिक इंधन का उपयोग करता है।

जल, मस्तिष्क की क्रियाशीलता के लिये आवश्यक है। तंत्रिका संकेतों के मस्तिष्क में प्रवाह हेतु शरीर को जल की आवश्यकता होती है। शरीर में जल की कमी से इन संकेतों की गति तथा प्रभावशीलता कम हो जाती है। ग्लूकोज तथा जल मस्तिष्क की क्रियाशीलता हेतु आवश्यक हैं।

मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध प्राप्त सूचनाओं को अलग-अलग प्रकार से संश्लेषित-विश्लेषित करते हैं। वास्तव में मानव मस्तिष्क कुछ इकाइयों का एक समूह है। इन इकाइयों द्वारा प्राप्त सूचनाओं को प्रशाधित किया जाता है। बोलने की क्रिया, आंकिक गणनाओं की क्रिया, चेहरों को पहचानने की क्रिया हेतु मस्तिष्क में अलग-अलग इकाइयाँ विद्यमान हैं। प्राप्त सूचनाओं को मस्तिष्क एक एकल इकाई के रूप में प्रशाधित नहीं करता है और न ही सभी विभिन्न इकाइयाँ अलग-अलग प्रकार की सूचनाओं को प्रशाधित कर सकती हैं।

मस्तिष्क गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता के सन्दर्भ में अधिकतर व्यक्तियों में अन्तर पाया जाता है। कुछ दायें गोलार्द्ध को वरीयता देते हैं और कुछ बायें गोलार्द्ध को। वरीयता में इस अन्तर के कारण व्यक्तित्व, योग्यताएँ और सीखने के ढंग प्रभावित होते हैं।
मस्तिष्क में संज्ञानात्मक विकास हेतु निश्चित भाग गीत-संगीत के लय-ताल, ड्राइंग-पेंटिंग की क्रिया में संलग्न होने से विकसित होते हैं। खेल-कूद में संलग्न होने के अवसर मिलने से शारिरिक कौशलों में वृद्धि होती है तथा इससे संवेगात्मक विकास में भी सहायता प्राप्त होती है।

10.13 शब्दावली

1. आर्युविज्ञान- चिकित्सा शास्त्र
2. अधिगम के जैविक शास्त्र– अधिगम प्रक्रिया को समझ्ने हेतु जीव विज्ञान के शोध निष्कर्ष
3. स्नायु विज्ञान- मानव मस्तिष्क सहित समस्त शरीर के अंतर्गत तंत्रिका तंत्र की संरचना व प्रकार्य का अध्ययन करने वाला विज्ञान।
   मस्तिष्क गोलार्द्ध – मस्तिष्क का दो भागों यथा दायाँ व बायाँ भाग
4. महासंयोजिका(Corpus Callosum)- मस्तिष्क के दायें व बायें गोलार्द्ध के मध्य समन्वय स्थापित करने वाला भाग।
5. दायें गोलार्द्ध वरीयता- मस्तिष्क के गोलार्द्धों में दायें गोलार्द्ध का अधिक क्रियाशील होना।
6. बायें गोलार्द्ध वरीयता- वमस्तिष्क के गोलार्द्धों में बायें गोलार्द्ध का अधिक क्रियाशील होना।

10.14 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर

1. मस्तिष्क की संरचना के अध्ययन में उपयोग में लाई जाने वाली तकनीकों के नाम हैं-
   i. कम्प्यूटेराइज्ड एक्सियल टोमोग्राफी (Computerized Axial Tomography-CAT

ii. मैग्नेटिक रेज़ोनेन्स इमेजिगं (Magnetic Resonance Imaging- MRI

2. मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के अध्ययन में उपयोग में लाई जाने वाली किन्हीं दो तकनीकों के नाम हैं-
   i. इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राफी (Electroencephalography)- EEG
   ii. मैग्नेटोइनसेफेलोग्राफी (Magnetoencephalography) –MEG
3. 1.36
4. 20
5. आक्सीजन तथा ग्लूकोज
6. जल
7. भाषा
8. जैविक
9. अर्थपूर्ण
10. बायें गोलार्द्ध के कोई दो कार्य हैं-
    i. विश्लेषण करना
    ii. शब्दों की पहचान करना
11. दायें गोलार्द्ध के कोई दो कार्य हैं-
    i. चेहरों को पहचानना
    ii. स्थानों को पहचानना
12. जटिल
13. बायें
14. दायें
15. बायें

10.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Gazzaniga, (1998). As mentioned in the book *How the brain learns*.
2. Sousa, D.A. (2006). *How the brain learns*. California: Corwin Press.
3. Toman, W. (December 1970) *Birth order rules all*. Psychology Today.
4. Ramachandran, V. S. (2011)*The Tell-Tale Brain: A Neuroscientist's Quest for What Makes Us Human*
5. Shenk, David (2010)*The Genius in All of Us,*Anchor Books, New York.

6. Goleman, Daniel (1995) Emotional Intelligence , Bloomsbury Books

10.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध कौन से हैं? मस्तिष्क के दो गोलार्द्धों के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए। बोल-चाल सम्बन्धी भाषा का विशिष्टीकरण कपर एक टिप्पणी लिखिए।
2. एक ही प्रकार के कार्य को करते समय महिला और पुरूष अपने-अपने मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भागों का उपयोग करते हैं। स्पष्ट करें।
3. कलाओं का शिक्षण क्यों आवश्यक है इसकी व्याख्या कीजिए।

इकाई 11- बुद्धि :- परिभाषा, 1904 से बुद्धि के सम्बन्ध में अध्ययन के प्रयास एवं बुद्धि मापन

Intelligence: Definitions, Efforts made since 1904 to Understand and Measure Intelligence

11.5 प्रस्तावना
11.6 उद्देश्य
11.7 बुद्धि की परिभाषाएं
11.8 बुद्धि के प्रकार
11.9 बुद्धि का मापन
11.9.1 बुद्धिमापन की आवश्यकता
11.9.2 बुद्धि मापन का इतिहास
11.10 मानसिक आयु तथा बुद्धि लब्धि
11.11 बुद्धिलब्धि का वर्गीकरण
11.12 बौद्धिक विकास तथा ह्रास
11.13 बुद्धि परीक्षणों के प्रकारसामूहिक बुद्धि परीक्षण
11.13.1 वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण
11.13.2 शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
11.13.3 अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
11.14 बुद्धि परीक्षणों का प्रतिवेदन
11.15 कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम
11.16 बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता
11.17 सारांश
11.18 शब्दावली
11.19 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
11.20 संदर्भ ग्रन्थ सूची
11.21 निबंधात्मक प्रश्न

11.1प्रस्तावना

बुद्धि क्या है? यह ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर देना बुद्धिमानों के लिए एक समस्या रही है, वर्तमान में भी है तथा भविष्य में भी रहने की सम्भावना है। इस शब्द पर मनोवैज्ञानिकों में मतभेद रहा है। इस मतभेद को दूर करने के लिए अंग्रेज मनोवैज्ञानिका की एक सभा 1910 में हुई। अमेरिकन मनोवैज्ञानिक की सभा 1921 में हुई, विश्व के मनोवैज्ञानिक की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस सभा 1923 में हुई। परन्तु वे यह नहीं स्पष्ट कर सके कि बुद्धि में स्मृति, कल्पना, भाषा, अवधान, गामक (डवजवत) तथा संवेदनशीलता सम्मिलित है या नहीं अलग-अलग मनोवैज्ञानिक बुद्धि को अपने अलग अलग अंदाज में परिभाषित करते रहे हैं।

गीता में व्यवसायात्मक बुद्धि का उल्लेख अध्याय 2 के 41 वें श्लोक में किया गया है। व्यवसायात्मक बुद्धि से अभिप्राय उस बुद्धि से है, जो व्यक्ति को निरन्तर प्रयास करने की प्रेरणा देती है। व्यवसाय का अर्थ है- प्रयत्न, उद्योग, निरन्तर यत्न, उत्साह कर्मण्यता, पुनःपुनः अथक प्रयास करने का स्वभाव, निश्चय, व्यापार-व्यवहार, आचार, सदाचार, युक्ति उपाय-योजना, कर्मकुशलता चातुर्य आदि (पुरुषार्थ बोधिनी श्रीमद् भगवद्गीता पं0 सातवलेकर।)

गीता में ही योग बुद्धि का उल्लेख अध्याय 2 श्लोक 39 में आया है। योग बुद्धि वह बुद्धि है, जो निष्काम कर्म के लिए प्रेरित करे।

न्याय मत में बुद्धि वह शक्ति है, जिसके द्वारा चिरन्तन का चिंतन किया गया है। बुद्धि

प्रत्ययों की रचना और विकास में सहायक होती है। बुद्धि मन की वह शक्ति है, जिसके द्वारा मन सफलता और अनिश्चय करता है। न्याय मत में बुद्धि, उपलब्धि तथा ज्ञान पर्याय माने गये हैं।

भारतीय विद्धानों ने ‘‘बुद्धिर्यस्य बलं तस्य’’ कहा है।

गीता में बुद्धि के प्रकारों का वर्णन करते हुए उसे तीन प्रकार का बताया गया है।

राजसिक, तामसिक तथा सात्विक बुद्धि। सात्विक बुद्धि वह है, जो (अध्याय 18 श्लोक 30) कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, भय-अभय, प्रवृत्ति और निवृत्ति, बंध और मोक्ष का भान कराये। राजसिक बुद्धि वह है, जिस बुद्धि द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म, कर्त्तव्य और अकर्तव्य को नहीं जानता, वह राजसिक बुद्धि है (अध्याय 18 श्लोक 31) अठारहवें अध्याय के 32 वें श्लोक में तामसिक बुद्धि को वह बुद्धि बताया है, जो व्यक्ति अधर्म को धर्म तथा धर्म को अधर्म मानने लगता है, वह तामसिक बुद्धि वाला होता है।

भारतीय साहित्य में बुद्धि के धी, प्रज्ञा, मति, मेधा पर्यायवायी है।

भारतीय साहित्य में बुद्धि के वर्णन पर अनुसंधान करने की आवश्यकता पर यहां हमने सरसरी दृष्टि से ही अवलोकन किये हैं। यह अवलोकन अत्यन्त उत्प्रेरक एंव लाभकारी प्रतीत हो रहा है।

आगे हम बुद्धि की आधुनिक परिभाषाओं को जानने का प्रयास करंगे।

11.2 उद्देश्य

आदि काल से मानव समाज का बुद्धि के सम्बन्ध में अपनी सोच रही है। शास्त्रों में कहा गया है- बुद्धिर्यस्य बलं तस्य अर्थात जिसके पास बुद्धि है उसके पास बल अथवा शक्ति होती है। पुरातन और आधुनिक सभी शिक्षाशात्री बुद्धि को महत्व देते रहे हैं। कहीं-कहीं पर पुरातन चिन्तकों का अभिमत आधुनिक चिन्तकों से भी गहरा दिखाई पड़ता है। पुरातन मतों पर पुनर्गवेषणा की आवश्यकता तो है ही आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों के अभिमतों का सारांश भी अत्यधिक महत्व पूर्ण है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. भारतीय साहित्य के आधार पर चिन्तकों के मतों को अपने शब्दों में प्रस्तुत कर सकेंगे।
2. बुद्धि की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर बुद्धि के सम्प्रत्य की व्याख्या सकेंगे।
3. बुद्धिमापन के विभिन्न परीक्षणों उन की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
4. विभिन्न प्रकार के बुद्धि परीक्षणों की सीमाओं (Limitations)चित हो से परि सकेंगे।
5. बुद्धि परीक्षणों की पारस्परिक तुलना कर सकेंगे।
6. शिक्षण तथा शोधकार्यों में उपयोग करने के लिए उपयुक्त परीक्षण या परीक्षणों का चुनाव कर सकेंगे।

11.3 बुद्धि की परिभाषाएं

बकिन्घम के अनुसार“सीखने की योग्यता ही बुद्धि है”।

“Intelligence is the ability to learn.” –Buckingham.

स्टर्न के अनुसार, ‘‘बुद्धि जीवन की नई परिस्थितियों तथा समस्याओं के अनुरूप समायोजन करने की सामान्य योग्यता है”।

“Intelligence is the general adaptation to new conditions and problems of life.

टरमन के अनुसार, ''व्यक्ति उतना ही बुद्धिमान होता है, जितनी उसमें अमूर्त चिन्तन की योग्यता है।

"An individual is intelligent in proportion as he is able to carry on abstract thinking."

वैश्लर ने बुद्धि को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया है-"बुद्धि किसी व्यक्ति के द्वारा उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने, तार्किक चिन्तन करने तथा वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से क्रिया करने की सामूहिक योग्यता है|"।

"Intelligence is the aggregate or global capacity of the individual to act purposefully to think rationally and to deal effectively with his environment."

- D. Wechsler

बर्ट के अनुसार - ''बुद्धि अपेक्षाकृत नई परिस्थितियों में समायोजन करने की जन्मजात क्षमता है।''

"Intelligence is the innate capacity to adopt relatively to new situations."-Burt

डियरबोन के अनुसार - ''बुद्धि अधिगम करने की क्षमता अथवा अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता है।''

"Intelligence is the capacity to learn or to profit by experience.

स्टोडार्ड के अनुसार -''बुद्धि कठिनता, अमूर्तता जटिलता, मितव्ययिता लक्ष्य की अनुकूलतासामाजिक मूल्य व मौलिकता की उत्पत्ति से युक्त क्रिरयाओं को करने तथा शक्ति की एकाग्रता तथा संवेगात्मक दबावों का प्रतिरोध करने की आवश्यकता वाली परिस्थितियों में इन क्रियाओं को बनाये रखने की योग्यता है।''

"Intelligence is the ability to undertake activities that are characterized by difficulty, complexity, abstractness, economy. Adaptiveness to a goal, social value, and the emergence of originals and to maintain such activities under conditions that demand a concentration of energy and resistance to emotional forces." -Stoddard

इन परिभाषाओं तथा अन्य अध्ययनों के आधार पर विदित होता है कि बुद्धि-

1. सीखनेकीयोग्यता (Ability to Learn)है।
2. अमूर्तचिन्तन(Abstract Thinking)कीयोग्यताहै।
3. समस्यासमाधान (Problem Solving)कीयोग्यताहै।
4. अनुभवकालाभउठाने (Profit by Experience)कीयोग्यताहै।
5. सम्बन्धोंकोसमझने (Perceive Relationship)कीयोग्यताहै।

6. पर्यावरणसेसामन्जस्य(Adjust to Environment) स्थापनकीयोग्यताहै।

इसी के साथ हमें यह भी समझाना है कि बुद्धि में निम्नलिखित विशेषताएं भी होती हैं।

विशेषताएं:

1. यहएकजन्मजातशक्तिहै।
2. यहअमूर्तचिन्तन(Abstract Reasoning)कीयोग्यताप्रदानकरतीहै।
3. यहसीखनेमेंसहायताप्रदानकरतीहै।
4. यहपूर्वअनुभवोंसेलाभउठानेकीयोग्यताप्रदानकरतीहै।
5. यहजटिलसमस्याओंकोसरलबनातीहै।
6. यहनवीनपरिस्थितियोंसेसामन्जस्यस्थापनमेंसहायकहोतीहै।
7. बुद्धिअच्छे, बुरे सत्यअसत्य, नैतिक, अनैतिककार्योमेंअन्तरकरसकनेकीयोग्यताप्रदानकरतीहै।
8. बुद्धिकेवितरणकालिंग, जातिएवंप्रजातिकेआधारपरअन्तरनहींहै।

11.4 बुद्धि के प्रकार:

यहाँ इतना समझना ही पर्याप्त है कि बुद्धि के निम्नलिखित प्रकार होते हैं-

1. मूर्त तथा अमूर्त बुद्धि
2. सामाजिक बुद्धि
3. यांत्रिक बुद्धि

11.5 बुद्धि का मापन (Measurement of Intelligence)

बुद्धि के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। बुद्धि के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में अध्ययन करने के बाद यह बात और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है कि जब बुद्धि के स्वरूप का ही परिचय नहीं है तो फिर बुद्धि का मापन कैसे किया जा सकता है। इसी बात को ध्यान में रखकर शिक्षा जगत् में ख्याति प्राप्त लेखक द्वय क्रो एण्ड क्रो ने लिखा है। ''सम्भवतया कोई भी बुद्धि परीक्षण पूर्ण नहीं है।'' इसका अर्थ यह नहीं है कि जब कोई भी बुद्धि परीक्षण पूर्ण नहीं है तो फिर बुद्धि का मापन ही बंद कर दें। शिक्षा जगत् में बुद्धि मापन की इतनी अधिक आवश्यकता है कि इसका मापन आवश्यक हो जाता है। क्र्रो व क्रो का पूर्ण सम्मान रखते हुए हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि एक बुद्धि परीक्षण पर सहज रूप से विश्वास न करके एक से अधिक बुद्धि परीक्षणों का उपयोग कर सकते हैं। फिर शैक्षिक कार्यों के लिए बुद्धि लब्धि के अंकों को अंन्तिम सत्य न मानकर निर्देशन कार्यों के लिए एक सहयोगी उपकरण के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है। इस चर्चा को दीर्घीकृत न करके भी इसे यहीं पूर्ण

करते हैं आगे की पंक्तियों में बुद्धि परीक्षणों की आवश्यकता उनके मापन के इतिहास, प्रकार तथा कुछ बुद्धि परीक्षणों के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

11.5.1 बुद्धिमापन की आवश्यकता

विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों में स्वाभाविक रूप में अन्तर पाया जाता है, जो प्रकृतिजन्य भी होता है और समाजजन्य भी होता है। इसी कारण विद्यार्थी समान रूप से प्रगति नहीं कर पाते हैं। एक शिक्षक जो कि सभी बच्चों को एक साथ शिक्षित करने के लिए अध्यापन-कार्य करता है। फिर बच्चों की प्रगति में यह अन्तर क्यों है? किसी छात्र को ध्यान एकाग्र करने की समस्या है, कोई पारिवारिक समस्याओं से ग्रस्त है, किसी को घर पर पढ़ने का अवसर प्राप्त होता है, कोई निरन्तर अपनी स्वयं की वास्तविक या अवास्तविक समस्याओं से ग्रस्त है। बहुत सारे कारक बच्चों की प्रगति में बाधक हो सकते हैं। एक महत्वपूर्ण कारक यह भी हो सकता है कि वह मानसिक योग्यता में ही तो कम नहीं है। मानसिक योग्यता की जानकारी प्राप्त करने के लिए उसकी बुद्धि को मापने की आवश्यकता होती है।

आजकल बड़े विद्यालयों का जमाना है। कुछ विद्यालयों में एक ही कक्षा के 10-12 तक विभाग होते हैं। यदि हम सैक्शन बनाते समय अकारादि क्रम का उपयोग करते हैं तो सभी कक्षाओं में कम तथा अधिक बुद्धिलब्धि छात्रों का वितरण समान रूप से हो जायेगा। जिससे उच्च बुद्धिलब्धि वाले तथा कम बुद्धिलब्धि वाले दोनों ही तरह के छात्र प्रताड़ित होंगे, उन्हें दोनों को ही हानि होगी, क्योंकि अध्यापक औसत बुद्धि लब्धि वाले छात्रों को ध्यान में रखकर अध्यापन करेंगे तथा करते हैं। यदि हम उच्च बुद्धि वाले छात्रों तथा औसत बुद्धि वाले छात्रों का वर्गीकरण करके सैक्शन का निर्माण कर देंगे तो प्रतिभाशाली छात्रों के सैक्शन की पढ़ाई की व्यवस्था अलग की जा सकेगी, कम प्रतिभाशाली छात्रों की शिक्षण व्यवस्था अलग से की जा सकती है। यद्यपि वर्तमान लोकतांत्रित समाज व्यवस्था में इस प्रकार की व्यवस्था करना कठिन कार्य है, फिर भी यदि प्रयास किया जाये तो यह सम्भव अवश्य हो सकता है।

बुद्धि परीक्षण में यदि कोई छात्र अच्छा रैंक पता है और विद्यालय की परीक्षाओं में उसे वह रैंक उपलब्ध नहीं हो पता है तो इससे यह सिद्ध हो जाता है कि उसकी प्रगति उसके स्तर के अनुसार नहीं है। जिससे उसकी प्रगति से अवरोधी कारकों का अन्य मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से पता लगाया जा सकता है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि ''विद्यालयों में बुद्धि परीक्षणों का उपयोग यह अनुमान लगाने के लिए करते हैं कि बालक विद्यालयी कार्यों में कितनी सफलता अर्जित कर सकता है।''

11.5.2 बुद्धि मापन का इतिहास (History of Intelligence Measurement)

नालन्दा विश्वविद्यालय में द्वार पंडित हुआ करते थे, जो प्रवेशार्थियों से प्रश्न पूछकर उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश देने अथवा न देने का निर्णय लिया करते थे। इस बात के प्रमाण हमारे पास

नहीं है कि वे प्रवेशार्थी की मानसिक योग्यता को परखते थे या उस समय तक ग्रहण किये गये ज्ञान को परखते थे यक्ष द्वारा युधिष्ठिर से पूछे गये प्रश्न उनके ज्ञान का परीक्षण है या उनकी बुद्धि का परीक्षण है। आज से 50 वर्ष पहले अध्यापक अपनी मेज पर कुछ सामग्री रख देता था। उसके ऊपर मेजपोश रखकर उन्हें ढ़क देता था। छात्रों को मेज के चारों और खड़ा करके यह निर्देश देता था कि वे मेज पर रखी वस्तुओं का अवलोकन करें, वे तुम्हे बतानी है। फिर कुछ देर के लिए मेज से कपड़ा हटाकर पुनः ढ़क देता था। छात्रों को उन सामग्रियों का नाम लिखने के लिए कहता था। जो छात्र सभी सामग्रियों के नाम लिख देते थे, वे प्रतिभाशाली माने जाते थे अन्य अलग की श्रेणी बना लेते। ये सब बुद्धि परीक्षणों के प्रारम्भिक स्वरूप थे। मेलों में तारों से बने कुछ यंत्र बिका करते थे हैं जिन्हें गोरखधन्धा कहा जाता है। ये बुद्धि मापन के यंत्र हैं। इस प्रकार पहेलियां, गणित के विशिष्ट प्रश्न बुद्धि परीक्षण के रूप में प्रयोग किये जाते रहे हैं। शारीरिक आधार पर बुद्धि परीक्षण का प्रयोग आम लोग करते रहे है। जैसे हस्तरेखाओं के आधार पर किसी को बुद्धिमान घोषित कर देते हैं। ऐसी ही एक घटना विश्व के सर्वप्रथम तथा श्रेष्ठतम व्याकरणाचार्य पाणिनी के साथ घटी बताई गयी है। पाणिनी के गुरुजी ने पाणिनी के पाठ स्मरण न करने पर उनके हाथ पर डण्डा मारने के लिये फैलायी गयी हथेली का अवलोकन किया तो पाणिनी के गुरु आश्चर्य चकित रह गये कि इस छात्र के हाथ में तो बुद्धि की रेखा ही नहीं है। उस गुरु ने पाणिनी से क्षमा याचना करते हुए कहा कि मैं निरर्थक ही तुम्हें अध्ययन न करने का दोषी ठहराता रहा। तुम्हारे हाथ में तो विद्या की रेखा ही नहीं है। अब तुम्हें पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। अपने घर चले जाओं। पाणिनी के स्वाभिमान को ठेस लगी। उन्होंने गुरुजी से पूछा कि विद्या की रेखा कहां होती है। गुरुजी ने उन्हें वह स्थान बता दिया कहते हैं कि गुरूजी द्वारा बताये स्थान पर उन्होंने तीव्र चाकू से हाथ में विद्या की रेखा के स्थान पर घाव कर दिया। यद्यपि यह कथानक/घटना व्यक्ति के उत्प्रेरण से सम्बन्धित है परन्तु इससे यह भी प्रकट होता है कि शायद हस्तरेखा देखकर भी बुद्धि का अनुमान लगाया जाता हो। एक कहावत है -''छिद्र दंता क्विचित मूर्खा, क्विचित खल्लवाटा निर्धना''। अर्थात् छीदे दांतों वाला कोई-कोई मूख होता है तथा जिसके सिर के बाल उड़े हुए हों वह कोई-कोई ही निर्धन होता है। यानि छीदे दॉतों वाले बुद्धिमान और गंजे धनवान हुआ करते हैं। ऐसी ही बात जिन व्यक्तियों की भौं परस्पर मिली रहती है उन लोगों को तेज-तर्रार बुद्धिमान बताया गया है। इसी प्रकार आज भी कुछ लोग व्यक्ति का चेहरा-मोहरा देखकर बुद्धि का अनुमान लगाने का दावा करते हैं लैवेस्टर (स्विट्जरलैण्ड) ने 1772 में शरीराकृति के आधार पर बुद्धि मापन को प्रस्तुत किया। यहां पर प्रस्तुत कुछ बातें प्रसंगवश प्रस्तुत कर दी गयी हैं।

1879 में विलियन वुण्ट ने जर्मनी के लीपजिंग नगर में अपनी मनोविज्ञान प्रयोगशाला स्थापित करके बुद्धि मापन के कार्य को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इस प्रयोगशाला में बुद्धि मापन का कार्य यंत्रों के माध्यम से किया जाता था। अतः हम वुण्ट (Wundt)को बुद्धि परीक्षणों का पिता घोषित कर सकते हैं।

वुण्ट के बाद बिने (Binet)ने फ्रांस में, विंच (Winch)ने इंग्लैण्ड में मेनान (Menann) ने जर्मनी में तथा थार्नडाइक और टर्मन (Thorndike and Terman)ने अमेरिका में बुद्धिमापन के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया। बिने और साइमन का बुद्धि परीक्षण ''बिने-साइमन बुद्धि- मापन ''निर्मित हुआ। जिसे टर्मन ने संशोधन करके उसे ''स्टेफोर्ड-बिने मानक्रम'' नाम दिया।

इसके बाद बुद्धि परीक्षणों की बहुतायत हो गई। सभी देशों की मनोविज्ञान प्रयोगशालों ने बुद्धि परीक्षण बनाने का कार्य किया। आज सैकड़ों की संख्या में बुद्धि परीक्षण उपलब्ध है।

11.6 मानसिक आयु तथा बुद्धि लब्धि (Mental age and I.Q.)

जब हम बुद्धि का मापन किसी परीक्षण के माध्यम से करते हैं तो उससे बुद्धि लब्धि ज्ञात करते है। बुद्धिलब्धि किसी व्यक्ति के मानसिक स्तर को 100 के आधार पर बाताती है। यदि व्यक्ति की बुद्धिलब्धि 100 है तो उसका बैद्धिक स्तर सामान्य है। यदि 100 से अधिक है तो बौद्धिक स्तर सामान्य से अधिक है। कम होने पर बौद्धिक स्तर से कम होता है। बुद्धिलब्धि से मानसिक स्तर की जानकारी प्राप्त होती है।

'बुद्धिलब्धि' जानने के लिये मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु जानना आवश्यक है। मानसिक आयु ज्ञात करने के लिये व्यक्ति को बुद्धि परीक्षण देना होता है। मानसिक आयु का सम्प्रत्यय 'बिने' ने प्रतिपादित किया। मानसिक आयु किसी व्यक्ति द्वारा किये जा सकने वाले मानसिक कार्यों से ज्ञात की जाती है, जिसकी उस आयु वर्ग से अपेक्षा की जाती है। यदि वह अपनी आयु के लिए निर्धारित कार्यों से अधिक कार्य करता है तो उसकी मानसिक आयु अधिक होगी और यदि वह अपनी आयु के लिए निर्धारित कार्यों से कम कार्य करता है तो उसकी मानसिक आयु उसकी वास्तविक आयु से कम होगी।

मानसिक परीक्षण तैयार करते समय मानसिक आयु के अनुरूप कार्यों का चयन असल में बहुत कठिन कार्य रहा है। परन्तु अब यह उतना कठिन नहीं माना जा रहा है। हम यहां शाब्दिक बुद्धि परीक्षण का उदाहरण देकर यह बात समझने का प्रयास कर रहे हैं।

हमें एक बुद्धि परीक्षण का निर्माण करना है। इसमें बुद्धि परीक्षण में, प्रेक्षण, अंकयोग्यता शाब्दिक योग्यता, वाक्शक्ति, स्मरण शक्ति, तार्किक योग्यता, पर्यवेक्षण योग्यता, समस्या समाधान, निगमनात्मक योग्यता, आगमन योग्यता आदि के प्रश्न सम्मिलित कर लिये। इन प्रश्नों का स्तर 12 वर्ष से 19 वर्ष की आयु वर्ग के विद्यालयों में पढ़ने वाले बालकों के स्तर को ध्यान में रख कर किया। जब हम इस परीक्षण को हजारों की संख्या में इसी आयु वर्ग के छात्रों पर प्रशासित करते हैं तो उनके कुछ अंक आते हैं। उन अंगों को आयु के आधार पर सारणीकृत कर लेते हैं मानलिया 15 वर्ष की आयु के बालकों के मध्यमान अंक 60 आये तो इस आधार पर हम कह सकते हैं कि 60 अंक प्राप्त करने वाले परीक्षार्थियों की मानसिक आयु 15 है।

इसी परीक्षण में 60 अंक प्राप्त करने वाले कुछ परीक्षार्थी 15 वर्ष के होंगे, कुछ 13 वर्ष, 13.5 वर्ष 14 वर्ष, 14.5 वर्ष, 15 वर्ष, 15.5 वर्ष, 16 वर्ष, 16.5 वर्ष, 17 वर्ष, 17.5 वर्ष, 18 वर्ष, 18.5 वर्ष तथा 19 वर्ष के भी होंगे। इन सभी 60 अंक प्राप्त करने वाले परीक्षार्थियों की मानसिक आयु 15 वर्ष मानी जाएगी।

मानसिक आयु ज्ञात हो जाने पर उसकी वास्तविक आयु से भाग देकर 100 से गुणा करके बुद्धिलब्धि ज्ञात कर ली जाती है। मानसिक आयु बुद्धि परीक्षणों में प्राप्त अंकों के आधार पर बनाई गई सारणी से ज्ञात की जाती है, जो कि उस परीक्षण के मैनुअल में दी गई होती है। इस प्रकार –

बुद्धि लब्धि = त्मानसिक आयु

___________ X 100

वास्तविक आयु

पीछे दिये गये उदाहरणों के आधार पर बुद्धिलब्धि की गणना नीचे की सारणी में की जा रही है।

सारणी 11.1

बुद्धि-लब्धि की गणना

मानसिक आयु	**वास्तविक आयु**	**बुद्धिलब्धि पूर्णांकों में**
15	13.5	(15/13.5) x100 =111
15	14.0	(15/14) x100 = 107
15	14.5	(15/14.5) x100 = 103
15	15.0	(15/15)x 100 = 100

15	15.5	(15/15.5) x100 =97
15	16.0	(15/16) x 100 = 94
15	16.5	(15/16.5) x100 = 91
15	17.0	(15/17) x 100 = 88
15	17.5	(15/17.5) x 100 = 86
15	18.0	(15/18) x 100 = 83
15	18.5	(15/18.5) x 100 = 81
15	19.0	(15/19) x 100 = 9

ऊपर दिया गया उदाहरण एक काल्पनिक उदाहरण है। इसे मानसिक आयु तथा बुद्धिलब्धि को समझने के लिये प्रयोग किया गया है।

11.7 बुद्धिलब्धि का वर्गीकरण (Classification of I.Q.)

बुद्धिलब्धि का वर्गीकरण अलग-अलग बुद्धि परीक्षणों में अलग-अलग किया गया है। यहां पर हम स्ऄनफोर्ड बिने के आधार पर बुद्धिलब्धि प्राप्तांकों का वर्गीकरण सारणी में प्रस्तुत कर रहे हैं।

सारिणी 11.2

स्टेनफोर्ड-बिने के आधार पर बुद्धिलब्धि का वर्गीरण

बुद्धिलब्धि	व्याख्या	जनसंख्या में प्रतिशत
140 या अधिक	प्रतिभाशाली (Genius)	1 %
120-139	अति श्रेष्ठ (Very Superior)	7%
110-119	श्रेष्ठ (Superior)	16 %
90-109	समान्य (Normal)	50 %
80-89	मन्द (Dull)	16 %
70-79	सीमान्तमन्दबुद्धि (BorderlineFeebleminded)	7%
60-69	मूर्ख (Moron)	3 %
20-59	मूढ़ (Imbecile)	
20 से कम	जड़ (Idiot)	

कई एक अनुसंधायकों ने अपने अलग वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं। वर्ग के नामों में भी अन्तर है। यहां पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जिस परीक्षण से बुद्धि लब्धि की गणना की गई है, उसी के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाना चाहिए। बुद्धि के मापन के क्षेत्र में वेश्लर का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्होंने भी विश्वस्तरीय बुद्धि परीक्षण का निर्माण किया है। वेश्लर ने सामान्य सम्भावयता वक्र (Normal Probability Curve) के आधार पर स्पष्ट किया है। लगभग 50 प्रतिशत लोगों को प्राप्तांक औसत प्रसार (Average Range) अर्थात् 90-110 के बीच पड़ता है। बुद्धि लब्धि का वितरण चित्र 11.7 में दर्शाया गया है। इस चित्र से बुद्धि-लब्धि की अन्य सीमाओं के बीच पड़ने वाले प्राप्ताकों को भी प्रदर्शित किया गया है। वेश्लर का निश्कर्ष है कि केवल पॉच प्रतिशत व्यक्ति ही 130 बुद्धिलब्धि या इस से अधिक या 70 बुद्धि लब्धि से कम बुद्धि लब्धि वाले होते हैं।

11.8 बौद्धिक विकास तथा हनास Intelligence Development and Depreciation)

यहा यह पहले स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बुद्धि लब्धि जिसे हम विभिन्न परीक्षणों से नापते हैं, वह एक व्यक्ति की बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक एक ही रहती है। उसमें यदि थोड़ा बहुत

अन्तर आता है तो वह मापन में होने वाली त्रुटियों के कारण ही होता है। जहां तक मानसिक विकास का प्रश्न है, वह होता है। विभिन्न अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है। कि बाल्यकाल में बौद्धिक विकास तीव्र गति से होता है। जैसे ही बच्चो 12-13 वर्ष की आयु में पहुंचता है तो बौद्धिक विकास तो होता रहता है परन्तु उसकी गति धीमी हो जाती है। कुछ मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि बौद्धिक विकास 14 वर्ष तक की आयु तक होता है। कुछ मानते हैं कि 16 वर्ष की आयु तक होता है, जबकि कुछ अन्य मानते हैं कि 20 वर्ष की आयु तक विकास होता है। कुछ मनोवैज्ञानिक का यह भी मानना है कि कुछ व्यक्तियों में यह विकास 26 वर्ष की आयु तक भी हो सकता है, जबकि कुछ यह मानते हैं कि इस आयु में बौद्धिक ह्रास प्रारम्भ हो सकता है। कहने का तात्पर्य है कि बौद्धिक विकास की अवधि में भी मत-विभेद होते हैं।

बेले (Baylay) के दीर्घकालिक अध्ययन के परिणाम चित्र में प्रस्तुत किये गये हैं इससे यह स्पष्ट होता है कि तीव्र गति से बौद्धिक विकास 14 वर्ष की आयु तक होता है फिर उसके विकास में धीमापन आ जाता है। 18 वर्ष की आयु तक स्थिर हो जाता है। इसके बाद विकास नहीं होता। इन्होंने उसे वक्र द्वारा प्रस्तुत किया, जिसे चित्र 11.8 में प्रदर्शित किया गया है।

शाई तथा स्ट्राथर के अनुसार 40 वर्ष की आयु के बाद मानसिक ह्रास की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। 60 वर्ष की आयु के बाद अचानक ह्रस तीव्र गति से होना प्रारम्भ हो जाता है। इस अध्ययन का यह भी निष्कर्ष है कि मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था में ह्रास का कारण स्वास्थ्य तथा योग्यता के प्रकार पर भी निर्भर करता है। जिन व्यक्तियों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है तथा अपने कार्यों में व्यस्त्त रहते हैं, उनके ह्र्रास की गति धीमी रहती हैं। शारीरिक दोष तथा रक्ताल्पता भी ह्रास की गति को बढ़ाती है। शाई तथा स्टाथर के आधार बौद्धिक योग्यता के ह्र्रास का प्रस्तुतीकरण चित्र 11.9 में प्रदर्शित किया गया है।

11.9 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार (Types of Intelligence Test)

बुद्धि परीक्षणों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है, जैसे-कुछ बुद्धि परीक्षण केवल एक समय में एक व्यक्ति पर ही प्रशासित किये जाते हैं कुछ परीक्षण समूह पर प्रशासित किये जा सकते हैं।

इस प्रकार पहला वर्गीकरण हुआ-

i. सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Group Intelligence Test)
ii. वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण (Individual Intelligence Test)

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षणों में अधिक समय लगता है। इनमें विशिष्ट प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। ये छोटे बच्चों के लिये विशेष रूप से उपयोगी होते हैं जबकि सामूहिक परीक्षणों में कम समय लगता है, विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। ये बड़े बच्चों के लिये प्रयोग होते हैं।

सारणी 11.3

व्यक्तिगत तथा सामूहिक बुद्धि परीक्षणों में अन्तर

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण	सामूहिक बुद्धि परीक्षण
एक समय में केवल एक ही व्यक्ति पर प्रशासित किया जा सकता है।	एक साथ व्यक्तियों के समूह पर प्रशासित किया जा सकता है।
इन परीक्षणों के प्रशासन में अधिक समय लगता है।	समान्यता 45 से 90 मिनट का समय प्रशासन में लगता है।
ये परीक्षण प्रशासन व समय की दृष्टि से अधिक व्यय साध्य होते हैं।	ये प्रशासन व समय की दृष्टि से अपेक्षाकृत मितव्ययी होते हैं।
इन परीक्षणों के प्रशासन के लिए प्रशिक्षित व अनुभवी व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।	सामान्य व्यक्ति भी इनका प्रशासन अल्प प्रशिक्षण प्राप्त करके कर सकते हैं।
ये परीक्षण पूर्णतया वैध तथा विश्वसनीय होते हैं।	इनके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष कम प्रमाणित होते है।
प्रायः इन परीक्षणों की समय सीमा निर्धारित नहीं होती है।	इन परीक्षणों की समय-सीमा पूर्व निर्धारित होती है।
इन परीक्षणों का अंकन कार्य कम वस्तुनिष्ठ होता है।	इनका अंकन पूर्णरूपेण वस्तुनिष्ठ होता है।
प्रायः ये परीक्षण मौखिक प्रकृति के होते हैं।	ये परीक्षण लिखित होते हैं।
इनका प्रयोग अनपढ़ व्यक्तियों पर भी किया जा सकता है।	इनका प्रयोग पढ़े लिखे व्यक्तियों पर ही किया जाता है।
इन परीक्षणों में विद्यार्थियों को प्रोत्साहित किया जा सकता है।	इन परीक्षणों में केवल सामान्य प्रोत्साहन ही दिया जा सकता है।
इन परीक्षणों में छात्र व परीक्षक के मध्य सम्पर्क स्थापित होता है।	इन परीक्षणों में छात्र व परीक्षक के मध्य सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता।
इन परीक्षणों में प्रश्न प्रायः कठिन प्रकृति के होते हैं।	इन परीक्षणों में प्रश्न प्रायः सरल प्रकृति के होते हैं।

सारणी: 11.4

व्यक्तिगत व सामूहिक बुद्धि परीक्षणों के कुछ उदाहरण

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (Individual Intelligence Test)	**समूहिक बुद्धि परीक्षण (Group Intelligence Test)**
बिने साइमन परीक्षण	जलोटा का साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण
स्टैनफोर्ड-टरमन संशोधन	आर्मी ऐल्फा परीक्षण
गुड एनफ ड्रा-एक मैन परीक्षण	टंडन व मेहता का सामान्य बुद्धि परीक्षण
भाटिया बैटरी	आर्मी सामान्य वर्गीकरण परीक्षण
पोर्टियस भूल भुलैयॉ परीक्षण	आर्मी बीटा परीक्षण

बुद्धि परीक्षणों का दूसरा वर्गीकरण है-

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence test)
2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non-verbal Intelligence Test)

शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में भाषा का ज्ञान आवश्यक होता है। इसमें सम्मिलित प्रश्नों का उत्तर परीक्षार्थी लिखकर देता है। ये परीक्षण अनपढ़, मूकबधिर, दृष्टिहीनों के लिये उपयोगी नहीं हो सकते। छोटे बच्चों पर इन परीक्षणों को उपयोग नहीं किया जा सकता।

सारणी: 11.5

शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में अन्तर

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence Test)	**अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non-Verbal Intelligence Test)**
इनका प्रयोग केवल पढ़े लिखे व्यक्तियों पर ही संभव है।	इनका प्रयोग निरक्षण, छोटे बालकों तथा मंदबुद्धि वालों पर भी किया जा सकता है।
ये कम व्यय साध्य होते हैं	ये अपेक्षाकृत अधिक व्यय साध्य होते हैं।
इन परीक्षणों में भाषा के माध्यम से बुद्धि का	इन परीक्षणों में चित्रों, सामग्रियों, तथा क्रियाओं

परीक्षण किया जाता है।	के माध्यम से मानसिक योग्यता का परीक्षण किया जाता है।
इन परीक्षणों में प्रश्नों की प्रतिक्रिया भाषा के माध्यम से दी जाती है।	इनमें क्रियाओं द्वारा प्रत्युत्तर दिया जाता है।
इन परीक्षणों के परिणाम परीक्षार्थी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से प्रभावित रहते हैं।	इन परीक्षणों के परिणाम परीक्षार्थी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से अप्रभावित रहते हैं।

शाब्दिक तथा आशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में से प्रमुख के नाम निम्न लिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किये गये हैं।

सारणी 11.6

शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों के कुछ नाम

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण	अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण (डॉ0 एम0 सी0 जोशी)	गुडएनफ का ड्रा ए मैन टेस्ट (डॉ0 प्रमिला पाठक के मानक) (डॉ0 के0 एल0 श्रीमाली के मानक)
सामूहिक बुद्धि परीक्षण (डॉ0 प्रयाग मेहता)	रेविन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स (इलाहाबाद मनोविज्ञान शाला के मानक)
साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण(डॉ0 जलोटा)	नान वर्बल गुरुप टेस्ट ऑफ इन्टेलीजेन्स (रघुवंश त्रिपाठी के मानक)
सामूहिक बुद्धि परीक्षण (इलाहबाद मनोविज्ञान प्रयोगशाला	ह्यूमैन फीगर ड्राइंग टेस्ट (सी.आई.ई. के मानक)
सामूहिक बुद्धि परीक्षण (सी0आई0ई0)	जेनकिन्स का अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (सी.आई. ई. के मानक) पिजन का अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (सी. आई. ई. के मानक)

	कैटिल का कल्चर फ्री टेस्ट कोहज ब्लाक डिजाइन भाटिया बैट्री

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण (Individual Intelligence test) कुछ उदाहरण:

भाटिया की निष्पत्ति परीक्षणमाला

बुद्धि परीक्षण की इस निष्पत्ति परीक्षणमाला का निर्माण डा0 चन्द्रमोहन भाटिया ने किया था। डा0 भाटिया उत्तर प्रदेश मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद के संचालक रहे हैं। इन्होंने इस टेस्ट को 900 बालकों पर प्रयोग करके मानकीकरण किया। इस परीक्षणमाला में 5 टेस्ट सम्मिलित हैं-

1. **कोहज ब्लॉक डिजाइन टैस्ट** - कोहज ने अपने बुद्धि परीक्षण के लिए 17 डिजाइनों का प्रयोग किया था। डॉ0 भाटिया ने उनमें से 10 डिजाइनों का चयन किया इनमें से 5 डिजाइनों के लिए 2 मिनट तथा अन्तिम 5 डिजाइनों के लिए 3 मिनट का समय निर्धारित किया गया है। इस परीक्षण में 10 कार्ड होते हैं, जिन पर डिजाइन बने रहते हैं। इन डिजाइनों को देखकर घनाकार रंगीन गुटकों से डिजाइन तैयार करना होता है। रंगीन गुटके घनाकार होते हैं। तथा उनकी प्रत्येक सतह एक या अधिक रंगों रंगी होती है।
2. **अलेक्जेन्डर पास एलोंग टैस्ट**- यह अलेक्जेन्डर (कैरबिंज विश्वविद्यालय प्रेस) द्वारा 1932 में प्रकाशित किया गया था। इस पास एलोंग टेस्ट के तीन भाग हैं। भिन्न आकार के चार लकड़ी के बॉक्स, विभिन्न आकार के लाल तथा नीले रंग से रंगे लकड़ी के गुटके तथा विभिन्न आकृति के आठ चित्र जिन पर आकृतियां प्रिंट रहती है। इन आकृतियों को देखकर परीक्षार्थी आकृति का निर्माण करता है इन आकृतियों पर कठिन स्तर के आधार पर नम्बर छपे रहते हैं।
   परीक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व परीक्षार्थी को निर्देश दिये जाते हैं। इनमें दो आकृतियों को एक के बाद दूसरा न बनाने पर आगे के पैटर्न नहीं दिये जाते।
3. **पैटर्न ड्राइंग टेस्ट**-इसे आकृति चित्रण भी कहते हैं यह संरचना डॉ0 भाटिया की स्वयं की है। इसमें आठ कार्ड होते हैं। प्रत्येक कार्ड पर एक आरेख बना होता है। परीक्षार्थी को बिना पैंसिल उठाये आरेख का निर्माण करना होता है। पहले चार आरेखों के लिए 2 मिनट का समय तथा अन्तिम चार आरेखों के लिये 3 मिनट का समय निर्धारण होता है।
4. **तत्काल स्मृति परीक्षण (Immediate Memory Test)** इस टेस्ट में तत्काल स्मृति का परीक्षण करने के लिये परीक्षणकर्ता द्वारा बोले गये अंकों को तथा अक्षरों को परीक्षार्थी द्वारा दोहराया जाता है। इसके बाद परीक्षार्थी को परीक्षणकर्त्ता द्वारा बोले गये अंक तथा

अक्षरों को व्युत्क्रम (उल्टा) दोहराना पड़ता है। जैसे- 3, 5, 7, को 7, 5, 3, तथा 4, 6, 9, 7 को 7, 9, 6, 4 आदि पहले सीधे क्रम में दो अंक बोले जाते हैं। इनके दोहराने पर क्रमशः तीन, चार पॉच तथा इसी प्रकार एक से नौ तक अंकों के दोहराने का क्रम रहता है। अक्षरों में यह संख्या 8 तक रहती है।व्युत्क्रम में अंकों की संख्या 3 से प्रारम्भ होकर 5 तक रहती है और अक्षरों में व्युत्क्रम की संख्या 3 से प्रारम्भ होकर 6 तक रहती है। परीक्षार्थी के एक बार गलत बोलने पर दो अवसर दिये जाते हैं। लेकिन ये अवसर पूर्व वाले अंकों या अक्षरों के न होकर अलग सैट के होते हैं।अक्षर तथा तथा अंकों के बोलने की गति भी पूर्व निर्धारित होती है। प्रत्येक अंक अथवा अक्षर में 1-1 सैकण्ड का अन्तर रखा जाता है।

5. **चित्र-रचना परीक्षण:** इस टेस्ट में कुल पांच चित्र होते हैं। इन पांचों चित्रों को क्रमशः 2, 4, 6, 8 तथा 12 दुकड़ों में विभाजित कर दिया गया होता है। पहले तीन चित्रों के लिए 2 मिनट का समय तथा अन्तिम 2 चित्रों के लिए 3 मिनट का समय निर्धारित रहता है।

भाटिया बैटरी के प्रशासन में कुल एक घण्टे का समय लगता है। अधिकतम अंक 95 निर्धारित होते हैं। विभिन्न 1 से 5 भागों के लिये क्रमशः 25, 20, 20, 15, 15 अंक निर्धारित किये गये हैं अंकों की प्राप्ति के आधार पर मैनुअल में दिये गये अनुसार परीक्षार्थी की मानसिक आयु की जानकारी प्राप्त की जाती है, जिसके आधार पर बुद्धिलब्धि की गणना की जाती है।

सामूहिक बुद्धि परीक्षण (Group Intelligence Test)

टरमन मानसिक योग्यता परीक्षण: आर्मी अल्फा परीक्षण के आधार पर सन् 1920 में टरमन ने मानसिक योग्यता के सामूहिक परीक्षण का निर्माण किया। इस परीक्षण में 10 उप परीक्षण हैं जोकि इस प्रकार है।

1. सूचना
2. कहावतों तथा अन्य तथ्यों का निर्वचन
3. शब्दों के अर्थ तथा उनके विलोम शब्द
4. तर्क संगत चयन
5. गणितीय समस्याएं
6. वाक्यों का अर्थ
7. आनुपात पूर्ति-
8. अव्यवस्थित वाक्य
9. वर्गीकरण
10. अंक श्रंखला की पूर्ति

इस परीक्षण के प्रशासन की समय सीमा 35-40 मिनट है तथा परीक्षण में कुल 185 प्रश्न सम्मिलित हैं। यह परीक्षण सामान्य वर्गीकरण करने तथा शैक्षिक सफलता का आकलन करने की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। इस परीक्षण का हाईस्कूल एवं कॉलेज स्तरों पर सामान्तया उपयोग किया जाता है।

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non verbal Intelligence test)

1. **रेविन की प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स**

   यहसांस्कृतिकप्रभावोंसेमुक्तपरीक्षणहै।इसपरीक्षणद्वाराबालकोंसेलेकरवृद्धोंतककीबुद्धिकामापनकियाजाताहै।यहभाषामुक्तपरीक्षणहै।निर्देशदेनेकेअलावापरीक्षणमेंभाषाकीआवश्यकतानहींहोती,

   जिससेइसटेस्टसेअनपढ़व्यक्तियोंकीबुद्धिकामापनभीकियाजातासकताहै।इसपरीक्षणद्वाराप्रत्यक्षीकरणतार्किकयोग्यता(Perceptual Reasoning)केद्वाराबुद्धिकामापनकियाजाताहै।

   इस परीक्षण के दो रूप हैं-

   i. **रंगीन प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स-**

   इस मैट्रिक्स के 3 खण्ड हैं- ए, एबी तथा बी। प्रत्येक खण्ड में 12-12 आकृतियां हैं इस प्रकार 36 आकृतियां हैं। इन आकृतियों को बच्चों के ध्यानाकर्षण के लिये रंगीन बनाया गया है। आकृतियों को काठिन्य स्तर के अनुसार क्रमशः समायोजित किया गया है। इसका अर्थ है पहली आकृति अति सरल तथा 36वीं आकृति अत्यन्त कठिन होती है। प्रत्येक ठीक प्रश्न पर एक अंक दिया जाता है। मैनुअल में देखकर आयु के आधर पर बुद्धिलब्धि की गणना की जाती है। इसके प्रशासन में 30 मिनट का समय लगता है।

   ii. स्टैन्डर्ड प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स

   इस मैट्रिक्स के 5 भाग- ।ण्ठण्ब्ण्क्ण् तथा म् होते हैं। प्रत्येक भाग में 12 रचनाएं होती हैं इस प्रकार कुल 60 संरचनाएं होती हैं। वैसे यह व्यक्ति परीक्षण हैं लेकिन समूह में भी अलग-अलग प्रतियां देकर प्रशासित किया जा सकता है। यह युवाओं तथा व्यस्कों के लिये है। इस मैट्रिक्स में भी 6 आकृतियों में से एक का चयन बड़े चित्र के खाली स्थान की पूर्ति के लिये किया जाता है। जिसमें भी सही उत्तर के लिए एक अंक प्रदान किया जाता है। अधिकतम अंक 60 हो सकते हैं। अंकों तथा आयु के आधार पर प्रतिशत नोर्म्स तथा बुद्धिलब्धि ज्ञात की जाती है।

रेविन की प्रोग्रेसिव मैट्रिक्स को मनोविज्ञान जगत में एक अत्यन्त विश्वसनीय बुद्धि परीक्षण माना जाता है। अन्य परीक्षणों की अपेक्षा इसका उपयोग भी अधिक होता है।

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence Test)

आर ओझा तथा के राय चौधरी 0के0

इस परीक्षण का निर्माण श्री आर.के. ओझा मनोविज्ञान विभाग के.जी. कॉलेज मुरादाबाद तथा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय मनोविज्ञान विभाग से सेवानिवृत्त श्री के. राय चौधरी के द्वारा 1964 से 1970 के बीच किया गया। यह परीक्षण वस्तुनिष्ठ परीक्षण है, इसमें आठ प्रकार के प्रश्न निम्नलिखित प्रकार है।

1. **वर्गीकरण:** इस वर्ग में पद संख्या 15 है तथा इसमें 5 शब्द हैं एक शब्द ऐसा है जो अन्य चार से भिन्न है। भिन्न शब्द को रेखांकित करते हैं।
2. **तुल्यात्मक:** इस वर्ग में भी पदों की संख्या 15 ही है। प्रत्येक पद के चार विकल्प हैं पहले जोड़े का एक सम्बन्ध है। तीसरे शब्द के लिए कोष्ठक में दिये हुए चार विकल्पों में से एक शब्द को रेखांकित करना है।
3. **पर्याय:** पर्याय: इस वर्ग में 20 शब्द दिये गये हैं। परीक्षार्थी प्रत्येक पद में एक शब्द तथा कोष्ठक में चार विकल्पों में से एक को रेखांकित करता है।
4. **संख्यात्मक:** इस विभाग में 12 पद हैं प्रत्येक पद में 6 संख्याएँ दी गई हैं और सातवीं संख्या रिक्त स्थान में लिखनी होती है। उत्तरदाता को वह उचित संख्या लिखनी होती है।, जो उस क्रम को पूरा करती है।
5. **पूर्ति परीक्षण:** इस वर्ग में चार गद्यांश दिये गये हैं पहले गद्यांश में पांच स्थान खाली स्थान की पूर्ति के लिए छोड़े गये हैं। प्रत्येक रिक्त स्थान के लिए चार विकल्पों में से एक का चयन करके रेखांकित करना है। इसी प्रकार गंद्याश 2 में 2 स्थान, गद्यांश 3 में 4 स्थानों, गद्यांश 4 में 2 स्थानों के लिये उचित शब्दों को रेखांकित करना है। इस प्रकार इस उप-परीक्षण में कुल 13 उत्तर लिखने हैं, जिनका फलांक 13 ही होगा।
6. **परिच्छेद परीक्षण:** इस क्रम परीक्षण में एक रेखाचित्र दिया गया है, जिसमें पारिवारिक सम्बन्धों को दिखाया गया है। इसके बाद 10 प्रश्न लिखे गये हैं। जिनके उत्तर सम्बन्ध के रूप में लिखने होते हैं।
7. **उत्तम तर्क:** इस विभाग में 10 प्रश्न दिये गये हैं। प्रत्येक प्रश्न के चार उत्तरों में से एक का चयन करना होता है।
8. **सरल तर्क:** इस भाग को दो भागों में बांटा गया है। वर्णमाला मात्राओं के साथ ही गई है, जिनके ऊपर 1 से 57 तक संख्या लिखी गई है। इसके बाद 10 पद लिखे गये हैं। प्रत्येक पद में संख्याएं लिखी हैं, संख्याओं के सामने वर्णमाला के अक्षरों को लिखना है। दूसरे भाग में

7 विकल्प प्रश्न हैं पहले 5 प्रश्नों के 3 विकल्प हैं और अन्तिम दो प्रश्नों के लिए चार विकल्प हैं। सही विकल्प को रेखांकित करना होता हैं

इस प्रकार परीक्षण में कुछ 112 प्रश्न हैं, जिनके फलांकों का कुल योग भी 112 ही है। परीक्षण में कुल 40 मिनट निर्धारित है। प्रत्येक भाग के लिए निर्धारित समय तथा प्रत्येक भाग के निर्देशों को साथ लिखा गया होता है।

इस प्रकार परीक्षण में कुछ 112 प्रश्न हैं, जिनके फलांकों का कुल योग भी 112 ही है। परीक्षण में कुल 40 मिनट निर्धारित है। प्रत्येक भाग के लिए निर्धारित समय तथा प्रत्येक भाग के निर्देशों को साथ लिखा गया होता है।

अंकन

अंकन कार्य अंकन कुंजी (Scoring key) के माध्य से किया जाता है।

मानकीकरण

इस परीक्षण का मानकीकरण 1200 छात्रों पर किया गया। इस परीक्षण के माननीकरण में यद्यपि 13 वर्ष से 20 वर्ष तक की आयु के 200 छात्र 9 से 12 कक्षा में सम्मिलित रहे हैं लेकिन इस परीक्षण को 13-16 वर्ष के छात्रों को ही उपयोग करने के लिए अभिस्ताविक किया गया है।

विश्वसनीयता

विश्वसनीय की गणना अर्धविच्छेदी तथा कूडर रिचर्डसन सूत्र से की गई जो कि क्रमशः 0.87 तथा 0.97 प्राप्त हुई। अलग-अलग विभिन्न आठों भागों को भी विश्वसनीयता को भी जाना गया है।

वैधता

वैधता की गणना 6 परीक्षणों से भी तथा विभिन्न भागों में भी पारस्परिक सहसम्बन्ध जाना गया।

मानक

विभिन्न आयु वर्गों के लिए शतांकमान तथा आयु के आधार पर टी. फलांक (T-Score) प्रस्तुत किये गये हैं फलांकों के आधार पर वर्ग निश्चित किये गये हैं तथा सम्भावित त्रुटि (P.E) को सीमाएं भी दी गई हैं।

11.10 बुद्धि परीक्षणों का प्रतिवेदन

बुद्धि परीक्षणों का प्रतिवेदन लिखने से पहले यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि परीक्षक यह जान ले कि यह एक अत्यन्त गोपनीय प्रतिवेदन होता हैं विषयी को या अनाधिकृत व्यक्तियों को यह प्रतिवेदन या बुद्धि लब्धि के अंकों को नहीं बताना चाहिये, क्योंकि इससे विषयी के मन मे ंउच्च भावना या हीनभावना पनप सकती है। अतः प्रतिवेदन को अत्यन्त गोपनीय की तरह रखा जाना चाहिए। प्रशिक्षार्थियों को रिपोर्ट (प्रतिवेदन) लिखना होता है, उसमें भी यह ध्यान रखना आवश्यक है। प्रतिवेदन का प्रारूप यह हो सकता है।

अत्यन्त गोपनीय

बुद्धि परीक्षण का प्रतिवेदन (सामान्य जानकारी)

परीक्षण का नाम	:	
अनुक्रमांक	:	
विषयी का नाम	:	कक्षा:
विद्यालय का नाम	:	अनुक्रमांक:
जन्मतिथि	:	आयु:
परीक्षण की तिथि	:	
परीक्षण का नाम	:	

विषयी की शरीरिक स्थिति :

विषयी की संवेगात्मक स्थिति:

परीक्षण के समय पर्यावरण :

परीक्षण में प्रयुक्त सामग्री:

1. परीक्षण का उद्देश्य
2. बुद्धि मापन की आवश्यकता
3. प्रयुक्त परीक्षण की विशिष्टताएं यह सब परीक्षण के मैनुअल में लिखी रहती है। इसमें प्रश्नों - की संख्या, प्रश्नों के प्रकार, परीक्षण की विश्वसनीयता , वैधता, तथा मानक आदि का वर्णन करना चाहिये।

4. परीक्षक द्वारा दिये गये निर्देश,
5. परीक्षण के लिये दिया गया समय,
6. उत्तरों के मूल्यांकन की विधि,
7. विषयी द्वारा प्राप्त अंक,
8. मानसिक आयु,
9. वास्तविक आयु
10. बुद्धिलब्धि
11. विषयी के विद्यालयी परीक्षा में प्राप्त अंक,
12. निर्वचन (Interpretation)
13. सुझाव
    (क) अध्यापकों को सुझाव
    (ख) अभिभावकों को सुझाव
    (ग) विषयी को सुझाव।

14. सारांश -पुनः स्मरण कराना आवश्यक है कि अध्यापकों, अभिभावकों तथा विषयों को सिर्फ सुझाव ही दिये जाएं। विषयी को बुद्धि-लब्धि आदि की जानकारी नहीं देनी चाहिये। और यदि गोपनीयता भंग होने की सम्भावना हो तो विषयी को नाम न लिखने के निर्देश दिये जाएं, उसके स्थान पर परीक्षक के द्वारा दिया गया गोपनीय पहचान अनुक्रमांक दिया जाये।

11.11 बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता Use of Intelligence Tests

व्यवहारिक विज्ञानों में जिसके अन्तर्गत शिक्षा, मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र को सम्मिलित किया जाना है, बुद्धि परीक्षणों का व्यापक उपयोग किया जाता है। बुद्धि परीक्षण बुद्धि का मापन करने के लिए उत्तम यन्त्र है, किन्तु इनकी श्रेष्ठता उनके उचित रीति से किए गए उपयोग पर निर्भर करती है। बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता के सम्बन्ध में गेट्स का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है कि ‘बुद्धि परीक्षायें व्यक्ति की सम्पूर्ण योग्यता का माप नहीं करती है। पर वे उसके एक अति महत्वपूर्ण पहलू का अनुमान कराती है, जिसका शैक्षिक सफलता से और कुछ मात्रा में अधिकांश अन्य क्षेत्रों से निश्चित सम्बंध है। यही कारण है कि बुद्धि परीक्षायें शिक्षा की महत्वपूर्ण साधन बन गई हैं।’’

बुद्धि परीक्षणों के कुछ प्रमुख उपयोग निम्नलिखित हैं-

1. **सर्वोत्तम का चुनाव (Selection of Best)**

   बुद्धि परीक्षणों की सहायता से विद्यालय में प्रवेश देने हेतु, छात्रवृत्तियों के लिए श्रेष्ठ बालकों के चुनाव में, विभिन्न प्रतियोगिता जैसे वाद-विवाद, सामान्यज्ञान तथा कक्षा में विभिन्न उपयोगी जिम्मेदारी के निर्वाहन के लिए बालकों के चुनाव करने में सहायता मिलती है।

2. **विषयों के चयन में (Selection of the Subjects) :**

   विद्यालय में पढ़ने जाने वाले विभिन्न विषयों की प्रकृति एक दूसरे से बहुत भिन्न होती है। कुछ विषय जैसे-गणित, विज्ञान आदि विषयों की प्रकृति कठिन मानी जाती हैं जबकि कुछ विषय जैसे -सामाजिक विज्ञान की प्रकृति सरल मानी जाती है। इसी तरह प्रत्येक छात्र भी एक दूसरे से भिन्न होता है यह भिन्नता विभिन्न क्षेत्रों जैसे बुद्धि, अभिरुचि, अभियोग्यता से सम्बन्धित होती है। छात्रों की इस भिन्नता का मापन करने उनके अनुकूल विषय के चयन में बुद्धि परीक्षणों का महत्वपूर्ण योगदान है।

3. **बालकों का वर्गीकरण (Classification of Children) :**

   बुद्धि परीक्षणों के आधार पर कक्षा के बालकों की प्रखर बुद्धि, औसत बुद्धि तथा मन्दबुद्धि में विभिक्त करने का कार्य भी बुद्धि परीक्षणों के आधार पर किया जाता हैं। तथा बालकों के प्रकार के अनुकूल उसी स्तर के अधिगम अनुभव प्रदान करने के सुझाव दिये जाते हैं।

4. **छात्रों की भावी सफलता का ज्ञान (Knowledge of Results)**

   बुद्धि परीक्षणों से प्राप्त परिणामों के आधार पर छात्रों की भावी सफलताओं की भविष्यवाणी की जाती है। छात्रों की बौद्धिक योग्यताओं के आधार पर उनके अभिभावक तथा शिक्षक, शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था कर सकते हैं। फलस्वरूप बालक अपने भावी जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है।

5. **विद्यार्थियों के पिछड़ने का पता लगाने के लिए For Selection of Backward Students:** कभी कभी बालक पढ़ने में किन-कारणवश पिछड़ जाते हैं। बुद्धि परीक्षणों की सहायता से विद्यार्थियों के पिछड़ेपन का पता लगाकर उसी अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करने में सहायता मिलती है।

6. अनुसंधान कार्य में सहायक (For help in Research work)

   शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक अनुसन्धान कार्यों में बुद्धि परीक्षणों का व्यापक उपयोग किया जाता है। बुद्धि परीक्षणों से प्राप्त परिणाम इस प्रकार के अनुसंधान कार्यों के लिए आधार का कार्य करते हैं।

7. **बालकों की व्यावसायिक योग्यता का ज्ञान (Knowledge of vocational abilities of children)**

   बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग बालकों की व्यावसायिक योग्यता का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी किया जाता है। इसके द्वारा उन्हें अपनी योग्यता के अनुसार व्यावसायों का चयन करने के लिए परामर्श दिया जा सकता है।

8. **निदानात्मक उद्देश्यों के लिए (For Diagnostic Purpose):** बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग नैदानिक उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है। बुद्धि परीक्षण छात्रों को अधिगम में उत्पन्न हो रही कठिनाइयों का ज्ञान प्रदान करने में सहायता करता है। बालकों की बुद्धि का

ज्ञान करके उनकी शैक्षिक प्रगति, समायोजन तथा अधिकतम आदि को अच्छी तरह से संचालित किया जा सकता है।

11.12 कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम (Name of Some Main Intelligence Tests)

बुद्धि के मापन के लिए बहुत से बुद्धि परीक्षणों का निर्माण मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है। इनमें से कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम निम्नलिखित हैं-

1. बिने साइमन परीक्षण (1905)अल्फ्रेड बिने तथा साइमन -
2. बिने साइमन परीक्षण (1908)अल्फ्रेड बिने तथा साइमन -
3. पिन्ट पैटसन स्केल ऑफ परफोर्मेन्स(1917) पैटरसन .पिन्टर तथा डी .आर-
4. आर्मी एल्फा परीक्षण(1917)ओटिस .आर्थर एस-
5. आर्मी बीटा परीक्षण(1919)आटिस .आर्थर एस-
6. पोर्टियल भूल भूलैया परीक्षण(1924)पोर्टियस .डी .एस-
7. रेविन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिकस जे(1938)रेविन .सी.
8. संस्कृति मुक्त परीक्षण आर(1944)कैटल .वी .
9. वैश्लर बुद्धि परीक्षण(1949)वैश्लर .डी -
10. वैश्लर बुद्धि परीक्षण .डी (प्रौढ़ों के लिए) वैश्लर (1955)

भारत में निर्मित कुछ प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम निम्नलिखित हैं-

1. मानसिंक योग्यता मापन का सामूहिक परीक्षण(1937)शाह .के.एल-
2. बुद्धि का अशाब्दिक परीक्षण(1938)मेन्जल -
3. बुद्धि मापन का शाब्दिक परीक्षणमनोविज्ञान शाला-, इलाहाबाद (1954)
4. निष्पादन परीक्षण माला (1955)भाटिया .एम .सी .डा-
5. सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण (1961)टण्डन .के .आर .डा-
6. सामूहिक बुद्धि परीक्षण(1961)प्रयाग मेहता -
7. साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण (1963)जलोटा .एस .डा-
8. भारतीय बच्चों के लिए वैश्लर बुद्धि मापनी(1969)मालिन्स -
9. मानसिक योग्यता का सामूहिक परीक्षण (1970)टण्डन .के.आर .डा-
10. मिश्रित प्रकार का बुद्धि परीक्षण(1971)मेहरोत्रा .एन .पी .डा-
11. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण(1971)ओझा .के.रायचौधरी तथा आर .के-

12. सामान्य बुद्धि परीक्षण(1987)पाल तथा मिश्रा -

11.13 सारांश

इस इकाई में हमने सीखा कि कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसमें कोई भी गुण हो।

व्यक्ति के गुणों का पारखी होना आवश्यक है। हमारे प्राचीन साहित्य में बुद्धि के अनेक नाम है-धी, मेधा, मति, प्रज्ञा आदि प्रमुख रूप से प्रचलित है। बुद्धि के अनेक प्रकार है जैसे मूर्त तथा अमूर्त बुद्धि, सामाजिक बुद्धि, यांत्रिक बुद्धि, सीखने की योग्यता, अमूर्त चिन्तन की योग्यता, सम्बन्धों समाधान की योग्यता, अनुभव की योग्यता, समस्या समाधान की योग्यता, अमूर्त चिन्तन की योग्यता, समस्या समाधान की योग्यता, अनुभव का लाभ उठाने की योग्यता, समबन्धी को समझने की योग्यता तथा पर्यावरण से सामान्जस्य स्थापित करने की योग्यता है। बुद्धि मापन के सम्बन्ध में क्रो एण्ड क्रोका यह कथन कि ''सम्भवतया बुद्धि मापन का कोई भी परीक्षण पूर्ण नहीं है।'' को लगभग सत्य मानते हुए भी हमें शिक्षण कार्य को अधिक उपयोगी बनाने के लिए तथा बच्चों को परामर्श देने के लिए बुद्धि परीक्षणों का उपयोग करना आवश्यक हो जाता है। अधिक सत्यता जानने के लिए एक के साथ दूसरे परीक्षण का भी उपयोग करते हैं। ताकि हम बच्चे की बुद्धिलब्धि का अधिक ठीक अनुमान लगा सकें। बुद्धिमापन के लिए प्रयुक्त परीक्षण के मैनुअल के आधार पर बुद्धिलब्धि को ज्ञात किया जाता है। हम यह भी समझें हैं, कि बुद्धि परीक्षणों के मानक तैयार करना लगातार और बड़ी जनसंख्या में व्यक्तियों पर प्रशासन करके प्राप्त किये जाते हैं। बुद्धि परीक्षणों का उपयोग-सर्वोत्तम के चुनाव, विषयों के चयन, बच्चों के वर्गीकरण, बच्चों की भावी सफलता का पूर्वानुमान, शिक्षा में पिछड़ने के कारण का पता लगाने, शैक्षिक अनुसंधानों में, बच्चों की व्यावसायिक योग्यता का अनुमान लगाने के लिये तथा उनकी अधिगम से सम्बन्धित कठिनाइयों को जानने के लिए किया जाता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. स्टर्न के अनुसार, बुद्धि को परिभाषित कीजिए।
2. बुद्धि की कोई दो विशेषताएं लिखिए।
3. ________ को बुद्धि परीक्षणों का पिता घोषित कर सकते हैं।
4. किन्हीं दो प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम लिखिए।
5. भारत में निर्मित किन्हीं दो प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम लिखिए।

11.14 शब्दावली

- जन्मजात - जन्म से ही उत्पन्न होने वाली।
- वास्तविक आयु-तिथि से सम्बन्धित वास्तविक आयु
- मानसिक आयु-मानसिक योग्यता से संबंधित आयु।
- बुद्धिलब्धि-जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति के बौद्धिक स्तर को ज्ञात किया जाता है।

11.15 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर

1. स्टर्न के अनुसार, ''बुद्धि जीवन की नई परिस्थितियों तथा समस्याओं के अनुरूप समायोजन करने की सामान्य योग्यता है"।
2. बुद्धि की कोई दो विशेषताएं निम्न हैं-
   i. यहएकजन्मजातशक्तिहै।
   ii. यहअमूर्तचिन्तन(Abstract Reasoning)कीयोग्यताप्रदानकरतीहै।
3. वुण्ट
4. दो प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम हैं-
   i. बिने साइमन परीक्षण (1905)अल्फ्रेड बिने तथा साइमन -
   ii. आर्मी एल्फा परीक्षण(1917)ओटिस .आर्थर एस-
5. भारत में निर्मित किन्हीं दो प्रमुख बुद्धि परीक्षणों के नाम हैं-
   i. मानसिंक योग्यता मापन का सामूहिक परीक्षण(1937)शाह .के.एल-
   ii. बुद्धि का अशाब्दिक परीक्षण1938)मेन्जल -

11.16 संदर्भ ग्रंथ Reference Books

1. Cronbach,I.J.(1970),Essentials of Psychological Testing,3rd ed., New York. Harper and Row Publishers.
2. Dandapani, S.(2007). Advanced Educational Psychology, New Delhi. Anmol Publications Pvt. Ltd.
3. Ebel, Robert L,.(1979), Essentials of Psychological Measurement, London. Prentice Hall International Inc.

4. Freeman, Frank S. (1962); Theory and Practice of Psychological Testing, New Delhi. Oxford and IBN Publishing Co.
5. Kuppuswamy, B.(2006), Advanced Educational Psychology, New Delhi. Sterling Publishers Private Ltd.
6. Mangal, S.K. (2007), Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.
7. Mathur, S.S. (2007), Educational Psychology, Agra .Vinod Pustak Mandir.
8. Thorndike, R.L. & Hagen, E.P. (1969).Measurement and Evaluation in Psychology and Education 3rd ed; New York. John Wily & Sons Inc.

11.17 निबंधात्मक प्रश्न

1. बुद्धि को परिभाषित कीजिये।
2. बुद्धि लब्धि क्या है ?
3. वास्तविक आयु को परिभाषित कीजिए।
4. सामाजिक बुद्धि की परिभाषा लिखें
5. मानसिक आयु से आप क्या समझते है।
6. बुद्धि के शैक्षिक महत्व को समझाइये ?
7. बुद्धि के द्विकारक सिद्धान्त को समझाइये।
8. बुद्धि की प्रमुख विशेषताएं बताइये।
9. शाब्दिक व अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में अन्तर लिखिए।
10. व्यक्तिगत व सामूहिक बुद्धि परीक्षणों में अन्तर लिखिए।
11. बुद्धि मापन का इतिहास बताइये।

इकाई 12- बुद्धि के सिद्धान्त
Theories of Intelligence

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 बिने का एक कारक सिद्धान्त
12.4 स्पीयर मैन का द्विकारक सिद्धान्त
12.5 थार्नडाइक का बहु-कारक सिद्धान्त
12.6 थर्स्टन का समूह कारक सिद्धान्त
12.7 थाम्पसन का प्रतिदर्श सिद्धान्त
12.8 बर्ट तथा बर्नन का पदानुक्रम सिद्धान्त
12.9 गिल्फोर्ड का त्रिआयामी सिद्धान्त
12.10 होवार्ड का बहु-बुद्धि सिद्धान्त
12.11 सारांश
12.12 शब्दावली
12.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
12.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची
12.15 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

बुद्धि के अस्तित्व को सभी स्वीकार करते हैं। बुद्धि के मापन के लिए कोई सर्व सम्मत राय भी नहीं है फिर भी बुद्धिमापन आवश्यक एवं उपयोगी कार्य है। बुद्धि क्या है? वह कैसे कार्य करती है? इन प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिकों ने कार्य किया। इसके फलस्वरूप बुद्धि के सम्बन्ध में कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। ये सिद्धान्त बुद्धि के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं आगे की पंक्तियों में हम बुद्धि के सिद्धान्तों का अध्ययन कर रहे हैं।

इस अध्ययन से हम 'बुद्धि' की वास्तविकता के सम्बन्ध में अपनी राय का निर्माण कर सकेंगे। यद्यपि अध्ययन के उपरान्त भी हम किसी एक निर्णय पर नहीं पहुंच सकेंगे तथापि बुद्धि के स्वरूप के सम्बन्ध में हमें वास्तविकता का आभास होगा। प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन आगे प्रस्तुत किया गया है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. बुद्धि में सिद्धान्तों के क्रमिक-विकास को समझ सकेंगे।
2. बिने के एक कारक सिद्धान्त को अपने शब्दों में लिख सकेंगे।
3. स्पीयर मैन के द्विकारक सिद्धान्त की चर्चा कर सकेंगे।
4. थार्नडाइक के बहुकारक सिद्धान्त की व्याख्या अपने शब्दों में कर पायेंगे।
5. थर्स्टन के समूह कारक सिद्धान्त की व्याख्या कर पायेंगे।
6. थाम्पसन के प्रतिदर्श सिद्धान्त की व्याख्या कर पायेंगे।
7. बर्ट तथा बर्नन का पदानुक्रम सिद्धान्तकी व्याख्या कर पायेंगे।
8. गिल्फोर्ड के त्रिआयामी सिद्धान्त तथा उसकी तीनों विमाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
9. हावर्ड गार्डनर के बहुबुद्धि सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे।

12.3 बिने का एक कारक सिद्धान्त (Unifactor Theory of Binet)

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक बिने हैं इन्होंने 1911 में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इसके बाद टर्मन, स्र्टन तथा एम्बिहास ने इस सिद्धान्त पर कार्य किया इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि के खण्ड नहीं होतें, वह एकात्मक होती है। इसकी मात्रा सब व्यकितयों में अलग-अलग होती है। बुद्धि सभी मानसिक क्रियाओं पर एक जैसा प्रभाव डालती है। किसी व्यक्ति की एक क्षेत्र में निपुणता अन्य क्षेत्रों में भी उसे निपुण ही सिद्ध करती है।

यह सिद्धान्त अधिक दिन नहीं टिक सका, इसकी प्रस्तुति के बाद ही इसकी आलोचना प्रारम्भ हो गई थी।

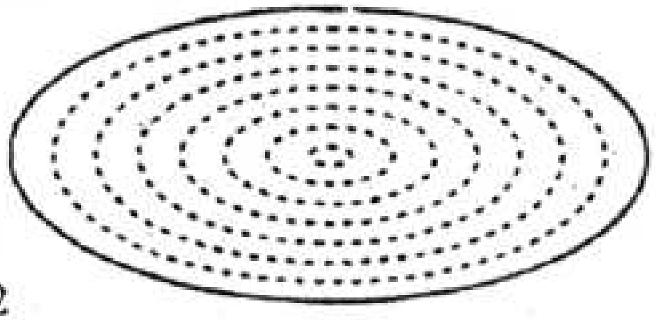

2

चित्र-12.1. बुद्धि का एक कारक सिद्धान्त

12.4 स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त (Two Factor Theory of Spearman)

स्पीयरमैन ने द्विकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन 1904 में किया। इन्होंने बुद्धि का दो कारकों में विभाजन किया। पहले कारक को उन्होंने सामान्य कारक कहा। यह व्यक्ति की समस्त मानसिक क्रियाओं में निहित होता है। यह कारक विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग होता है। सामान्य कारक जन्मजात होता है। विशिष्ट कारक अलग-अलग मानसिक क्रियाओं के लिए होते हैं। एक ही व्यक्ति में कई विशिष्ट कारक पाये जा सकते हैं। विशिष्ट कारकों को इन्होंने अर्जित माना। सन् 1911 में स्पीयरमैन ने अपने द्विकारक सिद्धान्त को बदलकर तीन कारक सिद्धान्त कर दिया, साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि विशिष्ट कारक में सामान्य कारक भी प्रभावी रहता है।

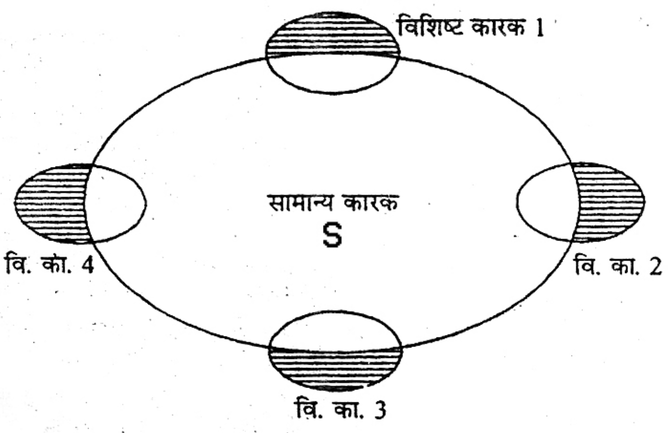

चित्र 12.2. स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त।

विशिष्ट कारक तथा सामान्य कारक दोनों मिलकर ही किसी कार्य को सम्पन्न करने की क्षमता प्रदान करते हैं। स्पीयरमैन ने सामान्य कारक को वास्तविक मानसिक शक्ति माना। क्योंकि यह सभी मानसिक क्रियाओं के लिए आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

12.5थार्नडाइक का बहु-कारक या अल्पतंत्रीय सिद्धान्त (Multi-factor Theory of Thorndike)

थार्नडाइक के इस सिद्धान्त के अनुसार बुद्धि विभिन्न कारकों का मिश्रण है। थार्नडाइक ने सामान्य कारक की सत्ता को स्वीकार नहीं किया बल्कि उन्होंने मूल कारक तथा सामान्य कारक दो कारकों के विचार का श्री गणेश किया। इनके अनुसार मूल कारकों में आंकिक, शाब्दिक तथा तार्किक योग्यताएं होती हैं। ये व्यक्ति की समस्त मानसिक क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। इसके साथ थार्नडाइक ने व्यक्तित्व में किसी न किसी विशिष्ट कारक अथवा योग्यता को भी स्वीकार किया।

इस सिद्धान्त के थार्नडाइक का सम्बन्धवाद सिद्धान्त भी कहते हैं। इनके अनुसार जब कोई आवेग तंत्रिकातंत्र में परिभ्रमण करता है तो कुछ मानसिक सम्बन्ध बनते हैं। इन सम्बन्धों की संख्या जितनी अधिक होती है, उतना ही अधिक वह व्यक्ति बुद्धिमान माना जाता है, किन्तु व्यक्ति की विषय की मूल योग्यता से दूसरे विषय की मूल योग्यता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

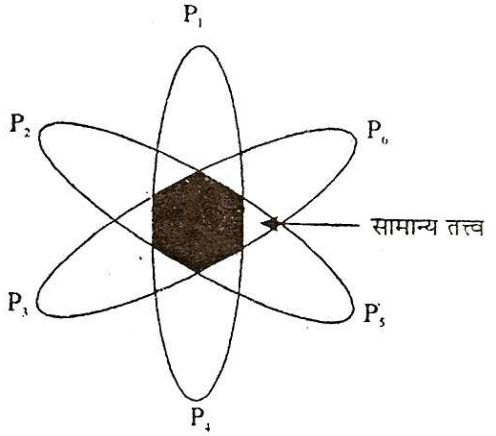

चित्र 12.3 : थार्नडाइक का बहु-कारक सिद्धान्त।

सामान्य कारक का कुछ अंश तो सामान्य मानसिक क्रियाओं में निहित होता है, जबकि प्रत्येक क्रिया का कोई न कोई मूल कारक होता है। इस सिद्धान्त को चित्र रूप में 12.3 पर प्रदर्शित किया गया है।

12.6 थर्स्टन का समूह तत्व सिद्धान्त (Thurstone's Group Factor Theory)

यह सिद्धान्त स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त तथा थार्नडाइक के बहु-कारक सिद्धान्त का मध्यमार्गी सिद्धान्त है।

थर्स्टन अपने कारक विश्लेषण (Factor Analysis) के लिए प्रसिद्ध रहे हैं।

थर्स्टन के अनुसार बुद्धि न तो सामान्य कारकों का ही पुंज है, न ही विशिष्ट कारकों का पुंज है। ये इसे समूह कारक के रूप में देखते हैं इन्होंने विश्वविद्यालय के छात्रों पर 56 मनोवैज्ञानिक परीक्षण कर प्राथमिक योग्यताओं का निर्धारण किया। ये योग्यताएं सात हैं-

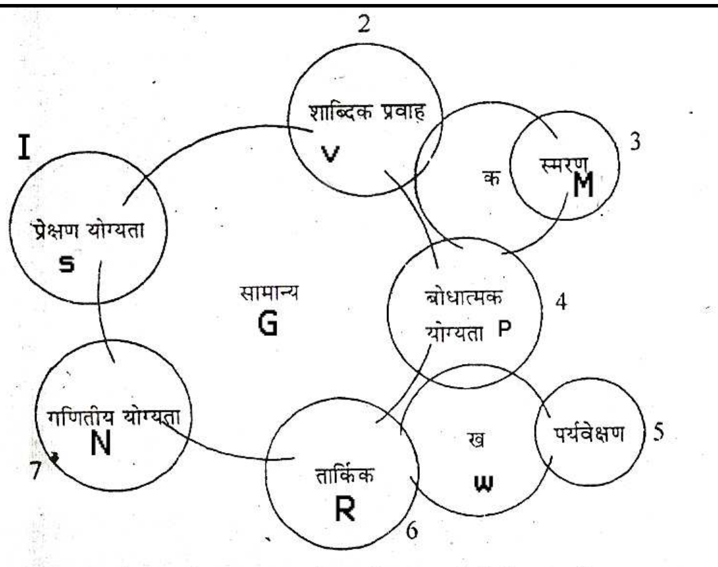

चित्र12.4: थर्स्टन के समूह तत्त्व सिद्धान्त की रेखीय प्रस्तुती।

1. प्रेक्षण योग्यता (Spatial Ability-S)
2. गणितीय योग्यता (Number Ability-N)
3. शाब्दिक योग्यता (Verbal Ability-V)
4. शब्द प्रवाह (Word Fluency –W)
5. स्मरण शक्ति (Memory Ability-M)
6. तर्किक योग्यता (Reasoning Ability-R)
7. बोधात्मक योग्यता (Perceptual Ability-P)

इन समस्त मूल कारकों में अलग-अलग मात्रा में सहसम्बन्ध होता है। दो मूल कारकों में जितना अधिक सहसम्बन्ध होता है, उनके बीच में उतना ही अधिक हस्तान्तरण भी होता है। बुद्धि,S+N+V+W+M+R+P

12.7 थाम्पसन का प्रतिदर्श सिद्धान्त (Sampling Theory of Thompson)

थाम्पसन के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्यके कार्य कुछ निश्चित योग्यताओं के द्वारा पूर्ण होता है। इन विभिन्न योग्यताओं में से थोड़ा-थोड़ा प्रतिदर्श लेकर किसी कार्य को पूरा करते हैं, जिससे एक नयी योग्यता विकसित होती है। जैसे ही कार्य पूरा हो जाता है, वैसे ही नया संगठन पुनः विच्छेदित हो जाता है। प्रतिदर्श के रूप में उन्ही योग्यताओं का चयन होता है, जिनकी उस कार्य को पूरा करने में आवश्यकता होती है। अथवा उन योग्यताओं का कार्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

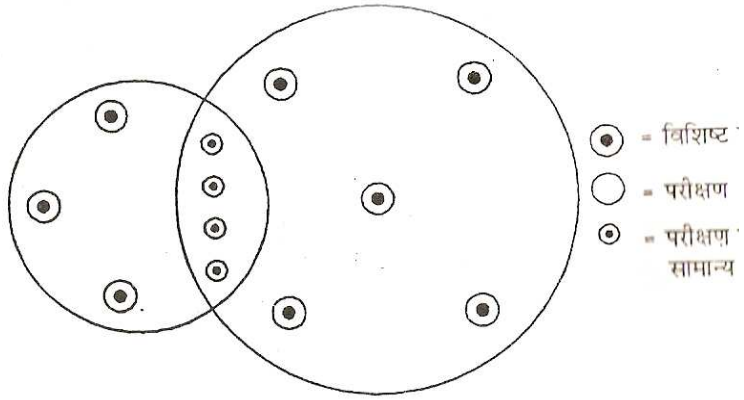

चित्र 12.5 : थाम्पसन का प्रतिदर्श सिद्धान्त।

12.8 बर्ट तथा वर्नर का पदानुक्रम सिद्धान्त (Hierarchical Theory of Vernon and Burt)

बर्ट और वर्नर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1965 में किया इन्होंने अपने सिद्धान्त में कहा कि सामान्य मानसिक योग्यताओं (ळ) को दो श्रेणियों में विभक्त किया। पहली प्रयोगिक, यांत्रित प्रेक्षण तथा भौतिक, सामान्य मानसिक योग्यताएं तथा दूसरी शाब्दिक, अंकिक तथा शैक्षिक । इस वर्गीकरण को कारक विश्लेषण विधि के द्वारा परीक्षण किया गया। इनके पदानुक्रम को निम्नलिखित चार्ट में प्रस्तुत किया गया है।

चार्ट 12.1 मानसिक योग्यता

(1) सामान्य	(2)विशेष मानसिक योग्यताए
स्मरण, चिंतन, तर्कतथा कल्पना	
प्रयोगिक, यांत्रिक	शाब्दिक, आंकिक
भौतिक	शैक्षिक

12.9 गिल्फोर्ड का त्रिआयामी सिद्धान्त (Three-Factor Theory of Guilford)

गिल्फोर्ड ने 1967 में मानसिक योग्यताओं के तीन आयामों में वर्गीकृत किया-

1. संक्रिया (Operations)

2. विषय वस्तु (Contents)तथा
3. उत्पाद (Products)

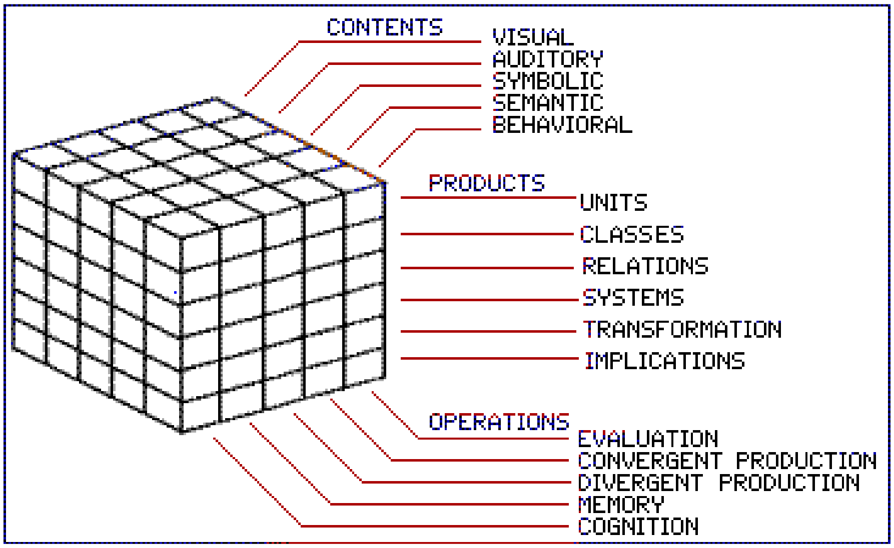

इन्होंने मानसिक योग्यताओं के इन क्षेत्रों का फैक्टर-एनेलेसिस किया तथा निष्कर्षों के आधार पर एक त्रिआयामी प्रतिरुप (मॉडल) प्रस्तुत किया, जिसमें 5x5x6 वर्ग बनाये। इस प्रकार कुल 150 सैल (कोष) प्रस्तुत किये। इन्होंने अपने अनुसंधानसार में 80 कारकों का आपसी सम्बन्ध पाया। इनके सिद्धान्त में सम्मिलित कारकों का वर्गीकरण चार्ट 12.2 में प्रस्तुत किया गया है। तथा त्रिआयामी मॉडल को चित्र 12.6 में प्रस्तुत किया गया है।

चार्ट 12.2

सामान्य मानसिक बुद्धि

मानसिकक्रियाएँ Operations	विषयवस्तु Content	उत्पाद Products
मूल्यांकन Evaluation	Visual	इकाई Unit
अभिसारितचिंतन Convergent Thinking	Auditory	वर्ग Classes
अवसारितचिंतन	प्रतीकात्मक	सम्बन्ध

Divergent Thinking	Symbolic	Relations
स्मृति Memory	अर्थगत Sematic	प्रणाली Systems
संज्ञान Cognition	व्यावहारिक Behavioural	रुपान्तरण Transformation
		निहितार्थ Implications

12.10 हावर्ड अर्ल गार्डनर का बहु-बुद्धि सिद्धान्त:Howard Earl Gardner's Multiple Intelligence Theory

हावर्ड अर्ल गार्डनर ने 1983 में बहुबुद्धि सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इनका मानना है कि बुद्धि का एकात्मक रूप न होकर बहुप्रकारीय होता है। अर्थात बुद्धि सात तरह की होती है। ये सातों प्रकारकी बुद्धि एक दूसरे से अलग होती है। बुद्धि के सात प्रकार निम्नलिखित हैं-

1. भाषाई बुद्धि (Linguistic Intelligence)
2. तार्किक गणितीय बुद्धि (Logical -Mathematic)
3. स्थानिक बुद्धि (Spatial)
4. शरीर गति की बुद्धि (Body - Kinesthetic)
5. संगीत बुद्धि (Musical)
6. वैयक्तिक-आत्म बुद्धि (Personal-Self)
7. वैयक्तिक अन्य बुद्धि (Personal Others)

इन्हीं के इन सात प्रकारों में रोबर्ट स्लाविन (Robert Slavion) ने 2009 में सात के स्थान पर 9 प्रकारों तक विस्तृत कर दिया और 2 प्रकारों को ओर जोड़ दिया जो कि निम्नलिखित हैं।

8. प्रकृति वादी (Naturalistic)
9. अस्तित्वामक (Existential)

1. **भाषाई बुद्धिः** भाषाई बुद्धि में शब्दों तथा भाषा सम्बन्धी योग्यताएं आती हैं। इस में लिखित तथा वाचिक योग्यताएं सम्मिलित है। कथा, कहानियों का पढ़ना, लिखना, उन्हें याद रखना, नोट्स तैयार करना, भाषाण-सुनना, वादविवाद तथा परिचर्चा (Discussion) करना, शाब्दिक-स्मृति, विदेशी भाषा को शीघ्र सीख लेना शब्दों का विस्तृत भण्डार, शब्दों को याद रखना तथा उनको प्रयोग करना। इस तरह की मानसिक योग्यता वाले व्यक्ति लेखक, वकील (अधिवक्ता), पुलिसकर्मी, दर्शनशास्त्री, पत्रकार, राजनीतिज्ञ, कवि तथा अध्यापक सम्बन्धी व्यवसायों में सफलता प्राप्त करते हैं।
2. **तार्किक गणितीय बुद्धिः** इस बुद्धि में तर्क करने की योग्यता, निष्कर्ष निस्रत करना, गणना करने, शतरंज की चाले, कम्प्यूटर प्रोग्राम निर्मित करना, जटिल गणनाएं करना आदि योग्यताएं आती है। इस बुद्धि से सम्पन्न व्यक्ति वैज्ञानिक, भौतिकशास्त्री, गणितज्ञ, अभियन्ता, डाक्टर, अर्थशास्त्री तथा दर्शनशास्त्र में सफल होते हैं।
3. **स्थानिक बुद्धिः** इसमें कलात्मक अभिकल्प, वास्तुशिल्पी (Architects) पहेली तथा समस्या समाधान आदि योग्यताएं सम्मिलित हैं।
4. **शरीर गतिकी बुद्धि**ः इस योग्यता में वस्तुओं को विधि पूर्वक सतर्कतापूर्ण कुशलतापूर्वक उपयोग करना, शारीरिक गति पर नियन्त्रण में प्रवीणता, लक्ष्य का निर्धारण, खेलकूद तथा नृत्य, अभिनय, शाब्दिक स्मृति, संगीत-स्मृति आदि योग्यताएं सम्मिलित हैं। ऐसे व्यक्ति खिलाडी, नर्तक, संगीतकार, अभिनेता, शल्य चिकित्सक, डाक्टर, भवन निर्माता, पुलिस अधिकारी तथा सैनिक अच्छे होते हैं।
5. **संगीत-बुद्धि**ः जिसमें संगीत, नाट्य गायन, वादन, तथा इन्हें कम्पोज करने की योग्यता होती है उनमें यह बुद्धि पाई जाती है इस योग्यता वाले अच्छे वक्ता, लेखक, कम्पोजर आदि होते हैं।
6. **वैयक्तिक आत्मबुद्धिः** इस बुद्धि के धनी व्यक्ति बहिर्मुखी होते हैं। ये दूसरों का मूड पहचाने भावनाओं को जानने, उनका उत्प्रेरण स्तर जानने में कुशल होते हैं। इनकी वार्ता करने का ढंग प्रभावी, परानुभूति को समझने में कुशल होते हैं। वाद-विवाद तथा वार्ताओं में आनन्द लेते है, ये अच्छे विक्रयकर्ता राजनीतिक, मैनेजर सामाजिक कार्यकर्ता एवं अध्यापन कार्यों में सफल रहते हैं।
7. **वैयक्तिक अन्य बुद्धि**ः इस बुद्धि से युक्त व्यक्ति में अन्य लोगों की इच्छा अपेक्षा आवश्यकता आदि की समझ तथा दूसरों के व्यवहार का आत्मकथन की योग्यता होती है।
8. **प्रकृतिवादी बुद्धिः**प्रकृतिवादी बुद्धि में प्राकृतिक कार्यविधियों को समझने की योग्यता होती हैं। इस बुद्धि के धनी अच्छे कृषक तथा बागवान हो सकते हैं।
9. **अस्तित्वात्मक बुद्धिः** इस प्रकार की बुद्धि से सम्पन व्यक्तियों में ध्यान केन्द्रित करने की बुद्धि, अथवा इन्द्रियों के संज्ञानात्मक व्यवहार से परे का आभास होता है।

कुल मिलाकर मनोविज्ञानिकों ने गार्डनर के अभिमतों को स्वीकृति तथा आलोचना का सामना बराबर मिला है। कुल मिला कर इनके सिद्धान्तों का सदुपयोग बुद्धिमापन में किया जाना शुभ कार्य सिद्ध हो सकता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

बहुविकल्पात्मक प्रश्न:

1. बुद्धि का द्विकारक सिद्धान्त दिया है-

    (क) बिने (ख) टरमन

    (ग) स्पीयरमैन (घ) गिलफोर्ड

2. थर्स्टन ने बुद्धि को कितनी प्राथमिक मानसिक योग्यताओं का समुच्चय कहा है?

    (क) पांच (ख) सात

    (ग) चार (घ) नौ

3. निम्नलिखित में कौन सा कारक थर्स्टन के सिद्धान्त में नहीं है।

    (क) प्रेक्षण (ख) तार्किक योग्यता

    (ग) कल्पना (घ) स्मरण

4. निम्नलिखित में से क्या मानसिक क्रियाओं में नहीं आता?

    (क) सम्बन्ध (ख) मूल्यांकन

    (ग) स्मृति (घ) संज्ञान

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

5. बिने ने .... कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया
6. थार्नडाइक ने बुद्धि के .... प्रकार बताये।
7. गिल्फोर्ड सामान्य बुद्धि को .... भागों में बाटां।
8. .... ने बुद्धि का प्रतिदर्श सिद्धान्त दिया।
9. बहुबुद्धि सिद्धान्त का प्रतिपादन ----- ने किया है।
10. थर्स्टन ने बुद्धि के .... सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
11. गिल्फोर्ड ने बुद्धि के .... सिद्धान्त का प्रतिपादन किया
12. गिल्फार्ड का बुद्धि सिद्धान्त .... आयामी है।
13. गार्डनर का पूरा नाम .... है।

14. प्रतिदर्श सिद्धान्त का प्रतिपादन .... ने किया था।

12.11 सारांशSummary

इस इकाई में बुद्धि के सिद्धान्तों में से बिने का एक कारक सिद्धान्त, स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त, थार्नडाइक का बहुकारक सिद्धान्त, थर्स्टन का समूहतत्व सिद्धान्त, थाम्पसन का प्रतिदर्श, सिद्धान्त, गिल्फोर्ड का त्रिआयामी सिद्धान्त और हावर्ड अर्ल गार्डनर का बहुबुद्धि सिद्धान्त आदि सिद्धान्तों का अध्ययन किया। इन सिद्धान्तों के एकमत होने का तो अर्थ ही नहीं है क्योंकि ये स्वयं अलग-अलग हैं परन्तु कालक्र्रमानुसार इस सिद्धान्तों का निर्माण हुआ है। कोई भी सर्वसम्मत मत अभी निकट भविष्य में आने की सम्भावना भी नहीं है।

12.12शब्दावली

1. **बुद्धि (Intelligence):-** चुनौतियों का सामना करते समय, संसाधनों का प्रभावपूर्ण ढंग से उपयोग करने, सविवेक चिंतन करने और जगत को समझने की क्षमता।
2. **बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient, IQ)**:- कालानुक्रमिक आयु से मानसिक आयु का अनुपात इंगित करने वाला मानकीकृत बुद्धि परीक्षणों से प्राप्त एक सूचकांक।
3. **बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test):-** किसी व्यक्ति का स्तर मापने के लिए अभिकल्पित परीक्षण।
4. **मानसिक आयु (Mental Age)**:- आयु के रूप में अभिव्यक्त बौद्धिक कार्यशीलता का मापक।

12.13स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर

1. (ग)
2. ख
3. (ग)
4. (क)
5. एक
6. तीन
7. तीन
8. थाम्पसन
9. गार्डनर
10. समूह तत्व

11. त्रिआमी
12. त्रिआयामी
13. हावर्ड अर्ल गार्डनर
14. थाम्पसन

12.14संदर्भ ग्रंथ

1. Clifford T.Morgon,Richard A. King, John R.Weisz, John Schopler.(1993);Introduction to Advanced Educational Psychology, 17 ed, New Delhi.TATA McGraw-Hill edition.
2. Cronbach, I.J. (1970), Essentials of Psychological Testing, 3rd ed., New York; Harper and Row Publishers.
3. Charles, E. Skinner (1990) : Edncation Psychology (Hindi) New Delhi, Disha Publications
4. Gardner, Howard (1999): The Disciplined Mind. **New York:** Simon Schuster
5. Dandapani, S. (2007). Advanced Educational Psychology, New Delhi. Anmol Publications Pvt. Ltd.
6. Ebel, Robert L,.(1979), Essentials of Psychological Measurement, London; Prentice Hall International Inc.
7. Freeman, Frank S. (1962); Theory and Practice of Psychological Testing, New Delhi; Oxford and IBN Publishing Co.
8. Kuppuswamy, B.(2006), Advanced Educational Psychology ,New Delhi. Sterling Publishers Private Ltd.
9. Lindquist, E.F (1951), Educational Measurement, Washington D C. American Council on Education.
10. Mangal, S.K. (2007) Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.
11. Mathur, S.S. (2007), Educational Psychology, Agra VinodPustakMandir.
12. Thorndike, R.L. & Hagen, E.P. (1969).Measurement and Evaluation in Psychology and Education 3rd ed; New York; John Wily & Sons Inc
13. Williams, W.M. et al (1996): Practical Intelligence. New York: Harper Collins College Publications.

14. गुप्ता एस.पी. ;(2002) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
15. शुक्ल ओ.पी.;(2002) शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन।
16. सिंह, शिरीष पाल ;(2009) शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो।

12.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गिलफोर्ड के बुद्धि सिद्धान्त को प्रस्तुत करें।
2. गार्डनर के बहु बुद्धि सिद्धान्त को समझाइये।

इकाई 13- भावात्मक बुद्धि:- अर्थ, आयाम तथा महत्वEmotional Intelligence: - Meaning, Dimensions and Significance

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 भावात्मक बुद्धि- प्रत्यय
13.4 भावात्मक बुद्धि के प्रमुख आयाम
13.5 भावात्मक बुद्धि में सन्निहित प्रमुख प्राथमिक भाव
13.6 अभिनव प्रत्यय के रूप में भावात्मक बुद्धि –महत्व एवं उपयोग
13.7 अकादमिक बुद्धि तथा भावात्मक बुद्धि के संदर्भ में बीसवीं शताब्दी में हुए शोध कार्यों के निष्कर्ष
13.8 भावात्मक बुद्धि सम्बन्धी महत्वपूर्ण शोध कार्यों के प्रमुख निष्कर्ष
13.9 सारांश
13.10 शब्दावली
13.11 स्वमूल्यांकन प्रश्नों के उत्तर
13.12 संदर्भ ग्रंथ सूची
13.13 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

मानव एक बुद्धिमान प्राणी है और बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यो के सम्पादन के सन्दर्भ में सम्भवत: सर्वश्रेष्ठ है। बुद्धि को जानने, समझने तथा इसका मापन करने के अनेकानेक प्रयास विभिन्न मानव समुदायों द्वारा निरन्तर किये जाते रहे हैं। इन प्रयासों के फलस्वरूप बुद्धि की प्रकृति, उसके गुणों तथा उसको प्रभावित करने में सक्षम कारकों के सन्दर्भ में अनेक सिद्धान्त विकसित किये गये हैं।

बुद्धि को मन से जुड़ा हुआ मानने की परम्परा ने बुद्धि सम्बन्धी विकास को मानसिक

विकास के रूप में समझने का प्रयास किया है। मानसिक विकास के लिए अंग्रेजी भाषा में Mental Development का प्रयोग होता है। शब्दकोष Mental को निम्नवत् पारिभाषित करते हैं-

- pertaining to mind मन से सम्बन्धित
- happening in mind मन में होने वाला
- of the mind मन का
- made in mind मन से बना

अंग्रेजी भाषा में Mental नाम के विशेषण के पर्यायवाची हैं-

- psychological मनोवैज्ञानिक
- cerebral मस्तिष्क
- rational तार्किक
- intellectual बौद्धिक
- spiritual आध्यात्मिक

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक सम्पूर्ण मानवता द्वारा मानसिक विकास को समझने के प्रयासों को दो वर्गों में किया जा सकता है।

मानसिक विकास

Development

बौद्धिक विकास | Developmenसंज्ञानात्मक वि.....
मात्रात्मक उपागम | गुणात्मक उपागम
बुद्धिपरीक्षण | संज्ञानात्मक विकास के स्तर
बुद्धि लब्धि

13.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भावात्मक बुद्धि को परिभाषित कर सकेंगें।
- भावात्मक बुद्धि तथा अकादमिक बुद्धि में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगें।
- भावात्मक बुद्धि के विभिन्न आयामों के नाम जान सकेंगें।
- भावात्मक बुद्धि के विभिन्न आयामों का वर्णन कर सकेंगें।
- भावात्मक बुद्धि के मापन हेतु किये गये प्रयासों से परिचित हो सकेंगें।
- भावात्मक बुद्धि के महत्व की विवेचना कर सकेंगें।

13.3 भावात्मक बुद्धि: अर्थ तथा महत्व

वर्ष 1990 में येल विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक पीटर सेलोवे तथा न्यूहेम्पशायर विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक जॉन मेयर द्वारा संयुक्त रूप से भावात्मक बुद्धि के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया। वर्ष 1995 में डेनियल गोलमान की पुस्तक “Emotional Intelligence- Why it can matter more than I Q” के प्रकाशन से भावात्मक बुद्धि के महत्व से अकादमिक जगत परिचित हुआ।

पिछले 100 वर्षो से बुद्धि को बहुत बड़ी सीमा तक जन्मजात क्षमता के रूप में जाना जाता रहा है। चिंतन करने,मनन करने तथा समस्याओं का समाधान करने की इस अमूर्त योग्यता को भावनाओं से असम्बद्ध माना जाता रहा। तर्कपूर्ण ढंग से सोचने-समझने की योग्यता का विश्लेषण करने तथा उसका मापन करने के प्रयासों के फलस्वरूप बुद्धि परीक्षण विकसित किये गये। इन प्रयासों के आधार पर पहले मानसिक आयु (Mental Age) के प्रत्यय को जन्म दिया गया। तत्पश्चात् निम्नलिखित सूत्र के आधार पर बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient-IQ) की गणना करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई -

$$I\,Q = \frac{M.A.}{C.A.} \times 100$$

(C.A. ⟶ Chronological Age, शारीरिक आयु)

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ में Culture-Free Intelligence Tests (जो विभिन्न संस्कृतियों/मानव समुदायों में समान रूप से प्रयोग हो सकें) विकसित करने के प्रयास हुए। तत्पश्चात्

यह जानकारी प्राप्त होने पर कि विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विकसित मानव संस्कृतियों में बुद्धि के प्रत्यय के सन्दर्भ में विभिन्नताएॅ हैं,Culture-Fair Intelligence Tests (जो विभिन्न संस्कृतियों/मानव समुदायों में किंचित उपयुक्त परिवर्तन करके प्रयोग हो सकें) विकसित करने के प्रयास हुए।

13.4 भावात्मक बुद्धि के पाँच आयाम

1. स्वयं के भावों को जानना।
2. भावों को नियंत्रित/व्यवस्थित करना।
3. स्वयं को अभिप्रेरित करना।
4. दूसरों के भावों की पहचान कर सकना।
5. मानवीय सम्बन्धों को निभाना।

1. स्वयं के भावों को जानना

स्वयं की जानकारी- स्वयं का ज्ञान- स्व बोध भावात्मक बुद्धि का मूल है। मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि तथा स्वयं की समझ हेतु भावनाओं को अनवरत् रूप से मानीटर करने की योग्यता अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अपनी वास्तविक भावनाओं को पहचानने की योग्यता न होने पर व्यक्ति भावनाओं की दया पर निर्भर हो जाता है। अपनी भावनाओं को ठीक तरह से पहचानने की योग्यता होने पर व्यक्ति अपने जीवन को अधिक उपयुक्त ढंग से जी सकता है तथा वैयक्तिक निर्णयों को अधिक अच्छे तरीके से ले सकता है।

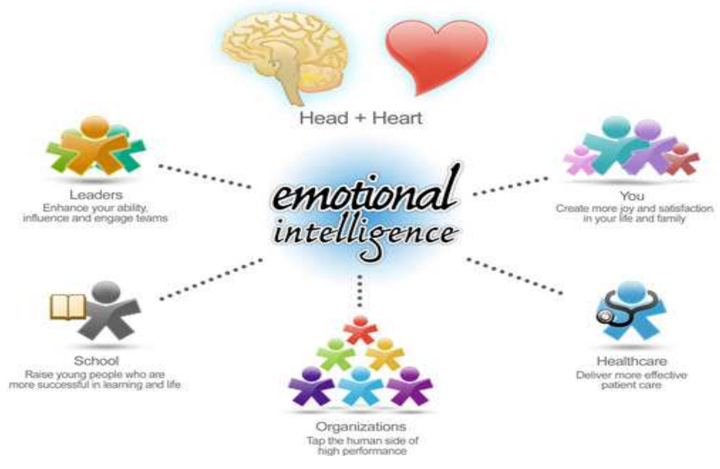

2. **भावों को नियंत्रित/व्यवस्थित करना**

अनुभूतियों को ठीक प्रकार से समझना स्व बोध के लिए आवश्यक है। चिन्ताओं,असफलताओं,विषाद,चिढों आदि पर नियन्त्रण रखना तथा स्वयं को इन विपरीत परिस्थितियों में शान्त रख सकना इस भावात्मक बुद्धि सम्बन्धी योग्यता के अन्तर्गत आते हैं। जीवन के उतार-चढ़ावों को सहज रूप से स्वीकार करना भी इसी के अन्तर्गत आता है। दुःख,विपत्ति तथा कष्ट को सम्यक रूप से झेल कर उनसे छुटकारा पाने की योग्यता भी इसके अन्तर्गत आती है।

3. **स्वयं को अभिप्रेरित करना**

सृजनात्मकता,स्व-अभिप्रेरण,महत्वपूर्ण चीजों पर ध्यान केन्द्रित करने हेतु तथा उद्देश्य प्राप्ति के लिये भावों का यथोचित उपयोग किया जाना चाहिए। भावात्मक आत्म-नियन्त्रण,संतोष,आवेगों पर अंकुश अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। धारा के साथ बहने से कम शक्ति में अधिक उपलब्धि की सम्भावना बड़ जाती है।

4. **दूसरों के भावों की पहचान कर सकना**

भावात्मक आत्म-बोध हेतु परानुभूति (Empathy) मौलिक कौशल है। परहितवाद का जन्म ही परानुभूति से ही होता है। दूसरों को जानने,समझने तथा उनके साथ रह सकने के लिये परानुभूति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। तुलसी का वचन उद्धरित किये जाने योग्य है-

परहित सरिस धरम नहीं भाई।

परपीड़ा सम नहीं अधमाई ।।

साथ ही प्राचीन मनीषियों के उद्गार भी स्मरणीय हैं-

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन् द्वयम।

परोपकाराय पुण्याय पापाय पर पीड़णम् ।।

दूसरों की मुख-मुद्रा/हाव-भाव 'बॉडी लैंग्वेज'से ही यह जान सकना कि वे क्या चाहते हैं- या उन्हें किस चीज की आवश्यकता है,इस प्रकार की योग्यता भावात्मक बुद्धि से सम्बन्धित है। शिक्षण,प्रबन्धन तथा मार्केटिगं व्यवसायों में ऐसे व्यक्तियों के सफल होने की अधिक सम्भावनाएँ होती हैं। भावात्मक रूप से तान-बधिर- tone deaf (जो दूसरों के मनोभावों को पढ़ने की योग्यता से वंचित होते हैं) व्यक्ति समाज में लोकप्रिय नहीं होते हैं। लोग उनसे बचना चाहते हैं।

5. **मानवीय सम्बन्धों को निभाना**

दूसरों के मनोभावों को पहचान कर तद्नुसार पारस्परिक मानवीय सम्बन्धों को निभाना अत्यधिक महत्वपूर्ण योग्यता है। समाज में प्रसिद्धि,नेतृत्व तथा महत्व ऐसे ही लोगों को मिलता है। दूसरों को प्रसन्न रख सकना- उनके दुःख/दर्द तथा कष्ट कम कर सकना इस योग्यता में सम्मिलित हैं।

कोई भी क्रोधी बन सकता है- यह आसान है। लेकिन ठीक तरह से,किसी सही उद्देश्य से,उचित समय पर,सम्यक मात्रा में किसी व्यक्ति विशेष के प्रति क्रोध प्रदर्शित करना आसान नहीं है। अरस्तु

13.5 भावात्मक बुद्धि में सन्निहित प्रमुख प्राथमिक भाव

आठ प्राथमिक/आधारभूत भाव तथा उनके अन्तर्गत सम्मिलित किये जा सकने वाले प्रकार निम्नवत् हैं-

- **क्रोध**:प्रकोप,उन्माद,आवेश,अत्याचार,नाराजगी,अप्रसन्नता,विद्वेष,मनोमालिन्य,अमर्ष,चिढ़,संतापन,उत्पीड़न,खीज,रंजीदगी,परेशानी,तकलीफ,मुसीबत,कष्ट,आफत,दुर्भाव,उग्रता,रुखाई,वैर,वैर-भाव,शत्रुता,घृणा तथा हिंसा।
- **उदासी**:शोक,विषाद,दुःख,व्यथा,क्लेश,अनुताप,विलाप,खिन्नता,अनमनापन,निराशा,चिन्ताग्रस्त,चिन्तामग्न,आत्मदया,अकेलापन,हताश,अवसाद,ग्लानि।
- **भय**:डर,भीति,आशंका,अन्देशा,चिन्ता,फिक्र,घबराहट,उद्विग्नता,आंतक,संत्रास,संदेह,विभीषिका,दहशत।
- **आनन्द**:सुख,हर्ष,खुशी,आह्लाद,राहत,आराम,सन्तोष,मनोरंजन,मनोविनोद,गर्व,भोग-विलास,रोमांच,पुलकित,तुष्टि,मौज,उल्लास,उन्माद।
- **प्रेम**:सहमति,मित्रता,विश्वास,आस्था,भरोसा,सहारा,आसरा,दयालुता,घनिष्ठता,श्रद्धा,भक्ति,निष्ठा,अनुरक्ति,समर्पण,आराधना,सम्मोह,आसक्ति।
- **आश्चर्य**: अचरज,अंचभा,ताज्जुब,विस्मय,हैरत,सदमा,आघात।
- **घृणा**:तिरस्कार,अवज्ञा,अवमान,अवमानना,अवहेलना,अपमान,अनादर,नफरत,बीभत्सा,विद्वेष,अरूचि।
- **लज्जा**:पाप,दोष,अपराध,घबराहट,परेशानी,उलझन,कठिनाई,बाधा,सन्ताप,खीज,अनुताप,पश्चाताप,पछताना,अफसोस करना,खेद,पछताना।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. भावात्मक बुद्धि का सिद्धान्त कब और किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया?
2. पुस्तक “Emotional Intelligence- Why it can matter more than I Q” के लेखक का नाम लिखिए।
3. बुद्धि लब्धि की गणना करने के सूत्र को लिखिए।
4. भावात्मक बुद्धि में सन्निहित प्रमुख प्राथमिक भावों के नाम लिखिए।

13.6 अभिनव प्रत्यय के रूप में भावात्मक बुद्धि –महत्व एवं उपयोग

कुछ वर्षों पूर्व तक मनोविज्ञान भावों/संवेगों के विषय में बहुत कम जानता था। पिछले दो दशकों से इस सन्दर्भ में कई जानकारियाँ मिली हैं। आई0क्यू0 को ही सब कुछ समझ कर केवल उसी आधार पर जीवन सम्बन्धी निर्णय लेने की परम्परा अब पीछे छूटती जा रही है। बच्चे और अधिक अच्छी तरह से जीवन जी सकें- इसके लिये भावात्मक बुद्धि सम्बन्धी योग्यताओं पर ध्यान देना आवश्यक है। इस प्रकार की योग्यताओं के अन्तर्गत आत्म-नियन्त्रण,उत्साह/जोश,दृढ़ता तथा स्वयं को अभिप्रेरित कर सकना सम्मिलित हैं। इन योग्यताओं के लिये बच्चों को प्रशिक्षित किया जा सकता है- तब भी जब प्रकृति ने उन्हें आई0क्यू0 से सम्बन्धित अलग-अलग क्षमतायें प्रदान कर रखी हों।

महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भाव में बुद्धि कैसे लायी जाये ? How to bring intelligence to emotions?

हमारे जीवन को चलाने के लिए आवश्यक भावात्मक आदतों की नींव बालपन और किशोरावस्था में ही पड़ जाती है। आनुवांशिक विरासत (genetic heritage) से हमें अपने मिजाज/स्वभाव को निर्मित करने वाले भावात्मक तत्व प्राप्त होते हैं। लेकिन मस्तिष्क तंत्रिका की कार्यशैली का असाधारण रूप से परिवर्तित किये जा सकने योग्य होने के कारण मिजाज/स्वभाव किसी का भाग्य नहीं बनता है। जीवन को व्यवस्थित ढंग से चलाने हेतु आवश्यक भावात्मक तथा सामाजिक कौशलों को बच्चों को सिखाया जा सकता है। विद्यालयों में स्व-बोध,आत्म-नियन्त्रण,तदनुभूति(Empathy) के विकास तथा दूसरों की बातों को भी सुनने की कला,सहयोग तथा जीवन संघर्षो/द्वन्दों को सुलझाने के लिये यथोचित कार्यक्रम विकसित किये जाने चाहिए।

मानव मन में भावों/संवेगों को जो महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है उसके कारण हृदय को मस्तिष्क की तुलना में अधिक महत्ता प्राप्त है। वास्तव में मनुष्य मात्र Thinking Species ही नहीं वरन् feeling species भी हैं। विचारों की तुलना में अनुभूतियाँ अधिक शक्तिशाली हैं। मनोभावों के अव्यवस्थित होने की दशा में बुद्धि किंकर्तव्य-विमूड़ हो जाती है।

सामाजिक प्रतिबन्धों के होते हुए भी समय-समय पर हमारे मनोभाव तर्कों पर भारी पड़ जाते हैं।
All emtions are impules to act. सभी भाव कर्म के प्रेरक हैं।
लैटिन भाषा के शब्द emotion का अर्थ “move away” है।
तथा, “ सर्व कर्माखिलम् पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते” and, all actions ultimately culminate into knowledge यह श्रीमद् भगवत् गीता का कथन है।

Emotions
↓
Impulses to act
↓
Actions
↓
Knowledge

वास्तव में हमारे पास दो 'मन'हैं-

One that thinks एक जो सोचता है,और

One that feels एक जो महसूस करता है।

पहला तार्किक मन है,दूसरा भावात्मक मन है। परम्परागत रूप से दिमाग और दिल की बात इसी सन्दर्भ में की जाती रही है।

जीवन के अधिकांश क्षणों में दोनों मन पूर्ण समन्वयन से कार्य करते हैं। विचारों के लिए भाव आवश्यक हैं तथा भावों के लिए विचार। पर जब उद्वेलित परिस्थितियों में भाव विचारों पर भारी पड़ जाते हैं भाव मन- तर्क मन को झुका देता है। तब निर्णय बुद्धि से नहीं- तर्क से नहीं वरन् भावनाओं से होने लगते हैं।

मस्तिष्क में भाव सम्बन्धी केन्द्रों के विकसित हो जाने के लाखों वर्ष बाद नियो कोर्टेक्स Neocortex the thinking brain विकसित हुआ। मस्तिष्क का यह भाग 'विचार'का स्थान- seat of thought है। यह भाग इन्द्रियों से प्राप्त सूचनाओं को समझता है। यह महसूस करने तथा सोचनेकी प्रक्रियाओं को समन्वित करता है। संस्कृति-सभ्यता का उदय और विकास इसी सोचने वाले मन से सम्भव हो सका है।

The ability to have feelings about our feeling –

अपने भावों/अनुभूतियों को महसूस कर सकने की योग्यता

यह भावात्मक बुद्धि का आधार है। जब भाव-अनुभूतियाँ तर्क पर हावी हो जाती है तब तार्किक बुद्धि से नहीं वरन् भावात्मक बुद्धि का उपयोग अधिक उपयुक्त होता है।

मस्तिष्क का भावात्मक सिस्टम नियो कोर्टेक्स (Neocortex) - The Thinking Brain - (सोचने वाला मन) से स्वतंत्र रहकर भी कार्य कर सकता है। मस्तिष्क के अध्ययन से सम्बन्धी वैज्ञानिक बताते हैं कि हमारे भावों का भी अपना एक मन होता है तथा यह मन हमारे तार्किक मन से भिन्न अपना स्वंय का दृष्टिकोण विकसित कर सकता है। ये वैज्ञानिक यह भी बताते हैं कि प्रभावशाली ढंग से विचार करने,बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय लेने तथा स्पष्ट ढंग से चिन्तन करने हेतु भाव अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। यही कारण है कि भावात्मक रूप से विचलित या असंन्तुलित होने की स्थिति में हम ठीक ढंग से निर्णय नहीं ले पाते हैं।

बच्चों के सन्दर्भ में भावात्मक समस्याएँ सीखने की क्षमता तथा बौद्धिक योग्यता पर हानिकारक प्रभाव डालती हैं। भावात्मक रूप से विचलित होने के कारण बौद्धिक रूप से योग्य होने पर भी विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे अंक नहीं प्राप्त कर पाते हैं। वास्तव में तार्किक योग्यता में चिन्तन करने वाला मन तथा भावात्मक मन दोनों ही सम्मिलित होते हैं।

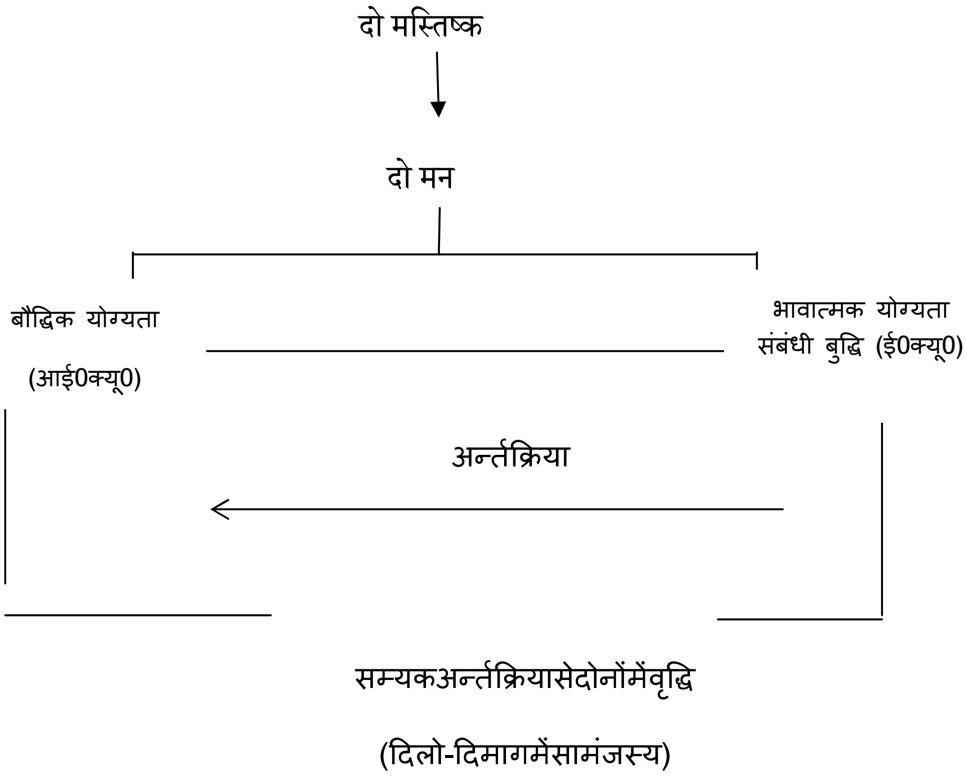

भावात्मक जीवन के साथ अकादमिक बुद्धि (Academic Intelligence) का बहुत कम लेना-देना है। बहुत उच्च अकादमिक बुद्धि वाले व्यक्ति भी क्रोध,भय,चिंता,घृणा,तिरस्कार,उदासी आदि के असंतुलित आवेगों से ग्रस्त होते पाये जाते हैं। अनियंत्रित आवेगों के कारण ये व्यक्ति अपने जीवन के अच्छे पायलट नहीं होते हैं।

जीवन में सफल होना-खुश रहना-संतुष्ट रहना अकादमिक बुद्धि (आई0क्यू0)पर निर्भर नहीं होता है। शोध कार्य के परिणाम बताते हैं कि सम्भवतः इस मामले में आई0क्यू0 का योगदान मात्र 20 प्रतिशत है। शेष 80 प्रतिशत आई0क्यू0 के अतिरिक्त अन्य कारकों पर निर्भर करता हैं। इस 80 प्रतिशत में भावात्मक बुद्धि एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारक है।

भावात्मक बुद्धि को निम्नलिखित योग्यताओं के समुच्चय (समूह) के रूप में समझा जा सकता हैः-

- स्वंय को कार्य करने हेतु प्रेरित करने की योग्यता।
- आवेगों पर उपयुक्त नियन्त्रण कर सकने की योग्यता।
- हतोत्साहित होने पर पुनः कार्य में संलग्न हो सकने की योग्यता।
- अपने भावों को समझने की योग्यता।
- आवश्यक होने पर तुरन्त संतुष्टि प्राप्त करने को विलम्बित कर सकना (delaying the gratification)
- दुख-व्यथा-विपत्ति पड़ने पर संतुलित रह सकना।
- उम्मीद बनाये रखना-आशान्वित रहना।
- परानुभूति (empathy) की योग्यता (दूसरों के कष्ट,दुख को समझ सकना)।

बचपन से ही हार/पराजय का सामना कर सकना,आवेगों पर नियन्त्रण कर सकना तथा दूसरों के साथ मिल-जुलकर रह सकने की योग्यताएँ विकसित होने लगती हैं। विद्यालय को जीवन कौशलों को अर्जित करने का केन्द्र बनाया जा सकता है। जीने की कला (Art of Living) भी बच्चों को सिखायी जा सकती है।

अब समय आ गया है कि बच्चों की परीक्षा लेकर उन्हें उत्तीर्ण/अनुतीर्ण घोषित करना,उन्हें ग्रेड देना,उनकी पारस्परिक तुलना करने पर ही पूरी शक्ति लगाने की जगह उन्हें उनकी सहज योग्यताओं को पहचानने योग्य बनाकर अच्छा इन्सान बनने में उनकी सहायता करनी चाहिए।

अब पता चल गया है कि भावों/अनुभूतियों में 'बुद्धि'होती है तथा इस 'बुद्धि'में वृद्धि की जा सकती है। तर्क करने-चिन्तन करने- सोचने की योग्यता पर भावों का प्रभाव पड़ता है। सोचने की योग्यता पर महसूस कर सकने की योग्यता के प्रभाव को अब स्वीकार कर लिया गया है। श्रद्धा,विश्वास,आशा,समर्पण तथा प्रेम के महत्व को विद्यालय के क्रिया-कलापों में यथोचित स्थान दिया जाना आवश्यक है।

जीवन की ऊँच-नीच में,उठा-पटक में,जीवन-संघर्षो में अकादमिक बुद्धि के स्थान पर भावात्मक बुद्धि अधिक काम आती है।

यह याद रखना होगा कि मानव को मानव बनाने में भावात्मक बुद्धि की महत्वपूर्ण भूमिका है। आवेगो/संवेगों की पहचान,भावों/अनुभूतियों के प्रति जागरूक रहना, स्वंय के भावों पर सम्यक नियन्त्रण,दूसरों के भावों की पहचान कर तद्नुसार पारस्परिक सम्बन्धों को विकसित कर सकना-आदि की ओर शैक्षिक कार्यक्रमों को ध्यान देना होगा।

13.7 अकादमिक बुद्धि तथा भावात्मक बुद्धि के संदर्भ में बीसवीं शताब्दी में हुए शोध कार्यों के निष्कर्ष

बीसवीं शताब्दी में हुए शोध कार्यो के परिणाम स्वरूप निम्नलिखित महत्वपूर्ण बातें सामने आयी हैं

1. बुद्धि के प्रत्यय के सम्बन्ध में विभिन्न मानव समुदायों में भिन्नताएँ हैं।

2. बुद्धि के मापन हेतु किये गये अनेकानेक सराहनीय प्रयासों के बावजूद अभी तक सर्वमान्य-सर्वस्वीकार्य उपकरण निर्मित नहीं हो पाये हैं।

3. बुद्धि को विकसित करने में बाह्य शैक्षिक दखल (External Educational Intervention) की भूमिका सीमित तथा सम्भवतः विवादास्पद है।

4. बुद्धि की मात्रा तथा विशेषता के सन्दर्भ में वंशानुक्रम तथा वातावरण के मध्य अर्न्तक्रिया की भूमिका के विषय में अन्तिम निर्णय अभी तक नहीं लिये जा सके हैं।

5. बुद्धि का वह प्रकार जिसके माध्यम से पढ़ाई-लिखाई के सन्दर्भ में सीधा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है तथा जो सामान्यतया तर्क करने,चिंतन करने आदि अमूर्त कार्यो में संलग्न होने के लिए आवश्यक सी जान पड़ती है और जिसको बुद्धि लब्धि (IQ) से व्यक्त करने की सामान्य परम्परा रही है,की सफल जीवन-सुखी-प्रसन्न जीवन के सन्दर्भ में भूमिका सीमित है। यदि इस प्रकार की बुद्धि को 'अकादमिक बुद्धि' (Academic Intelligence) से व्यक्त किया जाये तो कहा जा सकता है कि इस प्रकार की बुद्धि सफल,सुखी तथा प्रसन्न जीवन की गारंटी नहीं है।

6. अकादमिक बुद्धि (जो सामान्यतया आई0क्यू0 से परिलक्षित मानी जाती है) के प्रत्यय के सन्दर्भ में विकसित अनेकानेक सिद्धान्तों,इसके मापन के लिए निर्मित विभिन्न उपकरणों तथा इसके सन्दर्भ में प्राप्त अनेक प्रकार की जानकारियों का ज्ञान यदि किसी एक व्यक्ति को हो जाए तो इन सबसे उसकी 'बुद्धि'विकसित हो जाएगी ऐसा अभी तक प्रमाणित नहीं हुआ है।

7. अकादमिक बुद्धि से भिन्न बुद्धि का एक प्रकार जिसे भावात्मक बुद्धि (Emotional Intelligence) कहा जाता है अत्यधिक उपयोगी तथा महत्वपूर्ण है।

8. भावात्मक बुद्धि सम्बन्धी जानकारियों का ज्ञान,उनकी समझ तथा उनका उपयोग इस दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार का ज्ञान,समझ तथा उपयोग 'भावात्मक बुद्धि'को विकसित करने में उल्लेखनीय योगदान करता है।

The Dictum is

"Knowing it, increases it".

9. जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये आई0 क्यू0 का योगदान सम्भवतः मात्र 20 प्रतिशत तक ही सीमित है। शेष 80 प्रतिशत में भावात्मक बुद्धि का अत्यधिक प्रभाव है।

निम्नलिखित विवरण को पढ़ने के उपरान्त आपको भावात्मक बुद्धि के प्रत्यय को जानने तथा समझने में आसानी होगी -

आंग्ल भाषा के Emotion का शाब्दिक अर्थ 'भाव' अथवा 'संवेग' है।

The Oxford English Dictionary defines emotion as "any agitation or disturbance of mind, feeling, and passion, any vehement or excited mental state".

डेनियल गोलमान(1995:289)के अनुसार "emotion refers to a feeling and its distinctive thoughts, psychological and biological states, and range of propensities to act". (Goleman, D. Emotional Intelligence. Bantam Book. 1995.)

संवेग अथवा भाव एक अनुभूति तथा उसके विशिष्ट विचारों,मनोवैज्ञानिक तथा जैविक दशाओं,तथा कार्य करने के लिए प्रवृत्त होने के क्षेत्र/पहुॅच को बताता है।

आधारभूत अथवा प्राथमिक भावों तथा उनके पारस्परिक मिलन,अन्र्तक्रिया,रूपान्तरण तथा सूक्ष्म अन्तरों के सन्दर्भ में शोध कर्ताओं द्वारा अनेकानेक विवरण प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। प्राथमिक भावों को समझने हेतु अनेक सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है।

13.8 भावात्मक बुद्धि पर सम्पन्न शोध कार्यों के निष्कर्ष

भारतीय परिवेश:-

तिवारी, माला (1999) द्वरा उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही छात्राओं की भावात्मक बुद्धि पर किये गये शोध कार्य के परिणाम-

1. आत्म बोध के विभिन्न स्तरों की प्राप्ति की प्रक्रिया भावात्मक बुद्धि से प्रत्यक्ष रूप से सम्बंधित है। आत्म बोध सम्बंधी द्वंद को सुलझाने में भावात्मक बुद्धि सहायक होती है।उच्च भावात्मक बुद्धि युक्त छात्राएँ इस द्वंद को अपेक्षाकृत आसानीसे सुलझा लेती हैं।
2. जीवन सम्बंधी विभिन्न द्वंदों को सुलझाने में निम्नलिखित भावात्मक बुद्धि सम्बंधी योग्यताएँ सहायक होती हैं-
   क. उच्च आत्म बोध
   ख. भावों के प्रबंधन की योग्यता
   ग. स्व-प्रेरणा की योग्यता
   घ. दूसरों के भावों को पहचानने की योग्यता
   ङ. मानवीय सम्बंधों को निर्वहन करने की योग्यता
3. उच्च आर्थिक स्तर के परिवारों के छात्राएँ निम्न आर्थिक स्तर के परिवारों की छात्राओं की तुलना में अधिक भावात्मक बुद्धि युक्त पायी गई।
4. उच्च शैक्षिक उपलब्धि वाली छात्राएँ निम्न शैक्षिक उपलब्धि वाली छात्राओं की तुलना में अधिक भावात्मक बुद्धि युक्त पायी गई।
5. उच्च रूप से शिक्षित माता-पिताओं की पुत्रियाँ निम्न रूप से शिक्षित माता-पिताओं की पुत्रियों की तुलना में अधिक भावात्मक बुद्धि युक्त पायी गई।

कुमार, डी0 (2001) द्वारा प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की भावात्मक बुद्धि पर किये गये शोध कार्य के परिणाम –

1. पुरुष शिक्षकों तथा महिला शिक्षकों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत वरिष्ठ शिक्षकों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत कनिष्ठ शिक्षकों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
3. वर्ण आधारित शिक्षकों के वर्गों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
4. शहरी क्षेत्रों में कार्यरत शिक्षकों के शिक्षण अनुभव के आधारित विभिन्न वर्गों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।

5. ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक शहरी क्षेत्रों में कार्यरत प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की अधिक भावात्मक बुद्धि युक्त पाये गये।

दीक्षा, चौधरी (2002) द्वरा विश्वविद्यालय तथा कॉलेजों के शिक्षकों की भावात्मक बुद्धि पर किये गये शोध कार्य के परिणाम-

1. पुरुष शिक्षकों तथा महिला शिक्षकों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
2. कला संकाय के शिक्षकों में अपेक्षतया कम भावात्मक बुद्धि वाले शिक्षकों की संख्या अपेक्षतया उच्च कम भावात्मक बुद्धि वाले शिक्षकों की संख्या से सार्थक रूप से अधिक पायी गयी।

पांडे, टी0 सी0 (2002) द्वारा कक्षा 11 में अध्ययनरत किशोर-किशोरियों की भावात्मक बुद्धिपर किये गये शोध कार्य के परिणाम-

1. हिंदु धर्म के विभिन्न वर्णों के विद्यार्थियों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
2. ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों तथा शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
3. विभिन्न आर्थिक स्तर के विद्यार्थियों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
4. परिवार के आकार के आधार पर विभाजित विद्यार्थियों के विभिन्न वर्गों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
5. जन्म क्रम के आधार पर विभाजित विद्यार्थियों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
6. किशोरों की भावात्मक बुद्धि तथा आधुनिकीकरण के प्रति उनकी अभिवृत्ति के मध्य सार्थक घनात्मक सहसम्बंध पाया गया।
7. किशोरियों की भावात्मक बुद्धि तथा आधुनिकीकरण के प्रति उनकी अभिवृत्ति के मध्य सार्थक घनात्मक सहसम्बंध पाया गया।

देवलाल,जी0 एन0 (2003) द्वारा किशोरावस्था के विद्यार्थियोंकी भावात्मक बुद्धि पर किये गये शोध कार्य के परिणाम-

1. उच्च शैक्षिक उपलब्धि तथा निम्न शैक्षिक उपलब्धि वाले विद्यार्थियों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
2. विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की भावात्मक बुद्धि कला वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक उच्च पायी गयी।
3. विद्यार्थियों की सामान्य बौद्धिक योग्यता तथा भावात्मक बुद्धि के मध्य सार्थक घनात्मक सहसम्बंध पाया गया।

4. शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की भावात्मक बुद्धि ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक उच्च पायी गयी।

मिश्रा, कामाक्षा (2007) द्वारा शैक्षिक प्रशासकों की भावात्मक बुद्धि पर किये गये शोध कार्य के परिणाम-

1. पुरुष शैक्षिक प्रशासकों तथा महिला शैक्षिक प्रशासकों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
2. शिक्षिक प्रशासकों की भावात्मक बुद्धि तथा उनके आत्मघाती बुद्धि लक्षण सम्मुचय से खतरे के मध्य कोई सम्बंध नहीं पाया गया।

जोशी, अमीता (2008) द्वारा शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की भावात्मक बुद्धि पर किये गये कार्य के परिणाम-

1. पुरुष प्रशिक्षणार्थियों तथा महिला प्रशिक्षणार्थियों की भावात्मक बुद्धि में अंतर नहीं पाया गया।
2. आरक्षित वर्ग के प्रशिक्षणार्थियों की भावात्मक बुद्धि अनाराक्षित वर्ग के प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में कम पायी गयी।

पांडे, एम0के0 (2010) द्वारा सर्वशिक्षा अभियान से जुड़े शिक्षकों तथा अधिकारियों की भावात्मक बुद्धि पर किये शोध कार्य के परिणाम-

1. सर्वशिक्षा अभियान से जुड़े शिक्षकोंतथा अधिकारियों के लिंग के आधार पर विभजित दो वर्गों की भावात्मक बुद्धि में कोई अंतर नहीं पाया गया।
2. सर्वशिक्षा अभियान से जुड़े इन व्यक्तियों की भावात्मक बुद्धि तथा उनकी जीवन के प्रति संतुष्टि के मध्य सार्थक घनात्मक सहसम्बंध पाया गया।
3. व्यावसायिक अनुभव के आधार पर विभाजित इन व्यक्तियों के दो समूहों की भावात्मक बुद्धि में सार्थक अंतर पाया गया। अपेक्षतया कम अनुभवी वर्ग की भावात्मक बुद्धि अधिक अनुभवी वर्ग की तुलना में उच्च पायी गयी।

13.9 सारांश

वर्ष 1990 में येल विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक पीटर सेलोवे तथा न्यूहेम्पशायर विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक जॉन मेयर द्वारा संयुक्त रूप से भावात्मक बुद्धि के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया। वर्ष 1995 में डेनियल गोलमान की पुस्तक के प्रकाशन से भावात्मक बुद्धि के महत्व से अकादमिक जगत परिचित हुआ।

भावात्मक बुद्धि के पाँच आयामों से सम्बन्धी योग्यताएँ हैं- स्वयं के भावों को जानना,भावों को नियंत्रित/व्यवस्थित करना, स्वयं को अभिप्रेरित करना,दूसरों के भावों की पहचान कर सकना, मानवीय सम्बन्धों को निभाना।

क्रोध, उदासी, भय, आनंद, प्रेम, आश्चर्य,घृणा तथा लज्जा भावात्मक बुद्धि में सन्निहित प्रमुख प्राथमिक भाव हैं।

कुछ वर्षों पूर्व तक मनोविज्ञान भावों/संवेगों के विषय में बहुत कम जानता था। पिछले दो दशकों से इस सन्दर्भ में कई जानकारियाँ मिली हैं। बच्चे और अधिक अच्छी तरह से जीवन जी सकें- इसके लिये भावात्मक बुद्धि सम्बन्धी योग्यताओं पर ध्यान देना आवश्यक है। इस प्रकार की योग्यताओं के अन्तर्गत आत्म-नियन्त्रण,उत्साह/जोश,दृढ़ता तथा स्वयं को अभिप्रेरित कर सकना सम्मिलित हैं। अब पता चल गया है कि भावों/अनुभूतियों में 'बुद्धि'होती है तथा इस 'बुद्धि'में वृद्धि की जा सकती है। तर्क करने-चिन्तन करने- सोचने की योग्यता पर भावों का प्रभाव पड़ता है। सोचने की योग्यता पर महसूस कर सकने की योग्यता के प्रभाव को अब स्वीकार कर लिया गया है। श्रद्धा,विश्वास,आशा,समर्पण तथा प्रेम के महत्व को विद्यालय के क्रिया-कलापों में यथोचित स्थान दिया जाना आवश्यक है।

आत्म बोध के विभिन्न स्तरों की प्राप्ति की प्रक्रिया भावात्मक बुद्धि से प्रत्यक्ष रूप से सम्बंधित है। आत्म बोध सम्बंधी द्वंद को सुलझाने में भावात्मक बुद्धि सहायक होती है।

13.10 शब्दावली

1. **बुद्धि (Intelligence):-** चुनौतियों का सामना करते समय, संसाधनों का प्रभावपूर्ण ढंग से उपयोग करने, सविवेक चिंतन करने और जगत को समझने की क्षमता।
2. **भावात्मक बुद्धि**-अपने भावों/अनुभूतियों को महसूस कर सकने की योग्यता
3. **बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient, IQ)**:- कालानुक्रमिक आयु से मानसिक आयु का अनुपात इंगित करने वाला मानकीकृत बुद्धि परीक्षणों से प्राप्त एक सूचकांक।

13.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. वर्ष 1990 में येल विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक पीटर सेलोवे तथा न्यूहेम्पशायर विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक जॉन मेयर द्वारा संयुक्त रूप से भावात्मक बुद्धि के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया गया।
2. डेनियल गोलमान

3. $I\,Q = \frac{M.A.}{C.A} \times 100$

4. भावात्मक बुद्धि में सन्निहित प्रमुख प्राथमिक भावों के नाम हैं-
   क्रोध, उदासी, भय, आनन्द, प्रेम, आश्चर्य, घृणा, लज्जा

13.12 संदर्भ ग्रंथ

1. Cooper, R.K. & Sawaf, A Executive E.Q. Orion Publising Group Ltd., Great Britain,1997
2. Goleman, D. Emotional Intelligence. Bantom Books, New York, 1995
3. Gottman, J. The Heart of Parenting: Raising An Emotinally Intelligent Child, 1996
4. Epstein, S. You're Smarter than You Think,Simon & Schuster. New York, 1993
5. Pandey, M.K. Study of Emotional Intelligence and Satisfaction with Life of Education for All (EFA) Programme Functionaries of Uttarakhand in relation to their Gender and Academic Factors. Ph.D (Education) Dissertation, Kumaon University, Nainital, 2010.
6. Tewary, Mala. Study of Identity Statuses and emotional Intelligence of Female College students in relation to their Gemde and Professional Experience. Ph.D (Education) Dissertation, Kumaon University, Nainital, 1999.
7. Kumar,D. Study of Emotional UIntelligemce of primary School Teachers in relation to their Gender, age, Caste and Teaching experience. M.Ed. Dissertation, Kumaon University, Nainital, 2001.
8. Chaudhary, Diksha. Study of Self-destructine Intelligence Symdrome and Emotional Intelligence of Universirty and College Teachers in relation to Gender and Academic factors. Ph.D (Education) Dissertation, Kumaon University, Nainital, 2002.
9. Deolal,G.N. Study of Emotional Intelligence and general Intellectual Ability of Kumaoni Adolecents in relation to their Academic

Achievemnet and Academic Stream. Ph.D (Education) Dissertation, Kumaon University, Nainital, 2003.

10. Mishra, Kamaksha. Study of the vulnerability towards self-destruactive Intelligence Syndraome and emotional intelligence related abilities of educational Administrators of Kumaon Region of Uttarakhand. Ph.D (Education) Dissertation, Kumaon University, Nainital, 2007.
11. Joshi, Amita. Study of Spiritual Intelligence and Emotional Intelligence related abilities of Teacher Trainees in relation to their gender and some socio-educational factors. Ph.D (Education) Dissertation, Kumaon University, Nainital, 2008.

13.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. भावात्मक बुद्धि के प्रत्यय को स्पष्ट करते हुए इसे परिभाषित कीजिए।
2. भावात्मक बुद्धि और अकादमिक बुद्धि के मध्य के महत्वपूर्ण अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
3. भावात्मक बुद्धि के विभिन्न आयामों का वर्णन कीजिए।
4. मानव जीवन में भावात्मक बुद्धि के महत्व पर विवेचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

इकाई-14 बुद्धि परीक्षण Intelligence Tests

14.2 प्रस्तावना

14.3 उद्देश्य

14.4 बुद्धि की प्रकृति
14.5 बुद्धि के सिद्धान्तों को प्रदर्शित करती सारणी
14.6 बुद्धिकेप्रकार
14.7 बुद्धि मापन या परीक्षण का अर्थ
14.8 बुद्धि मापन या परीक्षण का अर्थ
14.9 बुद्धि मापांक के अवयव अपनी अधिगम प्रगति जानिए
14.10 बुद्धि लब्धि प्राप्तांक का वितरण
14.11 बुद्धि लब्धि की सीमाएँ
14.12 बुद्धि लब्धि की सीमाएँ
14.13 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिताएँ
14.14 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार
14.15 बुद्धि परीक्षणों की समानतायें एवं विषमतायें
14.16 भारत में विकसित कुछ मुख्य बुद्धि परीक्षण
14.17 बुद्धि परीक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन
14.18 बुद्धि परीक्षण की सीमाएँ
14.19 सारांश
14.20 शब्दावली
14.21 अपनी अधिगम प्रगति जानिए सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर
14.22 सन्दर्भ ग्रंथ/पठनीय पुस्तकें
14.23 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

मानव अपनी बुद्धि के कारण ही अन्य सभी प्राणियों से सर्वश्रेष्ठ है। बुद्धि वह योग्यता है जिससे मनुष्य अपनी नई आवश्यकताओं के अनुकूल अपने चिंतन को चेतन रूप से अभियोजित कर लेता है। बुद्धि को मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग तरह से परिभाषित किया है। आज तक बुद्धि की कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है। कोई इसे समायोजन की योग्यता मानते हैं तो कोई मानव की समस्त वैश्विक योग्यता। बुद्धिचाहे मनुष्य की जैसी भी योग्यता हो लेकिन ये मानव की खुद के लिए व अंतोगत्वा राष्ट्र की प्रगति के लिए एक अहम निर्धारक तत्व हैं। अत: इस योग्यता को जानने, जॉचने व परखने के लिए मनुष्य सभ्यता के शुरूआती दौर से ही प्रयासरत व जिज्ञासु रहा है। चीनी सभ्यता

में परीक्षा प्रणाली के माध्यम से लोक-नियोजन प्रक्रिया में वैधानिकता और वैज्ञानिकता लाना यह लोगों के बुद्धि मापन से ही संबंधित रहा है। प्राचीन काल में भारत में शास्त्रार्थ का आयोजन, दार्शनिक प्रश्नोत्तरी के माध्यम से विवेक व ज्ञान का परीक्षण, बुद्धि के मापन कार्य से ही संबंधित है। आजकल विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में प्रवेश हेतु परीक्षा का आयोजन हो या नौकरी पाने के लिए साक्षात्कार की प्रक्रिया से गुजरना सभी किसी न किसी तरह बुद्धि मापन से संबंधित है। अर्थात् बुद्धि मापन की प्रक्रिया को जानना व समझना, बहुत ही आवश्यक है ताकि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को बहुत ही प्रभावशाली बनाया जा सके। अत: प्रस्तुत इकाई में आपको बुद्धि मापन के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाएगी। इस क्रम में आपको संक्षिप्त रूप से बुद्धि की प्रकृति और बुद्धि मापन से संबंधित तथ्यों को भी बतलाया जाएगा।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरांत आप-

1. बुद्धि की प्रकृति को बता पायेंगें।
2. बुद्धि के मापन के संप्रत्यय की व्याख्या कर सकेंगे।
3. बुद्धि मापन के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे।
4. बुद्धि के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगें।
5. बुद्धि मापन के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की व्याख्या कर पायेगें।
6. बुद्धि मापन के गुण-दोषों को स्पष्ट कर सकेंगे।
7. बुद्धि परीक्षणों का वर्गीकरण कर सकेंगे।

14.3 बुद्धि की प्रकृति

बुद्धि एक समग्र क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रिया करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है (वेश्लर, 1944) अर्थात् बुद्धि को कई तरह की क्षमताओं का योग माना है। स्टोडार्ड (1941) के अनुसार ‘’बुद्धि उन क्रियाओं को समझने की क्षमता है जो जटिल, कठिन, अमूर्त, मितव्यय, किसी लक्ष्य के प्रति अनुकूलनशील, सामाजिक व मौलिक हो तथा कुछ परिस्थिति में वैसी क्रियाओं को करना जो शक्ति की एकाग्रता तथा सांवेगिक कारकों का प्रतिरोध दिखाता हो।‘’ राबिन्सन तथा राबिन्सन, 1965 ने भी बुद्धि को संज्ञानात्मक व्यवहारों का संपूर्ण समूह माना है जो व्यक्ति में सूझ द्वारा समस्या समाधान करने की क्षमता, नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की क्षमता, अमूर्त रूप से सोचने की क्षमता तथा

अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता को परिलक्षित करता है। बोरिंग 1923, के अनुसार बुद्धि वही है, जो बुद्धि परीक्षण मापता है। इन सभी तथ्यों से बुद्धि की प्रकृति के बारे में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला जा सकता है-

1. बुद्धि वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करने की क्षमता है।
2. बुद्धि सीखने की क्षमता है।
3. बुद्धि अमूर्त चिंतन करने की क्षमता है।
4. बुद्धि विभिन्न क्षमताओं का समग्र योग है।
5. यह व्यक्ति के समस्या समाधान करने की योग्यता को प्रदर्शित करता है।
6. बुद्धि द्वारा ही किसी समस्या के समाधान में गत अनुभूतियों का लाभ मिलता है।
7. बुद्धि विवेकशील चिंतन करने की योग्यता है।
8. बुद्धि को प्रत्यक्ष व्यवहार के आधार पर मापा जा सकता है।
9. बुद्धि के विकास के लिए आनुवांशिकी व वातावरण दोनों ही उत्तरदायी कारक है।
10. यह अपनी ऊर्जा को किसी कार्य को करने में संकेन्द्रण की क्षमता है।
11. बुद्धि मानसिक परिपक्वता का द्योतक हैं।
12. यह आगमन विधि व निगमन विधि द्वारा तर्क करने की योग्यता है।
13. यह उच्च श्रेणी के चिंतन प्रक्रिया के लिए आवश्यक हैं।
14. यह एक प्रत्यक्षण/सूझ की योग्यता है।
15. यह जटिल, कठिन, मितव्यय, अमूर्त व सामाजिक मूल्यों वाले कार्य को करने की योग्यता है।
16. बुद्धि शाब्दिक व अशाब्दिक योग्यता है।
17. बुद्धि एक परिकल्पित सम्प्रत्यय है।
18. बुद्धि को सतर्कता, धारणा, विचार एवं प्रतीक, स्वयं की आलोचना करने की क्षमता, आत्मविश्वास और तीव्र प्रेरणा की क्षमता के रूप में समझा जा सकता है।
19. बुद्धि में व्यक्तिगत भिन्नतायें पायी जाती है।
20. बुद्धि को किसी कार्य करने की प्रणाली के द्वारा अवलोकन किया जा सकता है।

बुद्धि को समझने के लिए बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने इसे अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है व सिद्धान्तों के रूप में इसे आबद्ध किया है। ये सिद्धान्त बुद्धि की मापन की प्रकृति को समझने के लिए आवश्यक है जिसकी वृहत चर्चा पूर्व के अध्याओं में की गयी है। यहॉ केवल इन सिद्धान्तों के नाम की पुनरावृति करेंगें ताकि आपको इन सिद्धान्तों को प्रत्यास्मरण करने में आसानी हो व बुद्धि मापन की प्रक्रिया को समझने में सरलता का अनुभव हो।

14.4 बुद्धि के सिद्धान्तों को प्रदर्शित करती सारणी

क्र0 सं0	सिद्धान्त का नाम	सिद्धान्त के विकासकर्ता	वर्ष	मुख्य सन्दर्भ
1.	एक तत्व सिद्धान्त Monarchic theory	अल्फ्रेड बिने	1903	एक तत्व अर्थात् नई परिस्थिति के साथ समायोजन की योग्यता
2.	द्वि-तत्व सिद्धांत Two Factor/Diarchic Theory	चार्ल्सस्पीयरमैन	1904	सामान्य कारक (General Factor) व विशिष्ट कारक (Specific Factor) बुद्धि = G+S
3.	बहुतत्वीय सिद्धांत या परमाण्विक सिद्धांत Multifactor Theory or Anarchic Theory Atomistic Theory	ई0एल0 थार्नडाइक		बुद्धि को कार्य की चार विशेषताओं के आधार पर मापा जा सकता है- 1. स्तर (कार्य की कठिनाई सूचकांक) 2. परास (कार्य की संख्या) 3. क्षेत्र (परिस्थितियों की संख्या) 4. गति (कार्य को पूर्ण करने की समय सीमा)
4.	प्राथमिक मानसिक योग्यता का सिद्धांत Primary Mental Abilities (PMA)	एल0एल0 थर्स्टन इनके मुख्य पुस्तक	1938	बुद्धि को सात प्राथमिक मानसिक योग्यताओं का योग माना है 1. स्थानिक संबंध

	Theory	का नाम जिसमें इस सिद्धांत का जिक्र है:- 1. The Nature of Intelligence(1924) 2. Primary Mental Abilities (1938) 3. Multifactor Analysis (1947)		(spatial Relation) 2. प्रत्यक्षात्मक गति Perceptual Speed 3. संख्यात्मक योग्यता (Numerical Ability) 4. वाचिक अवबोधन (Verbal Comprehension) 5. स्मरण (Memory) 6. शब्द प्रवाह (Word Fluency) 7. तार्किक योग्यता (Reasoning)
4.	न्यादर्शन सिद्धांत Sampling Theory	जी0एच0 थाम्पसन	1939	बुद्धि मानसिक योग्यताओं का योग है।
5.	मानसिक कार्यो का त्रि योग्यता सिद्धांत Triarchic Theory of Mental Functioning	आर्थर जेन्सन		बुद्धि में मानसिक योग्यताओं का दो स्तर होता है:- 1. साहचर्यात्मक अधिगम क्षमता (Associative Learning Capacity) 2. संज्ञानात्मक क्षमता अथवा, संप्रत्यात्मक क्षमता

				(Conceptual Abilities
6.	बुद्धि का संरचना मॉडल Structure of Intellect Model	जे0पी0 गिलफोर्ड	1967	बौद्धिक विशेषताओं को तीन विभागों में वर्गीकृत:- 1. संक्रियाऐं (Process) – • संज्ञान • स्मृति अभिलेखन • स्मृति प्रतिधारण • अपसारी उत्पादन • अभिसारी उत्पादन • मूल्यांकन 2. विषयवस्तु (Content) • चाक्षुष (Visual) • श्रेवणात्मक(Auditory) • प्रतीकात्मक अर्थविषयक (Semantic) • व्यवहारात्मक 3. उत्पाद (Product Output) • इकाई • वर्ग • संबंध • व्यवस्था • रूपांतरण • निहितार्थ

7.	बहुबुद्धि का सिद्धान्त Multiple Intelligence	हावर्ड गार्डनर (Howard Gardner)	1983	बुद्धि को आठ प्रकार की योग्यताओं का योग माना गया है:- • भाषागत • तार्किक /गणितीय • दैशिक • संगीतात्मक • शारीरिक गतिसंवेदी • अंत:वैयक्तिक • अंत: र्व्यक्तिक • प्रकृतिवादी
8.	बुद्धि का त्रिचापीय सिद्धांत Triarchic Theory of Intelligence	राबर्ट स्टर्नबर्ग Robert Sternberg	1985	बुद्धि तीन प्रकार की होती है:- • घटकीय बुद्धि (Componential Intelligence) • आनुभविक बुद्धि(Experiential Intelligence) • सांदर्भिक बुद्धि (Contextual Intelligence)
9.	PASS बुद्धि का मॉडल	J.P. Das Jack Naglieri Kirby	1994	बौद्धिक क्रियाऐं तीन तंत्रकीय या स्नामुविक तंत्रों की क्रियाओं द्वारा संपादित होती है:- 1. योजना (Planning) 2. अवधान/भाव प्रबोधन Attention/ Arousal 3. सहकालिक तथा

				आनुक्रमिक प्रक्रमण (Simultaneous and Successive Process)
10.	बुद्धि का पदानुक्रम सिद्धांत	पी0एफ0 वर्नन P.F. Vernon	1950	बुद्धि मानवीय योग्यताओं का पदानुक्रमित व्यवस्थापन है।
11.	कैटेल का बुद्धि सिद्धांत	आर0बी0 कैटेल R.B. Cattell	1963, 1987	बुद्धि में दो महत्वपूर्ण तत्व होते हैं:- 1. तरल बुद्धि Fluid Intelligence 2. ठोस बुद्धि Crystallized Intelligence
12.	बुद्धि का द्वि स्तरीय	कैम्पियन एवं ब्राउन (Campion & Brown)		बौद्धिक कार्य दो स्तरों पर सम्पन्न होता है:- 1. जैविक आधारित संरचना प्रणाली 2. वातावरण आधारित क्रियान्वयन प्रणाली

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. बुद्धि का द्वि-तत्व सिद्धांत ....द्वारा प्रतिपादित किया गया है।
2. कैटेल के बुद्धि सिद्धांत में दो महत्वपूर्ण तत्व हैं.................और.............।
3. बुद्धि का त्रिचापीय सिद्धांत..............................द्वारा प्रतिपादित किया गया है।
4. बुद्धि का PASS मॉडल में P का अर्थ ....है।
5.

14.6 बुद्धिकेप्रकार

बुद्धि के विभिन्न परिभाषाओं और सिद्धांतों से इसके स्वरूप व प्रकार का पता चलता है। बुद्धि का स्वरूप कुछ ऐसा होता है जिसे किसी एक कारक (Factor) या क्षमता के आधार पर नहीं समझा जा सकता है। बुद्धि विभिन्न क्षमताओं के समग्रता को परिलक्षित करता है। ई0एल0 थार्नडाईक, डोनेल्ड हेब और वर्नन जैसे मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को निम्न प्रकारों में विभक्त किया है:-

1. आनुवांशिक क्षमता के रूप में बुद्धि (Intelligence as Genetic Capacity):- इसके अनुसार बुद्धि को पूर्णत: वंशागत माना जाता है। इसे हेबब (Hebb, 1978) ने बुद्धि 'ए' (Intelligence 'A') की संज्ञा दी है। स्पष्टत: यह बुद्धि का एक जीनोटाइपिक (Genotypic) प्रकार है तथा इसमें बुद्धि को व्यक्ति का आनुवांशिक गुण माना जाता है।
2. अवलोकित व्यवहार के रूप में बुद्धि (Intelligence as an observable behaviour):- इस परिप्रेक्ष्य में बुद्धि को आनुवांशिकता व वातावरण के अंत:क्रिया का परिणाम माना जाता है। जिस सीमा तक व्यक्ति नये वातावरण या अपने वर्तमान वातावरण के साथ समायोजित करता है, इस सीमा तक उसे बुद्धिमान समझा जाता है। इसे हेब्ब ने बुद्धि 'बी' (Intelligence 'B') की संज्ञा दी है जिसका अर्थ फेनोटाइपिक (Phenotypic) प्रारूप पर आधारित है।
3. परीक्षण श्रेयांक के रूप में बुद्धि (Intelligence as test score):- बुद्धि एक परिकल्पनात्मक संप्रत्यय है। इसके मापन के लिए इसका संक्रियात्मक परिभाषा का होना आवश्यक है। बोरिंग के अनुसार ''बुद्धि वही है जो बुद्धि परीक्षण मापता है''। इसे हेबब ने बुद्धि 'सी' (Intelligence 'C') की संज्ञा दी है।

सैट्टलर (Sattler, 1974) के अनुसार बुद्धि 'ए''बी' तथा 'सी' से संबंधित बहुत से ऐसे कारक हैं जो परीक्षार्थी के परीक्षण निष्पादन को प्रभावित करते हैं। इन कारकों में परीक्षार्थी की संज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक विशेषतायें, परीक्षक की विशेषताएं व परीक्षा की विशेषताओं से संबंधित तत्व हैं। 'ए''बी' तथा 'सी' बुद्धि में सिर्फ 'सी' बुद्धि को ही परीक्षण द्वारा मापा जा सकता है।

थार्नडाइक के अनुसार बुद्धि को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है:-

1. अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence):- यह बुद्धि अमूर्त समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है। यह विचारों के परिचालित करने की क्षमता से संबंधित है।
2. मूर्त बुद्धि (Concrete Intelligence):- यह बुद्धि मूर्त समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है। यह वस्तुओं के परिचालित करने की क्षमता से संबंधित है।

3. सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence):- यह बुद्धि सामाजिक समायोजन की क्षमता से संबंधित है। यह बुद्धि व्यक्तियों के सामाजिक संबंधों को बेहतर बनाने के लिए काम आती है।

इसके अतिरिक्त आजकल बुद्धि के और दो प्रकारों की चर्चा की जाती है, जो निम्नलिखित है:-

1. संवेगात्मक बुद्धि (Emotional Intelligence):- यह बुद्धि अपने संवेग व दूसरों के संवेगों को समझने में सहायक है। यह संवेगात्मक समस्याओं को हल करने में मदद करती हैं।
2. आध्यात्मिक बुद्धि (Spiritual Intelligence):- यह व्यक्ति के आध्यात्मिक परिपक्वता का सूचकांक है। ऐसी बुद्धि वाले व्यक्ति स्व अनुशासित, कर्तव्यपरायण, परोपकारी, चेतना का विकसित स्वरूप वाले होते हैं। इसके सोचने का तरीका मानवतावादी उपागम पर आधारित होता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5..................बुद्धि व्यक्ति के आध्यात्मिक परिपक्वता का सूचकांक है।

6....................बुद्धि अपने संवेग व दूसरों के संवेगों को समझने में सहायक है।

7.....................बुद्धि अमूर्त समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है।

8. बुद्धि .... जिसका अर्थ फेनोटाइपिक (Phenotypic) प्रारूप पर आधारित है।

9. बुद्धि वही है जो बुद्धि परीक्षण मापता है’’। इसे हेबब ने बुद्धि...........की संज्ञा दी है।

उपरोक्त संदर्भ में आपने बुद्धि की प्रकृति, परिभाषा सिद्धान्त व प्रकार का अध्ययन किया जो कि बुद्धि के अर्थ, मापन व इसके प्रकार को समझने के लिए अत्यावश्यक है। अब यहॉ हम लोग बुद्धि की मापन के अर्थ व इसके प्रकार का अध्ययन करेंगें।

14.7बुद्धि मापन या परीक्षण का अर्थ

बाह्य व्यवहार द्वारा मानसिक योग्यता, संज्ञानात्मक परिपक्वता और समायोजन की क्षमता का मापन बुद्धि मापन कहलाता है। बुद्धि मापन का कार्य विभिन्न प्रकार के परीक्षणों के माध्यम से किया जाता

है। इस परीक्षणों में सम्मिलित पदों की प्रकृति व प्रकार के आधार पर बुद्धि लब्धि सूचकांक तैयार किया जाता है।

बुद्धि परीक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:- बुद्धि मापन की अनौपचारिक क्रिया शायद मानव सभ्यता के शुरूआत से ही रही है। मानव सभ्यता के शुरूआती दौर से ही वैयक्तिक विभिन्नताओं को जानने के विभिन्न तरीकों का प्रयोग होता आ रहा है। विभिन्नता के कारण ही प्राय: एक सी ही पाठ्य सामग्री, पाठ्य विधि एवं सुविधाओं के उपलब्ध कराये जाने के बावजूद भी दो छात्र समान रूप से प्रगति नहीं कर पाते हैं। उनके अनुसार वह योग्यता जो व्यक्ति को सुगमता, शीघ्रता एवं उचित प्रकार से सीखने के लिए प्रेरित करती है, बुद्धि कहलाती है। व्यक्ति के भौतिक स्वरूप में अंतर के साथ ही बुद्धि में भी अन्तर पाया जाता है। निम्नलिखित समय रेखा के माध्यम से बुद्धि मापन के ऐतिहासिक विकास को समझा जा सकता है।

- 1775-78 मेंलेवेटर ने चेहरे से व्यक्ति के मानसिक योग्यताओं को आकलित करने की बात बतायी।
- 1807 में गॉल ने सिर व ललाट की विशेषता को बुद्धि परीक्षण का आधार माना।
- 1871 में लम्ब्रोजो ने सिर की बनावट से बुद्धि को पता लगाने के ढंग बताये।
- 1805 में इंग्लैण्ड के फ्रांसिस गाल्टन ने बुद्धि के मापने में सांख्यिकीय रीति अपनाने की बात पर जोर डाला।
- 1904 में स्पीयरमैन ने बुद्धि का द्वि-कारकीय सिद्धांत का विकास सहसंबंध विधि द्वारा किया।
- 1890 आर0बी0 कैटिल ने ‘मानसिक परीक्षण व मूल्यांकन’ (Mental test and Evaluation) नामक अपनी पुस्तक में सर्वप्रथम ‘मानसिक परीक्षण’ शब्द की शुरूआत की।
- 1905 में अल्फ्रेड बिर्ने ने औपचारिक रूप से बुद्धि परीक्षण की शुरूआत की।
- 1908 में बिने-साइमन बुद्धि परीक्षण मापदंड का पहला संशोधन हुआ और इसमें इन्होंने मानसिक आयु का संप्रत्यय दिया।
- 1910 में बिने-साइमन बुद्धि परीक्षण का दूसरा संशोधन हुआ।
- 1912 में विलियम स्टर्न ने बुद्धि को मापने के लिए मानसिक आयु व तैथिक आयु के अनुपात को प्रयोग करने की सलाह दी।
- 1916 में मानसिक आयु व तैथिक आयु के अनुपात में 100 से गुणन को बुद्धिलब्धि की

संज्ञा दी।

14.8 बुद्धि मापांक के अवयव (Components of Intelligence Quotient)

1. तैथिक या कालक्रमिक आयु (Chronological Age):- किसी व्यक्ति के वास्तविक जन्मतिथि से वर्तमान समय के अवधि को तैथिक या कालक्रमिक आयु की संज्ञा दी जाती है। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति की कालक्रमिक आयु (chronological age, CA) जन्म लेने के बाद बीत चुकी अवधि होती है। इसकी जानकारी व्यक्ति (परीक्षार्थी) या उनके माता-पिता से पूछकर अथवा जन्मकुंडली, विद्यालय के रिकार्ड (Record) को देखकर प्राप्त की जा सकती है।
2. मानसिक आयु (Mental Age):- सर्वप्रथम 1905 में अल्फ्रेड बिने तथा थियोडोर साइमन (Theodore Simon) ने औपचारिक रूप में बुद्धि के मापन का सफल प्रयास किया। 1908 में अपनी मापनी का संशोधन करते समय उन्होंने मानसिक आयु (Mental Age, MA) का संप्रत्यय दिया। मानसिक आयु के माप का अभिप्राय है, किसी व्यक्ति के मानसिक परिपक्वता का सूचकांक अर्थात किसी व्यक्ति का बौद्धिक विकास अपनी आयु वर्ग के अन्य व्यक्तियों की तुलना में कितना हुआ है। यदि किसी बच्चे की मानसिक आयु 5 वर्ष है तो इसका अर्थ है कि किसी बुद्धि परीक्षण पर उस बच्चे का निष्पादन 5 वर्ष वाले बच्चे के औसत निष्पादन के बराबर है।
3. बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient, IQ):- 1912 में विलियम स्टर्न ने बुद्धि को मापने के लिए मानसिक लब्धि के संप्रत्यय का विकास किया जिसका सूत्र निम्न प्रकार से है।

$$\text{मानसिक लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{कालानुक्रमिक आयु}}$$

1916 में टरमन (Terman) ने मानसिक लब्धि के स्थान पर बुद्धि लब्धि के संप्रत्यय को जन्म दिया।

$$\text{बुद्धि लब्धि (IQ)} = \frac{\text{मानसिक आयु (MA)}}{\text{कालानुक्रमिक आयु (CA)}} \times 100$$

अर्थात् किसी व्यक्ति की मानसिक आयु को उसकी कालानुक्रमिक आयु से भाग देने के बाद उसको 100 से गुणा करने से उसकी बुद्धि लब्धि प्राप्त हो जाती है। गुणा करने में 100 की संख्या का उपयोग दशमलव बिन्दु समाप्त करने के लिए किया जाता है।

इस सूत्र के माध्यम से बुद्धि लब्धि के मापन में तीन प्रकार की स्थितियॉ हो सकती है:-

1. जब मानसिक आयु (MA) = कालानुक्रमिक आयु (CA) तो IQ = 100 होगा।
2. जब मानसिक आयु (MA)>कालानुक्रमिक आयु (CA) तो IQ का मान 100 से अधिक होगा।
3. जब मानसिक आयु (MA)< कालानुक्रमिक आयु (CA) तो IQ का मान 100 से कम होगा।

उदाहरण के लिए एक 8 वर्ष के बच्चे की मानसिक आयु (MA)10 वर्ष हो तो उसकी बुद्धि लब्धि (IQ)125 (10/8x100) होगी। परन्तु उसी बच्चे की मानसिक आयु यदि 6 वर्ष होती तो उसकी बुद्धि लब्धि 75 (6x100/8) होती। प्रत्येक आयु स्तर पर व्यक्तियों की समष्टि की औसत बुद्धि लब्धि 100 होती है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

सही और गलत कथन का चयन करें।

10. बुद्धि लब्धि (IQ) = कालानुक्रमिक आयु (CA)

——————————X100

मानसिक आयु (MA)

11. जब मानसिक आयु (MA), कालानुक्रमिक आयु (CA) के समान हो तो IQ का मान 100 से अधिक होगा।

12. जब मानसिक आयु (MA)>कालानुक्रमिक आयु (CA) तो IQ का मान 100 से अधिक होगा।
13. जब मानसिक आयु (MA)< कालानुक्रमिक आयु (CA) तो IQ का मान 100 से अधिक होगा।

14.9 बुद्धि लब्धि प्राप्तांक का वितरण

बुद्धि लब्धि प्राप्तांक का वितरण किसी जनसंख्या में सामान्य प्रायिकता वितरण के अनुसार होता है। अधिकांश लोगों का बुद्धि लब्धि प्राप्तांक मध्य क्षेत्र में तथा बहुत कम लोगों के बुद्धि लब्धि प्राप्तांक बहुत अधिक या बहुत कम होते हैं। बुद्धि लब्धि प्राप्तांकों का यदि एक आवृति वितरण वक्र (Frequency Distribution Curve) बनाया जाए तो यह लगभग एक घंटाकार वक्र (Bell Shaped Curve) के सदृश होता है। इस वक्र को सामान्य वक्र (Normal Curve) कहा जाता है। ऐसा वक्र अपने केन्द्रीय माध्य के दोंनों ओर सममित (Symmetrical) आकार का होता है। एक सामान्य वितरण के रूप में बुद्धि लब्धि प्राप्तांकों के वितरण को निम्न रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है

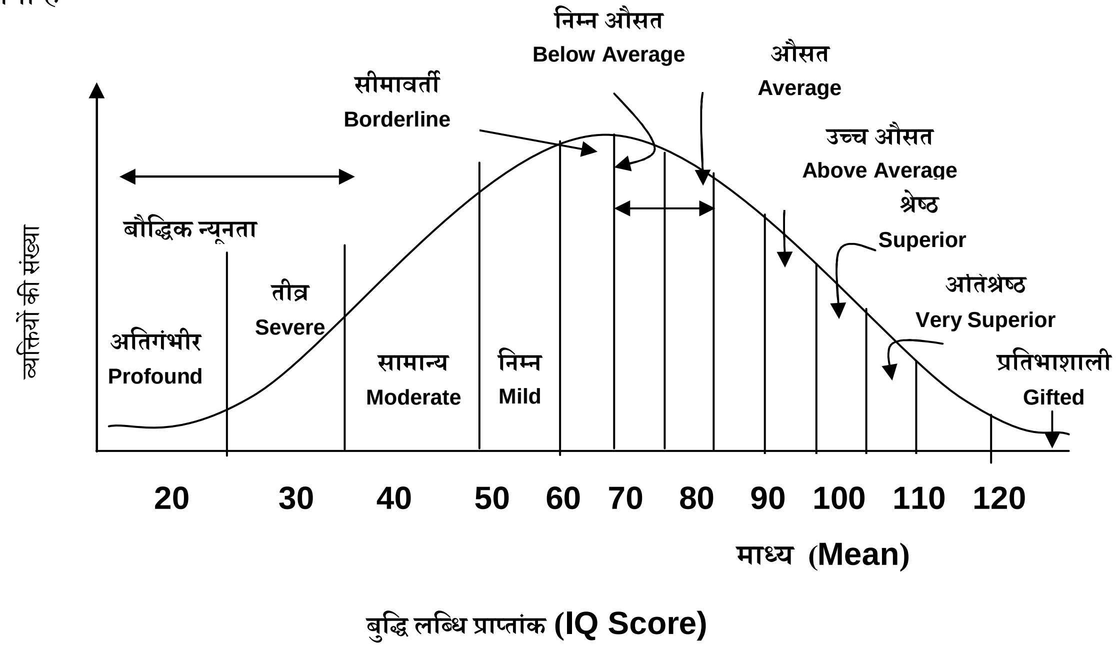

बुद्धि लब्धि प्राप्तांक (IQ Score)

किसी भी जनसंख्या में बुद्धि लब्धि प्राप्तांक का वितरण सामान्य वक्र के अनुरूप होता है। किसी जनसंख्या की बुद्धि लब्धि प्राप्तांक का माध्य(औसत) 100 होता है। जिन व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि प्राप्तांक 90 से 110 के बीच होती है उन्हें सामान्य बुद्धि वाला कहा जाता है। जिनकी बुद्धि लब्धि 70 से भी कम होती है वे मानसिक मंदन (Mental Retardation) से प्रभावित समझे जाते हैं और जिनकी बुद्धि लब्धि 130 से अधिक होती है वे आसाधारण रूप से प्रतिभाशाली समझे जाते है। किसी व्यक्ति के बुद्धि लब्धि प्राप्तांक की व्याख्या निम्न तालिका की मदद से की जा सकती है-

बुद्धि लब्धि के (IQ) के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण

(IQ) वर्ग	वर्णनात्मक वर्गनाम	जनसंख्या प्रतिशत
130+	अतिश्रेष्ठ	2.2
120-130	श्रेष्ठ	6.7
110-119	उच्च औसत	16.1
90-109	औसत	50.0
80-89	निम्न औसत	16.1
70-79	सीमावर्ती मानसिक मंद	6.7
55-69	निम्न मानसिक मंद	
40-54	सामान्य मानसिक मंद	
25-39	तीव्र मानसिक मंद	2.2
0-24	अतिगंभीर मानसिक मंद	

इस तालिका में वर्णित पहले वर्ग के लोगों को बौद्धिक रूप से प्रतिभाशाली (Intelligence wise Gifted) कहा जाता है, जबकि दूसरे वर्ग के लोगों को मानसिक रूप से चुनौती ग्रस्त (Mentally Challenged) या मानसिक रूप से मंदित (Mentally Retarded) कहा जाता है। ये दोंनो वर्ग अपनी संज्ञानात्मक, संवेगात्मक तथा अभिप्रेरणात्मक विशेषताओं मे सामान्य लोगों की अपेक्षा पर्याप्त भिन्न होते हैं।

14.10बुद्धि लब्धि की सीमाएँ

बुद्धि लब्धि का संप्रत्यय दोष-रहित नहीं है। वर्तमान समय में IQ का संप्रत्यय संदिग्ध बन गया है, जिसमें कई त्रुटियॉ हैं। सामान्यत: यह माना जाता है कि 16 वर्ष की आयु तक मानसिक आयु का विकास होता है, इसके बाद इसमें ह्रास होता जाता है, जबकि कालानुक्रमिक आयु बढ़ती जाती है। MA का स्थिर हो जाना या इसमें ह्रास होना तथा CA का निरंतर बढ़ना, IQ के संप्रत्यय को भ्रामक बना देता है। अर्थात् यह संप्रत्यय वयस्क व्यक्तियों की बौद्धिक योग्यता को व्यक्त करने में सक्षम नहीं है। वेश्लर ने सन् 1981 में वेश्लर वयस्क बुद्धि मापनी (Wechsler Adult Intelligence Scale, WAIS) को संशोधित कर IQ के बदले विचलन बुद्धि लब्धि (Deviation Intelligence Quotient, IQ) का संप्रत्यय दिया जो मानसिक आयु तथा कालानुक्रमिक आयु का अनुपात न

होकर एक प्रामाणिक अंक (Standard Score) या Z-Score के सूत्र के आधार पर निकाला जाता है। Z-Score को निकालने का सूत्र निम्नवत् है:-

$$Z = \frac{\text{प्रयोज्य द्वारा प्राप्त अंक (X) - मध्यमान (M)}}{\text{मानक विचलन (SD)}}$$

Z score के आधार पर ही DIQ का सूचकांक निकाला जाता है।

DIQ = 100+16 Z

DIQ एक ऐसा मानक प्राप्तांक (Standard Score) है जिसका विकास आर्थर ओटिस (Arthur Otis) के शोधों से हुआ है। यह प्राप्तांक आज बुद्धि परीक्षण के मापन के क्षेत्र में एक लोकप्रिय मापक बन गया है। IQ के सूत्र के साथ समस्या यह उत्पन्न हुई कि व्यक्ति की कालानुक्रमिक आयु तो हमेशा बढ़ती है परन्तु 17-18 की आयु के बाद सामान्यत: नहीं बढ़ती है। अत: IQ का पारंपरिक सूचकांक एक भ्रामक परिणाम देता है। इसी कठिनाई को दूर करने के लिए DIQ के संप्रत्यय का विकास हुआ।

किसी बुद्धि परीक्षण पर एक व्यक्ति का प्राप्तांक उसी व्यक्ति की आयु समूह के अन्य व्यक्तियों के प्राप्तांकों के औसत (माध्य) से कितनी दूरी (प्रमाप विचलन) पर है, इसका पता DIQ से चलता है। DIQ ज्ञात करने के लिए प्रत्येक आयु समूह के लिए Z- प्राप्तांक ज्ञात किया जाता है और फिर उस Z प्राप्तांक को एक ऐसे वितरण में बदल दिया जाता है जिसका माध्य =100 तथा प्रमाप विचलन =16 होता है। इसका सूत्र निम्न प्रकार से है:-

DIQ= 16 Z+ 100

जहाँ $Z = \frac{\text{X-माध्य}}{\text{प्रमाप विचलन}}$

X= व्यक्ति का किसी बुद्धि परीक्षण पर उसका प्राप्तांक

Wechsler Adult Intelligence Scale (WAIS) में DIQ का उपयोग किया जाता है। अगर किसी व्यक्ति का इस बुद्धि परीक्षण पर प्राप्तांक एक प्रमाप विचलन इकाई माध्य से ऊपर है, तो उसका DIQ= 16 x 1+100=116 होगा जिससे पता चलता है कि उसका DIQ अपनी आयु समूह के व्यक्तियों के औसत से ऊपर है। उसी तरह से यदि किसी व्यक्ति का प्राप्तांक यदि माध्य से एक प्रमाप विचलन कम है तो उसका DIQ प्राप्तांक 84 होगा जिसका अर्थ है कि उसका DIQ अपने आयु समूह के व्यक्तियों के औसत से नीचे है। इस तरह DIQ में प्रत्येक उम्र स्तर पर प्रमाप विचलन (Standard deviation) का एक स्थिर मान होता है, जिसके परिणामस्वरूप IQ में होने वाला असामान्य परिवर्तनशीलता को नियंत्रित करता है।

वेश्लर के अनुसार IQ के साथ एक कठिनाई यह है कि 15-16 साल की आयु के बाद मानसिक आयु (MA) तेजी व क्रमिक रूप से नहीं बढ़ती है। दूसरी कठिनाई यह है कि व्यस्कों के लिए मानसिक आयु का संप्रत्यय अर्थहीन है। अत: IQ के बदले DIQ का संप्रत्यय बुद्धि का मूल्यांकन करने में ज्यादा सक्षम है। दूसरे शब्दों में किसी व्यक्ति का बुद्धिलब्धि प्राप्तांक से यह पता चलता है कि औसत जिसे IQ कहा गया है, से किसी बुद्धि परीक्षण पर व्यक्ति का निष्पादन कितना विचलित है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

14. DIQ= 16 (.......) + 100
15. DIQ एक .... है जिसका विकास आर्थर ओटिस (Arthur Otis) के शोधों से हुआ है।
16. DIQ का माध्य .... तथा प्रमाप विचलन .... होता है।
17. ....ने WAIS को संशोधित कर IQ के बदले विचलन बुद्धि लब्धि (Deviation Intelligence Quotient, DIQ) का संप्रत्यय दिया।

14.11 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिताएँ

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षा में बुद्धि परीक्षण की अनेक उपयोगिताओं का वर्णन किया है जिनमें मुख्य हैं:-

1. कक्षोन्नति के निर्णय में।
2. शिक्षकों के चयन में।
3. विभिन्न प्रकार के निर्देशन देने में (व्यक्तिगत, व्यावसायिक व शैक्षिक निर्देशन में)।
4. छात्रों के श्रेणीकरण में।
5. शैक्षिक दुर्बलता के निदान में।
6. विद्यार्थियों के समायोजन में।
7. मानसिक बीमारियों के इलाज में।
8. कक्षा में प्रवेश लेने में।
9. अनुशासन की समस्या के समाधान में।
10. पाठ्यक्रमों तथा व्यवसाय चयन में।

14.12 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार

बुद्धि परीक्षण कई प्रकार के होते हैं। इनके वर्गीकरण के निम्नलिखित आधार हो सकते हैं:-

1. परीक्षणों को प्रशासित करने की प्रक्रिया के आधार पर-

अ. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण।
ब. सामूहिक बुद्धि परीक्षण।

2. परीक्षण के एकांश के स्वरूप के आधार पर-

अ. शाब्दिक या वाचिक बुद्धि परीक्षण।
ब. अशाब्दिक या अवाचिक बुद्धि परीक्षण।
स. निष्पादन बुद्धि परीक्षण।

3. परीक्षण के एकांश में संस्कृति के प्रतिविम्बन के आधार पर-

अ. संस्कृति मुक्त बुद्धि परीक्षण।
ब. संस्कृति स्वच्छ बुद्धि परीक्षण।
स. संस्कृति अभिनत बुद्धि परीक्षण।

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण तथा सामूहिक बुद्धि परीक्षण:- वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण वह परीक्षण होता है जिसके द्वारा एक समय में एक ही व्यक्ति का बुद्धि परीक्षण किया जा सकता है। समूह बुद्धि परीक्षण को एक साथ बहुत से व्यक्तियों पर प्रशासित किया जाता है। वैयक्तिक परीक्षण में आवश्यक होता है कि परीक्षणकर्ता परीक्षार्थी से सौहार्द स्थापित करे और परीक्षण सत्र के समय उसकी भावनाओं और

अभिव्यक्तियों के प्रति संवेदनशील रहे। समूह परीक्षण में परीक्षणकर्ता को परीक्षार्थियों की निजी भावनाओं से परिचित होने का अवसर नहीं मिलता। वैयक्तिक परीक्षणों में परीक्षार्थी पूछे गये प्रश्नों का मौखिक अथवा लिखित रूप में भी उत्तर दे सकता है अथवा परीक्षणकर्ता के आदेशानुसार वस्तुओं का प्रहस्तन भी कर सकता है। समूह परीक्षण में परीक्षार्थी सामान्यत: लिखित उत्तर देता है और प्रश्न भी प्राय: बहुविकल्पी स्वरूप के होते हैं।

शाब्दिक, अशाब्दिक तथा निष्पादन परीक्षण:- एक बुद्धि परीक्षण पूर्णत: शाब्दिक, पूर्णत: अशाब्दिक या अवाचिक अथवा पूर्णत: निष्पादन परीक्षण हो सकता है। इसके अतिरिक्त कोई बुद्धि परीक्षण इन तीनों प्रकार के परीक्षणों के एकांशों का मिश्रित रूप भी हो सकता है। शाब्दिक परीक्षणों में परीक्षार्थी को मौखिक अथवा लिखित रूप में शाब्दिक अनुक्रियायें करनी होती है। इसलिए शाब्दिक परीक्षण केवल साक्षर व्यक्तियों को ही दिया जा सकता है। अशाब्दिक परीक्षणों में एकांशों के रूप में चित्रों अथवा चित्र निरूपणों का उपयोग किया जाता है।

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण शाब्दिक (Verbal) तथा अशाब्दिक (Non-Verbal) दोंनो हो सकता है। बिने-साइमन परीक्षण (Binet Simon Test), स्टैन्फोर्ड-बिने मापनी (Stanford- Binet Scale), वेश्लर-वेलेव्यू स्केल (Wechsler- Bellevue Scale) आदि वैयक्तिक शाब्दिक परीक्षण के उदाहरण हैं। पास एलांग टैस्ट (Pass Along Test), ब्लॉक डिजाइन टैस्ट (Block Design Test), क्यूब कंस्ट्रक्शन टैस्ट (Cube Construction Test) आदि अशाब्दिक परीक्षण के उदाहरण है।

सामूहिक परीक्षण भी शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोंनों हो सकते हैं। मोहसिन सामान्य बुद्धि परीक्षण (Mohsin General Intelligence Test), आर्मी अल्फा टैस्ट (Army Alpha Test), आदि सामूहिक शाब्दिक परीक्षण के उदाहरण हैं। इसी प्रकार आर्मी बीटा टैस्ट (Army Beta Test), रैवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज (RPM) आदि सामूहिक अशाब्दिक परीक्षण के उदाहरण हैं।

संस्कृति निष्पक्ष तथा संस्कृति- अभिनत परीक्षण (Culture Fair and Culture Loaded Test):- बुद्धि परीक्षण संस्कृति निष्पक्ष अथवा संस्कृत-अभिनत हो सकते हैं। बहुत से बुद्धि परीक्षण उस संस्कृति के प्रति अभिनति प्रदर्शित करते हैं, जिसमें वे बुद्धि परीक्षण विकसित किए जाते हैं। अमेरिका तथा यूरोप में विकसित किए गए बुद्धि परीक्षण नगरीय तथा मध्यवर्गीय सांस्कृतिक लोकाचार का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए इन परीक्षणों पर उस देश के शिक्षित मध्यवर्गीय श्वेत व्यक्ति सामान्यत: अच्छा निष्पादन कर लेते हैं। इन परीक्षणों के एकांश (प्रश्न) एशिया या अफ्रीका के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का ध्यान नहीं रखते। इन परीक्षणों के मानकों का निर्माण भी पश्चिमी संस्कृति के व्यक्तियों के समूहों से किया गया है।

किसी ऐसे परीक्षण का निर्माण करना लगभग असम्भव कार्य है जो सभी संस्कृतियों के लोगों पर एकसमान सार्थक रूप से अनुप्रयुक्त किया जा सके। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे परीक्षणों का निर्माण करने का प्रयास किया है जो संस्कृति निष्पक्ष हो या सभी संस्कृति के लिये संस्कृति-उपयुक्त हों अर्थात जो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के व्यक्तियों में भेदभाव न करें। ऐसे परीक्षणों में एकांशों की रचना इस प्रकार की जाती है कि वे सभी संस्कृतियों में सर्वनिष्ठ रूप से होने वाले अनुभवों का मूल्यांकन करे या उस परीक्षण में ऐेसे प्रश्न रखे जायें जिनमें भाषा का उपयोग न हो। शाब्दिक परीक्षणों में पाई जाने वाली सांस्कृतिक अभिनति अशाब्दिक तथा निष्पादन परीक्षण में कम हो जाती है।

इस तरह स्पष्ट है कि बुद्धि परीक्षण के कई प्रकार हैं, जिनमें तीन प्रमुख हैं- शाब्दिक बुद्धि परीक्षण, अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण, क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण तथा संस्कृति स्वच्छ/निष्पक्ष परीक्षण। इन चारों परीक्षणों की मौलिक विशेषताओं को निम्न तालिका के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है-

14.13बुद्धि परीक्षणों की समानतायें एवं विषमतायें

बुद्धि परीक्षण के प्रकार	निर्देश में भाषा का प्रयोग (Use of Language in its instruction)	एकांश में भाषा का प्रयोग (Use of Language in items)	वस्तुओं का वास्तविक जोड़-तोड़ (Actual manipulation of objects)	उदाहरण (Example)
शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence Test)	✓	✓	X	स्टैनफोर्ड-बिने परीक्षण, आर्मी अल्फा टैस्ट, डा0 जलोटा बुद्धि परीक्षण वैश्लर-वैलेव्यू बुद्धि परीक्षण, बर्ट तर्क परीक्षा, टरमन

				मानसिक योग्यता समूह परीक्षण
अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non-Verbal Intelligence Test)	✓	X	X	रैवेन प्रोगेसिव मैट्रिसेज
अभाषाई बुद्धि परीक्षण/संस्कृति स्वच्छ परीक्षण (Non language Intelligence Test/Culture Fair Test)	X	X	X	गुडएनफ ड्रा-ए-मैन परीक्षण कैटेल संस्कृति मुक्त परीक्षण
क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Test)	✓	X	✓	भाटिया क्रियात्मक परीक्षण, माला, आकार फलक परीक्षण मैरिल पामर ब्लॉक बिल्डिंग परीक्षण, पैटर्न ड्राइंग टैस्ट

बुद्धि को विभिन्न तरीके से मापने के लिए विश्वस्तर पर व भारत में बहुत प्रकार के बुद्धि परीक्षणों का विकास किया है। यहाॅ पर वैश्विक स्तर पर विकसित बुद्धि परीक्षणों व भारत में विकसित बुद्धि परीक्षणों के उदाहरण दिये गये हैं ताकि आप मुख्य बुद्धि परीक्षणों से अवगत हो सकें।

वैश्विक स्तर पर बुद्धि परीक्षण के उदाहरण:-

- बिने साइमन मापनी (1905)
- बिने साइमन संशोधित मापनी (1908)
- पुन: संशोधन बिने-साइमन मापनी (1911)

- स्टेनफोर्ड बिने संशोधित परीक्षण (1916)
- स्टेनफोर्ड पुन: संशोधन (1937)
- स्टेनफोर्ड पुन: संशोधन (1960)
- मैरिल पामर मापनी
- मिनिसोटा पूर्व-विद्यालय मापनी
- वॉन चित्र शब्दावली
- गुडएनफ ड्राइंग-ए-मैन परीक्षण
- रेवेन प्रोगेसिव मैट्रिसेज
- वैश्लर वयस्क बुद्धि मापनी
- अलेक्जेंडर पुरस्सरण क्रियात्मक परीक्षण
- आर0बी0 कैटिल संस्कृति युक्त बुद्धि परीक्षण मापनी
- बर्ट तर्क शक्ति परीक्षण
- गैसिल विकास अनुसूची
- कुहलमन-एण्डरसन बुद्धि परीक्षण
- टरमन मानसिक योग्यता समूह परीक्षण
- टरमन मैक्नेमर मानसिक योग्यता परीक्षण
- मिलर अनुपात-पूर्ति परीक्षण
- पिन्टनर-पैटर्सन निष्पादन परीक्षण
- आर्थर निष्पादन मापदण्ड

14.14भारत में विकसित कुछ मुख्य बुद्धि परीक्षण:-

- पं0 लज्जाशंकर झा(1933) - रिचार्डसन सिम्पलेक्स मेन्टल परीक्षण का हिन्दी अनुकूलन
- आर0आर0 कुमारिया सामूहिक बुद्धि परीक्षण (1937)
- एल0के0 शाह सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण
- सी0टी0 फिलिप्स (1930) सामूहिक शाब्दिक मानसिक योग्यता परीक्षण
- डा0 सोहनलाल (1942) इलाहाबाद बुद्धि परीक्षण

- सिलवा (1942) बर्ट शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- डा0 टी0सी0 बिकरी (1942) अशाब्दिक समूह परीक्षण (हिन्दी-उर्दू)
- वी0जी0 झिंगरन (1950) सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद (1954) सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- सी0एम0 भाटिया (1955) उपलब्धि परीक्षण श्रंखला
- मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद (1956) बिने साइमन L प्रारूप अनुकूलन
- एस0एम0 मोहसिन (1943) बिहार सामान्य बुद्धि परीक्षण
- केन्द्रीय शिक्षा संस्थान (CIE) (1950-60) सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- मेन्जिल (1938) अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- विकरी एवं ड्रेपर (1942) अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- जी0एच0 नाफडे (1942) अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- रामनाथ कुन्टु (1959) अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- एम0जी0 प्रेमलता (1959) सामूहिक शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- मनोविज्ञानशाला (1956) टेवन प्रोगेसिव मैट्रिक्स अनुकूलन तथा पिजन के अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- प्रमिला पाठक (1959) ड्राइंग-ए-मैन टैस्ट
- डा0 एम0सी0 जोशी (1960) सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण
- प्रयाग मेहता (1961) सामूहिक बुद्धि परीक्षण
- डा0 आर0के0 टण्डन (1961) सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण
- डा0 राय चौधरी (1961) वयस्क बुद्धि परीक्षण
- डा0 एस0 जलोटा (1963) साधारण मानसिक योग्यता परीक्षण
- मजूमदार (1964) वेश्लर वयस्क मापनी अनुकूलन
- ए0एन0 मिश्रा (1966) मानव आकृति ड्राइंग टैस्ट
- जी0सी0 आहूजा (1966) सामूहिक बुद्धि परीक्षण
- चटर्जी एवं मुखर्जी (1967) अभाषीय बुद्धि परीक्षण
- डी0एम0 बहोसर (1967) सामूहिक अशाब्दिक परीक्षण
- डा0 जी0पी0 शैरी (1970) वयस्क बुद्धि परीक्षण

- प्रमिला आहूजा (1970) सामूहिक बुद्धि परीक्षण
- डा0 आर0के0 टण्डन- बच्चों के लिए सामूहिक मानसिक योग्यता परीक्षण
- डा0 पी0एन0 महरोत्रा (1971) मिश्रित सामूहिक बुद्धि परीक्षण
- ओझा एवं चौधरी (1971) शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
- एस0पी0 कुलश्रेष्ठ (1971) बिने साइमन परीक्षण- भारतीय अनुकूलन
- उदय शंकर- CIE शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

18. मोहसिन सामान्य बुद्धि परीक्षण (Mohsin General Intelligence Test) और आर्मी अल्फा टैस्ट (Army Alpha Test) ....परीक्षण के उदाहरण हैं।

19.आर्मी बीटा टैस्ट (Army Beta Test) और रैवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज (RPM) .... सामूहिक .... के उदाहरण हैं।

14.15 बुद्धि परीक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन

जितने भी प्रकार के बुद्धि परीक्षणों का आपने अध्ययन किया है सभी की अपनी -अपनी विशेषताऐं हैं। कोई भी परीक्षण अपने आप में पूर्ण नहीं है। अध्ययन के उद्देश्य के अनुसार बुद्धि परीक्षण का चुनाव किया जाता है। यहॉ पर हम लोग व्यक्तिगत व सामूहिक बुद्धि परीक्षण तथा शाब्दिक व अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन करेंगें।

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण व सामूहिक बुद्धि परीक्षण का तुलनात्मक अध्ययन:-

क्रम संख्या	व्यक्तिगत परीक्षण	सामूहिक परीक्षण
1.	वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण के द्वारा एक समय में एक ही व्यक्ति का बुद्धि परीक्षण किया जा सकता है, जैसे स्टैनफोर्ड-बिने परीक्षण	सामूहिक बुद्धि परीक्षण को एक साथ बहुत से व्यक्तियों को समूह में दिया जा सकता है। जैसे- आर्मी अल्फा परीक्षण
2.	इस परीक्षण को प्रशासित करने के लिए अनुभवी व्यक्ति	यह परीक्षा सामान्य योग्यता का

	चाहिए	व्यक्ति भी ले सकता है।
3.	समय, धन व मेहनत की दृष्टिकोण से यह परीक्षण मितव्ययी नहीं है।	यह अपेक्षाकृत मितव्ययी है।
4.	इस परीक्षण के माध्यम से परीक्षार्थी के असफलता के कारणों का पता लगाया जा सकता है।	अपेक्षाकृत जटिल व दुरूह कार्य है।
5.	इस परीक्षा में परीक्षार्थी व परीक्षक का निकट संबंध होता है।	इसमें निकट संबंध की सम्भावना नहीं के बराबर होती है।
6.	प्रश्नों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है।	प्रश्नों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है।
7.	परीक्षणों का निर्माण कठिन कार्य है।	परीक्षणों का निर्माण अपेक्षाकृत आसान है।
8.	इस परीक्षा के माध्यम से परीक्षार्थी की भाषा और व्यवहार का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।	इस परीक्षा में इन बातों का आंशिक ज्ञान हो पाता है।
9.	इन परीक्षणों की विश्वसनीयता व वैधता अधिक होती है।	विश्वसनीयता व वैधता अपेक्षाकृत कम होती है।

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण व अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण की तुलना:-

क्रम संख्या	शाब्दिक परीक्षण (Verbal Test)	अशाब्दिक परीक्षण (Non Verbal Test)
1.	इस तरह के बुद्धि परीक्षणों में एकांशों को भाषा के माध्यम से प्रकट किया जाता है।	एकांशों को संकेत, चित्र या वस्तुओं के माध्यम से प्रकट किया जाता है।
2.	यह संस्कृति अभिनति परीक्षण होता है।	यह अपेक्षाकृत संस्कृति स्वच्छ परीक्षण होता है।
3.	शाब्दिक परीक्षणों में परीक्षार्थी को मौखिक अथवा लिखित रूप में शाब्दिक अनुक्रियाएँ करनी होती हैं।	एकांशों का उत्तर देने के लिए लिखित भाषा के उपयोग की आवश्यकता नहीं होती।
4.	यह परीक्षण भिन्न संस्कृतियों के व्यक्तियों को नहीं दिया जा सकता है, बल्कि केवल उन्हीं व्यक्तियों को दिया जा सकता है, जिस सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में वह परीक्षण निर्मित हुआ है।	यह भिन्न संस्कृतियों के व्यक्तियों को आसानी से दिया जा सकता है।

5.	यह परीक्षण केवल साक्षरों के लिए उपयुक्त है।	यह परीक्षण असाक्षर व साक्षर दोनों के बुद्धि परीक्षण के लिए उपयुक्त है।
6.	इन परीक्षाओं के माध्यम से परीक्षार्थी की वाचन शक्ति, वर्गीकरण क्षमता, सादृश्य सम्बन्ध स्थापन शक्ति (Analogy) आदि योग्यताओं का मापन किया जाता है।	इन परीक्षाओं के माध्यम से चित्र-रचना, आकृति चित्रण निर्दिष्ट आकार के गुटके बनाने इत्यादि योग्यताओं का परीक्षण किया जाता है।

14.16बुद्धि परीक्षण की सीमाएँ

बुद्धि परीक्षण कई उपयोगी उद्देश्य को पूर्ण करता है जैसे- चयन, परामर्श, निर्देशन, आत्मविश्लेषण और निदान में। जब तक ये परीक्षण किसी प्रशिक्षित परीक्षणकर्ता द्वारा नहीं उपयोग किए जाते, जानबूझकर या अनजाने में इनका दुरूपयोग हो सकता है। अप्रशिक्षित परीक्षणकर्ताओं द्वारा किए गए बुद्धि परीक्षणों के कुछ दुष्परिणाम निम्नलिखित हैं:-

- किसी परीक्षण पर किसी व्यक्ति का खराब प्रदर्शन, उसके निष्पादन व आत्मसम्मान पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।
- परीक्षण द्वारा माता-पिता, अध्यापकों तथा बड़ों के भेद-भावपूर्ण आचरण को बढ़ावा मिलने का भय बना रहता है।
- मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय जनसंख्याओं के पक्ष में अभिनत बुद्धि परीक्षण समाज के सुविधावंचित समूहों से आने वाले बच्चों की IQ को कम आंकने की सम्भावना बनी रहती है।
- बुद्धि परीक्षण सृजनात्मक संभाव्यताओं और बुद्धि के व्यावहारिक पक्ष का माप नहीं कर पाता है और उनका जीवन में सफलता से ज्यादा संबंध नहीं होता। बुद्धि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों का एक संभाव्य कारक हो सकती है।

14.17सारांश

बुद्धि एक समग्र क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रिया करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है अर्थात् बुद्धि को कई तरह की क्षमताओं का योग माना जाता है।

बुद्धि उन क्रियाओं को समझने की क्षमता है जो जटिल, कठिन, अमूर्त, मितव्यय, किसी लक्ष्य के प्रति अनुकूलनशील, सामाजिक व मौलिक हो तथा कुछ परिस्थिति में वैसी क्रियाओं को करना जो शक्ति की एकाग्रता तथा सांवेगिक कारकों का प्रतिरोध दिखाता हो।

बुद्धि को संज्ञानात्मक व्यवहारों का संपूर्ण समूह माना गया है जो व्यक्ति में सूझ द्वारा समस्या समाधान करने की क्षमता, नई परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की क्षमता, अमूर्त रूप से सोचने की क्षमता तथा अनुभवों से लाभ उठाने की क्षमता को परिलक्षित करता है।

बुद्धि को समझने के लिए बहुत से मनोवैज्ञानिकों ने इसे अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है व सिद्धान्तों के रूप में इसे आबद्ध किया है। ये सिद्धान्त बुद्धि की मापन की प्रकृति को समझने के लिए आवश्यक है।

बुद्धि विभिन्न क्षमताओं के समग्रता को परिलक्षित करता है। ई0एल0 थार्नडाईक, डोनेल्ड हेब और वर्नन जैसे मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को विभिन्न प्रकारों में विभक्त किया है।

बुद्धि परीक्षण के कई प्रकार हैं, जिनमें तीन प्रमुख हैं- शाब्दिक बुद्धि परीक्षण, अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण, क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण तथा संस्कृति स्वच्छ/निष्पक्ष परीक्षण।

14.18 शब्दावली

1. संज्ञानात्मक मूल्यांकन प्रणाली (Cognitive Assessment System) परीक्षणों की एक माला जिसका निर्माण चार आधारभूत प्रतिक्रियाओं-योजना-अवधान-सहकालिक-आनुक्रमिक का मापन करने के लिए किया गया है।
2. घटकीय बुद्धि (Components Intelligence)- स्टर्नवर्ग के त्रि-घटकीय सिद्धान्त में यह आलोचनात्मक और विश्लेषणात्मक दृष्टि से सोचने की योग्यता का द्योतक है।
3. सांदर्भिक बुद्धि (Contextual Intelligence):- स्टर्नवर्ग के त्रि-घटकीय सिद्धान्त में यह व्यावहारिक बुद्धि है, जिसका उपयोग दैनिक समस्याओं के समाधान में किया जाता है।
4. सांस्कृतिक निरपेक्ष परीक्षण (Culture fair test):- ऐसा परीक्षण जो परीक्षार्थियों में सांस्कृतिक अनुभवों के आधार पर विभेदन नहीं करता है।
5. सा-कारक (G-factor):- बुद्धि की सभी अभिव्यक्तियों में निहित मूल बौद्धिक क्षमता का संकेत देने वाला सामान्य बुद्धि कारक।
6. आनुभाविक बुद्धि (Experiential Intelligence):- स्टर्नवर्ग के त्रिघटकीय सिद्धान्त में पूर्णत: नयी समस्याओं का समाधान करने के लिए सर्जनात्मक ढंग से विगत अनुभव के उपयोग की योग्यता।

1. तरल बुद्धि (Fluid Intelligence):- जटिल संबंधों का प्रत्यक्षण करने, अमूर्त रूप से तर्क करने तथा समस्याओं का समाधान करने की योग्यता।
2. समूह परीक्षण (Group Test):- वैयक्तिक परीक्षण के विपरीत एक ही समय पर एक से अधिक व्यक्तियों व्यक्तियों को देने के लिए अभिकल्पित परीक्षण।
3. वैयक्तिक परीक्षण (Individual Test):- ऐसा परीक्षण जो विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा एक समय में किसी एक अकेले व्यक्ति को ही दिया जा सकता है। बिने और वेश्लर बुद्धि परीक्षण, वैयक्तिक परीक्षणों के उदाहरण हैं।
4. बौद्धिक प्रतिभाशीलता (Intellectual Giftedness):- विविध प्रकार के कृत्यों में श्रेष्ठ निष्पादन के रूप में प्रदर्शित असाधारण सामान्य बौद्धिक क्षमता।
5. बुद्धि (Intelligence):- चुनौतियों का सामना करते समय, संसाधनों का प्रभावपूर्ण ढंग से उपयोग करने, सविवेक चिंतन करने और जगत को समझने की क्षमता।
6. बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient, IQ) :- कालानुक्रमिक आयु से मानसिक आयु का अनुपात इंगित करने वाला मानकीकृत बुद्धि परीक्षणों से प्राप्त एक सूचकांक।
7. बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test):- किसी व्यक्ति का स्तर मापने के लिए अभिकल्पित परीक्षण।
8. मानसिक आयु (Mental Age) :- आयु के रूप में अभिव्यक्त बौद्धिक कार्यशीलता का मापक।
9. प्रसामान्य संभाव्यता वक्र (Normal Probability Curve):- सममितीय घंटाकार, आवृति वितरण अधिकांश प्राप्तांक मध्य में पाये जाते है और दोनों छोर की ओर समानुपातिक ढंग से कम होते जाते है। बहुत से मनोवैज्ञानिक चर इसी रूप में वितरित होते है।
10. निष्पादन परीक्षण(Performance Test) :- ऐसा परीक्षण जिसमें भाषा की भूमिका न्यूनतम होती है क्योंकि उस कार्य में वाचिक अनुक्रियाओं की अपेक्षा प्रकट गत्यात्मक या पेशीय अनुक्रियाओं की आवश्यकता पड़ती हे।
11. शाब्दिक परीक्षण (Verbal Test) :- ऐसा परीक्षण जिसमें अपेक्षित अनुक्रियाऐं करने के लिए परीक्षार्थी की शब्दों एवं संप्रत्ययों को समझने और उनका उपयोग करने की योग्यता महत्वपूर्ण होती है।

14.19स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1.चार्ल्सस्पीयरमैन 2. तरल बुद्धि (Fluid Intelligence) व ठोस बुद्धि (Crystallized Intelligence) 3. राबर्ट स्टर्नबर्ग 4. योजना (Planning) 5.

आध्यात्मिक बुद्धि (Spiritual Intelligence) 6. संवेगात्मक बुद्धि (Emotional Intelligence) 7. अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence) 8.बुद्धि 'बी' (Intelligence 'B') 9. बुद्धि 'सी' (Intelligence 'C') 10. गलत 11. गलत 12. सही 13. गलत 14. Z 15. मानक प्राप्तांक (Standard Score) 16. 100 और 16 17. वेश्लर 18. समूहिक शाब्दिक परीक्षण 19. अशाब्दिक परीक्षण

14.20 सन्दर्भ ग्रंथ/पठनीय पुस्तकें:-

- एन0सी0ई0आर0टी0 (2007)- मनोविज्ञान (कक्षा-12) के लिए पाठ्य पुस्तकें।
- सिंह, ए0के0 (2008)- शिक्षा मनोविज्ञान, भारतीभवन, पटना।
- भटनागर, ए0बी0 (2009)- अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, आर0लाल0, प्रकाशक, मेरठ।
- बैरन आर0ए0 (2001)- साइकोलॉजी (पांचवा संस्करण), एलिन एंड बेकन।
- लाहे, बी0बी0 (1998)- साइकोलॉजी-एन इंट्रोडक्शन, टाटा मैक्ग्रा डिल।

14.21 निबन्धात्मक प्रश्न

1. "बुद्धि विभिन्न क्षमताओं के समग्रता को परिलक्षित करता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
2. बुद्धि परीक्षण के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. सांस्कृतिक निरपेक्ष परीक्षण व सांस्कृतिक सापेक्ष परीक्षण के मध्य तुलना कीजिए।
4. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण व अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण की तुलना कीजिए।
5. बुद्धि लब्धि (Intelligence Quotient, IQ) की सीमाओं का वर्णन करते हुए विचलन बुद्धि लब्धि (Deviation Intelligence Quotient, IQ) का मूल्यांकन कीजिए।
6. बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता व उनकी सीमाओं का वर्णन कीजिए।
7. बुद्धि लब्धि प्राप्तांक के वितरण का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

इकाई 15- व्यक्तित्व का अर्थ, विकास तथा व्यक्तित्व के सिद्धान्त

Personality: Concept and development, Theories of Personality

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 व्यक्तित्व का अर्थ
15.4 व्यक्तित्व की परिभाषाएं
15.5 व्यक्तित्व का सम्प्रत्यय]
15.6 व्यक्तित्व के प्रकारानुसार वर्गीकरण
15.7 व्यक्तित्व का शीलगुण सिद्धान्त
  15.7.1 ऑलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त
  15.7.2 कैटल का शीलगुण सिद्धान्त
  15.7.3 आइजेनक का वर्गीकरण
  15.7.4 नीओ. पी.आई.आर.
15.8 शीलगुण उपागम की समालोचना
15.9 सारांश
15.10 शब्दावली
15.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
15.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.13 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

मनोवैज्ञानिक सम्प्रत्यों से सबसे अधिक जटिल तथा व्यापक सम्प्रत्यय व्यक्तित्व का सम्प्रत्यय हैं। शिक्षा का चरम लक्ष्य (goal) बालक के व्यक्तित्व का विकास करना है। व्यक्तित्व कोई इस प्रकार

की वस्तु नहीं है, जिसके गुणधर्मों की व्याख्या रसायनशास्त्र में की जाने वाली किसी तत्व की की तरह ही की जा सके। यह एक इस तरह का सम्प्रत्यय है, जिसकी व्याख्या भिन्न तरह से की जाती है। अलग-अलग दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों तथा ऋषियों ने व्यक्तित्व के सम्प्रत्यय को अपने दृष्टिकोण से देखा है। यहां पर हम व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों का अध्ययन अपने उद्देश्यों के अनुसार व्यक्तित्व का अर्थ, परिभाषा, प्रकृति, व्यक्तित्व के प्रकार तथा सिद्धान्तों का अध्ययन कर रहे हैं।

15.2उद्देश्य:

इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. व्यक्तित्व का अर्थ समझ सकेंगे।
2. व्यक्तित्व की परिभाषाओं को जान सकेंगे।
3. व्यक्तित्व की परिभाषाओं का विश्लेषण कर व्यक्तित्व के सम्प्रत्यय से परिचित हो सकेंगे।
4. भारतीय मनोविज्ञान का अध्ययन करने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे।
5. भारतीय मनीषियों के द्वारा व्यक्त विचारों की श्लाघा कर सकेंगे।

15.3 व्यक्तित्व का अर्थ Meaning of Personality

व्यक्तित्व अंग्रेजी शब्द पर्सनेलिटी का अनुवाद है। पर्सनेलिटी शब्द लेटिन के शब्द परसोना (Persona) से बना है, जिसका अर्थ होता है, मुखोटा। ग्रीक अभिनेता अभिनय करते समय चरित्र के अनुसार मुखोटा पहना करते थें। इसी के आधार पर व्यक्तित्व का अर्थ बाह्य रंग-रुप, आकार-प्रकार से लिया जाता है। परन्तु व्यक्तित्व के इस अर्थ को सन्तोषप्रद नहीं माना जा सकता, क्योंकि मनुष्य की आकृति से उसके व्यक्तिव का बोध नहीं हो सकता। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनका बाह्य रंग-रूप प्रभावी नहीं था। परन्तु आन्तरिक गुणों में विश्वविख्यात हुए। उदाहरण के लिये सुकरात, अब्राहम लिंकन, अष्टावक्र गांधीजी, लालबहादुर शास्त्री आदि अनेक हस्तियां चारित्रिक दृष्टि से अनुकरणीय हुई हैं। अतः बाह्य अकृति, रंग-रुप का व्यक्तित्व से वह सम्बन्ध नहीं हैं, जिसे आम आदमी समझा करता है। रूप और कुरुपता देखने की नहीं बल्कि समझने की बात है।

आगे की पंक्तियों में हम व्यक्तित्व के भारतीय दृष्टिकोण से परिचय प्राप्त कर रहे हैं।

सत, रज, तम

भारतीय साहित्य ने व्यक्तियों की तीन श्रेणियां सत, रज तथा तमोगुण बताई है। महाभारत के अवश्वमेध पर्व में तमोगुणी व्यक्ति के लक्षणों का वर्णन किया गया है। तमोगुणी व्यक्ति में मोह,

अज्ञान, त्याग का अभाव, कर्मों का निर्णय न कर सकना, निद्रा, गर्व, भय, लोभ, शोक, दोषदर्शन, स्मरण शक्ति का अभाव, परिणाम की न सोचना, नास्तिकता, दुश्चरित्रता, निर्विशेषता (अच्छे बुरे के विवेक का अभाव) हिंसा आदि में प्रवृतता, अकार्य को कार्य समझना, अज्ञान को ज्ञान मानना, शत्रुता, काम में मन न लगना, अश्रद्धा मूर्खतापूर्ण विचार, कुटिलता, नासमझी, पाप करना, अज्ञान, आलस्य के कारण शरीर का भारी होना, अजितेन्द्रियता और नीच कार्यों में अनुराग, ये सभी दुर्गण तमोगुणी व्यक्ति में होते हैं। इसके अतिरिक्त और जो भी बातें निषिद्ध बताई गई हैं, वे सभी तमोगुण प्रवृत्तियां हैं। तम (अविधा), मोह (अस्मिता), महामोह (राग), क्रोध (सामिस्त्र) तथा अंधतामिस्र ये पांच प्रकार की तामसिक प्रवृत्तियां हैं।

रजोगुणी व्यक्ति में संताप, मन का प्रसन्न न रहना, बल, शूरता, मद, रोष, व्यायाम, कलह, ईर्ष्या चुगली करना, छेछन भेदन और विदारण का प्रयत्न, उग्रता, दूसरों में छिद्र निकालना (दोषदर्शन), निष्ठुरता, निन्दा, स्तुति, स्वार्थ के लिये सेवा, तृष्णा, प्रमा (अपव्यय), परिग्रह ये सभी रजोगुण के कार्य हैं। द्रोह, माया, शठता, मान, चोरी, हिंसा, घृणा, दम्भ, दर्प, राग, विषय प्रेम, प्रमोद, धूतक्रीड़ा, वाद-विवाद, स्त्रियों से सम्बन्ध बढ़ाना, नाचगान में आसक्ता ये राजस गुण हैं। मनमाना बर्ताव करना, भोगों की समृद्धि को आनन्द मानना, वर्तमान, भूत और भविष्य पदार्थों की चिन्ता, धर्म, अर्थ तथा काम त्रिवर्ण में लगे रहने वाले व्यक्ति रजोगुणी होते हैं। जिस भाव या क्रिया में लोभ स्वार्थ तथा आसक्ति का सम्बन्ध हो तथा जिसका फल क्षणिक सुख की प्राप्ति और अन्तिम परिणाम दुःख हो उसे राजस समझना चाहिए।

सतोगुणी व्यक्ति आनन्द, प्रसन्नता, उन्नति, प्रकाश, सुख कृपणता का अभाव, निर्भयता, सन्तोष श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, क्रोध का अभाव, किसी में दोषदर्शन न करना, पवित्रता, चतुरता, पराक्रम ये सत गुण के कार्य हैं। जिस भाव या क्रिया का सम्बन्ध स्वार्थ से न हो, आसक्ति एवं ममता न हो तथा जिसका फल भगवत्प्राप्ति हो उसे सात्विक जानना चाहिये।

सत, रज तथा तमो गुण-युक्त व्यक्ति पृथक-पृथक नहीं होते। इनका मिश्रण होता है, जिसमें जो गुण अधिक होता हैं, वह उस गुण से प्रधान माना जाता है। अतः सत, रज, तम इन गुणों की न्यूनता तथा अधिकता व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करती है।

गुणातीत- गुणातीत व्यक्ति वह होता है, जिसमें सत, रज तथा तम आदि गुणावगुणों से परे होता है। श्रीमद्गीता में गुणातीत व्यक्ति के लक्षणों का वर्णन किया गया है।

समदुःख सुखः स्वस्थः समलोश्टाष्मकाज्वनः।
तुल्य प्रयाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्म संस्तुति ।। 4/24
मानाप्मानयोस्तुल्यस्तुल्यों मित्रारितप क्षयो:।
सवोरम्भ परित्यागी गुणातीतः स उच्चने।। 14/25

अर्थात् जो निरन्तर आत्मभाव में स्थित, दुःख-सुख को समान समझने वाला, मिट्टी, पत्थर तथा स्वर्ण में समान भाव वाला, ज्ञानी, प्रिय तथा अप्रिय को एक-सा मानने वाला और निन्दा स्तुति में भी समान भाव रखने वाला होता है। (14/24) जो मान और अपमान में सम है, मित्र और बैरी के पक्ष में भी सम है। एवं सम्पूर्ण आरम्भ में कर्तापन के अभिमान से रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है। (14/25) कहने का अभिप्राय यह है जिस व्यक्ति में राग, द्वेष, हर्ष, शोक, अविद्या और अभिमान थोड़ा भी शेष हो वह गुणातीत नहीं हो सकता। सतत् अभ्यास से व्यक्ति सत, रज और तम आदि से विमुक्त होकर गुणातीत के पद को प्राप्त कर सकता है। अतः मानव का चरम लक्ष्य गुणातीत होना है।

भारतीय साहित्य में व्यक्ति के बाह्य रूपाकृति के वर्णन तो मिलते हैं परन्तु उसे व्यक्तिव के साथ युक्तिकृत नहीं किया गया है अर्थात् बह्याकृति को व्यक्त्वि के सम्बन्ध में लेशमात्र भी महत्व नहीं दिया गया है, जिसका उदाहरण ऋषि अष्टावक्र ने जनक की राज्य सभा में हुए प्रथम वार्तालाप से स्पष्ट है। आगे हम पश्चिमी विद्वानों द्वारा व्यक्तित्व की दी गई परिभाषाओं को प्रस्तुत कर वर्तमान काल में व्यक्तित्व के अर्थ से परिचित होने का प्रयास करेंगे।

15.4 व्यक्तित्व की परिभाषाएं Definitions of Personality

पश्चिमी मनोवैज्ञानिक द्वारा व्यक्तित्व की परिभाषाओं में से कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

आर0एस0 वुडवर्थ के अनुसार‘‘ व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार की समग्र गुणात्मकता है।’’

“Personality is the entire qualitativeness of person.” – Woodworth

जी.डबलू. आलपोर्ट के अनुसार- “व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक तंत्र का गतिशील संगठन है जिसे उसके पर्यावरण से सामजस्य स्थापित के लिए आवश्यक शीलगुणों के एक संकलित नमूने के रूप में परिभाषित कर सकते हैं’’

“Personality is the dynamic organization within the individual of those Psycho-Physical systems that determine his unique adjustment to his environment.” - Allport

गिल्फोर्ड के अनुसार‘‘ हम व्यक्तित्व को शीलगुणों के एक संकलित नमूने के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।’’

“We may define personality as sum inter grated pattern of traits.” -Guilford

ड्रेवर के अनुसार-‘ व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग व्यक्ति के शारीरिक मानसिक, नैतिक व सामाजिक गुणों के सुसंगठित और गत्यात्मक संगठन के लिये किया जाता है, जिसे वह अन्य व्यक्तियों के साथ अपने सामाजिक जीवन का आदान-प्रदान करता है।’’

“Personality is the term used for the integrated and dynamic organization of the physical, mental and social qualities of the individual as that manifest itself to other people, in the give and take of social life.” –Drever

शिक्षा परिभाषा कोश-केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के शब्दावली आयोग की परिभाषा -

1. ‘‘व्यक्ति के ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक और शारीरिक विशेषकों (Traits) का एकीकृत संगठन जैसा कि वह अन्य व्यक्तियों को दिखाई देता है’’।
2. ‘‘व्यक्ति के वे शारीरिक और प्रभावशाली गुण जो संश्लिष्ट रूप से अन्य व्यक्तियों को आकर्षित करते हैं।’’
3.

उपर्युक्त परिभाषाएं जो आशय प्रकट करती है, उन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है-

1. व्यक्ति के व्यवहार की समग्रता,
2. जन्मजात तथा अर्जित स्वभावों का योग,
3. व्यक्ति की संरचना, व्यवहार के रूप अभिरुचियों, अभिक्षमताओं (Aptitude) योग्यताओं, क्षमताओं (Capacity) का विशिष्ट संगठन,
4. पर्यावरण से सामंजस्य
5. शीलगुणों (Traits) के समग्र रूप
6. व्यक्ति के गुणों (सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, नैतिक) का समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ आदान-प्रदान।

उपर्युक्त सभी बिन्दुओं को **गैरीसन** (Garrison) ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

‘‘व्यक्तित्व सम्पूर्ण व्यक्ति है, जिसमें उसकी अभिक्षमताएं, क्षमताएं एवं समस्त भूतकालीन अधिगम सम्मिलित हैं और इन सभी कारकों तथा संगठन तथा संश्लेषण उसके व्यवहारगत प्रतिमाओं, विचारों, आदर्शों, मूल्यों तथा अपेक्षाओं में अभिव्यक्त होता है।’’

15.5 व्यक्तित्व का सम्प्रयय Concept of Personality

जैसा कि गैसीसन का मत है कि ‘‘व्यक्तित्व सम्पूर्ण व्यक्ति है। जिसमें उसकी अभिक्षमताएं, क्षमताएं एवं समस्त भूतकालीन अधिगम सम्मिलित हैं और इन सभी कारकों तथा संगठन का संश्लेषण उसके व्यवहारगत प्रतिमानों, विचारों, आदशों, मूल्यों तथा अपेक्षाओं में अभिव्यक्त होता है।’’ इन सब का विकास बाल्यकाल से प्रारम्भ होकर व्यक्ति की अन्तिम अवस्था तक क्रियात्मक पहलू, सामाजिक पहलू तथा कारण सम्बन्धी पहलू। ये पहलू मानव की भावुकता, शान्ति, विनोद प्रियता, मानसिक योग्यता, दूसरों के द्वारा डाले जाने वाले प्रभाव, व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले कार्यों के प्रति लोगों की प्रतिक्रियाओं, व्यक्तियों द्वारा डाले जाने वाले प्रभावों, व्यक्ति के स्वयं के द्वारा स्वीकार विचार, भावनाएं तथा अभिवृत्तियों आदि। यद्यपि ये पहलू व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं परन्तु ये सभी या कोई एक व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करे यह सम्भव नहीं है।

बीसेन्ज तथा बीसेन्ज के शब्दों में- ‘‘ व्यक्तित्व मनुष्य की आदतों, अभिवृत्तियों तथा विशेषताओं का संगठन है। यह जैविक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारणों के द्वारा संयुक्त प्रभावों से निर्मित होता है।’’ व्यक्तित्व के निर्माण में अनेक तथ्य तथा परिस्थितियां प्रभावकारी होती है। प्रमुख परिस्थितियां इस प्रकार हैं।

आत्मचेतना, सामाजिकता, सामान्जस्य स्थापन, लक्ष्य प्राप्ति, इच्छाशक्ति, शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, गुणों में समरसता तथा विकास की निरन्तरता का होना।

यहां आत्म चेतना का अर्थ है कि लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं तथा उसकी सोच को मैं किस प्रकार लेता हूं। यदि लोग मेरे बारे में अच्छा सोचते हैं तो मुझे और अधिक अच्छा बनने की प्रेरणा मिलती है यदि कुछ सुधारने के लिए प्रेरणा लेता हूं या अपने अन्दर हीनभाव का विकास करता हूं इसी प्रकार सामाजिकता का होना व्यक्तित्व विकास के लिए बहुत आवश्यक है। समाज से कट कर रहने का अर्थ है- व्यक्तित्व के विकास में अवरोध आना सामन्जस्य स्थापन का अर्थ है अपने से सम्बंधित व्यक्तियों की भावनाओं को समझना उनके अनुकूल कार्य करना। व्यक्ति अपने लक्ष्यों के प्रति कितना सजग है यह व्यक्तित्व निर्माण का एक महत्वपूर्ण पहलू है। जिस व्यक्ति की इच्छा शक्ति कुण्ठित हो गई है वह व्यक्ति न तो अपने आपके लिए उपयोगी हो सकता है न वह समाज के लिए उपयोगी होगा। व्यक्तित्व के विकास में व्यक्ति का शरीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है हमारी मानसिक, शारीरिक, नैतिक, आध्यात्मिक संवेगात्मक शक्तियों में समरसता तथा एकीकरण होना व्यक्त्वि विकास के लिए आवश्यक है। क्योंकि व्यक्ति का सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा संवेगात्मक विकास उसकी आयु के साथ-साथ वृद्धिमान होना रहता हैं अतः व्यक्तित्व में परिवर्तन भी होना आवश्यसम्भावी है।

उपर्युक्त के आधार पर हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्व का संगठन व्यक्ति की परिस्थितियों, सुविधाओं तथा स्वयं की इच्छा के अनुसार परिवर्तनशील रहता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. पर्सनेलिटी शब्द लेटिन के शब्द __________ से बना है।
2. भारतीय साहित्य ने व्यक्तियों की कौन सी तीन श्रेणियां बताई है।
3. गुणातीत व्यक्ति कौन होता है?
4. जी.डबलू. आलपोर्ट द्वारा दी गयी व्यक्तित्व की परिभाषा दिजिए।

15.6 व्यक्तित्व का प्रकारानुसार वर्गीकरण

Classification of Personality- Type Approach

प्रकारों के आधार पर व्यक्तित्व का अध्ययन, व्यक्तित्व के अध्ययन के प्रारम्भिक काल में किया गया। आजकल प्रकारात्मक वर्गीकरण के स्थान पर शीलगुणों के आधार पर किये गये वर्गीकरण को अधिक माना जा रहा है। फिर भी इनकी ऐतिहासिकता तथा महत्व को हम नजरअन्दाज नहीं कर सकते। आगे प्रकार के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. **हिपोक्रेट्स (Hippocrates)**

   हिपोक्रेट्स को पश्चिमी जगत् में चिकित्सा जगत् का पिता कहा जाता है। ये यूनानी चिकित्सक थे। हिप्पोक्रेट्रस ने (460-370 वर्ष ईस्वी पूर्व) शरीर-द्रव्यों के आधार पर व्यक्तित्व को चार श्रेणियों में विभक्त किया। ये चार प्रकार के द्रव्य हैं-पीला पित्त (Yellow Bile), काला पित्त (Black Bile), रक्त (Blood) तथा कफ (Phlegm)। प्रत्येक व्यक्ति में इन चार द्रव्यों में से किसी एक द्रव्य की अधिकता रहती है। इस अधिक द्रव्य के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्धारित होता है। इन द्रव्यों के आधार पर व्यक्त्वि का संक्षिप्त विवरण सारणी रूप में प्रस्तुत है

सारणी -15.1
हिपोक्रेट्स का वर्गीकरण

प्रकार	मुख्य गुण	अन्य विशेषताएं
रक्त	आशावादी (Sanguine)	आशावादी, उत्साही, प्रसन्नचित, सक्रिय

काला पित्त	विशादी (Melancholic)	उदास, कुंठित, निराशावादी
पीला पित्त	क्रोधी (Choleric)	आक्रामक, चिड़चिड़ा कोपशील शीत प्रकृति,
कफ	श्लेष्मिक (Phelegmatic)	प्रकृति, निष्क्रिय, दुर्बल, उत्तेजनाविहीन

2. **आयुर्वेद -** आयुर्वेद में व्यक्ति की प्रकृति को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है ये भेद हैं-
   i. वात-प्रकृति,
   ii. पित्त-प्रकृति, तथा
   iii. कफ-प्रकृति

वात-प्रकृति के व्यक्ति रुक्ष, कृश तथा पतले शरीर वाले होते हैं, उनका स्वर फटा हुआ तथा मन्द होता है। उन्हेंनींद कम आती है। शरीर चंचल होता है। वह व्यक्ति अधिक बोलता है। कार्य को शीध्रता से बिना सोच-समझे करता है। इन्हें क्रोध तथा प्रेम शीघ्रता से हो जाता है। शीत सहन करने में असमर्थ रहता है। हाथ पैर ठण्डे रहते हैं। केश, नख, रोम, दन्त आदि कठोर रहते हैं। सोते समय आंखें अधखुली रहती है। सोते हुए दांत किटकिटाते हैं। इन्हें आकाश में उड़ने के, वृक्षों को लांघने के स्वप्न आते हैं ये कलह प्रिय, गीत वाद्य, नृत्य, हास्य, तथा विलासप्रिय होते हैं।

पित्त प्रकृति के व्यक्तित्व के अंगों में सुकुमारता होती है। शरीर का रंग पाण्डु, शरीर पर तिल तथा मस्ते अधिक होते हैं। भूख-प्यास अधिक लगती है, बाल शीघ्र ही सफेद हो जाते हैं तथा उड़ जाते हैं, ये क्लेश को सहन नहीं कर पाते, पराक्रमी, मेधावी, प्रतिभा-सम्पन्न होते हैं कम आयु में शरीर पर झुरियां पड़ जाती है। पसीना अधिक आता है, मुख, कांख, केश आदि दुर्गन्ध आती है, दांत पीले होते हैं, इन्हें आग लगने, तड़ित गिरने के तथा अमलताश तथा फ्लाश आदि रक्त वर्ण के पुष्पों वाले स्पप्न आते हैं। ये मध्य आयु मध्य बल, मध्य ज्ञान, मध्य धन तथा साधन वाले होते हैं।

कफ प्रकृति वाले व्यक्ति चिकने शरीर वाले, मधुरभाषी, सुडौल शरीर तथा इनका स्वभाव गम्भीर, सहनशील तथा धैर्ययुक्त होता है, पसीना कम आता है, गर्मी कम लगती है, प्यास कम लगती है। वाणी में मधुरता तथा स्पष्टता होती है। ये शान्त, सौम्य, धनवान विद्वान, ओजस्वी तथा दीर्घायु होते है।

वात, पित्त, कफादि प्रकृति के कारण व्यक्ति का व्यवहार निधारित होता है। इसी के आधार पर चिकित्सा की जानी चाहिए। कुछ व्यक्तियों में द्विदोषज प्रकृति होती है। व्यक्तित्व की प्रकृति में परिवर्तन नहीं होता है, यदि प्रकृति में अचानक परिवर्तन आ जाये तो उसे अरिष्ट सूचक माना जाता

है।मनस प्रकृति या महा प्रकृति अर्थात् सत, रज, तथा तम गुणों में परिवर्तन यज्ञ, ज्ञान, तप के द्वारा सत, रज, तम गुणों में परिवर्तन सम्भव है। परन्तु वात, पित्त तथा कफ में परिवर्तन नहीं होता।

3. **क्रेश्मर (Kretchmers) वर्गीकरण-** क्रेश्मर ने व्यक्तित्व को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया।ये मानसिक रोग चिकित्सक थे। इनका अध्ययन मनोविदलता (Schizophrenia) उत्साह विषाद (Manic Depressive) मनोविक्षिप्ता (Psychosis) के रोगियों के लक्षणों पर आधारित था। शरीर रचना के आधार पर चित्तवृत्ति का वर्गीकरण अग्रलिखित सारणी में प्रस्तुत है-

सारणी-15.2

क्रेश्मर का वर्गीकरण

क्रम	प्रकार	स्वभाव	विशेषताएं
1.	स्थूलकाय	सइक्लोआइड	छोटे, मोटे, गोलाकार, गर्दन मोटी, टांग भुजाएं मोटी, प्रसन्नचित, मिलनसार, आराम पसन्द, मित्र संख्या अधिक, दुःख-सुख से शीघ्र प्रभावित।
2	कृशकाय	सिजोइड	कमजोर, पतले, हाथ-पैर पतले लम्बे, दुर्बल, आत्मकेन्द्रित, एकान्तप्रिय, चिड़चिड़ापन, कल्पनाशील, भावना प्रधान, शरीर भार कम, महत्वाकांक्षी भावुक, समाज के नियमों का पालन करने वाले, अन्तर्मुखी।
3.	पुष्टकाय	-	सुन्दर,वक्षचौड़ा, पतली कमर, कंधा चौड़ा, सीना उभरा, निर्भीक, जोश, साहस, उत्साह, सुखदुःख का प्रभाव कम, सामंजस्यवादी प्रसन्नचित समाज में प्रतिष्ठित।
4.	मिश्रितकाय	-	मिश्रित लक्षण

क्रेश्मर का वर्गीकरण मनोरोगियों की दृष्टि से तो उचित माना जाता है परन्तु सामान्य व्यक्तियों की व्याख्या के लिए यह सिद्धान्त अधिक उपयोगी नहीं माना जाता।

4. **शेल्डन का वर्गीकरण Sheldon's Classification -** शेल्डन का व्यक्तित्व वर्गीकरण शरीर रचना पर आधारित है। इसका संक्षिप्त विवरण सारणी में प्रस्तुत है-

सारणी 15.3

शेल्डन का व्यक्तित्व वर्गीकरण

क्रम	प्रकार	स्वभाव	विशेषताएं
1.	गोलाकार Edomorphy	Viserotonic	मोटे, भारी गोलाकार, आराम, पसन्द, सामाजिक, सक्रियता मिलनसार, सरल, स्वभाव, निद्रा अधिक, सहिष्णु, खाने के शौकीन, शिष्टाचार प्रेमी, चिन्ताकम, रंजिश न मानने वाले, हमदर्द।
2.	आयताकार Mesomorphy	Sometotonic	स्वस्थ, गठीला शरीर, साहसी, परिश्रमी, लक्ष्योन्मुख, समर्पित, कर्मठ, महत्वाकांक्षी, स्वास्थ्य के प्रति सतर्क, दमदार आवाज, संवेगात्मक रूप से स्थिर, व्यवहार परिपक्व।
3.	लम्बाकार Extomorphic	Cerebratonic	दुबले, लम्बे, शीघ्र थकान, बाहरी जगत् में कम रुचिशील, संयमी, मानसिक कार्यों में रुचि, आत्मकेन्द्रित, शीघ्र घबराना, अन्तर्मुखी, कलात्मक गोपनीयता रखने वाले, शीघ्र उत्तेजित, शर्मीलापन, संकोची।

शेल्डन का मानना है कि सन्तुलित व्यक्तित्व वह है, जिसमें तीनों वर्गोंं के कम से कम चार-चार गुण पाये जायें।

5. **युंगका वर्गीकरण (Jung's Classification) -** कार्ल युंग (1875-1961) ने 1921 में व्यक्तित्व का वर्गीकरण अन्तर्मुखी (Introvert) तथा बहिर्मुखी (Extrovert) के रूप में किया। इनके वर्गीकरण को मनोवैज्ञानिक प्रकार भी कहा जाता है, क्योंकि इनका वर्गीकरण व्यवहार की प्रवृत्तियों पर आधारित है।

सारणी-15.4

युंग का व्यक्तित्व वर्गीकरण

क्रम	प्रकार	विशेषताएं
1.	अन्तर्मुखी	आत्मकेन्द्रित, लज्जालु, संकोची, दब्बू, विचार प्रधान,

		निर्णय में विलम्ब, भविष्य के प्रति चिन्तित, सामाजिक कामों के प्रति कम दिलचस्पी, कल्पनाशील, आलोचना से घबराना, एकाकी (पेवसंजजमक), शान्त प्रकृति।
2.	बहिर्मुखी	बाह्यकेन्द्रित मिलनसार, असंकोची, दबंग, वाक्पटु, व्यवहार कुशल, तुरन्त निर्णय, वर्तमान जीवी, सामाजिक, वास्तविक जगत में रहने वाले, आलोचनाओं की परवाह नहीं करते, समूह में रहने वाले, क्रियाशील।
3.	उभयमुखी	कुछ व्यक्ति न तो अन्तर्मुखी होते हैं न ही बहिर्मुखी होते हैं। Neyman & Yacorzynki (1942)ने एक नया वर्ग बनाया, जिसे उभयमुखी कहा। इनमें दोनों वर्गों की विशेषताएं पाई जाती हैं।

6. **अडानो का लोकतांत्रिक बनाम निरंकुश व्यक्तित्व(Adano's Democratic versus Authoritarian Personality)**अडानो (1950) तथा साथियों ने व्यक्तित्व को लोकतांत्रिक एवं निरंकुश दो प्रकारों में वर्गीकृत किया । इनकी विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. **लोकतांत्रिक-** मन (1967) के अनुसार लोकतांत्रिक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में सामूहिकता, भाईचारा, पारस्परिक सहयोग, अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण जैसे गुण पाये जाते हैं।
2. **निरंकुश-**निरंकुश व्यक्ति में यौन के चिन्तक, धर्मभीरुता विध्वंसक, कटुता, कठोर, अंधविश्वास तथा सनकी होते हैं।

15.7 व्यक्तित्व का शीलगुण सिद्धान्त Trait Approach of Personality

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व को कुछ शीलगुण निर्धारित एवं नियंत्रित करते हैं शीलगुण सिद्धान्त का अध्ययन करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि शीलगुण क्या है? शीलगुण की कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

क्रेच तथा क्रचफील्ड(Krech & Crutchfield) शीलगुण, व्यक्ति की स्थायी विशेषता है। जिसके द्वारा व्यक्ति का व्यवहार विभिन्न परिस्थितियों में लगभग एक-सा रहता है।

डी0एन0 श्रीवास्तव- शीलगुण किसी परिस्थिति विशेष में सामान्यीकृत व्यवहार करने का ढंग है, जो अपेक्षाकृत स्थायी होते है। इनके द्वारा विभिन्न परिस्थतियों में लगभग एक जैसा व्यवहार होता है। शीलगुण अपूर्व (Unique) और सार्वभौमिक होते हैं, ये व्यक्तित्व के सम्पूर्ण व्यवहार का प्रमुख आधार हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि शीलगुण-

1. व्यवहार करने का तरीका है।
2. अपेक्षाकृत स्थायी होते है।
3. परिस्थितियाबदलने पर भी शीलगुण पूर्ववत् होते हैं।
4. ये व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार का प्रमुख आधार होते हैं।

शीलगुणों के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्त इस प्रकार है-

15.7.1 अलापोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त Allport's Trait Approach

आलपोर्ट ने शीलगुणों को दो प्रकारों से वर्गीकृत किया है-

1. सामान्य शीलगुण,
2. वैयक्तित्व शीलगुण।

1. **सामान्य शीलगुण-** एक समाज अथवा संस्कृति में समग्र रूप से पाये जाते हैं तथा उस संस्कृति अथवा समाज की पहचान होते है। इसके लिये हम न्यू गुयाना के आरापेश पर्वतों पर रहने वाली जनजाति के व्यवहार का उदाहरण दे सकते हैं, जिनका अध्ययन महान् समाजशास्त्री मार्गरेट मीड ने 1935 में किया था। उन्होंने बताया था कि आरापेश जनजाति के स्त्री-पुरुष में शिष्टता, नम्रता, शान्तचित्तता के गुण होते हैं। इनमें सहयोग, सद्भावना, सहानुभूति तथा प्रेम जैसे गुण पाये जाते हैं, जबकि न्यू गुयान की ही एक अन्य जनजाति जिसे मुन्डगमार जनजाति कहते है कि स्त्री तथा पुरुष अहंकारी, ईर्ष्यालु, शंकालु, प्रतिद्वन्द्वी होते हैं। इनका स्वभाव आक्रामक होता है।

भारत के लोगों का सामान्य गुण सर्वधर्म सद्भाव है। यहां के निवासियों में सभी धर्मों के प्रति श्रद्धा भाव पाया जाता है।

2. **वैयक्तिक शीलगुण**-व्यक्तिक शीलगुणों को आलपोर्ट ने तीन भागों में बांटा है।

   i. **मूल शीलगुण**- इन वैयक्तिक शीलगुणों के कारण व्यक्ति चर्चा में आ जाता है। यह शीलगुण बहुत कम संख्या में होते हैं फिर भी इनका प्रभाव विशिष्ट रूप से

परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए महात्मा गांधीजी ने व्यवहार के दो शीलगुणों ने उन्हें विश्व स्तर पर सम्मानीय बना दिया। ये शीलगुण थे- सत्य और अहिंसा।

ii. **केन्द्रीय शीलगुण** -आलपोर्ट ने इस प्रकार के शीलगुणों को व्यक्ति के व्यवहार की निर्माण सामग्री(ईंट) माना है तथा व्यक्ति में इनकी संख्या 5 से 10 मानी है। समय पालन, सामाजिकता तथा आत्मविश्वास आदि शीलगुण केन्द्रीय शीलगुण हैं।

iii. **द्वितीयक शीलगुण**-इन शीलगुणों को व्यक्ति बहुत अधिक महत्व नहीं देकर सामान्य महत्व देता है। कुछ व्यक्तियों में जो केन्द्रीयशील गुण होते हैं, दूसरों के लिये वे द्वितीयक शीलगुण हो सकते हैं।

15.7.2 कैटेल का शीलगुण सिद्धान्त Cattell's Trait Approach

आर.वी. कैटेल ने शीलगुणों के आधार पर व्यक्तित्व सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इन्होंने स्रोत के आधार पर शीलगुणों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया-

1. पर्यावरण प्रभावित शीलगुण- ये शीलगुण पर्यावरण से प्रभावित होते हैं। अर्थात् जैसे पर्यावरण में व्यक्ति रहेगा उसी के अनुकूल शीलगुणों को ग्रहण करेगा।
2. स्वाभाविक शीलगुण- वे शीलगुण जो पर्यावरण में प्रभावित नहीं हाते हैं। बल्कि व्यक्ति की आनुवंशिकता से प्रभावित होते हैं।

कैटेल ने ही शीलगुणों के अन्य प्रकार से वर्गीकृत करते हुए दो प्रकार के शीलगुण बताये-सतही तथा मूल शीलगुण।

1. **सतही शीलगुण (Surface Trait)**- वे शीलगुण जो कि व्यक्ति दैनिक क्रियाओं से परिलक्षित होते हैं, जैसे-सत्यनिष्ठा (प्दजमहतपजल), प्रसन्नचिन्ता तथा परोपकारिता।
2. **मूल शीलगुण (Source Trait)-** व्यक्ति की संरचना में कैटैल ने मूल शीलगुणों को महत्वपूर्ण माना ये शीलगुण सतही शीलगुणों की अपेक्षा संख्या में कम होते हैं। इनका अवलोकन प्रत्यक्ष रूप से नहंीं किया जा सकता। उदाहरण के लिये मित्रता शीलगुण कई एक सतही शीलगुणों के मेल से बनता है जैसे सामुदायिकता, निस्वार्थता तथा हास्य आदि।

कैटेल ने 16 मूल शीलगुणों का चयन व्यक्तित्व मापन के लिये किया, जिसे 16 व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली (16 Personality Factor Questionnaire) कहा जाता है इसमें प्रयुक्त शीलगुण आगे प्रस्तुत सारणी में प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

सारणी 15.5

कैटल का शीलगुण वर्गीकरण

क्रम	कारक	शीलगुणों के नाम	
		निम्न	उच्च
1	A	आत्मकेन्द्रित	उदार
2	B	कम बुद्धि	अधिक बुद्धि
3	C	संवेगी	स्थिर
4	E	विनम्र	प्रभुत्ववादी
5	F	गम्भीर	प्रसन्नचित्त
6	G	स्वार्थ साधक	सद्विवेकी
7	H	लज्जालु	साहसी
8	I	कठोर	संवेदनशील
9	L	विश्वास करने वाला	शंकालु
10	M	व्यावहारिक	काल्पनिक
11	N	स्पष्ट वादी	चालाक
12	O	आत्मविश्वस्त	आशंकित
13	Q 1	रूढ़िवादी	प्रगतिशील
14	Q2	समूहाश्रित	आत्माश्रित
15	Q3	अनियंत्रित	नियंत्रित
16	Q4	विश्रांत	तनावयुक्त

15.7.3 नीओ- पी0आई0आर0 वर्गीकरण (Neo- P.I.R Classification)

शीलगुणों की पांच विमाओं के आधार पर कोस्टामैक्क्रे ने एक नवव्यक्तित्व अनुसूची-संशोधित (Neo-Personality Inventory Revised) का निर्माण किया। इसकी 5 विमाओं में (1) बहिर्मुखता, (2) सहमतिजन्यता, (3) कर्त्तव्यनिष्ठता, (4) मनस्तापी तथा (5) अनुभूतियों का खुलापन, में वर्गीकृत किया।

15.7.4 आइजेनक Eysenck's Classification

आइजेनक ने व्यक्तित्व की तीन विमाओं का वर्णन किया है। इनका यह अध्ययन 10,000 व्यक्तियों पर आधारित है। इनके अध्ययन में सामान्य तथा मनस्तापी सम्मिलित थे। इनके वर्गीकरण में व्यक्तित्व प्रकार इस प्रकार हैं-

1. अन्तर्मुखता बहिर्मुखी-इन्होंने अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखी को अलग-अलग न मानकर एक ही प्रकार के दो छोर माना हैं। उदाहरण के रूप में अन्तर्मुखी दण्ड प्रभावित होते हैं,जबकि बहिर्मुखी पुरस्कार से प्रभावित होते हैं अन्तर्मुखी किसी सामाजिक निषेध को सरलता से स्वीकार, कर लेते हैं, जबकि बहिर्मुखी देर से स्वीकार करते हैं।
2. स्नायु विकृति एवं स्नायुविक स्थिरता- स्नायु विकृत व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में संवेगात्मक नियंत्रण कम होता है, जबकि स्नायुविक स्थिर व्यक्तियों में संवेगात्मक नियंत्रण अधिक होता है। इनमें से कुछ व्यक्ति स्नायु विकृति के चरम छोर पर होते हैं, जबकि कुछ व्यक्ति स्नायु स्थिरता के दूसरे छोर पर होते हैं जैसे-विकृति कम होती चली जाती है, स्थिरता बढ़ती जाती है।
3. मनोविकृतता, परअहम् की क्रियाएं- मनोविकृतता तथा पराहम् ये दो छोर हैं तथा इनका एक छोर-मनोविकृतता के छोर पर मनोविक्षिप्तता के लक्षण पाये जाते हैं, जैसे-क्षीणएकाग्रता क्षीणस्मृति, असंवेदनशीलता तथा क्रूरता आदि, जबकि दूसरे छोर पर उच्च एकाग्रता, उच्चस्मृति संवेदनशीलता तथा अक्रूरता होते हैं।

15.8 शीलगुण उपागम की समालोचना

शीलगुणों का व्यक्तित्व के मापन में अपना महत्वपूर्ण स्थान है, परन्तु शीलगुणों के आधार पर व्यक्तित्व की व्याख्या प्रभावी रूप में नहीं की जा सकती। इस सम्बन्ध में जो आलोचनाएं की जा सकती हैं। उन्हें संक्षेप में निम्नलिखित बिन्दुओं में प्रस्तुत किया जा सकता हैं-

1. शीलगुणों की संख्या के बारे में एकमतता नहीं है।
2. सभी शीलगुणों के विरोधी शीलगुण स्पष्ट नहीं है।
3. शीलगुणों में परिस्थितिजन्य कारकों को महत्व नहीं दिया गया है।
4. व्यक्तित्व सम्बन्धी शीलगुणों के विकास के बारे में जानकारी नहीं दी गई हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. आयुर्वेद में व्यक्ति की प्रकृति को कितने भागों में वर्गीकृत किया गया ?

6. शेल्डन का व्यक्तित्व वर्गीकरण _________ पर आधारित है।
7. आलपोर्ट द्वारा वर्गीकृत शीलगुणों के प्रकार लिखिए।
8. 16 व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली किसकी देन है।
9. युंग के अनुसार व्यक्तित्व के प्रकार लिखिए।
   अन्तर्मुखी बहिर्मुखी उभयमुखी

15.9 सारांश

इस खण्ड के आमुख में हमने सीखा कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन करना अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि व्यक्ति अपने अवगुणों को छिपाता है, गुणों का प्रकट करता है। कोई भी व्यक्ति आप को आपकी स्वीकृति के बिना हीन महसूस नहीं करा सकता। हमें गुणवान व्यक्तियों की संगत में रहना चाहिए। हमें अपने व्यवहार को सुसंगत, यथायोग्य बनाना हमारे हित में है। इस इकाई में हमने भारतीय साहित्य तथा पश्चिमी साहित्य में व्यक्तित्व के समझने का प्रयास किया है तथा इस की परिभाषाओं का अध्ययन किया है। व्यक्तित्व के प्रकार को समझने के लिए नये तथा पुराने वर्गीकरण को जाना है तथा शीलगुण सिद्धान्तों का समालोचनात्मक अध्ययन किया है।

15.10 शब्दावली

1. पर्सनेलिटी - शब्द लेटिन के शब्द परसोना (Persona) से बना है, जिसका अर्थ होता है मुखोटा
2. वात-प्रकृति- वात-प्रकृति के व्यक्ति रुक्ष, कृश तथा पतले शरीर वाले होते हैं।
3. पित्त प्रकृति- पित्त प्रकृति के व्यक्तित्व के अंगों में सुकुमारता होती है।

15.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. परसोना (Persona)
2. भारतीय साहित्य ने व्यक्तियों की तीन श्रेणियां बताई है- सत, रज तथा तमोगुण।
3. गुणातीत व्यक्ति वह होता है, जो सत, रज तथा तम आदि गुणावगुणों से परे होता है।
4. जी.डबलू. आलपोर्ट के अनुसार- ''व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक तंत्र का गतिशील संगठन है जिसे उसके पर्यावरण से सामजस्य स्थापित के लिए आवश्यक शीलगुणों के एक संकलित नमूने के रूप में परिभाषित कर सकते हैं''

5. आयुर्वेद में व्यक्ति की प्रकृति को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है
    i. वात-प्रकृति,
    ii. पित्त-प्रकृति, तथा
    iii. कफ-प्रकृति
6. शरीर रचना
7. आलपोर्ट द्वारा वर्गीकृत शीलगुणों के प्रकार हैं-
    i. सामान्य शीलगुण,
    ii. वैयक्तित्व शीलगुण।
8. 16 व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली कैटेल की देन है।
9. युंग के अनुसार व्यक्तित्व के प्रकार हैं-
   अन्तर्मुखी
   बहिर्मुखी
   उभयमुखी

15.12संदर्भ ग्रंथ

1. Cronbach, I.J. (1970), Essentials of Psychological Testing, 3rd ed., New York; Harper and Row Publishers.
2. Charles, E. Skinner (1990) : Education Psychology (Hindi) New Delhi, Disha Publications
3. Gardner, Howard (1999): The Disciplined Mind. New York: Simon Schuster
4. Gupta, S.P. (2002) :उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
5. *Dandapani, S. (2007). Advanced Educational Psychology, New Delhi.Anmol Publications Pvt.Ltd.*
6. Ebel, Robert L,.(1979), Essentials of Psychological Measurement, London; Prentice Hall International Inc.
7. Freeman, Frank S. (1962); Theory and Practice of Psychological Testing, New Delhi Oxford and IBN Publishing Co.
8. Kuppuswamy, B.(2006), Advanced Educational Psychology ,New DelhiSterling Publishers Private Ltd.

9. Lindquist, E.F (1951), Educational Measurement, Washington D C .American Council on Education.
10. Mangal, S.K. (2007) Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.
11. Sukla, O.P. (2002):शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ, भारत प्रकाशन।
12. Singh, Shireesh Pal (2009) : रू शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो।
13. Thorendike, R.L. & Hagen, E.P. (1969).Measurement and Evaluation in Psychology and Education 3rd ed; New York; John Wily&Sons Inc
14. Williams, W.M. et al (1996): Practical Intelligence. New york, Harper CollinsCollege Publications.

15.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. व्यक्तित्व को परिभाषित कीजिए।
2. व्यक्तित्व की विशेषताएं कौन सी होती हैं?
3. व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध में कौन-कौन से सिद्धान्त हैं?
4. व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
5. व्यक्तित्व के निर्धारकों की सूची बनाइयें।
6. हिपोक्रेट्स के अनुसार व्यक्तित्व के प्रकार बताइये।
7. व्यक्तित्व का शेल्डन वर्गीकरण लिखिए।
8. आलपोंट ने कितने प्रकार के शीलगुण बताये हैं। शीलगुण सिद्धान्तों की समालोचना कीजिए।व्यक्तित्व के बौद्धिक निर्धारक कौन-कौन से हैं?

इकाई-16व्यक्तित्व विकास में प्रभावी कारक

16.2 प्रस्तावना
16.3 उद्देश्य
16.3 व्यक्तित्व विकास में प्रभावी कारकों का अध्ययन
16.4 आनुवंशिक तथा दैहिक कारक
16.5 व्यक्तित्व के बौद्धिक निर्धारक
16.6 व्यक्तित्व के यौन निर्धारक
16.7 संवेगों का व्यक्तित्व पर प्रभाव
16.8 व्यक्तित्व पर सफलता तथा असफलता का प्रभाव
16.9 आकांक्षा स्तर का व्यक्तित्व पर प्रभाव
16.10 व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्त
16.11 फ्राइड का मनोविश्लेषणवाद
16.12 व्यक्तित्व विकास और इरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धान्त
16.13 सारांश
16.14 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
16.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची
16.16 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

व्यक्तित्व का विकास एक इतना उलझा हुआ सम्प्रत्यय है, जिसका एक निश्चित पैटर्न प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। हम जानते हैं कि व्यक्ति की रचना आत्म-प्रत्यय और शीलगुणों से मिलकर होती है। आत्म-प्रत्यय (Self-concept)को फ्राइड-अहम् (Ego)सलीवन-आत्मतंत्र (Self-System) कहते हैं।

परकिन्स (H.V. Perkins, 1958)के शब्दों में, ''आत्म-प्रत्यय का अर्थ उन प्रत्यक्षीकरण, विश्वास, भावना, अभिवृत्ति और मूल्यों से है, जिन्हें व्यक्ति अपनी विशेषताओं के रूप में देखता है और शीलगुणों के बारे में यहाँ इतना ही जान लें कि शीलगुण किसी परिस्थिति विशेष में सामान्यीकृत

व्यवहार करने का ढंग हैं, जो अपेक्षाकृत स्थाई होते हैं।शीलगुण व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यवहार का प्रमुख आधार हैं।’’विषेश विवरण इकाई 15 में प्रस्तुत कर दिया गया है।

व्यक्ति के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में व्यक्ति का विकास किस प्रकार होता है? यह इस इकाई की विषयवस्तु है। यहाँ हम व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध में कुछ प्रतिष्ठित मनोवैज्ञानिक के मतों को संक्षेप में अध्ययन करे रहे हैं। ताकि हम अपने छात्रों के तथा अपने स्वयं के व्यक्तित्व के उन्नयन मे सहयोगी हो सकें।

आगे की पंक्तियों में हम व्यक्तित्व विकास में उपयोगी कारकों को जानने का प्रयास कर रहे हैं।

16.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप-

1. व्यक्तित्व विकास में प्रभावी शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक कारकों से परिचित हो सकेंगे।
2. अन्तःस्रावी ग्रान्थियों से निस्रत स्रावों के व्यक्तित्व पर होने वाले प्रभावों की व्याख्या कर सकेंगे।
3. बालकों में अतःस्रावी ग्रन्थियों के द्वारा निस्रत स्रावों के कम या अधिक होने के कारण शरीर रचना पर होने वाले प्रभावों को वर्णन कर सकेंगे।
4. संवेगों का व्यक्तित्व पर प्रभाव की व्याख्या कर पायेंगे।
5. फ्राइड के मनोविश्लेषणवाद को अपने शब्दों में लिख सकेंगे।
6. व्यक्तित्व विकास और इरिक्सनके मनोसामाजिक सिद्धान्त को स्पष्ट कर सकेंगे।

16.3 व्यक्तित्व विकास में प्रभावी कारकों का अध्ययन

व्यक्तित्व के विकास को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। कुछ कारक अधिक प्रभावी होते हैं, कुछ कारक कम प्रभावी होते हैं। परन्तु कम प्रभावी कारकों को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता है इन प्रभावी कारकों को पांच श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

1. आनुवंशिक तथा दैहिक कारक,
2. पर्यावरणीय कारक,
3. मनोवैज्ञानिक कारक,
4. समाजिक कारक, तथा
5. सांस्कृतिक कारक।

इन कारकों का अध्ययन क्रमशः आगे किया जा रहा है।

16.4आनुवंशिक तथा दैहिक कारक

व्यक्तित्व के जैविक तथा दैहिक कारकों में अन्तस्रावी ग्रन्थियाँ, शरीर रचना तथा स्वास्थ्य, शरीर के रसायन, परिपक्वता, अनुवांशिक कारक तथा स्नायुमण्डल विशेष रूप से प्रभावी होते हैं इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

1. अन्तस्रावी ग्रन्थियां

नलिकाविहीन ग्रन्थियों के द्वारा निस्रत स्राव सीधे रक्त में जाता है। इनसे निकले स्रावों को हारमोन्स कहते हैं। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में पट्यूटरी, लिंग ग्रन्थियां, एड्रेनल, थायराइड तथा अन्य ग्रन्थियां हैं। इन ग्रन्थियों से निकले हारमोन्स का प्रभाव व्यक्ति के विकास पर पड़ता है। फलतः उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है। व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाली ग्रन्थियां तथा उनके कार्य इस प्रकार हैं-

i. पेन्क्रियाज ग्रन्थि-यह ग्रन्थि आमाशय तथा छोटी आंत से मिलने के स्थान पर पाई जाती है। यह ट्रिपसिन क्राइमोट्रिपसिन, एमालेज आदि एन्जाइम का स्रवण करती है।, जो कि भोजन के पाचन में काम आते हैं। पाचन के अतिरिक्त पेन्क्रियेटिक ग्रन्थि दो हार्मोन्स स्रावित करती है। (1) इन्सुलिन तथा (2) ग्लूकेगोन। इन्सुलिन रक्त में ग्लूकोज की मात्रा को नियंत्रित करता है। यदि इन्सुलिन का स्राव नहीं होता तो मधुमेह रोग हो जाता है। मधुमेह रोग व्यक्ति के व्यवहार पर अच्छा प्रभाव नहीं डालता है। व्यक्ति मूड़ी हो जाता है, मानसिक योग्यता में कमी आ जाती है, शारीरिक स्वास्थ्य भी खराब रहने लगता है। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई हानियाँ हैं। जिन के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रभावित होता है।

ii. थाइराइड ग्रन्थि -इस ग्रन्थि की आकृति पुराने जमाने में पहने जाने वाले कवच की तरह होती है, जिसे लेटिन में थाइरोन कहते हैं। यह ग्रन्थि श्वासनली के दोनों ओर पाई जाती है। इस ग्रन्थि से निकलने वाले हारमोन को थाइरोक्सिन कहते हैं। थाइरोक्सिन हारमोन में आयोडाइज्ड अमीनों एसिड होता है, जिसमें आयोडीन की मात्रा 65 प्रतिशत के लगभग होती है। जिस व्यक्ति में यह हारमोन कम निकलता है, उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। वह बौना रह जाता है, उसका मस्तिष्क का विकास नहीं हो पाता है, मानसिक विकास के अवरुद्ध होने के कारण स्मृति तथा चिन्तन कम हो जाते हैं, ध्यान का विस्तार अत्यन्त कम हो जाता है। इन सब का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ता है।

iii. पैराथायराइड ग्रन्थि- यह ग्रन्थि चार मटर के आकर की ग्रन्थियों से मिलकर बनी होती है। इस ग्रन्थि के द्वारा पैराथायराइड हारमोन पैदा होता है, जो कि पेप्टाइड हारमोन होता है। इस हारमोन से रक्त में कैल्शियम की मात्रा नियंत्रित रहती है तथा दांतों तथा अस्थियों का विकास समुचित ढंग से होता है। यह ग्रन्थि हमारे संवेगात्मक व्यवहार तथा शान्तचित्तता को प्रभावित करती है। जो कि व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण निर्धारक है।

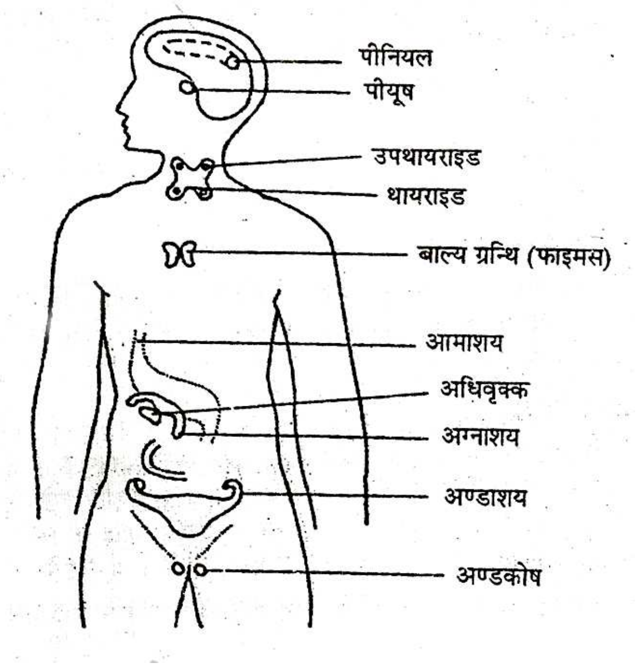

चित्र 16.1 अन्तस्रावी ग्रन्थियां

iv. एड्रीनल ग्रन्थि - ये ग्रन्थि दोनों गुर्दों के ऊपर पाई जाती है। प्रत्येक ग्रन्थि की बाहरी पर्त Cortexऔर अन्दर की पर्त को Medulla कहते हैं। इस ग्रन्थि से निकलने वाले स्राव को एड्रीनल हारमोन कहते है। वास्तव में ये ऐपिनेफ्रीन हारमोन होते है। इन हारमोन्स को आपातकालीन चेतावनी हारमोन (Emergency Warning Sirem)कहते हैं। आपातकालीन परिस्थितियों में ये रक्त शर्करा के स्तर को बढ़ा देता है, हृदय की धड़कन तेज हो जाती है। रक्त दाब बढ़ जाता है, रक्त प्रवाह तेज हो जाता है। ये शरीर को लड़ने और भागने के लिए तैयार करती है। आपातकालीन स्थिति की समाप्ति पर शरीर को थकान अनुभव होती है तथा त्वचा का रंग काला पड़ जाता है।

v. पिट्यूटरी ग्रन्थि - यह ग्रन्थि मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस के नीचे की ओर पाई जाती है। इस ग्रन्थि के दो भाग होते हैं-पो◌ेस्टेरिअर तथा इन्टीरियर पिट्यूटरी ग्रन्थि। इस ग्रन्थि को मास्टर ग्रन्थि कहा जाता है, क्योंकि यह ग्रन्थि ही अन्य ग्रन्थियों से निकलने वाले स्रावों को नियंत्रित करती है। पिट्यूटरी ग्रन्थि के अधिक स्राव के कारण व्यक्ति की लम्बाई तथा आकार दोनों बढ़ जाते हैं। अमेरिका का राबर्ट बैडलों 22 वर्ष तक की आयु तक जिन्दा रहा। 22 वर्ष की आयु में वह किसी संक्रामक रोग से मर गया था। उस समय उसकी लम्बाई 8 फुट 11 इंच (272 सेन्टीमीटर) तथा शरीर भाग 220 किलोग्राम था। उसके शरीर के एक्स-रे से विदित हुआ कि वह पिट्यूटरी ग्रन्थि में ट्यूमर से रोगग्रस्त था। पिट्यूटरी के

अधिक स्राव से व्यक्ति की लम्बाई बढ़ जाती है तथा कम स्राव से वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में पिट्यूटरीय बौनापन कहते हैं हाइपोथैलेमस इन्टीरियर पिट्यूटरी ग्रन्थि के स्राव को नियंत्रित करता है तथा इन्टीरियर पिट्यूटरी ग्रन्थि अन्य ग्रन्थियों के स्राव को नियंत्रित करती है।

vi. जनन ग्रन्थियां- स्त्री के अण्डाशयों तथा पुरुष के वृषणों से निकलने वाले स्रावों गीनेडल हारमोन्स कहते हैं। ये तीन होते हैं-प्रोजेस्ट्रोन, एण्डोजन तथ इस्ट्रोजन्स। इन हारमोन्स का प्रभाव व्यक्त्वि पर बहुत अधिक पड़ता है। इन हारमोन्स के द्वारा ही पुरुष में पुरुषत्व तथा स्त्रियों में स्त्रित्व के लक्षणों का विकास होता है। इनके स्रवण से ही स्त्री-पुरुष के जनन तंत्र का विकास होता है।

प्रोजेस्ट्रोन यह ओवरी से स्रावित होता है। यह हारमोन यूटरस (बच्चेदानी) को गर्भ के लिए तैयार करता है। तथा दुग्ध ग्रन्थियों का विकास करता है। टेस्टोस्ट्रोन पुरुषों में द्वितीयक कामांगों का विकास करता है तथा प्यूबर्टी में विकास को त्वरण प्रदान करता है। इसके द्वारा पुरुष जननांगों का विकास होता है तथा शुक्राणुओं के बनने की क्रिया प्रारम्भ होती है। स्ट्रडिओल हारमोन्स के द्वारा महिलाओं में द्वितीयक कामांगों का विकास होता है तथा प्यूबर्टी में स्त्री जननतंत्र को विकसित करता है। यूटरस को गर्भधारण क लिये तैयार करता है। आमतौर पर यह देखा गया है कि जिन स्त्री-पुरुषों में यौन अंगों का विकास सन्तुलित नहीं होता, उन्हें विभिन्न प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

2. शरीर रचना

आनुपातिक रूप से शरीर के गठन को व्यक्तित्व के साथ जोड़ने की परम्परा रही है। यह अनुसंधानों से भी सिद्ध हो चुका है। शरीर रचना में विकृति का असर व्यक्ति की समायोजन क्षमता पर पड़ता है। शारीरिक रचना में कमी वाले व्यक्तियों में हीन भावना पनप जाती है।

चित्र 16.2 डाउन्स सिन्ड्रोम (मंगोलता) के प्रभाव व कारण

शारीरिक लक्षण: अवरुद्ध विकास, 1. छोटा गोल सिर, 2. ऑखों के बीच अपेक्षतया अधिक फासला, 3. छोटी बैठी हुई नासिका, 4. विर्दीण जीभ तथा निचला औठ आगे को बढ़ा हुआ, 5. छोटी गर्दन, 6. हाथ चौड़े और मोटे, असामान्य हस्तरेखाएं, कनिष्ठा अंगुली बहुत छोटी, तथा 7. अल्पविकसित जननांग। मंगोलता का कारण 21 वें नम्बर पर दो के बजाय तीन क्रोमोसोमों की उपस्थिति भी हो सकता है।

3. आनुवंशिक कारण

   कुछ अज्ञात कारणों से कई बार व्यक्ति की पैत्रिकता को प्रभावित करने वाले क्रोमोसोम में गड़बड़ हो जाती है। जैसा कि हम जानते हैं कि सन्तान का लिंग निश्चयन का दायित्व x तथा y क्रोमोसोम का होता है। कई बार इन क्रोमोसोम की संख्या में परिवर्तन आ जाता है। पुरुष में xyतथा स्त्रियों में xx क्रोमोसोम होते हैं। कभी-कभी यह बढ़ कर xxx किसी व्यक्ति में यह xyyहो जाते है।

   सर्वेक्षण में पाया गया है कि औसतन प्रति 10 हजार लड़ाकें में 10 लड़के ऐसे होते हैं, जिनकी कोशिका में एक अतिरिक्त yक्रोमोसोम होता है। इसी प्रकार प्रति 10 हजार लड़कों में से 13 में एक अतिरिक्त x क्रोमोसोम पाया जाता है।

जिन लड़कों में xxy क्रोमोसोम होता है, उनमें युवावस्था में चेहरे पर बालों का अभाव होता है, वक्ष पर कुछ उभार आ जाता है। आमतौर पर अतिरिक्त ग क्रोमोसोम वाले लड़के मंद बुद्धि वाले होते हैं।

कुछ लड़कों में अतिरिक्ति y क्रोमोसोम पाया जाता है। इस सम्बन्ध में विशेष रुचि तब उत्पन्न हुई जब स्काटिश स्टेट सिक्योरिटी हॉस्पिटल में 3 प्रतिशत व्यक्तियों की कोशिकाओं मेएक अतिरिक्त y क्रोमोसोम पाया गया। एक अन्य अध्ययन में 6 फीट से अधिक लम्बाई वाले xyy.

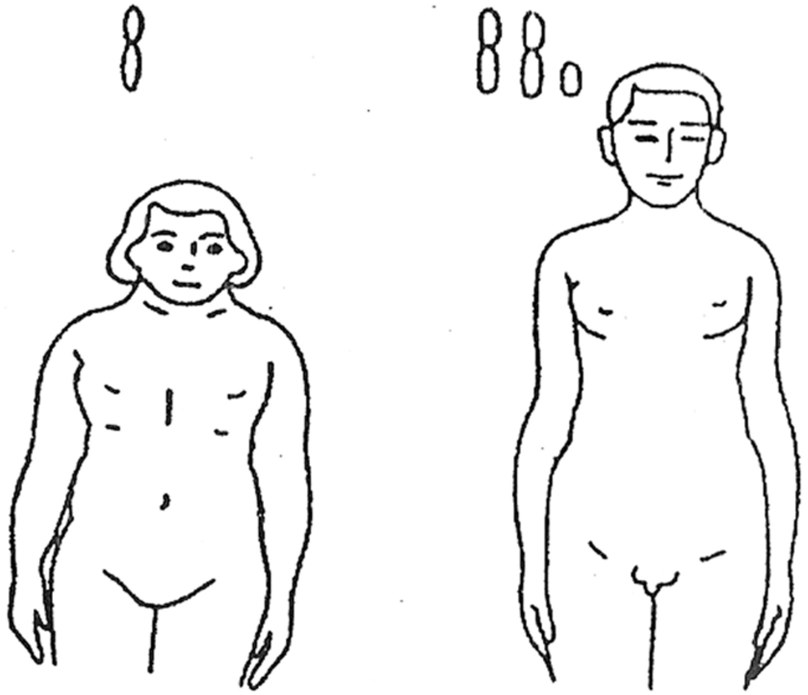

चित्र 16.3 क्रोमासोमजन्य यौन अपसामान्यताएं।

(बाएँ) टर्नरस सिन्ड्रोम (अपसामान्यतः विकसित स्त्री) के लक्षणः रुद्ध विकास, मानसिक विकार (प्रायः), ठोड़ी अन्दर धंसी हुई, वैब्ड गर्दन, अल्पविकसित छतियां, अण्डाशय (ओवरी) अविकसित अथवा अनुपस्थित, जघन रोम (प्यूबिक हेयर) अति विरल अथवा अनुपस्थित, ऋतुस्राव का अभाव, बंध्यता (प्रायः), जन्मजात श्रवण विकार। कारण: दो के स्थान पर केवल एक क्रोमोसोम का होना।

(दाएं) क्लाइनफेल्टर सिन्ड्रोम (अपसामान्यतः विकसित पुरुष) के लक्षण- षंडाभ अंग (बहुधा) मानसिक विकृति, स्तन अति विकसित (पुरुष के लिये), अल्पविकसित जननांग ओर साधारणतया शुक्राणुओं का अभाव। कारणः एक ग क्रोमोसोमों के स्थान पर दो या अधिक ग क्रोमोसोम्स की उपस्थिति।

व्यक्तियों में 4 में से 1 की कोशिका में अर्थात् 25 प्रतिशत व्यक्तियों में अतिरिक्त ल क्रोमोसोम उपस्थित होता है। सन् 1966 में एक अध्ययन में 6 फीट से अधिक ऊंचाई के 50 व्यक्तियों में से 12 व्यक्ति xyy क्रोमोसोम वाले थे।

क्रोमोसोम वाले व्यक्ति अल्पायु में ही अपराधवृत्ति के कारण दण्डित होते हैं वे आमतौर पर 13 वर्ष की अल्पायु में ही किसी न किसी अपराध में फंस जाते हैं उनकी प्रवृत्ति सम्पत्ति को हानि पहुंचाने की अधिक होती है व्यक्ति को हानि पहुंचाने की कम होती है। अतिरिक्त ल् क्रोमोसोम वाले परिवारों का अध्ययन करने पर यह भी विदित हुआ कि गलल क्रोमोसोम वाले व्यक्ति के परिवार में अपराध करने की प्रवृत्ति मौजूद नहीं होती। इस प्रकार का व्यक्ति विशेष ही अपराधी होता है उसका परिवार नहीं।

अलिंग क्रोमोसोम (ओटोसोम) की अपसामान्यता में से सबसे अधिक पाई जाने वाली अपसामान्यता डाउनसिन्ड्रोम (मंगोलता) है। मंगोलता में मंदबुद्धिता, नाटा कद, जन्मजात विरुपताएं आदि पाई जाती है।

इसी प्रकार जिन स्त्रियों में लिंग क्र्रोमोसोम केवल एक होता है अर्थात् केवल एक क्रोमोसोम होता है, उनका कद छोटा, गर्दन मोटी, छाती चौड़ी, चुचकों के बीच का अन्तर अधिक, स्तन अविकसित, गर्भाशय अविकसित, बहुत छोटा तथा डिम्बग्रन्थियां एक तन्तुमय रेखा जैसी होती हैं। 3000 में से केवल एक स्त्री ऐसी होती है।

कुछ स्त्रियों में तीन ग क्रोमोसोम पाये जाते हैं वे देखने में तो सामान्य-सी लगती है परन्तु इनकी प्रजनन क्षमता कम होती है। इन बुद्धि भी कुछ कम होती है। ऐसी स्त्रियां 750 में

एक पाई जाती है।

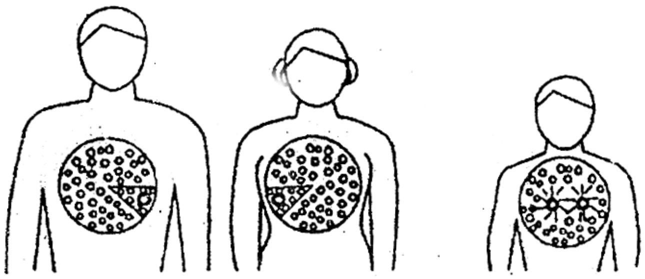

चित्र 16.4 इन ब्रीडिंग का प्रभाव

सगे चचेरे, ममेरे, फुफेरे मौसेरे भाई-बहिनों में कुल जीनों मे 1/8 जीन समान होते हैं। यदि इनमें से कोई एक रिसेसिव जीन का वाहक तो दूसरे में वैसे ही जीन के होने की सम्भावना आठ में से एक का। यदि

उक्त व्यक्तियों के परस्पर विवाह जाएं तो सन्तान में एक ही प्रकार के दो रिसेसिव जीनों के आ जाने की और परिणामस्वरूप उसमें विकार आ जाने की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है।

खण्ड-ओष्ठ तथा खण्डतालु भी आनुवंशिक रोग हैं। इस रोग में जन्म के समय ही ओष्ठ पूरा विकसित नहीं होता। एक अनुमान के अनुसार 770 शिशुओं में से एक शिशु खण्ड-ओष्ठ का होता है। इन आनुवंशिक रोग के लिए कम बेधन क्षमता के डोमीनेन्ट जीन ही उत्तरदायी होते हैं।

मंदबुद्धिता एक महत्वपूर्ण समस्या है। मंदबुद्धिता के तीन वर्ग हैं- जड़ बुद्धि जिसकी बुद्धिलब्धि 1 से 19 तक होती है, मूढ़ता जिसमें बुद्धिलब्धि 20 से 49 तक होती है, दुर्बल बुद्धि जिसमें बुद्धिलब्धि 50 से 69 तक होती है। इसका कारण भी आनुवंशिक गुणों को माना जाता है। इसका कारण रिसेसिव जीन होते हैं। आमतौर पर कुटुम्ब के सदस्यों में विवाह करने पर अधिक प्रतिशत में मंदबुद्धि सन्तान उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अतः चचेरे, मरेरे, फुफेरे, मौसेरे भाई-बहिनों को आपस में विवाह नहीं करना चाहिये। इस अपसामान्य के लिये क्रोमोसोम नम्बर 21 जिम्मेदार होता है। आनुवंशिकी की भाषा में इसे समोद्भवता कहते हैं। समोद्भवता से बंध्या, गर्भपात तथा जन्मजात विकृति जैसे समस्याएं भी आती है।

मुद्गरपाद एक आनुवंशिक रोग है इस रोग में जिसमें पैर विरूपित हो जाता है, जिसका असर व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ता है। मधुमेह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुंचता है। इस रोग के लिये भी रिसेसिव जीन ही उत्तरदायी होता है। कई प्रकार की एलर्जी भी आनुवांशिक रोग माने गये हैं। मनुष्य का सूरजमुखी (एल्बिनिज्म) होना यद्यपि आनुवंशिक रोग नहीं है फिर भी इसका सम्बन्ध जीन में हुए उत्परिवर्तन से है। उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट होता है कि आनुवंशिक कारक व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की श्रेणियों को लिखिए।
2. मंदबुद्धिता के वर्गों को लिखिए।

16.5 व्यक्तित्वकेबौद्धिकनिर्धारक

व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता का सीधा सम्बन्ध व्यक्तित्व से है। अब मनोवैज्ञानिक यह भी मानते हैं कि बुद्धिमान वही है, जिसका समायोजन अच्छा है। कुछ बुद्धिमान व्यक्तियों में असामाजिक गुण भी पाये जाते हैं, जैसे-असहिष्णुता, नकारात्मकता, संवेगात्मक अपरिपक्वता, छलकपट,दम्भ, झूठ

आदि ऐसे व्यक्तियों का व्यक्तित्व विकास अच्छा नहीं समझा जाता। कुछ विशिष्ट मानसिक योग्यता वाले व्यक्ति में आकांक्षा स्तर का निम्न होना, उदासीनता, शर्मीलापन, अन्तर्मुखता आदि भी पाये जाते हैं, जो कि समाज में उसके समाजीकरण में अवरोधक कारक होते हैं। इसी प्रकार बौद्धिक स्थिति से उच्च व्यक्तियों में जीवन मूल्यों के प्रति आस्था, उच्च नैतिक स्तर, स्तरीय हास्य आदि गुण परिपक्व व्यक्तित्व के प्रमुख आधार होते हैं, जिससे उनका समायोजन तथा समाजीकरण भी उच्च स्तर का होता है।

16.6 व्यक्तित्व के यौन निर्धारक

फ्रायड के अनुसार ''धरती एक्स-धुरी पर नहीं बल्कि सैक्स धुरी पर चक्कर काटती है।'' सैक्स व्यक्ति के व्यवहार का एक महत्वपूर्ण कारक है। जिस व्यक्ति का कामव्यवहार सुसंगत होगा, उसका व्यक्तित्व भी उत्तम होगा। हम कामवृत्ति से अतृप्त व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन कर यह जान सकते है कि कामवृत्ति व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। मानसिक रोगों का महत्वपूर्ण कारक व्यक्ति की दमित काम भावना होता है। इसकी विस्तृत चर्चा यहाँ पर सम्भव नहीं है केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि काम का सुसंगत उपयोग व्यक्तित्व के उन्नयन का प्रतीक होता है तथा काम का असंगत उपयोग करना व्यक्तित्व के विकास पर बुरा प्रभाव डालता है।

16.7 संवेगों का व्यक्तित्व पर प्रभाव

संवेग अंग्रेजी शब्द Emotion का पर्यायवाची है। यह लैटिन भाषा के Emovere शब्द से बना जिसका अर्थ है हिला देना। जेम्स डेªवर संवेग को परिभाषित करते है कि ''संवेग शरीर की जटिल अवस्था हैं, जिसमें सांस लेने, नाड़ी ग्रन्थियों, मानसिक दशा, उत्तेजना, अवरोध आदि का अनुभूति पर प्रभाव पड़ता है और मांसपेशियां निर्धारित व्यवहार करने लगती है।''

मैक्डूगल ने 14 प्रकार के संवेग बताये हैं-

1. भय
2. क्र्रोध
3. वात्सल्य
4. घृणा,
5. करुणा
6. आश्चर्य
7. आत्महीनता
8. आत्माभिमान
9. एकाकीपन

10. कामुकता
11. भूख,
12. अधिकार भावना
13. कृतिभाव, तथा
14. आमोद

क्रोध प्रणियों में सबसे प्रमुख संवेग है। क्रोध के सम्बन्ध में गीता में बहुत ही उपयोगी प्रस्तुति स्थिर बुद्धि व्यक्ति का वर्णन करते समय की गयी है। उसका संक्षिप्त यहां प्रस्तुत है-

ध्यायतों विषयान् पुंसः संस्तेषूपजायते।। (2/62)
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। (2/63)
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयान्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैविधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। (2/64)

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़ भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है। बुद्धि नाश हो जाने से व्यक्ति अपनी स्थिति से गिर जाता है। जो व्यक्ति अन्तःकरण को अपने वश में रखता है, वह राग-द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अन्तकाल की प्रसन्नता को प्राप्त कर लेता है। संवेगों पर युक्ति-युक्ति नियंत्रण अच्छे व्यक्तित्व के लिए आवश्यक है। अतः संवेगों पर नियंत्रण के लिए विधिवत् प्रशिक्षण की आवश्यता है।

16.8 व्यक्तित्वपरसफलतातथाअसफलताकाप्रभाव

सफलताएं तथा असफलताएं किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित एवं निर्दिष्ट करती हैं। सफलता तथा असफलता का व्यक्ति पर प्रभाव अलग-अलग प्रकार से होता है। उसके पीछे निहित कारण यह है कि वह व्यक्ति सफलता अथवा असफलता को किस प्रकार ग्रहण करता है। वह असफलता भी बहुत बड़ी सफलता है, जिससे व्यक्ति का चिन्तन विधायक (Positive)हो जाए। सफलता की जो परिभाषा अर्ल नाइटिंगैल ने प्रस्तुत की है, वह इस प्रकार है- मूल्यवान लक्ष्य की

लगातार प्राप्ति का नाम ही सफलता है। (Success is the progressive realization of a worthy.)

सफलता की इस परिभाषा में आये शब्दों का अपना विशिष्ट महत्व है। 'लगातार' का अर्थ सफर है, मंजिल नहीं जहां जाकर हम रुक जायें। मूल्यवान का संकेत हमारे नैतिक मूल्यों से है। हम कहां जा रहे हैं, सही दिशा में या गलत दिशा में एवं लक्ष्य इसलिये महत्वपूर्ण है कि वे हमें रास्ता दिखाते हैं।

सफलता का अर्थ है कि ''आप जानते हैं कि आपने सही काम सही ढंग से पूरा किया''- शिव खेड़ा

सफलता और असफलता के सम्बन्ध में बहुत-कुछ कहा जा सकता है। परन्तु हम यहां पर बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण के सम्बन्ध में ही सोच रहे हैं इसके लिये पहली आवश्यकता है विधायक अभिवृत्ति या शुभ-शुभ सोचना। यदि हम बच्चों में विधायक अभिवृत्ति का निर्माण करने में सफल हो जाते हैं तो सफलता तथा असफलता दोनों ही व्यक्ति निर्माण में विधायक कार्य करेंगी, अन्यथा दूसरी तरह के परिणाम आने की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

1. सफलता का प्रभाव
   i. सफलता सन्तुष्टि प्रदान करती है।
   ii. सफलता भविष्य के लिए प्रेरणा देती है।
   iii. आत्मविश्वास की भावना को विकसित करती है।
   iv. व्यक्ति को प्रसन्नता प्रदान करती है
   v. नवीन चुनौतियों को स्वीकार करने की तत्परता प्रदान करती हैं
   vi. अकांक्षा स्तर में वृद्धि करती है।
   vii. कई बार सफलता से अहंकार (घमण्ड) हो जाता है। व्यक्ति अपने आप को श्रेष्ठ समझने लगता है, जिससे प्रेरणा की कमी आ जाती है। इस प्रकार के अविधायक भावों का विकास न हो यह ध्यान में रखकर सफलताओं का सही उपयोग करना आना चाहिये।

2. असफलताओं का प्रभाव
   i. असफलता से हीनभाव पनपता है।
   ii. असफलता से असफलता ग्रन्थि (Faliure Complex)का निर्माण हो जाता है।
   iii. इससे प्रेरणा में कमी आती है।
   iv. भविष्य की चुनौतियों से विमुख हो जाता है।
   v. दूसरों को असफलता के लिये दोषी ठहराने लगता है।
   vi. क्रोध का प्रदर्शन करना

vii. निरन्तर उदास रहना, अप्रसन्न रहना।

viii. तोड़-फोड़ करने की प्रवृत्ति बढ़ती है।

ix. आत्मप्रत्यय (Self-Concept)का दोषपूर्ण विकास होता है।

इरिक्सन के अनुसार सफलताएं व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वहन करती है।

छोटे बच्चों को सफलताओं की प्राप्ति करने में अध्यापक तथा अभिभावकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है, उन्हें अपना दायित्व पूर्ण करना चाहिये।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

3. ''धरती एक्स-धुरी पर नहीं बल्कि सैक्स धुरी पर चक्कर काटती है'' यह कथन किसका है?
4. जेम्स ड्रेवर द्वारा दी गयी संवेग की परिभाषा को लिखिए।
5. मैक्डूगल ने कितने प्रकार के संवेग बताये हैं?
6. मैक्डूगल द्वारा बताये गये संवेगों के नाम लिखिए।

16.9आकांक्षा स्तर का व्यक्तित्व पर प्रभाव

आकांक्षा व्यक्ति की वे अभिलाषाएं हैं, जिनकी वह कामना करता है। केवल आकांक्षा और कामना करने से उनकी पूर्ति नहीं होती बल्कि आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये प्रयास करने होते हैं। यदि प्रयास सही दिशा में तथा पर्याप्त है तो व्यक्ति की आकांक्षाओं की पूर्ति हो जाती है कई बार व्यक्ति की आकांक्षाएं उसकी योग्यता तथा सामर्थ्य से उच्च होती है और उनकी प्राप्ति के लिए किये गये प्रयास पर्याप्त नहीं होते तो व्यक्ति में कुंठाएं पनप जाती है, जिनसे अग्रधर्षण (Aggression)उत्पन्न होता है फिर यदि अग्रधर्षण सही दिशा में होता है तो पुनः प्रयास करने पर सफलता प्राप्त हो सकती है, अन्यथा व्यक्ति का व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है।

अकांक्षाएं कई प्रकार की होती है-तात्कालिक आकांक्षाएं, दूरस्थ आकांक्षाएं और अवास्तविक अकांक्षाएं। आकांक्षाओं का निर्धारण व्यक्ति को सोच-समझ कर करना चाहिए ताकि आकांक्षाओं की पूर्ति हो सके अन्यथा व्यक्तित्व के विकास पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ता है।

16.10 व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्त

व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्तों में प्रमुख सिद्धान्त हैं- पहला फ्राइड का मनोविश्लेषणवाद तथा दूसरा है इरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धान्त। पहले हम फ्राइड के सिद्धान्त का संक्षित अध्ययन कर रहे हैं।

16.11फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद

फ्रायड का मानना है कि तनाव के चार मुख्य स्रोतों की अनुक्रिया के फलस्वरूप व्यक्तित्व का विकास होता है। ये स्रोत हैं-

1. शारीरिक विकास
2. कुण्ठाएं (Frustrations)
3. संघर्ष (Conflicts) तथा
4. आशंकाएं (Threats)

फ्राइड के मनोविश्लेषण वाद उनके 40 वर्षों (1900-1940) के शोध-अनुभवों पर आधारित है। फ्रायड ने व्यक्तित्व को पांच अवस्थाओं में समझाया है।

1. **मुखीय अवस्था Oral Stage -मुखीय अवस्था को दो उप-अवस्थाओं में बांटा है-**

(क) मुखीय चूषण अवस्था (Oral Sucking Stage)

यह अवस्था जन्म से 8 मास की अवस्था तक रहती है। इस अवस्था में Libidoका स्थिरीकरण मुंह, ओष्ठ और जीभ पर रहता है इस अवस्था में बच्चे का व्यवहार पूर्णरूपेण इड से प्रभावित रहता है। इस अवस्था में बच्चे को चूषण में आनन्द आता है। जब बच्चे को चूषण के लिये मॉ का स्तन नहीं मिलता तो वह अपने हाथ या अंगूठे को चूस कर आनन्द की प्राप्ति करता है। पूरे शरीर के कहीं भी स्पर्श करने से बच्चे को आनन्द आता है। जब दूध पीना अचानक छुड़ाया जाता है तो बच्चे की काम की असन्तुष्टि होती है। फ्रायड ने इसे प्रथम मानसिक आघात (Traumatic Experience) कहा है। इस प्रकार के अनुभवों से आगे चलकर अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो सकते है। इस आयु के बाद इगों का विकास प्रारम्भ हो जाता है।

(ख) **मुखीय काटना अवस्था (Oral Biting Stage)**

यह अवस्था 6 मास के 18 मास तक चलती है। इस अवस्था में आनन्दानुभूति काटने और चूसने से प्राप्त करता है। बच्चा अपनी मां से प्रेम करता है, क्योंकि वह उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है तथा मां से घृणा भी करने लगता है, क्योंकि वह अपना दूध छुड़ा कर बोतल से दूध पिलाती है तथा उसका ठोस आहार प्रारम्भ करती है। बच्चे को इसी समय नई-नई आदतें भी सिखाई जाती हैं। बच्चों अपनी असन्तुष्टि को मां के स्तन को काट कर प्रकट करता है। इसे फ्रायड ने द्वितीय मानसिक आघात (Second Major Traumatic Experience) नाम दिया है।

2. **गुदीय अवस्था (Anal Stage)**फ्रायड ने इस अवस्था को भी दो भोगों में विभिक्त किया है-

(क) **गुदीय निष्कासन अवस्था (Anal Expulsive Stage**)

यह अवस्था 8 मास से 3 वर्ष की अवधि तक रहती है। इस अवस्था में बालक मल निष्कासन से आनन्दानुभूति करता है इस अवस्था में इगो का विकास हो जाता है। वह व्यक्तित्यों को उनके लिंग के आधार पर पहचानना शुरू कर देता है। लड़का सोचने लगता है कि वह बड़ा होकर बाप बनेगा तथा लड़की सोचती है कि वह बड़ी होकर मां बनेगी।

(ख) **गुदीय अवधारणात्मकअवस्था**

यह अवस्था 1 से 4 वर्ष तक रहती हे ै। इस अवस्था में मलमूत्र रोकने में आनन्दानुभूति करता है। कभी-कभी जब वह मलमूत्र नहीं रोक पाता तो दूसरों के सामने अपना आपमान महसूस करने लगता है । इस अवस्था में बालक यह अनुभव करने लगता है कि मां-बाप के लिये वह केन्द्र नहीं है। बल्कि मां-बाप उसके लिये केन्द्र हैं। यह बच्चे के लिये नया आघात है। यदि इन अनुभवों का शोधन हो जाए तो बच्चा आगे चलकर चित्रकार, मूर्तिकार बन सकता है। और यदि प्रतिक्रिया निर्माण (Reaction Formation) हो जाये तो व्यक्ति मलमूत्र से घृणा तथा कंजूसी जैसा व्यवहार अपना लेता है।

3. **लैंगिक अवस्था (Phallic Stage)**

यह अवस्था 3 से 7 वर्ष तक की आयु तक चलती है। इसमें बच्चा अपना लिंग पहचानने लगता है। विपरीत लिंगी से अपना विभेद समझने लगता है। इस अवस्था में बच्चे अपने कामांगों को छेड़कर आनन्द प्राप्त करते हैं। इसी अवस्था में बच्चे में ओडीपस कम्पलेक्स, इलैक्ट्रा कॉम्लेक्स, कास्ट्रेसन (बधिया) कम्पलेक्स तथा शिश्न ईष्या (Penis Envy) जैसे काम्पलेक्स उत्पन्न होते हैं।

4. सुप्तावस्था (Latency Stage)

यह अवस्था 5 से 12 वर्ष तक रहती है। इस अवस्था में लिबिडो सुप्तावस्था में रहता है। इस अवस्था में बालक का सामाजिक दायरा बढ़ता है। माता के प्रति प्रेम, सम्मान में बदल जाता है। मां-बाप द्वारा प्रदर्शित प्रेम अच्छा नहीं लगता।

5. जननेन्द्रिय अवस्था (Genital Stage)

यह अवस्था लैंगिकता के प्रस्फुटन की अवस्था है। इसमें अपने यौन अंगों को जननेन्द्रिय रूप में देखने लगते हैं। लड़के-लड़कियां कहानी-किस्से पढ़ने, मनगढ़न्त कहानियां रचने, कहानियां सुनने, दिवास्वप्न, हस्तमैथुन और समलिंगी कामुकता करने लगते हैं। गन्दे कहे जाने वाले व्यवहार करने लगते है। लड़कियां हल्ला-गुल्ला करना बंद कर संकोची हो जाती है। इस अवस्था के अन्त तक समलिंगी कामुकता छूट जाती है।

फ्रायड का यह विश्लेषण युवाओं के व्यवहार विश्लेषण तथा बच्चों के पारिवारिक निरीक्षण पर आधारित Psycho-biologicalसिद्धान्त है। फ्रायड का मत है कि यदि इन प्रावस्थाओं में व्यक्ति का विकास सामान्य रूप से होता है तो उसका व्यवहार भी समान्य ही होगा। परन्तु यदि विकास में असाधारणता आती है तो व्यक्ति का व्यवहार तथा व्यक्तित्व विकृत हो जाएगा।

इस प्रकार विकसित होने वाले संरचना में तीन धटक पाये जाते है इड, इगो तथा सुपर ईगो।

इड (Id)फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व का मूलस्रोत इड ही है। नवजात शिशु में इड ही रहता है। इसके बाद ईगो तथा सुपर ईगो का विकास होता है। इड में यौन तथा आक्रामकता आदि सभी अन्तर्नोद Drive)रहते हैं। इसमें लैंगिक ऊर्जा भी होती है, जिसेLibidoकहते हैं। इड सदैव सुखानुभूति सिद्धान्त के आधार पर कार्य करता है। इससे इच्छाओं का भण्डार कहा जाता है।

ईगो (अहम्) अहम् का विकास इड से होता है। यह वास्तविकता को अधिक महत्व देता है। यह वास्तविकता के सिद्धान्त पर कार्य करता है। यह निर्णय अहम् का ही होता है कि कौन-सी आवश्यकता की पूर्ति कब होगी। यह इड तथा परा अहम् के बीच की कड़ी है।

परा अहम् (Super Ego) पराअहम् को नैतिक मन भी कह सकते हैं। यह सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों आदर्शों तथा प्रचलनों का प्रतिनिधित्व करता है। यह व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले व्यवहार के औचित्य तथा सामाजिक मानदण्डों के सन्दर्भ में उसकी वांछनीयता का मूल्यांकन करता है। यह आदर्श के सिद्धान्त (Principle of Ideals) का अनुसरण करता है।

फ्रायड के अनुसार अवांच्छित तथा अप्रासंगिक इच्छाओं को परा अहम् दमन (Repression) कर देता है। और वे अचेतन मन में पड़ी रहती है। परन्तु अनुकूल अवसर जाने पर वे पुनः सक्रिय हो जाती है। प्रारम्भ में बालक अपनी प्रत्येक इच्छा को पूरा करना चाहता है परम अहम् (नैतिकता) के विकास के साथ-साथ उसमें उचित-अनुचित का ज्ञान बढ़ता है। वह इच्छा की अपेक्षा औचित्य पर अधिक ध्यान देने लगता है। बच्चे अपने माता-पिता तथा अन्य लोगों का अनुसरण करके अच्छे गुण सीखते हैं तथा उन जैसा बनने का प्रयास (तादात्मीकरण) भी करते हैं।

16.12 इरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धान्त

इरिक्सन (1963) भी मनोविश्लेषणवादी ही रहे हैं। परन्तु इनका विश्वास था कि व्यक्तित्व विकास में जैविक कारकों की अपेक्षा सामाजिक कारकों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। बच्चे के जीवन में जिस प्रकार की अनुभूतियां होंगी, वह उन्हीं के अनुरूप विकास भी करेगा। फ्रायड की तरह इरिक्सन भी मानते हैं कि विकास की किसी एक अवधि में जो अनुभव होता है वह उसके आगामी विकास को भी प्रभावित करता है। इरिक्सन इड की अपेक्षा अहम् के विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इरिक्सन ने विकास को आठ अवस्थाओं में विभक्त किया है-

1. **आस्था बनाम अनास्था (Trust Vs Mistrust)**यह अवस्था जन्म से एक वर्ष की आयु तक रहती हैं इस अवस्था में बालक परिवार में रहता है, उसका सामाजिक परिवेश सीमित रहता है। प्यार मिलने के कारण उसकी माता-पिता के प्रति आस्था का विकास होता है। यदि प्यार नहीं मिला तो अनास्था का विकास होगा तथा इस अविश्वास (अनास्था) के साथ ही अगली अवस्था में प्रवेश करेगा।
2. **स्वायतता बनाम सन्देह (Autonomy Vs Doubt)** यह अवस्था 1 से 2 वर्ष तक की अवधि तक रहती है। इस आयु में पर्यावरण के प्रति जिज्ञासा का विकास होता है। बालक में आत्म-नियंत्रण एवं इच्छा-शक्ति का तीव्र विकास होने लगता है। प्यार मिलने पर बालक में आत्मनियंत्रण एवं इच्छा शक्ति का तीव्र विकास होने लगता है। प्यार मिलने पर बालक में आत्मविश्वास बढ़ता है। दण्डित किये जाने पर शर्महीनता तथा निराशा का विकास होता है। मजाक बनाने पर उसे अपनी क्षमता पर सन्देह होने लगता है।
3. **पहल बनाम ग्लानि (Initiative Vs Guilt)** यह अवस्था 3 से 5 वें वर्ष की होती है इसमें बालक का सामाजिक दायरा बढ़ता है। उसके परिवेश में वृद्धि होती है। इस अवस्था में कुछ करने की अभिलाषा तथा जिम्मेदारी की भावना का विकास होता है। कार्य में सफलता मिलने पर प्रंशसा मिलती है। बच्चे में पहल करने की भावना का विकास होता है। निन्दा करने पर वह स्वयं को दोषी ठहराता है। यदि उसे असफलता पर निन्दा मिलती है तो वह काम की तरफ से मन चुराने लगता है। अतः इस आयु में असफलता का भान नहीं होने देना चाहिये।
4. **परिश्रम बनाम हीनता (Industry Vs Inferiority)** यह अवस्था 6 से 12 वर्ष तक मानी जाती है पूर्व अवस्था में यदि बालक को असफलता मिली होती है तो वह हीनता के भाव से ग्रस्त हो जाता है तथा कार्य से बचने की प्रक्रिया अपनाता है। उसे प्रोत्साहन देकर कार्य में आगे बढ़ने की प्रेरणा देनी चाहिये ताकि वह एक सामाजिक प्राणी बन सके।
5. **अस्तित्व बनाम भूमिका द्वन्द्व (Identity Vs Role Conflict)** यह अवस्था 13 से 18 वर्ष तक की आयु तक मानी जाती है। इसमें व्यक्ति अपनी पहचान बनाना चाहता है।

वह अपना लक्ष्य निर्धारित करता है। यदि वह असफल होता है तो वह द्वन्द्व की स्थिति में आ जाता है उससे उनमें कर्त्तव्य परायणता तथा निष्ठा का भाव अवरोधित हो जाता है।

6. **आत्मीयता बनाम पार्थक्य (Affiliation Vs Isolation)** यह अवस्था 19 से 35 वर्ष की आयु तक रहती हैं इसमें मित्रता, प्रतिस्पर्धा तथा सहयोग की भावना बढ़ती है। परन्तु निराशा, असफलता, हीनता एवं द्वन्द्व होने पर एकाकीपन की प्रवृत्ति विकसित होती है। समायोजन तथा उपलब्धि घटिया स्तर की हो जाती है।
7. **उत्पादकता बनाम निष्क्रियता (Productivity vs Inaction)**इस अवस्था का विस्तार 36 से 55 वर्ष तक होता है। इसमें व्यक्ति के (सामाजिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत) दायित्व बढ़ते हैं ,जिससे क्षमता विभाजित हो जाती है। समाज तथा परिवार विभिन्न प्रकार की अपेक्षाएं करते हैं। यदि वह अपने दायित्व का ठीक प्रकार पालन नहीं करता तो उसका व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है।
8. **सत्यनिष्ठा बनाम निराशा (Integrity Vs Despair)**इस अवस्था का प्रारम्भ 55 वर्ष की आयु से जीवन के अन्त तक रहता है। उसे अपनी उपलब्धियों तथा अपना अतीत बार-बार याद आता है और वह अपना स्वमूल्यांकन करने लगता है। यदि भूतकाल सुखमय उपलब्धियों से भरपूर रहा है तो वह अपना जीवन उमंग और उत्साह के साथ बिताता है। और यदि वह असफल रहा है तो उसका आगामी जीवन निराशा तथा चिन्ता के द्वारा कष्टमय बन जाता है।

इरिक्शन के सिद्धान्त में एक बात बहुत महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति को भी असफलता का मुंह न देखना पड़े, उसे वह निरन्तर प्रोत्साहन, प्रेम, सहानुभूति मिलती रहे तो व्यक्तित्व का उचित विकास होता है।

यह जानकारी अध्यापकों के लिये विशेष महत्वपूर्ण है कि वे बच्चों को निरन्तर प्रोत्साहित करते रहें तथा उन्हें प्रेरणा प्रदान करते रहें।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. अकांक्षाएं कितने प्रकार की होती हैं?
8. मनोविश्लेषणवाद का सिद्धांत किसने प्रतिपादित किया है?
9. मनोसामाजिक सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया है?
10. फ्रायड का अनुसार तनाव के चार मुख्य स्रोतों कौन से हैं?
11. फ्रायड द्वारा दी गयी व्यक्तित्व की पांच अवस्थाओं के नाम लिखिए।
12. इरिक्सन ने विकास को किननी आठ अवस्थाओं में विभक्त किया है?

16.13सारांश

व्यक्तित्व के विकास का मुद्दा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षा के माध्यम से हम बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए कृत संकल्प है। व्यकित्व विकास में अनुवंशिकता अतःस्रावी ग्रन्थियों व्यक्ति की शरीर रचना, बौद्धिक क्षमता, लिंग तथा संवेगों के साथ व्यक्ति का आकांक्षा स्तर तथा व्यक्ति को मिलने वाली सफलता तथा असफलता अपना प्रभाव डालती है। फ्राइड मानते हैं कि व्यक्ति के स्वयं के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में उसका विकास सामान्य होता है, तो व्यक्ति का व्यवहार सामान्य रहेगा। यदि विकास में अवरोध आता है तो व्यक्तित्व में विकृति आ जाती है। एरिकशन के सिद्धान्त से बच्चों को प्यार मिलना बहुत आवश्यक है। असफलता मिलने के कारण ग्लानि का विकास हो जाता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण जन्म से मृत्यु पर्यन्त चलता रहता है। सभी सिद्धान्तों तथा मनोविज्ञान के प्रयोगों से यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है। कि बच्चों को भरपूर प्यार मिले तथा उन्हें असफलता का सामना न करना पड़े। अतः हमारा दायित्व यह बनता है कि बच्चों को रमणीयता से शिक्षा प्रदान करे तथा उन्हें असफलता का सामना न करने दें तभी हमारा शिक्षण सफल सिद्ध होगा।

16.14 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर

1. व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की श्रेणियाँ निम्न हैं-
   i. आनुवंशिक तथा दैहिक कारक,
   ii. पर्यावरणीय कारक,
   iii. मनोवैज्ञानिक कारक,
   iv. समाजिक कारक, तथा
   v. सांस्कृतिक कारक

2. मंदबुद्धिता के तीन वर्ग हैं- जड़ बुद्धि जिसकी बुद्धिलब्धि 1 से 19 तक होती है, मूढ़ता जिसमें बुद्धिलब्धि 20 से 49 तक होती है, दुर्बल बुद्धि जिसमें बुद्धिलब्धि 50 से 69 तक होती है।
3. यह कथन फ्रायड क है।
4. ‘‘संवेग शरीर की जटिल अवस्था हैं, जिसमें सांस लेने, नाड़ी ग्रन्थियों, मानसिक दशा, उत्तेजना, अवरोध आदि का अनुभूति पर प्रभाव पड़ता है और मांसपेशियां निर्धारित व्यवहार करने लगती है।’’
5. मैक्डूगल ने 14 प्रकार के संवेग बताये हैं।

6. मैक्डूगल द्वारा बताये गये संवेगों के नाम निम्न हैं-

   भय ,क्रोध, वात्सल्य, घृणा,करुणा, आश्चर्य, आत्महीनता, आत्माभिमान, एकाकीपन, कामुकता, भूख,अधिकार भावना, कृतिभाव, तथाआमोद
7. अकांक्षाएं निम्न प्रकार की होती हैं-तात्कालिक आकांक्षाएं, दूरस्थ आकांक्षाएं और अवास्तविक अकांक्षाएं।
8. मनोविश्लेषणवाद सिद्धांत फ्राइड ने प्रतिपादित किया है।
9. मनोसामाजिक सिद्धान्त इरिक्सन ने प्रतिपादित किया है।
10. फ्रायड के अनुसार तनाव के चार मुख्य स्रोतों निम्न हैं-
    i. शारीरिक विकास
    ii. कुण्ठाएं (Frustrations)
    iii. संघर्ष (Conflicts) तथा
    iv. आशंकाएं (Threats)
11. फ्रायड द्वारा दी गयी व्यक्तित्व की पांच अवस्थाओं के नाम निम्न हैं-
    i. मुखीय अवस्था
    ii. गुदीय अवस्था
    iii. लैंगिक अवस्था (Phallic Stage)
    iv. सुप्तावस्था (Latency Stage)
    v. जननेन्द्रिय अवस्था (Genital Stage)
12. इरिक्सन ने विकास को आठ अवस्थाओं में विभक्त किया है।

16.15 संदर्भ ग्रंथ

1. Clifford T.Morgon,Richard A. King, John R.Weisz, John Schopler.(1993); Introduction to Advanced Educational Psychology,17 ed, New Delhi.TATA McGraw-Hill edition.
2. Cronbach, I.J. (1970), Essentials of Psychological Testing, 3rd ed., New York; Harper and Row Publishers.
3. Charles, E. Skinner (1990) : Education Psychology (Hindi) New Delhi, Disha Publications
4. Gardner, Howard (1999): The Disciplined Mind. New York: Simon Schuste

5. Gupta, S.P. (2002) : उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
6. Dandapani, S. (2007). Advanced Educational Psychology, New Delhi.Anmol Publications Pvt. Ltd.
7. Ebel, Robert L,(1979), Essentials of Psychological Measurement, London; Prentice Hall International Inc.
8. Freeman, Frank S. (1962); Theory and Practice of Psychological Testing, New Delhi; Oxford and IBN Publishing Co.
9. Kuppuswamy, B.(2006), Advanced Educational Psychology ,New Delhi. Sterling Publishers Private Ltd.
10. Lindquist, E.F (1951), Educational Measurement, Washington D C .American Council on Education.
11. Mangal, S.K. (2007) Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.
12. Mathur, S.S. (2007), Educational Psychology, Agra VinodPustakMandir.
13. Shukla, O.P. (2002): शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन।
14. Singh, Shireesh Pal (2009) :शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो।
15. Thorndike, R.L. & Hagen, E.P. (1969).Measurement and Evaluation in Psychology and Education 3rd ed; New York; John Wily&SonsInc
16. Williams, W.M. et al (1996): Practical Intelligence. New York: Harper Collins College Publications.

16.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. इरिक्सन के सिद्धान्तों की बिन्दुवार व्याख्या किजिए।।
2. व्यक्तित्व के विकास में फ्राइड का महत्वपूर्ण योगदान क्या है स्पष्ट करें।
3. व्यक्तित्व के विकास में अतःस्रावी ग्रन्थियों के प्रभाव की सूची का निर्माण करें
4. निम्नलिखित की व्याख्या खोज करके लिखें-
    1. ओड़ीपस कॉम्पलेक्स
    2. इलेक्ट्रा कॉम्पलेक्स
    3. कास्ट्रोशन कॉप्लेक्स
    4. पैनिस एन्वी

5. शरीर में आयोडीन तत्व की कमी के लक्षण
6. प्रोजेस्ट्रोन हारमोन
7. मधुमेह रोग का कारण तथा उस के मानसिक तथा शारीरिक प्रभाव
8. डाउन सिन्ड्रोम
9. यौन अपसामान्यताएं।

इकाई 17- व्यक्तित्व मापन की विधियाँ
Assessment of Personality: Techniques

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 व्यक्तित्व मापन की विधियों का वर्गीकरण
17.4 व्यक्तित्व मापन की प्रमुख विधियाँ
17.5 आत्मनिष्ठ विधियाँ
17.6 परिस्थिति विश्लेषण विधि
17.7 प्रक्षेपण विधियाँ
17.8 मनोविश्लेषण विधियाँ
17.9 सारांश
17.10 शब्दावली
17.11 स्वमूल्यांकन प्रश्नों हेतु उत्तर
17.12 संदर्भ ग्रन्थ
17.13 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

व्यक्तित्व अनेक गुणों या लक्षणों का संगठन माना जाता है। इस गुणों के आधार पर हम व्यक्ति को- उत्साही, निराश मिलनसार-एकान्त प्रिय, उद्विग्न, चिन्तामुक्त, मिलनसार, विनोदप्रिय, तुनक-मिजाज, शान्त-उद्वितग्न, उत्तरदायी-लापरवाह, परिश्रमी निठ्ठला, शिष्ट-अशिष्ट, मैत्रीपूर्ण-सन्देहशील, उत्तेजित होने वाला-सहनशील, कोमल हृदय-कठोर हृदय, आत्मस्वाभिमानी-आत्मगौरवविहीन, द्रवित होने वाला-कठोर, तेजी से काम करने वाला (चुस्त) सुस्त, सफाईपसंद-गलीच, आदि के रूप में वर्गीकृत करते रहते हैं। मनोविज्ञानी हैनरी इगैरिट ने तो यहाँ तक कहा है कि इस प्रकार के अंगरेजी शब्दों की संख्या 18,000 से अधिक है। व्यक्तित्व परीक्षण, इस प्रकार अनेक गुणावगुणों से युक्त व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन करने में सहायक होते हैं परन्तु मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व परीक्षण के लिए इन सभी गुणावगुणों को सम्मिलित न करने इन गुणावगुणों के समूह बनाए तथा समूहों को व्यक्तित्व परीक्षणों के लिए प्रयुक्त किया। यद्यपि व्यक्तित्व परीक्षण की अनेक विधियाँ है फिर भी व्यक्तित्व

परीक्षणों से मनोविज्ञानी संतुष्ठ नहीं है। मनोविज्ञानी राबर्ट एस. ऐलिस (Robert S.Ellis) ने तो यह कहा है कि ''व्यक्तित्व के मनोविज्ञान ने अभी पर्याप्त प्रगति नहीं की है और इस लिए व्यक्तित्व परीक्षण अभी तक जांच की कसौटी पर है।'' परन्तु इस कथन से हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वर्तमान में परीक्षण के उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमारे पास एक नहीं कई-कई परीक्षण उपलब्ध है। उदाहरण के लिए किसी कुण्ठाग्रस्त व्यक्ति की कुण्ठा के कारणों को जाने के लिए कई परीक्षण हैं जिनमें से किसी, एक अथवा अधिक का प्रयोग कर सकते हैं। निराशा आदि के लिए भी कहा जा सकता है। इस इकाई में हम व्यक्तित्व-मापन की विधियों का संक्षेप में अध्ययन कर रहे हैं।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने पश्चात आप-

1. व्यक्तित्व मापन विभिन्न विधियों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
2. व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों की व्याख्या कर सकेंगे।
3. व्यक्तित्व अध्ययन के लिए प्रयुक्त विधियों के गुण तथा कमियों को लिख सकेंगे।

17.3 व्यक्तित्व मापन की विधियों का वर्गीकरण

व्यक्तित्व मापन के परीक्षणों को हम तीन वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

i. आत्मनिष्ठ विधियाँ (**Subjective Methods**) ये व्यक्ति के अनुभव एवं धारणा पर निर्भर करती है। इस प्रकार का मापन जीवन-इतिहास, प्रश्नावली, साक्षात्कार तथा आत्मकथा के आधार पर किया जाता है।

ii. परिस्थिति परीक्षण विधियाँ (**Situation test**): व्यक्ति के व्यवहार के अध्ययन के लिए समाजमिति (Sociometery), नियंत्रित निरीक्षण, आदि विधि परिस्थिति परीक्षण श्रेणी में आते हैं।

iii. प्रक्षेपण विधियाँ (**Projective test**) इस प्रकार के परीक्षणों में प्रत्यक्ष या परोक्ष विधि द्वारा उत्तेजक प्रस्तुत किए जाते हैं। जिन पर व्यक्ति अपने विचार व्यक्त करता है। और व्यक्ति के विचारों का विश्लेषण करके परीक्षणकर्ता अपने उद्देश्य के अनुरूप निष्कर्ष पर पहुंचता है। इस प्रकार के परीक्षणों में व्यक्ति के अचेतन में व्यवहार को अभिव्यक्त किया जाता है। इस प्रकार के परीक्षणों में टी.ए.टी., सी.ए.टी. वाक्यपूर्ति , कहानी रचना, जैसे परीक्षण आते हैं। रोर्शा (Rorschach) का स्याही धब्बा परीक्षण इस श्रेणी में महत्वपूर्ण परीक्षण है।

इस प्रकार तीन श्रेणियों में विभक्त किए गये परीक्षणों में से प्रमुख परीक्षणों का अध्ययन आगे की पंक्तियों में कर रहे हैं।

17.4 व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियाँ

आगे के प्रस्तुतीकरण में हम व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों तथा उनके उपयोग के बारे में अध्ययन कर रहे हैं।

17.5 आत्मनिष्ठ विधियाँ

इन विधियों में प्रमुख विधियाँ जीवन इतिहास, साक्षात्कार, आत्मकथा तथा प्रश्नावली विधियाँ आती है। पहले हम प्रश्नावली विधि से प्रारम्भ कर रहे हैं।

प्रश्नावली विधि:

प्रश्नावली विधि का प्रयोग जिन कार्यों के लिए किया जाता है , वे हैं- (1) व्यक्ति की चिन्ता, परेशानियों आदि से सम्बन्धित क्रमबद्ध सूचना प्राप्त करने के लिए (2) व्यक्ति की आर्थिक, धार्मिक विश्वास, सामाजिक विचारों की जानकारी प्राप्त करने के लिए। प्रश्नावली का निर्माण परीक्षण के उद्देश्यों का ध्यान में रख कर किया जाता है। प्रश्नावलियाँ कई प्रकार की होती हैं।

i. बन्द-प्रश्नावली (**Closed Questionnaire**): इस प्रश्नावली में प्रश्नों को दो या अधिक पूर्व निश्चित उत्तर रहते हैं। आमतौर पर उत्तर हाँ या नहीं में होता हैं। कभी तीन प्रत्यूतर भी रहते हैं हाँ तथा नहीं के साथ कभी-कभी भी रहता है। उत्तरों के आधार पर अंक प्रदान किए जाते हैं।

ii. खुली प्रश्नावली (Open Questionnaire) इस प्रश्नावली में प्रश्नों के उत्तर, उत्तरदाताओं को लिखना होता है इन उत्तरों का विश्लेषण किया जाता हैं विश्लेषण का आधार प्रश्नावली के निर्माता के द्वारा प्रश्नावली के उद्देश्य के आधार पर निर्धारित किये जाते हैं जो कि परीक्षण के मैनुअल में दिये गये होते हैं। उदाहरण के लिए अन्तर्मुखी तथा बहिर्मुखता की प्रश्नावली में प्रत्येक प्रश्न सम्भावित उत्तरों की सूची में से चयन करके अंक दिये जाते हैं। यद्यपि यह प्रश्नावली, बन्द प्रश्नावली की भी अपेक्षा अंकन कार्य करने में कुछ समय अधिक लेती है। परन्तु इसकी विश्वसनीयता अपेक्षाकृत अधिक रहती है।

iii. सचित्र-प्रश्नावली (**Pictorial Questionnaire**): इस प्रश्नावली में चित्र दिये हुए होते है। प्रश्न के उत्तर में किसी एक चित्र का चयन करने के लिए उत्तरदाता को कहा जाता है।

iv. मिश्रित प्रश्नावली (**Mixed Questionnaire**) इस प्रकार की प्रश्नावली में उपर्युक्त तीनों प्रकार के प्रश्न रहते हैं। जिससे प्रश्नावली की विश्वसनीयता तथा वैधता बढ़ जाती है।

प्रश्नावली के माध्यम से व्यक्तित्व का अध्ययन करने के अपने गुण तथा सीमाएं (Limitation) हैं। इस विधि से अध्ययन करने पर अनेक व्यक्तियों का अध्ययन किया जा सकता है। अनेक व्यक्तियों के उत्तर आने पर उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। इन विधि द्वारा व्यक्ति के किसी भी व्यक्तित्व गुण का अध्ययन किया जा सकता है। प्रश्नावली विधि की सीमाओं में से प्रमुख है। व्यक्ति द्वारा किसी एक या अनेक प्रश्नों के उत्तर नहीं देना जिस से मापन में कमी आती है। कई बार उत्तरदाता प्रश्न का अभिप्राय नहीं समझ पाता, कभी-कभी व्यक्ति जानबूझकर अथवा अनजाने में गलत उत्तर दे देता है।

अनेक सीमाओं के होते हुए प्रश्नावली द्वारा व्यक्तित्व अध्ययन किया जाता है तथा अच्छे परिणाम भी प्राप्त किये जा सकते हैं आर. एस. वुडवर्थ ने अपनी पुस्तक Psychology में कहा है- ''यदि प्रश्नों का निर्माण सावधानीपूर्वक किया जाए तो प्रश्नावलियों में पर्याप्त विश्वसनीयता होती है।'' निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि प्रश्नावली की विश्वसनीयता तथा वैधता उसके निर्माणकर्ता की योग्यता तथा परिश्रम पर निर्भर करती है। प्रश्नावली का उदाहरण वुडवर्थ की एक प्रश्नावली के रूप में प्रस्तुत है। जो कि उन्होंने बहिर्मुखी तथा अन्तर्मुखी व्यक्तित्व के अध्ययन के लिये निर्मित की थी।

1. क्या आपको लोगों के समूह के सामने बातें करना अच्छा लगता है। हाँ/नहीं।
2. क्या आप दूसरों को सदैव अपने से सहमत करने का प्रयास करते हैं? हाँ/नहीं।
3. क्या आप आसानी से मित्र बना लेते हैं? हाँ/नहीं
4. क्या आप परिचितों के बीच स्वतंत्रता का अनुभव करते हैं? हाँ/नहीं।
5. क्या आप सामाजिक समारोहों में स्वतंत्रता का अनुभव करते है? हाँ/नहीं
6. क्या आप इस बात से परेशान रहते हैं कि लोग आप के बारे में क्या सोचते हैं?

   हाँ/नहीं
7. क्या आपको दूसरे लोगों के इरादों पर शक रहता है? हाँ/नहीं
8. क्या आप में हीनता की भावना है? हाँ/नहीं।
9. क्या आप छोटी-छोटी बातों से परेशान रहते हैं? हाँ/नहीं
10. क्या आपकी भावनाओं को जल्दी ठेस लगती है हाँ/नही।

यदि पहले पांच प्रश्नों के उत्तर हाँ में हैं तो व्यक्ति बर्हिमुखी है। यदि अन्तिम पांच प्रश्नों के उत्तर हाँ में हैं तो व्यक्ति अन्तर्मुखी है।

1. फ्रीमैन ने व्यक्तित्व प्रश्नावलियों को 5 प्रकारों में विभक्त किया है।

2. विशिष्ट शीलगुणों का मापन करने वाली प्रश्नावली।
3. पर्यावरण के भिन्न पक्षों के साथ समायोजन का मूल्यांकन करने वाली प्रश्नावलियाँ।
4. विभिन्न चिकित्सकीय समूहों में वर्गीकृत करने वाली प्रश्नावली।
5. व्यक्तियों को दो अथवा दो से अधिक समूहों में वर्गीकरण करने में सहायक प्रश्नावलियाँ।
6. रुचि ,मूल्य, अभिवृत्ति तथा अभिमतों का मूल्यांकन करने वाली प्रश्नावलियाँ।

सभी प्रश्नावलियों का आधारभूत सिद्धान्त है कि किसी व्यक्तित्व के व्यवहार तथा व्यक्त्वि के शील गुणों को प्रकट रूप से व्यक्त व्यवहार से जाना जा सकता है।

साक्षात्कार विधि (Interview Method)

साक्षात्कार दो प्रकार का होता है। (1) अनौपचारिक (2) औपचारिक। साक्षात्कार में व्यक्ति से उसके व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए अनेक प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं।

अनौपचारिक साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता व्यक्ति कम प्रश्न पूछता है बल्कि वह साक्षात्कारदाता को विस्तारपूर्वक उत्तर देने का अवसर प्रदान करता है। प्रश्नों के माध्यम से व्यक्ति का अध्ययन व्यकित के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित होने चाहिए। या फिर जिस व्यक्तित्व गुणधर्म का हम अध्ययन करना चाहते हैं उससे सम्बंन्धित होने चाहिए। व्यक्तित्व के जिन गुणों का अध्ययन साक्षात्कार के माध्यम से किया जा सकता है वे अनेक हो सकते हैं जैसे-दयालुता.सर्वधर्म सद्भाव, पंथनिरपेक्षता, आत्मकेन्द्रित, अग्रधर्षण' सरलता, झगडालूपन, हटीलापन रौबदार, संकोची, निष्पक्षता, ईमानदारी, सुवाच्यता, गुस्सैल, गम्भीरता, मित्रतापूर्ण, खुशमिज़ाज, सहयोग देने वाला, आत्मश्लाघी, आत्मसंयमी, स्वाग्रही (Self assertive), आत्मसंयमी, आत्मतुष्ट, आत्मविश्वासी, आत्मनिन्दक, अहंकारी, निःस्वार्थ, हठधर्मिता, आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता बकवादी (Chatter), विनम्रता, आत्मविश्वास, विश्वसनीयता, अक्खडपन Arrogance), परिपक्वता (Maturity) आदि गुणों को परखा जा सकता है। साक्षत्कार मात्र वार्तालाप नहीं होता बल्कि हमारे पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति का साधन होता है।

आमतौर पर नौकरियों के लिए चयन करने में विषयों की लिखित परीक्षाओं के साथ में साक्षात्कार का आयोजन व्यक्तित्व परीक्षण के लिए किया जाता है। यदि साक्षात्कार में विषयवस्तु सम्बन्धी प्रश्न पूछे जाते हैं तो यह साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति की योग्यता है परन्तु यदि साक्षात्कार में व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रश्नों को विषय के साथ सम्बन्ध स्थापित करके पूछा जाता है और उनका सम्बन्ध हमारे संविधान में निहित लक्ष्यों के साथ सम्बन्धित करके पूछा जाता है तो वह साक्षात्कर्ताओं की विशिष्ट योग्यताओं का प्रदर्शित करता है।

साक्षात्कार पूर्व-संरचित (Structured) हो तो उससे साक्षात्कार की विश्वसनीयता बढ़ती है। क्योंकि इन्हीं के माध्यम से हम व्यकितत्व के विभिन्न गुणों का अध्ययन कर सकते हैं। साक्षात्कार संक्षिप्त वार्तालाप के माध्यम से व्यक्ति को समझने की विधि है।

आत्मकथा लेखन (Autobiography):

व्यक्तित्व के किसी एक या अधिक गुणों की जानकारी के लिए अध्ययनकर्ता उस व्यक्ति को जिसका व्यक्तित्व परीक्षण करना है उसे एक प्रकरण पर अपनी आत्मकथा लिखने के लिए कहता है। इस कथा का विश्लेषण करके अनुसंधायक व्यक्तित्व के एक अथवा कई पक्षों पर निर्णय लेता है।

आत्मकथा लेखन का कार्य कहानी लिखने से भी पूरा किया जाता है जैसा कि सी.ए.टी. तथ टी.ए.टी. प्रक्षेपी परीक्षणों में किया जाता है। क्योंकि इन में चित्रों के आधार पर व्यक्ति अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर कहानी को अप्रत्यक्ष रूप से लिखता है।

मानदण्ड मापनी (Rating Scale):

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व गुणों का अध्ययन करने के लिए उस व्यक्ति के गुणों का आंकलन सम्बन्धित व्यक्तियों से कराया जाता हैं उदाहरण के लिए किसी अध्यापक के व्यक्तित्व गुणों का अध्ययन उसके छात्रों से कराया जा सकता है। विभिन्न व्यक्तित्व गुणों के लिए एक मानदण्ड अथवा अनेक मानदण्ड निर्धारित किये जा सकते हैं। उदाहरण:

1. आपके अध्यापक का सामान्य व्यवहार कैसा है?

निरंकुश	साधारण	लोकतांत्रिक

2. अध्यापक की समय की पाबन्दी (Punctuality of time) का स्तर कैसा है?

अत्यन्तलापरवाह	सामान्य से कम पाबन्द	साधारणतया पाबन्द	अत्यन्त पाबन्द	उदाहरण देने लायक पाबन्द

3. अध्यापक का शाब्दिक व्यवहार कैसा है?

निकृष्ट	सामान्य	मध्यम	उत्तम	अतिउत्तम

4. आपके अध्यापक के विषय ज्ञान के सम्बन्ध में सूचित करें।

साधारण	मध्यम	उत्तम

5. अध्यापक की शिक्षण शैली (Teaching style) कैसी है?

बेकार	सामान्य से निम्न	सामान्य	उत्तम	अत्यन्त उत्तम

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. व्यक्तित्व मापन के परीक्षणों के तीन वर्गों के नाम लिखिए।
2. आत्मनिष्ठ विधि की किन्हीं दो प्रमुख विधियों के नाम लिखिए।
3. प्रश्नावली के प्रकारों के नाम लिखिए।

17.6 परिस्थिति परीक्षण विधि (Situation Tests)

जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में कार्यरत व्यक्ति के व्यवहार को जानने के लिए परिस्थिति परीक्षण विधियों का उपयोग किया जाता है। परिस्थिति परीक्षण में दो प्रमुख विधियाँ हैं। (1) समाजमिति विधियाँ तथा (2) मनोनाटक (Psychodrama) इन विधियों का उपयोग, व्यक्तित्व मापन करने में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इनके बारे में संघनित जानकारी आगे प्रस्तुत की जा रही है।

समाजमिति विधि (Socio Metric Method):

इस विधि का प्रतिपदान जे.एल. मोरेनो (J.L. Moreno) ने सन् 1934में किया था। इस विधि में व्यक्तियों के समूह में सर्वोत्तम तथा निम्नतम स्थिति के व्यक्तियों का मापन किया जा सकता है।

कक्षा में शीलगुणों के मापन के लिए नीचे एक समाजमिति मापनी प्रस्तुत की जा रही है।

उदाहरण -1

शीलगुणों के मापन के लिए समाजमिति प्रपत्र

निर्देशः नीचे कुछ व्यक्तित्व गुणों से सम्बन्धित एक दिधुरवीय सूची दी गई हैं आपके विचार से अपनी कक्षा के इन व्यक्तित्व शीलगुणों में सर्वश्रेष्ठ का चयन प्रत्येक गुण के आधार पर अलग-अलग छात्रों के लिए कीजिए। कृपया अपने निष्पक्ष विचार लिखें। आपके उत्तरों को गोपनीय रखा जाएगा।

आपका नाम	कक्षा		दिनांक
सर्वाधिक उपयुक्त छात्र का नाम	व्यक्तित्व शील गुण		सर्वाधिक उपयुक्त छात्र का नाम
	विनम्र	झगडालू	
	संकोची	सामाजिक	
	परिश्रमी	आलसी	
	साहसी	डरपोक	
	आत्मकेन्द्रित	व्यावहारिक	
	अपरिपक्व	परिपक्व	
	स्थिर	भ्रमित	

उदाहरण -2

समाजमिति प्रपत्र

निर्देश: हमारे विद्यालय में हैडगर्ल का चुनाव होना है। विद्यालय की नियमावली के आधार पर केवल 5 छात्राएं हैडगर्ल के चयन के लिए उपयुक्त पाई गई है। इन छात्राओं में से केवल तीन छात्राओं को अपनी सहमति देने के लिए उन्हें वरीयताक्रम देने का कार्य आपकों करना है। जिसे आप सर्वश्रेष्ठ मानते हैं इसके नाम के सामने प् लिखे जिसे आप दूसरे क्रम पर मान रहे हैं उस के नाम के सामने प्प् लिखे तथा जिसे आप तीसरे क्रम पर मान रहे हैं उसके नाम के सामने III लिखें।

आशा है आप योग्यताओं का विचार करते हुए वरीयता क्रम प्रदान करेंगे। क्योंकि आपको सर्वश्रेष्ठ का चुनाव करना है।

छात्राओं के नाम	प्रदत्त वरीयता क्रम
1. नीहारिका	
2. सारिका	
3. शिवांगी	
4. शिवानी	
5. शैली	

इस समाजमिति में अंकन कार्य करने के लिए वरीयताक्रम I पर तीन अंक वरीयताक्रम II पर 2 अंक तथा वरीयताक्रम III पर एक अंक दिया जायेगा। जिस के अंक सर्वाधिक होंगे उसे हैडगर्ल का पद भार सौंप दिया जायेगा।

उदाहरण -3

हैडगर्ल के लिए नामित 5 छात्राएं अपने में से किसी एक का चयन सांस्कृतिक सचिव के लिए करें तो उसके लिये समाजमिति प्रपत्र इस प्रकार होगा।

निर्देश: आप को अपने से किसी एक का चयन सांस्कृतिक सचिव के लिये करना है। आपकी दृष्टि में कौन सबसे उत्तम सांस्कृतिक सचिव सिद्ध होगी और कौन सबसे कम उपयुक्त सांस्कृतिक सचिव सिद्ध होगी। अपने मत व्यक्त करने के लिए यह ध्यान रखें। कि सांस्कृतिक सचिव के आम चयन पर ही आप के विद्यालय के सांस्कृतिक कार्यक्रमों की उत्तमता निर्भर करती है। उत्तम के लिए सही का चिह्न बनाये तथा सबसे कम उपयुक्त के लिये (ग) चिह्न बनाये:

सांस्कृतिक सचिव का चयन

सांस्कृतिक सचिव के लिए अनुमोदित नाम							
	उत्तरदाता	नीहारिका	सारिका	शिवांगी	शिवानी	शैली	योग
1	नीहारिका	-	√			x	2
2	सारिका	√	-			x	2
3	शिवांगी	√		-	x		2
4	शिवानी	√	x		-		2
5	शैली		√		x	-	2
	योग उपयुक्त	3	2	0	0	0	5
	कम उपयुक्त	0	1	0	2	2	5

मनोनाटक (Psycho-Drama):

मनोनाटक का श्री गणेश 1946 में हुआ था। व्यक्तित्व मापन तथा मनोचिकित्सा के लिए मनोनाटक को एक उपयोगी विधि माना जाता है। मनोनाटक में दो या अधिक व्यक्ति हिस्सा लेते हैं। नाटक इन व्यक्तियों से सम्बन्धित किसी मनोवैज्ञानिक समस्या पर आधारित होता है। मनोनाटक में सम्मिलित व्यक्तियों के व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए विशेषज्ञ होते हैं ये विशेषज्ञ नाटक में प्रस्तुत किये गये सम्वादों तथा भावों के आधार पर व्यक्तित्व का अध्ययन करते हैं। मनोनाटकों का आयोजन व्यक्ति या व्यक्तियों से सम्बन्धित सामाजिक स्थिति, आर्थिक, पारिवारिक समस्याओं, आकांक्षा, अभिलाषाओं के आधार पर किया जाता है।

मनोनाटकों के जैसी ही स्थिति नाटक (Sociodrama) की भी होती है। इस नाटक में समाजिक समस्याओं से सम्बन्धित विषयवस्तु होती है।

व्यक्तित्व परीक्षण से अधिक ये नाटक विरेचक (Catharsis) का काम करते हैं। ये उपचार की विधि अधिक है, मापन की विधि कम हैं। इनके माध्यम से व्यक्ति अपनी दमित इच्छाओं का विरेचन कर शान्त हो जाता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4. परिस्थिति परीक्षण विधि की दो प्रमुख विधियों के नाम लिखिए।
5. समाजमिति विधि का प्रतिपदान किसने किया?
6. व्यक्तित्व मापन तथा मनोचिकित्सा के लिए __________ को एक उपयोगी विधि माना जाता है।

17.7 प्रक्षेपण विधि (Projective Method)

महाकवि तुलसीदास की चौपाई में कहा गया है- ‘‘ जाकी की रही भावना जैसी प्रभु मूरत तिन देखी तैसी’’। अर्थात श्रीराम को देखने के बाद सभा में उपस्थिति व्यक्ति की जैसी भावना थी, उन्हें वे उसी रूप में दिखाई पड़े। असल बात तो यह है कि हमारी आंखें केवल कैमरे का काम करती हैं। देखने का असल कार्य तो मस्तिष्क द्वारा किया जाता हैं। हम किसी प्रश्न का उत्तर अपने अवचेतन मन में जैसा स्थापित होता है, उसी के अनुरूप देते हैं। इसी सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता हैं कि हमारी दमित भावनाएं हमारे स्वप्नों के माध्यम से बाहर जाने का प्रयास कर हमें संतुलित व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोग प्रदान करती हैं। फ्राइड (Freud) का स्वप्न विश्लेषण इसी बात को स्पष्ट करता है। उदाहरण के लिए स्वप्न में सांप का दिखाई देना हमारी दमित काम भावना का प्रतीक है। इसी प्रकार इस प्रकार के चित्र देखने पर जिसमें कोई भाव स्पष्ट न होता हो व्यक्ति अपने अचेतन मन के अनुसार उनका भाव व्यक्त करता है। इसी के आधार पर व्यक्तित्व के परीक्षण के लिए प्रक्षेपण विधियों का प्रयोग किया जाने लगा। सभी प्रक्षेपण व्यक्तित्व परीक्षण इसी मुख्य भाव पर आधारित है। प्रक्षेपण विधि पर आधारित कई परीक्षण इस समय उपलब्ध है। जिसके आधार पर व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा में मुख्य रूप से जो परीक्षण उपयोगी हैं उनके नाम हैं -

1. रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण (Rorschach Ink Blot Test)
2. प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण (Thematic Apperception test)
3. बाल अन्तर्बोध परीक्षण (Children Apperception test)
4. चित्र कुण्ठा परीक्षण (Picture Frustration Test)
5. स्वतंत्र शब्द साहचर्य (Free Word Association Test)
6. वाक्यपूर्ति विधि (Sentence Completion Test)
7. सम्मोहन (Hypnosis)

रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण:

रोर्शा जर्मनी निवासी एक मनोचिकित्सक था। उसने एक बार अपने फाउण्टेन पैन की स्याही की कुछ बूंदे एक कागज पर टपका कर इस कागज को स्याही पड़े स्थान के बीच से मोड़ दिया जिससे स्याही ने कागज पर निशान बना दिया। यह एक अजीब सा चित्र बना जिसे उसने देखा। फिर अपने परिवारजनों को दिखाया। उस चित्र. के सम्बन्ध में उन सब के प्रत्यूत्तर अलग-अलग पाये गये जिसके आधार पर रोर्शा ने सोचा की यह उनकी दमित भावनाओं के प्रकटीकरण है। यही चित्र रोर्शा ने चिकित्सालय में जाकर अपने रोगियों तथा अन्य स्टाफ को दिखाये सब के प्रत्यूत्तर अलग-अलग पाये गए। उन उत्तरों से उनकी दमित भावनाओं का प्रकटीकरण हो रहा था। इसी घटना को केन्द्र में रखते हुए रोर्शा ने बहुत से कार्ड बना लिये उनमें से उसने 10 कार्डों का चयन किया तथा उनका विस्तृत विश्लेषण किया तथा वे प्रत्यूत्तर नोट किये जो कि मनोरोगियों के द्वारा व्यक्त किए गये थे। इन 10 कार्डों में से 5 कार्ड स्वेत श्याम, 2 कार्ड स्वेत श्याम तथा लाल धब्बों वाले तथा शेष 3 कार्ड बहुरंगी थे। इन कार्डों को रोगियों या सम्भावित रोगियों को क्रमशः दिखाया जाता है तथा उत्तर देने वाला उन चित्रों में क्या दिखाई दे रहा है, यह बताता जाता है तथा परीक्षण लेने वाला उनके उत्तरों को नोट करता जाता है। परीक्षक कार्ड में दिखाई दे रहे चित्र की स्थिति को भी पूछता है। तथा चित्रों की विषयवस्तु तथा स्थान के साथ-साथ यह भी नोट किया जाता है। कि व्यक्ति सम्पूर्ण चित्र देख रहा है या किसी एक भाग को देखकर प्रतिक्रिया दे रहा है। धब्बों में व्यक्ति, पशुओं आदि की गति का वर्णन करता है या नहीं, रोगों के प्रति व्यक्त विचारों से उसकी संवेगात्मक स्थिति का प्रकटीकरण होता हैं। धब्बों में दिखाई देने वाले -मानव के शारीरिक अंग, मानचित्र या अन्य वस्तुएं दिखाई देती है, तो उनका भी अर्थ है। परीक्षणदाता ने किस कार्ड पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने में कितना समय लिया। कार्ड को किस ओर घुमाकर देखा। ये सब नोट करके परीक्षण के मैनुअल के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में जानकारी हो जाती है रोर्शा का यह परीक्षण विशेष प्रशिक्षण चाहता हैं। किसी सुशिक्षित मनोविज्ञानी से इसके सम्बन्ध में प्रशिक्षण लिया जाना आवश्यक है।

इस परीक्षण द्वारा व्यक्तित्व की बुद्धि, अनुकूल अभिवृतियों, संवेगात्मक स्थिति के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। प्रशिक्षित निर्देशन परामर्शक द्वारा व्यक्तिगत निदेशन देने के लिए इस परीक्षण का प्रयोग किया जा सकता है।

निःसंदेह रोर्शा के धब्बों की व्याख्या से परीक्षार्थी के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत हो जाता है।

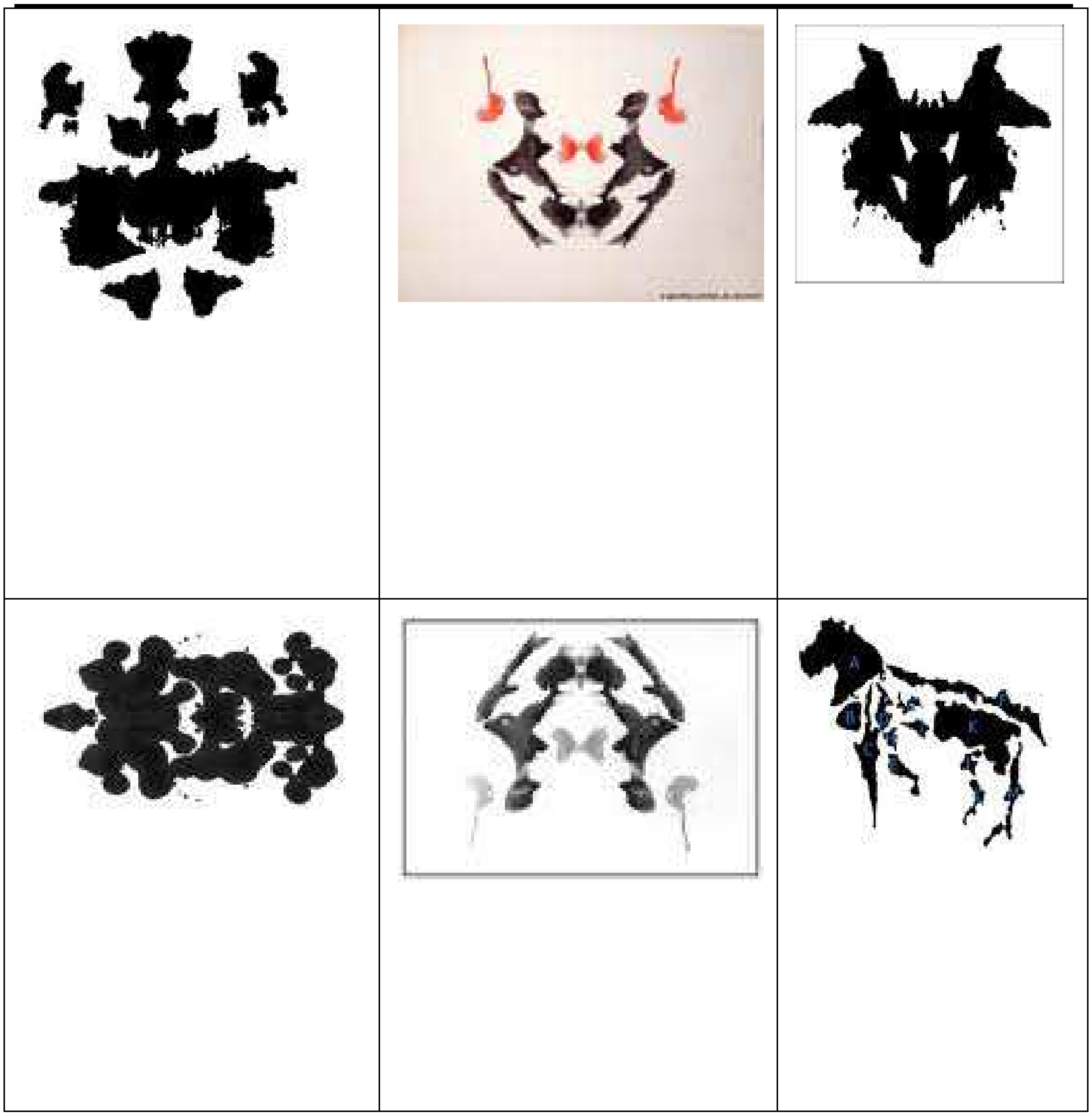

चित्र 17.1 रोर्शा के द्वारा प्रस्तुत स्याही धब्बों के कुछ कार्ड

प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण Thematic Apperception Test:

इस परीक्षण का बहुश्रुत नाम T.A.T है। इस टेस्ट का निर्माण मार्गन और मुरे (Morgan and Murray) ने 1935 किया था। इस परीक्षण में 30 चित्र होते हैं। 10 चित्र पुरुषों के 10 चित्र महिलाओं के तथा 10 चित्र महिला तथा पुरुष दोनों के होते हैं।

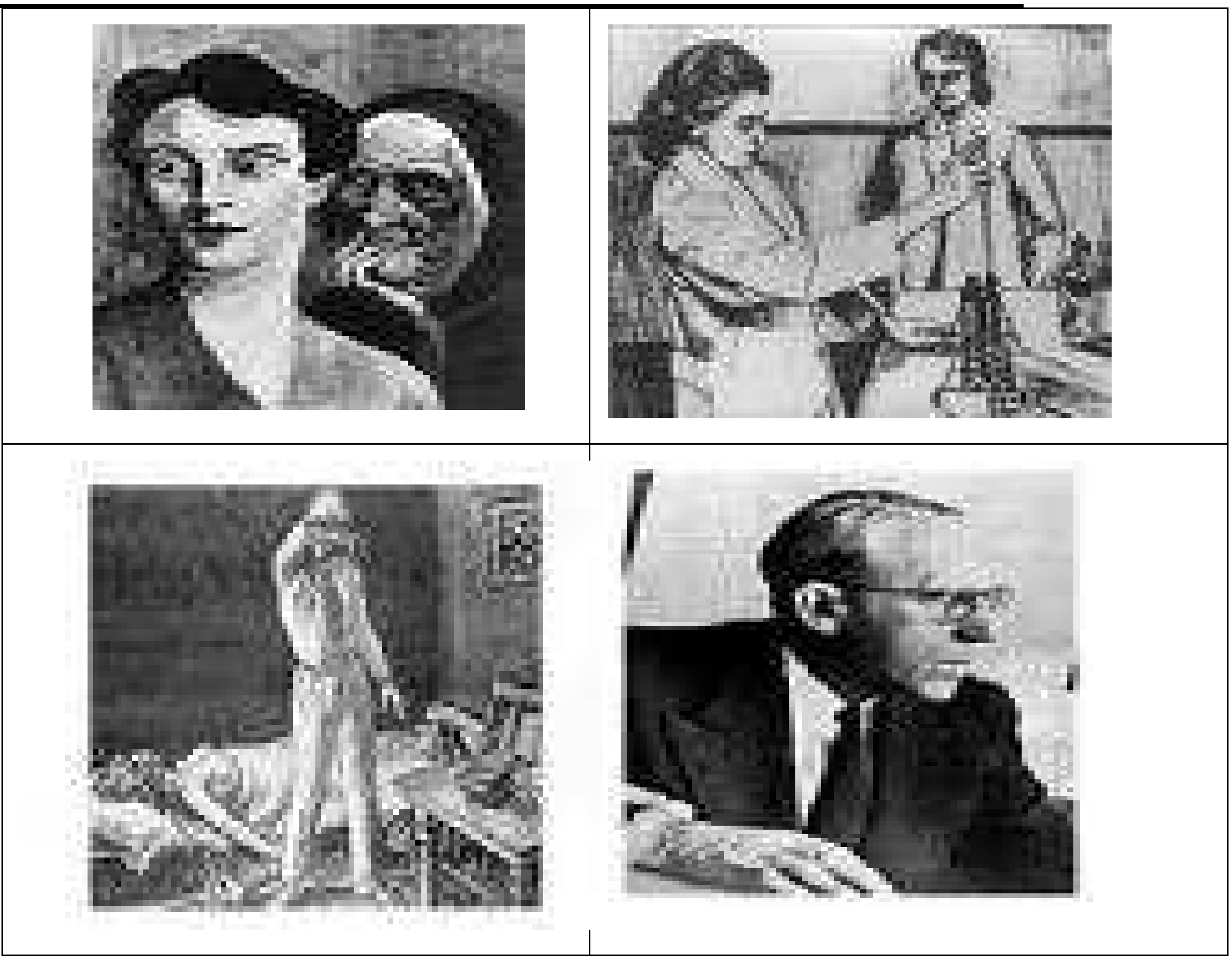

चित्र 17.2 प्रासंगिक अंतर्बोध परीक्षण में प्रयुक्त किये जाने वाले कुछ चित्र

चित्र इस प्रकार के बनाये गये हैं जिनमें कोई भाव नहीं होता है। चित्रकार को यह पहले से स्पष्ट किया गया था कि चित्रों में भवाभिव्यक्ति न हो पाये । परीक्षण के माध्यम से व्यक्तित्व का परीक्षण किया जाता है। परीक्षणकर्ता परीक्षार्थी को पहले केवल 10 चित्र दिखाता है। उन्हें दिखाने के बाद एक-एक चित्र देकर यह कहता है। कि इस चित्र पर कहानी लिखंे। कहानी में परीक्षार्थी स्वयं अपने आपको चित्र के नायक के साथ तादात्मय स्थापित कर लेता है। उसके साथ जुड़ जाता है। अपने आप को नायक मान कर कहानी लिखना प्रारम्भ कर देता हैं। परीक्षणकर्ता उत्तरदाता से कुछ प्रश्न पूछता है जो कि चित्र के अनुसार पहले से ही निर्धारित होते हैं। कहानी में उत्तरदाता अपनी इच्छाओं, भावनाओं संवेगों तथा समस्याओं का वर्णन करता है। पूछे गये प्रश्नों के उत्तरों को लिखकर देता है।

कहानी तथा प्रश्नोत्तरों के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन मैनुअल के आधार पर किया जाता है। तथा व्यक्तित्व को अपने व्यवहार में सुधार लाने के लिए सुझाव दिए जाते हैं।

बाल सम्प्रत्यय परीक्षण (Children Apperception Test)

इस परीक्षण का आविष्कार डॉ0 अरनेस्ट क्रिस (Dr. Ernest Kris) ने किया। इस परीक्षण का उपयोग बच्चों के व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए किया जाता है।

इस परीक्षण में 10 चित्र होते है। ये चित्र पशुओं के होते हैं जिसमें उन्हें कोई कार्य करते हुए दिखाया गया होता है। इन चित्रों को बच्चों को एक के बाद एक करके दिखाया जाता है। बालक चित्रों को देखकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं जिन्हें परीक्षणकर्ता नोट करता जाता है। बच्चों के उत्तरों का विश्लेषण मैनुअल के आधार पर किया जाता है।

चित्र कुण्ठा परीक्षण (Picture Frustration Test):

इस परीक्षण का निर्माण रोजनज्विंग (RosenZweig) ने 1944 में किया। चार वर्ष बाद बच्चों के लिए एक अलग परीक्षण का निर्माण 1948 में किया। जिसका नाम इन्होंने Children's Form of Rosen Zweig P.F. Study रखा। यह एक नियंत्रित प्रक्षेषण विधि है। इन्हीं के आधार पर सरदारशहर के डॉ0 सी.एम. शर्मा ने विद्यालय परिस्थितियों में कुण्ठा परीक्षण का निर्माण किया। इन परीक्षणों के द्वारा व्यक्तियों तथा बच्चों की नैराश्य (कुण्ठाओं) तथा आक्रमक स्थितियों का मापन किया जाता है। प्रत्येक परीक्षण में 24 चित्र रहते हैं। जो कि स्पष्ट नहीं होते। प्रत्येक चित्र में दो व्यक्ति होते हैं एक पर कुछ परिस्थिति से सम्बन्धित कथन लिखा रहता है। जबकि उस का उत्तर देने के लिए दूसरे व्यक्ति को उत्तर देने के लिए स्थान रिक्त रहता है। रोजेनज्विंग के दोनों परीक्षणों का भारतीय परिस्थितियों में अनुकूलन डॉ0 उदय पारीक ने किया है।

इन परीक्षणों से कुण्ठा और आक्रमकता का मापन किया जाता है। प्रत्येक परीक्षण में 24 चित्र जिन्हें कार्टून भी कहा जा सकता है। प्रत्येक कार्टून में दो अस्पष्ट मानव आकृत्ति बनी होती है।एक मानव आकृति के माध्यम से कथन प्रस्तुत किया गया होता है। दूसरी आकृति के साथ उत्तर देने के लिए स्थान रिक्त रहता है। इन परीक्षणों का अध्ययन व्यक्तित्व तथा सामूहिक दोनों रूप से किया जा सकता है। उत्तरदाता कथन वाले व्यक्ति के साथ अपना तादात्म (Identification) कर लेता है। तथा उत्तरदाता के रूप में प्रतिक्रिया व्यक्त करता है।

मैनुअल के आधार पर उत्तरों का मूल्यांकन कुण्ठा की स्थिति का आंकलन करने के लिए किया जाता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. प्रक्षेपण विधि पर आधारित किन्हीं दो परीक्षणों के नाम लिखिए।
8. प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षणका निर्माण किसने किया है?
9. बाल सम्प्रत्यय परीक्षण का आविष्कार ____________ ने किया।

10. चित्र कुण्ठा परीक्षणका निर्माण _______ ने किया।

17.8 मनोविश्लेषण विधि (Psycho-Analytic Method)

मनोविश्लेषण विधियाँ आमतौर पर मनोरोगियों की चिकित्सा के लिए प्रयुक्त की जाती है। इन विधियों में व्यक्ति के विगत अनुभवों से सम्बन्धित प्रश्न पूछकर उनकी वर्तमान समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया जाता है। इन विधियों में स्वप्न विश्लेषण, सम्मोहन (Hypnosis) तथा स्वतंत्र शब्दसाहचर्य का प्रयोग किया जाता हैं आमतौर पर भयग्रस्त तथा अत्यधिक दुश्चिंताग्रस्त, मनोरोगियों (Psychotic), संवेगों से रहित हो जाने (Emotionless), अप्रसन्न रहने वाले तथा प्रायः विक्षुब्ध (Disturb), उत्तेजित रहने वाले व्यक्त्यिों के लिए प्रयोग किया जाता है।

प्रमुख मनोविश्लेषण विधियों का आगे वर्णन अत्यन्त संक्षपे में किया जा रहा है।

स्वतंत्र शब्द साहचर्य (Free Word Association Test):

अलग-अलग मनोवैज्ञानिक ने इस प्रकार के परीक्षणों का निर्माण किया है। इस परीक्षणों में 50 से 100 तक शब्द होते हैं। परीक्षक परीक्षार्थी को एक एक-एक करके शब्द बोलता है। और परीक्षार्थी इन शब्दों के सम्बन्ध में जो भी मन में आता है। उसे बोलता जाता है। परीक्षक परीक्षार्थी द्वारा की गई प्रतिक्रिया को व्यक्त करने में ली गई समयावधि को नोट करता हैं व्यक्त प्रतिक्रिया तथा लिये गये समय के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का अध्ययन मैनुअल के आधार पर किया जाता है।

इस विधि का सर्वप्रथम प्रयोग मनोवैज्ञानिक गाल्टन ने सन 1879 में किया था। इन्होंने 79 शब्दों की एक सूची का निर्माण किया। इनके बाद युंग (Yung) ने 100 शब्दों की सूची का निर्माण किया। इस विधि में निरन्तर संशोधन होते रहे हैं, शब्दों के चयन का वर्गीकरण अलग-अलग तरह से किया जाता है। शब्दों के वर्ग में आत्म केन्द्रित (Ego-Centric), वर्गोपरि (Super ordinal) विरोधी शब्द (Opposite), आदि होते हैं। इन्हें समीपस्थ प्रतिक्रिया (Close Reaction), दूरस्थ प्रतिक्रिया (Distant Reaction), परम्परागत ग्रन्थि संकेत (Traditional Complex Indicators) विषय विश्लेषण (content Analysis) तथा पुनरोत्पादक वेदना के स्वरूप में रखा जाता है। पश्चिमी परीक्षणों के भारतीय परिस्थितियों में प्रयुक्त कर उनकी विश्वसनीयता तथा वैधता ज्ञात की गई है।

वाक्यपूर्ति विधि:

इस विधि में उद्दीपक अपूर्ण वाक्यों में होते हैं। सभी वाक्य व्यक्तित्व से सम्बन्धित होते हैं प्रयोज्य इन वाक्यों को पूरा करता है। वाक्यों को पूरा करने पर प्रयोज्य की इच्छाओं, भावनाओं, अन्तर्द्वन्द्वों, मनोवृत्तियों और भावना ग्रन्थियों आदि का पता लगाया जाता है। कुछ नमूने के अर्द्धवाक्य इस प्रकार हैं-

1. मेरे पिताने ....
2. असफलता से मुझे ....
3. पत्नि के साथ मुझे ....
4. सामाजिक कार्यक्र मुझे ....
5. अच्छी वेशभूषा मुझे ....

वाक्य पूर्ति परीक्षणों में 30 से 100 तक अपूर्ण वाक्य हो सकते हैं। उदाहरण के लिए व्यक्तित्व परीक्षण के लिए राटर्स (Rotters 1934) के परीक्षण में 40 अपूर्ण वाक्य हैं जबकि एल.एन. दुबे तथा अर्चना दुबे (1987) के परीक्षणों में 50 अपूर्ण वाक्य हैं वाक्य पूर्ति परीक्षणों के माध्यम से सामाजिकता, आत्मविश्वास, आकांक्षास्तर का अध्ययन किया जाता है। इन परीक्षणों में यदि अधिक समय दिया जाता है तो प्रयोज्य स्वाभाविक प्रक्रिया व्यक्त न करके अपने वास्तविक उत्तर न देकर स्वनिर्मित अवास्तविक उत्तर देता है। इस कारण परीक्षण की विश्वसनीयता तथा वैधता पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ जाता है।

सम्मोहन (Hypnosis)

सम्मोहन एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति अचेतन अवस्था में रहते हुए देख तथा सुन सकता हैं, प्रश्नों के उत्तर दे सकता है तथा निर्देशों का पालन कर सकता है। सम्मोहन का प्रयोग मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्तियों के लिए किया जाता है। आजकल नशामुक्ति के लिए इस विधि का व्यापक प्रयोग किया जाता है। इस विधि में सम्मोहक जिस व्यक्ति को सम्मोहित करता है। पहले उसे विश्वास में लेता है तथा उसे अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सम्मोहित होने के लिए प्रेरित करता है। सम्मोहनकर्ता के द्वारा सम्मोहन के दौरान जो आदेश दिये जाते हैं उनका पालन, जिस व्यक्ति को सम्मोहित किया जाता है, वह सम्मोहन की स्थिति में निकलने के बाद भी करता है। आमतौर पर नशामुक्ति -धूम्रपान, शराब, अन्य कुऔषधियों का त्याग करने के लिए यह प्रभावी विधि है। केवल नशामुक्ति ही नहीं बल्कि भय, चिंताओं (Neurosis) विभ्रम (Delusion) अर्थात वे विश्वास जो की पूरी तरह से गलत होते हैं, तथा संविभ्रम (Paranoia) (यह भ्रान्ति की लोग उसे हानि पहुंचाना चाहते हैं।) आदि मनोरोगों की चिकित्सा भी की जाती हैं। सम्मोहन का प्रयोग व्यक्ति के व्यवहार को उन्नत बनाने में किया जाता है। कई मनोरोगों की यह औषधविहीन चिकित्सा है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

11. मनोविश्लेषण विधियाँ आमतौर पर ___________ की चिकित्सा के लिए प्रयुक्त की जाती है।
12. प्रमुख मनोविश्लेषण विधियों के नाम लिखिए।

13. सम्मोहन क्या है?

17.9 सांराश

इस इकाई के अध्ययन से हमने व्यक्तित्व के मापन की विधियों से परिचय प्राप्त किया। यद्यपि व्यक्ति का मापन करना अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि व्यक्ति अपने बारे में सत्य बाते दूसरों को बताने से परहेज करता है इसका कारण उसे परीक्षक में विश्वास नहीं होता- कि वह उसकी गोपनीय बातों को जानकर उससे व्यवहार करने का तरीका ही बदल देगा। परन्तु प्रक्षेपण विधियों आदि के द्वारा उसके अन्तर्मन की बातों को जानने के लिए सार्थक प्रयास उस व्यक्ति के हित के लिये किये जा सकते हैं। विद्यालय में बालकों के आक्रामक व्यवहार, कुष्ठाओं, निराशाओं, उपलब्धियों में आने वाली गिरावटों, मनोरोग्रस्त बालकों की पहचान करने, चिन्ताओं को दूर करने, परीक्षा के भूत से भयग्रस्त बालकों को भयमुक्त करने के लिये व्यकितत्व परीक्षणों को प्रयोग किया जा सकता है।

इस इकाई की विषयवस्तु को समझने के लिये यहाँ दी जाने वाली विषय वस्तु पर्याप्त इस लिये नहीं है क्योंकि यह एक प्रयोगिक कार्य है। वास्तविक परीक्षण को देखे तथा प्रयोग किये बिना इस सम्बन्ध में यथोचित ज्ञान होना सम्भव नहीं है। अतः मनोविज्ञान प्रयोगशाला में वास्तविक परीक्षणों का अध्ययन आवश्यक है। यह विषय इतना विस्तृत है कि जिसे संक्षेप में कह देना विषय के साथ अन्याय है। परीक्षणों के सर्वाधिकार निर्माताओं के होते है इस कारण प्रस्तुत जानकारी से अधिक जानकारी देना सम्भव नहीं है।

17.10 शब्दावली

- **प्रश्नावली:**सामान्यतः प्रश्नावली शब्द से एक ऐसे उपकरण का बोध होता है जिसमें प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए कई प्रपत्र का उपयोग किया जाता है । जिसे सूचनादाता अपने आप भरता है ।
- **साक्षात्कार :**साक्षात्कार से तात्पर्य एक ऐसी स्थिति से है, जिसमें एक व्यक्ति साक्षात्कारकर्ता आमने-सामने के पारस्परिक मौखिक आदान प्रदान से दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों को सूचना देने या अपने विचार तथा विश्वास व्यक्त करने के लिए प्रेरित करने का प्रयार करता है ।
- **समाजमिति:**समाजमिति एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा समूहों में व्यक्तियों की स्वीकृति या अस्वीकृति के विस्तार के मापन के आधार पर उनकी सामाजिकस्थिति, संरचना तथा विकास का अन्वेषण, वर्णन एवं मूल्यांकन किया जाता है । इस विधि के द्वारा नेतृत्व, पूर्वाग्रह एवं मनोबल का भी मापन होता है ।

- सम्मोहन - एक ऐसी स्थिति जिसमें व्यक्ति अचेतन अवस्था में रहते हुए देख तथा सुन सकता हैं, प्रश्नों के उत्तर दे सकता है तथा निर्देशों का पालन कर सकता है।

17.11 स्वमूल्यांकन प्रश्नों हेतु उत्तर

1. व्यक्तित्व मापन के परीक्षणों के तीन वर्गों के नाम हैं-
   i. आत्मनिष्ठ विधियाँ
   ii. परिस्थिति परीक्षण विधियाँ
   iii. प्रक्षेपण विधियाँ
2. आत्मनिष्ठ विधि की किन्हीं दो प्रमुख विधियों के नाम हैं-
   i. साक्षात्कार तथा प्रश्नावली विधि
   ii. बन्द-प्रश्नावली
3. प्रश्नावली के प्रकारों के नाम हैं-
   i. खुली प्रश्नावली
   ii. सचित्र-प्रश्नावली
   iii. मिश्रित प्रश्नावली
4. परिस्थिति परीक्षण विधि की दो प्रमुख विधियों के नाम हैं- समाजमिति विधि तथा मनोनाटक।
5. समाजमिति विधि का प्रतिपदान जे.एल. मोरेनो ने किया।
6. मनोनाटक
7. प्रक्षेपण विधि पर आधारित किन्हीं दो परीक्षणों के नाम हैं-
   i. रोर्शा का स्याही धब्बा परीक्षण
   ii.प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण
8. प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षणका निर्माण मार्गन और मुरे ने किया है।
9. डॉ0 अरनेस्ट क्रिस
10. रोजनज्विंग
11. मनोरोगियों
12. प्रमुख मनोविश्लेषण विधियों के नाम हैं-
    i. स्वतंत्र शब्द साहचर्य
    ii. वाक्यपूर्ति विधि
    iii. सम्मोहन

13. सम्मोहन एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति अचेतन अवस्था में रहते हुए देख तथा सुन सकता हैं, प्रश्नों के उत्तर दे सकता है तथा निर्देशों का पालन कर सकता है।

17.12 संदर्भ ग्रंथ

1. Chauhan,S.S.(2009); Advanced Educational Psychology,17th ed, New Delhi,Vikas Publishing House
2. Clifford T.Morgon, Richard A. King, John R.Weisz, John Schopler.(1993); Introduction to Advanced Educational Psychology , 17 ed, New Delhi.TATA McGraw-Hill edition.
3. Cronbach, I.J. (1970), Essentials of Psychological Testing, 3rd ed.New York; Harper and Row Publishers.
4. Charles, E. Skinner (1990) : Edncation Psychology (Hindi) New Delhi, Disha Publications
5. Gardner, Howard (1999): The Disciplined Mind. New York: Simon Schuster
6. Gupta, S.P. (2002) : उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
7. Dandapani, S. (2007). Advanced Educational Psychology, New Delhi.Anmol Publications Pvt. Ltd.
8. Ebel, Robert L.,(1979), Essentials of Psychological Measurement, London; Prentice Hall International Inc.
9. Freeman, Frank S. (1962); Theory and Practice of Psychological Testing, New Delhi; Oxford and IBN Publishing Co.
10. Kuppuswamy, B.(2006), Advanced Educational Psychology ,New Delhi. Sterling Publishers Private Ltd.
11. Lindquist, E.F (1951), Educational Measurement, Washington D C .American Council on Education.
12. Mangal, S.K. (2007) Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.
13. Mathur, S.S. (2007), Educational Psychology, Agra VinodPustakMandir.
14. Sukla, O.P. (2002)शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन।
15. सिंह .शिरीष पाल ;2009 रू शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो।

16. Thorndike, R.L. & Hagen, E.P. (1969).Measurement and Evaluation in Psychology and Education 3rd ed; New York; John Wily&Sons Inc
17. Williams, W.M. et al (1996): Practical Intelligence. New York: Harper Collins College Publications.

17.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. खुली और बंद प्रश्नावलियों में अन्तर बतायें।
2. साक्षात्कार विधि का उपयोग बालकों के अनुशासित करने में किस प्रकार करेंगे।
3. आत्मकथा लेखन किस प्रकार व्यक्तित्व परीक्षण में उपयोगी रहता है। स्पष्ट करें।
4. मानदण्ड मापनी का प्रयोग आप किन-किन परिस्थितियों में कर सकते हैं। सूची का निर्माण करें।
5. रोर्शा के स्याही धब्बों से व्यक्तित्व कैसे मापा जाता है।
6. प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण का संक्षेप में वर्णन करें।
7. टी.ए.टी. तथा सी.ए.टी. के बारे में संक्षिप्त विवरण लिखें।
8. चित्र कुण्ठा परीक्षण क्या हैं?
9. सम्मोहन विधि से क्या लाभ हैं।
10. वाक्य पूर्ति विधि से व्यक्तित्व मापन कैसे सम्भव है? पांच वाक्य पूर्ति के प्रश्न लिखें।
11. व्यक्तित्व के मापन पर संक्षिप्त लेख लिखें।

इकाई 18सृजनात्मकता Creativity

18.1 प्रस्तावना
18.2 उद्देश्य
18.3 सृजनात्मकता का अर्थ एवं परिभाषाएँ
18.4 सृजनात्मकता की विशेषताएँ
18.5 सृजनात्मकता के तत्व
18.6 सृजनात्मक प्रक्रिया
18.7 सृजनात्मक बालक कीविशेषताएँ
18.8 बालको में सृजनात्मकता विकसित करना
18.9 सृजनात्मकतापरीक्षण
18.10 सारांश
18.11 शब्दावली
18.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर
18.13 संदर्भ ग्रंथ सूची
18.14 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

हम में से प्रत्येक व्यक्ति अनुपम है, इसलिये सभी प्राणियो में एक ही स्तर की सृजनात्मक योग्यता विद्यमान नहीं। हम में से कई व्यक्तियों में उच्च स्तरीय सृजनात्मक प्रतिभायें होती है और यही व्यक्ति कला, साहित्य, विज्ञान, व्यापार, शिक्षण आदि विभिन्न मानवीय क्षेत्रों में संसार का नेतृत्व करते हैं। अच्छी शिक्षा, अच्छी देखभाल, सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिये अवसरों की व्यवस्था, सृजनात्मकता को अंकुरित एवं पोषित करती है। इसमें माता-पिता समाज तथा अध्यापक अपनी भूमिका निभा सकते हैं। वे बच्चों के पालन-पोषण तथा उनकी सृजनात्मक योग्यताओं के विकास में सहायता दे सकतें हैं। अतः शिक्षा-प्रक्रिया का उद्देश्य बच्चो में सृजनात्मक योग्यताओं का विकास होनो चाहिये। इसके लिये अध्यापको तथा माता-पिताओं को सृजनात्मकता के विकास के साधनो का परिचय प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है। इस इकाई में आप सृजनात्मकता और सृजनातमकता को विकसित करने के विषय में अध्ययन करेगें।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

1. सृजनात्मकता का अर्थ जान पाऐंगे।
2. सृजनात्मकता की विभिन्न परिभाषाऐं लिख सकेंगे।
3. सृजनात्मकताकी विशेषताओं के बारे में चर्चा कर सकेंगें।
4. सृजनात्मकता के तत्वों को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. सृजनात्मकता बालकों की विशेषताएँ लिख सकेंगे।
6. सृजनात्मकता को विकसित करने हेतु विभिन्न सुझावों की व्याख्या कर सकेंगे।

18.3 सृजनात्मकता का अर्थ एवं परिभाषाएँMeaning and Definitions of Creativity

सृजनात्मकता शब्द अंग्रेजी के क्रियेटिविटी का हिन्दी रुपांतरण है।सृजनात्मकता से अभिप्राय है रचना सम्बंधी योग्यता , नवीन उत्पाद की रचना।मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सृजनात्मक स्थिति अन्वेषणात्मक होती है।विभिन्न विद्वानों ने सृजनात्मकता की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिये उसे अपनी-अपनी तरह से परिभाषित करनेका प्रयत्न किया है। कुछ प्रसिद्ध विद्वानो की परिभाषाओं पर हम विचार करेगें।

जेम्स ड्रेवर के अनुसार- " सृजनात्मकता मुख्यतः नवीन रचना या उत्पादन में होती है।"

"Creativity is essentially found in new construction or production".**James Drever**

क्रो एवं क्रो- "सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को व्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।

"Creativity is a mental process to express the original outcomes" **Crow & Crow**

स्टेगनर एवं कार्वोस्की- ‘‘ किसी नई वस्तु का पूर्ण या आंशिक उत्पादन सृजनात्मकता है।‘‘

ड्रैवडाहल-‘‘ सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता हे जिसके द्वारा वह उन वस्तुओं या विचारों का उत्पादन करता है जो अनिवार्य रूप से नये हो और जिन्हें वह व्यक्ति पहले से न जानता हो।

"Creativity is the capacity of a person to produce composition products or ideas which are essentially new or novel and previously unknown to the producer". **Drevdahl**

विल्सन, गिलफोर्ड एवं क्रिस्टेनसैन- सृजनात्मक-प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई नवीन(कोई नई वस्तु, विचार या पुराने तत्वो का कोई नवीन संगठन या रूप) उत्पत्ति हो। यह नवीन उत्पत्ति किसी समस्या के समाधान में सहायोगी होनी चाहिये।

स्किनर-''सृजनात्मक चिंतन का अर्थ है कि व्यक्ति की भविष्यवाणियाँ या निष्कर्ष नवीन, मौलिक, अन्वेषणात्मक तथा असाधारण हो। सृजनात्मक चिंतक वह है जो नये क्षेत्र की खोज करता है नये निरीक्षण करता है, नई भविष्यवाणियां करता है और नये निष्कर्ष निकालता है।''

यदि हम इन परिभाषाओ का विश्लेषण करने का प्रयास करें जो ज्ञात होगा कि किसी नयी वस्तु का निर्माण या किसी नयी वस्तु की खेज इन तमाम परिभाषाओं का केन्द्रीय तत्व है। अतः हम आसानी के साथ इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नये विचार या नई वस्तु का निर्माण करता है या किसी नयी वस्तु की खोज करता है। इसके अंतर्गत व्यक्ति की यह योग्यता भी सम्मिलित है जिसके द्वारा वह पूर्व-प्राप्त ज्ञान का पुनर्गठन करता है।

18.4 सृजनात्मकता की विशेषाताएँ Characteristics of Creativity

1. सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है। हममें से प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ मात्रा में सृजनात्मकता अवश्य होती है।
2. यद्यिप सृजनात्मक योग्यताएं प्रृकत-प्रदत होती है परन्तु प्रशिक्षण या शिक्षा द्वारा उनको विकसित किया जा सकता है।
3. सृजनात्मक अभिव्यक्ति द्वारा किसी नयी वस्तु को उत्पन्न किया जाता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह वस्तु पूर्ण रूप से नयी हो। पृथक रूप से दिये गये तत्वो से नये एवं ताजा समिश्रण का निर्माण करना:पहले से ज्ञात तथ्यो या सिद्वांतो का पुनर्गठन करनाः किसी पूर्व-ज्ञात शैली में सुधार करना-आदि उतने ही सृजनात्मक कार्य हैं जितना रसायन विज्ञान का कोई नया तत्व ढूंढना या गणित का कोई नया सूत्र खोजना। 'सृजनात्मकता' में केवल इस बात के प्रति सावधान रहने की आवश्यकता है कि किसी ऐसी वस्तु की पुनरावृति नहीं होनी चाहिये जिसका व्यक्ति को पहले से ज्ञान हो।
4. कोई भी सृजनात्मक-अभिव्यक्ति सृजक के लिये आनंद तथा संतुष्टि का सो्रत होती है। सृजक जो देखता या अनुभव करता है उसे अपने तरीके से प्रकट करता है। सृजक अपनी रचना द्वारा ही अपने आप की अभिव्यक्ति करता है। सृजक अपने ही तरीके से वस्तुओं,

व्यक्तियो तथा घटनाओ को लिखता है। अतः यह आवश्यक नहीं कि रचना प्रत्येक व्यक्ति को वही अनुभव एवं वही संतोष प्रदान करें जो रचनाकर को प्राप्त हुआ हों।

5. सृजक वह व्यक्ति है जो अपने अहं को इस प्रकार प्रकट करता हो, यह मेरी रचना है,यह मेरा विचार है, मैने इस समस्या को हल किया है। अतः निर्माणात्मक क्रिया में अहं अवश्य निहित रहता है।
6. सृजनात्मक चिंतन बधा हुआ चिंतन नहीं होता इसमें अनगिनत विकल्पों तथा इच्छित कार्यप्रणाली को चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है।
7. सृजनात्मक अभिव्यक्ति का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक होता है। वैज्ञानिक आविष्कार कविता कहानी नाटक आदि लिखना नृत्य-'संगीत, चित्रकला , शिल्पकला, राजनीति एवं सामाजिक सम्बन्ध आदि में से कोई भी क्षेत्र इस प्रकार की अभिव्यक्ति की आधार भूमि बन सकता अतः जीवन अपने समूचे रूप से रचनात्मक अभिव्यक्ति के लिये असंख्य अवसर प्रदान करता है।
8. जे0पी0गिलफोर्ड, टॉरैन्स, ड्रैवडाहलआदि कई विद्वानों ने सृजनात्मकता के विविध तत्वो को खोजने का प्रयास किया है। परिणामस्वरूप प्रवाहात्मक विचारधारा, मौलिकता, लचीलापन, विविधतापूर्ण-चितन, आत्म-विश्वास, संवेदनशीलता, सबन्धों को देखने तथा बनाने की योग्यता, आदि सृजनात्मक प्रक्रिया में सहायक माने गये है।

सृजनात्मक चिन्तन, चिन्तन का एक प्रमुख प्रकार है। सृजनात्मक चिन्तन को कई अर्थो में प्रयोग किया गया है। सृजनात्मक चिन्तन का सबसे लोकप्रिय अर्थ गिलफोर्ड (1967) द्वारा बतलाया गया है। इन्होंने चिन्तन को दो भागो में बांटा है -

1. अभिसारी चिन्तन
2. अपसरण चिन्तन

(1) अभिसारी चिन्तन - अभिसारी चिन्तन में व्यक्ति दिये गये तथ्यो के आधार पर किसी सही निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करता है, इस तरह के चिन्तन में व्यक्ति रुढ़िवादी तरीका अपना कर अर्थात समस्या सम्बन्धी दी गयी सूचनाओं के आधार पर उसका समाधान करता है। अभिसारी चिन्तन में व्यक्ति बहुत आसानी से एक पूर्व निष्चित क्रम में चिन्तन कर लेता है।

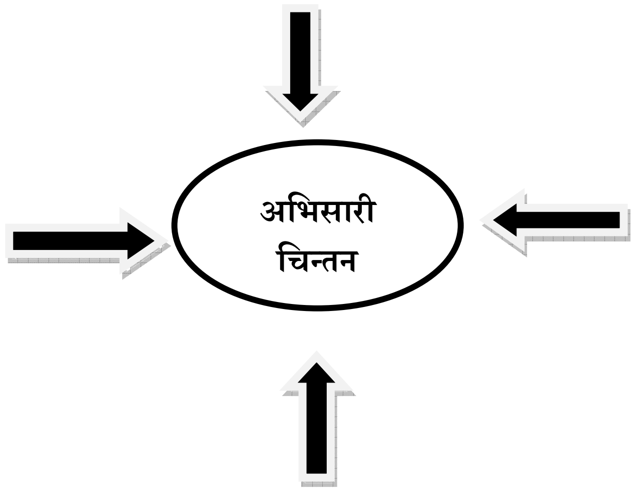

(2) **अपसरण चिन्तन -** अपसरण चिन्तन में व्यक्ति भिन्न-भिन्न दशाओं में चिन्तन कर समस्या का समाधान करने की कोशिशकरता है। जब वह भिन्न-भिन्न दषाओं में चिन्तन करता है तो स्वभावतः वह समस्या के कई संभावित उत्तरों पर चिंतनता है और अपनी ओर से कुछ नये एवं मूल चीजों को जोड़ने की कोषिष करता है। इस तरह के चिन्तन की एक और विषेषता यह है (जो इसे अभिसारी चिन्तन से अलग करती है) कि इसमें व्यक्ति आसानी से एक पूर्व सुनिष्चित कदमों के अनुसार चिन्तन नहीं कर पाता है (क्योकि इसमें कुछ नया एवं मूल चिन्तन करना होता हैं) मनोवैज्ञानिकों ने अपसरण चिन्तन को सृजनात्मक चिन्तन के तुल्य माना है।

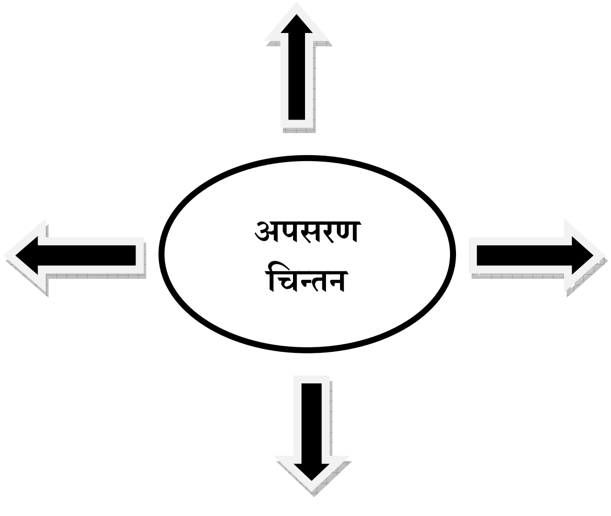

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. ड्रैवडाहल के अनुसारसृजनात्मकता क्या है।
2. सृजनात्मकता _________ होती है।
3. गिलफोर्ड ने सृजनात्मकचिन्तन को किन दो भागो में बांटा है?
4. _________ में व्यक्ति भिन्न-भिन्न दशाओं में चिन्तन कर समस्या का समाधान करने की कोशिशकरता है।

18.5 सृजनात्मकता के तत्व

सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्व निम्न हैं-

1. **प्रवाह (Fluency):** प्रवाह से तात्पर्य किसी दी गई समस्या परा अधिकाधिक विचारों या प्रत्युत्तरों की प्रस्तुति से है।प्रवाह के भी चार भाग हैं-
   i. वैचारिक प्रवाह
   ii. अभिव्यक्ति प्रवाह
   iii. साहचर्य प्रवाह

2. शब्द प्रवाह **लचीलापन (Flexibility):**लचीलापन से अभिप्राय किसी समस्या पर दिये गये प्रत्युत्तरों या विकल्पों में लचीलापन के होने से है।अत: व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये गये विकल्प या उत्तर एक- दुसरे से कितने भिन्न हैं।
3. **मौलिकता (Originality):** मौलिकता से अभिप्राय व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये गये विकल्पों या उत्तरों का असामान्य अथवा अन्य व्यक्तियों के उत्तरों से भिन्न होने से है।इसमें यह देखा जाता है कि व्यक्ति द्वारा दिये गये उत्तर प्रचलित उत्तरों से कितने भिन्न हैं। मौलिक्ता मुख्यतः नवीनता से सम्बंधित होती है।
4. **विस्तारण (Elaboration):** विस्तारण से अभिप्राय दिये गये विचारों या भावों की विस्तृत व्याख्या, व्यापक पूर्ति या गहन प्रस्तुतीकरण से होता है।

18.6 सृजनात्मक प्रक्रिया

सृजनात्मकता का स्वरुप काफी जटिल है। चाहे व्यक्ति सामान्य चिन्तन द्वारा किसी समस्या का समाधान कर रहा हो या वह सृजनात्मक रुप से चिन्तन कर रहा हो उसमें निम्नलिखित चार अवस्थाएं होती हैं-

1. आयोजन -इस अवस्था में समस्या से संबंधित आवश्यक तथ्यों एवं प्रमाणों को एकत्रित करने की तैयारी का आयोजन किया जाता है। समस्या समाधान से संबंधित उसके पक्ष एवं विपक्ष में प्रमाण एकत्रित किये जाते है। ऐसा करने मे वह प्रयत्न एवं त्रुटि का सहारा भी लेता है। आइन्सटीन, राईट तथा न्यूटन जैसे महान वैज्ञानिकों ने भी अपने सामने आयी समस्या के समाधान से संबंधित तथ्यों एवं प्रमाणों को एकत्रित करके उसकी विस्तृत ज्ञान हासिल किया तथा उनके आधार पर सृजनात्मक चिन्तन किया।इस तरह से प्रत्येक रचनात्मक चिन्तन विभिन्न प्रकार के तथ्यों एवं प्रमाणों को एकत्रित करने का आयोजन करता है। समस्या के स्वरुप तथा व्यक्ति के ज्ञान के अनुसार यह अवस्था लम्बे या कम समय तक होती है। यदि समस्या जटिल तथा व्यक्ति का ज्ञान सीमित है तो अवस्था का समय लम्बा परन्तु यदि समस्या सरल तथा व्यक्ति का ज्ञान भण्डार परिपक्व है तो अवस्था कम समय तक रहती है। जिम्बार्डो तथा रुक (1977) के अनुसार इस अवस्था पर व्यक्ति की आयु तथा बुद्धि का भी प्रभाव पड़ता है।
2. उद्भवन- यह दूसरी अवस्था है इसमें व्यक्ति की निष्क्रियता बढ़ जाती है, थोड़े समय के लिए व्यक्ति समस्या के बारे में चिन्तन करना छोड़ देता है जब कई तरह से कोषिष करने के बाद भी किसी समस्या का समाधान नहीं हो पाता है तो इस अवस्था की उत्पत्ति होती हैं। इस अवस्था में व्यक्ति चिन्तन करना छोड़कर सो जाता है या विश्राम करने लगता है। यद्यपि इस अवस्था में व्यक्ति अपना ध्यान समस्या की ओर से पूर्णतः हटा लेता है, फिर भी अचेतन रुप से उसके बारे में चिंतन करता रहता है। इस तरह से व्यक्ति चेतन रुप से तो समस्या से मुक्त रहता है परन्तु अचेतन रुप से उसके समाधान के बारे में चिन्तन जारी रखता है।
3. प्रबोधन - यह चिन्तन की अगली अवस्था है जिसमें व्यक्ति को अचानक समस्या का समाधान दिखाई पड़ जाता है सिलभरमैन (1978) के अनुसार ’’समाधान के अकस्मात् अनुभव को प्रबोधन कहा जाता है।‘‘ यह अवस्था प्रत्येक सृजनात्मक चिन्तन में पायी जाती है। उद्भवन अवस्था मे जब व्यक्ति अचेतन रुप से समस्या के भिन्न-भिन्न पहलुओं को पुर्नसंगठित करते रहता है तो अचानक उसे समस्या का समाधान नजर आ जाता है। प्रबोधन की घटना सूझ के समान है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति में उद्भवन की अवस्था के बाद प्रबोधन की अवस्था कभी भी उत्पन्न हो सकती है। यहाँ तक की कभी-कभी व्यक्ति को सपने में भी प्रबोधन का अनुभव होते पाया गया है।
4. प्रमाणीकरण या सम्बोधन - यह सृजनात्मक चिन्तन की चौथी अवस्था है। इस अवस्था में प्रबोधन की अवस्था से प्राप्त समाधान का मूल्यांकन किया जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति

यह देखने की कोषिष करता है कि उसे जो समाधान प्राप्त हुआ है वह ठीक है अथवा नहीं। जाँच करने के बाद जब व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि समाधान सही नहीं था तो वह सम्पूर्ण कार्यविधि का संशोधन करता है और पुनः दूसरे समाधान की खोज करता है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि सृजनात्मक चिन्तन की चार अवस्थाएं है जो एक निश्चित क्रम में होती हैं। कुछ मनोवैज्ञानिको ने इन अवस्थाओं की आलोचना की और कहा कि सभी सृजनात्मक चिन्तन में ये सभी अवस्थाएं नहीं होती है।

उपर्युक्त अवस्थांये सुनिश्चित एंव परिवर्तनशील नहीं है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक सृजनशील चिंतक इन्हीं अवस्थाओ का अनुसरण करें। किसी चिंतक को उद्भवन की अवस्था से पहले भी समस्या का समाधान प्राप्त हो सकता है। यह भी हो सकता है कि चिंतक को इन अवस्थाओं का अनुसरण करने पर भी समस्या का समाधान का समाधान प्राप्त न हो और उसे इन्ही अवस्थाओं की कई बार पुनरावृति करनी पड़े। फिर भी ये सोपान महान सृजनशील चिंतको द्वारा अभिव्यक्त उच्चतम सृजनात्मक प्रक्रिया के वैज्ञानिक स्वरूप का विधिवत प्रतिनिधित्व करतें है।

18.7 सृजनात्मक बालक कीविशेषताएँ

सृजनात्मक बालक के व्यवहार में प्रायः निम्न गुणो एवं विशेषताओं की झलक मिलती है-

1. विचार और कार्य में मौलिकता का प्रदर्शन।
2. व्यवहार में आवश्यक लचीलेपन का परिचय।
3. विस्तारीकरण की प्रवृति पाई जाती है अर्थात वह अपने विचारो कार्यो एवं योजनाओ के अत्यंत सूक्ष्म पहलुओ पर ध्यान देता हुआ हर बात को अधिक विस्तार से कहना आरे करना चाहता है।
4. वह समायोजन में सक्षम होता है एंव उसकी सहासिक कार्यो में प्रवृति होती है।
5. वह एकरसता और उबाऊपन की अपेक्षा कठिन और टेढ़े-मेढ़े जीवन पथ से आगे बढना पसन्द करता है।
6. जटिलता, अपूर्णता असमरूपता के प्रति उसका लगाव होता है और वह खुले दिमाग से सोचने मेविश्वास रखता है।
7. उसकी स्मरण शक्ति अच्छी होती है और उसके ज्ञान का दायरा भी विस्तृत होता है।
8. उसमें चुस्ती सजगता, ध्यान एवं एकाग्रता की प्रचुरता होती है।
9. उसमें स्वयं निर्णय लेने की पर्याप्त योग्यता होती है।
10. वह अस्पष्ट गूढ एवं अव्यक्त विचारो में रूचि रखता है।

11. समस्याओ के प्रति उसमें उच्च स्तर की संवेदना पाई जाती है।
12. उसकी विचार अभिव्यक्ति में अत्यधिक प्रवाहात्मकता पाई जाती है।
13. उसमें अपने सीखने या प्रशिक्षण को एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में स्थानान्तरण करने की योग्यता पाई जाती है।
14. उसके सोचने-विचारने के ढंग में केन्द्रीयकरण एवं रूढिवादिता के स्थान पर विविधता एवं प्रगतिशीलता पाई जाती है।
15. उसमें उच्च स्तर की सौन्दर्यात्मक अनुभूति, ग्राह्ता एवं परख क्षमता पाई जाती है।
16. समस्या के किसी नवीन हल एवं समाधान तथा योजना के किसी नवीन प्ररूप का उसकी ओ से सदैव स्वगत ही किया जाता है और इस दिशा में वह स्वयं भी अथक प्रयास करता रहता है
17. अन्य सामान्य बालको की अपेक्षा उसमें आत्म-सम्मान के भाव और अहं के तृष्टिकरण की आवश्यकता कुछ अधिक ही पाई जाती हे। वह आत्म-अनुशासित होता है। वह अपने व्यवहार और सृजनात्मक उत्पादन में विनोदप्रियता आनद उल्लास स्वच्छंद एवं स्वतंत्र अभिव्यक्ति तथा बौद्विक स्थिरता का प्रदर्शन करता है।
18. उसमें उच्च स्तर की विशेष कल्पनाशक्ति जिसे सृजनात्मक कल्पना का नाम दिया जाता है पाई जाती है।
19. विपरीत एवं विरोधी व्यक्तियो तथा परिस्थितियो को सहन करने तथा उनसे सामंजस्य स्थापित करने की क्षमता भी उसमें पाई जाती है।
20. उसकी कल्पना एवं दिव्य स्वप्नो का संसार भी काफी अदभुत एंव महान होता है।

18.8 बालको में सृजनात्मकता विकसित करना

सृजनात्मकता सार्वभौमिक होती है। हममें से प्रत्येक अपनी बाल्यावस्था में कुछ न कुछ मात्रा में सृजनात्मकता के लक्षणो को प्रदर्शन करता है परन्तु आगे चलकर इनको भलि–भाँति पोषित और पल्लवित नहीं कर पाता। इस कमी को एक अच्छी शिक्षा व्यवस्था और पालन-पोषण के उचित तरीको द्वारा दूर करने का प्रयास किया जा सकता है। एक अध्यापक को सृजनात्मक बालकोंकी पहाचान से संबधित सभी बातों का पर्याप्त ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक होता है। ताकि व समय से ही सृजनशील बालको को सही पहचान कर उनकी सृजनात्मकता केविकास में भरपूर सहायेग प्रदान कर सके।प्रवाह,मौलिकता, लचीलापन, विविध-चितन आत्म-विश्वास, संवेदनशीलता सबंधो को देखने तथा बनाने की योग्यता-आदि कुछ ऐसी योग्यतायें है जिनका विकास सृजनात्मकता के

विकास में सहायक सिद्व हो सकता है। इन योग्यताओ को विकसित करने के लिये निम्नलिखित सुझाव सहायक सिद्ध हो सकतें है-

1. **उत्तर देने की स्वतन्त्रता-** अक्सर देखा जाता हे कि अध्यापक और माता-पिता अपने बच्चों से पुराने या प्रचलित उत्तर की आशा रखतें है। इससे बच्चो में सृजनात्मकता विकसित नहीं होती है,अतः हमें बच्चो को उत्तर देने के लिये पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिये।
2. **अभिव्यक्ति के लिये अवसर**-अभिव्यक्ति की भावना बच्चों को अत्यधिक संतुष्टि प्रदान करती है। वस्तुतः वे तभी सृजनात्मक कार्यो में निश्चित रूप से जुटते हैंजब उनमें उनका अहं निहित हो अर्थात जब वे अनुभव करे कि उनके प्रयासों से ही अमुक सृजनात्मक कार्य सभव हो सका है। अतः हमें बच्चो को ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिये जिनसे उन्हे अनुभव हो कि सृजन उनके द्वारा ही सम्पन्न हुआ है।
3. **मौलिकता तथा लचीलेपन को प्रोत्साहित करना**- बच्चो में किसी भी रूप में विद्यमान मौलिकता को प्रोत्साहित करना चाहिये। किसी समस्या का समाधान करने समय या किसी काम को सीखते समय यदि वे अपनी विधियो को परिवर्तित करना चाहते है तो उनको प्रोत्साहन मिलना चाहिये।उन्हें प्रचलित तरीकों से हटकर काम करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।
4. **उचित अवसर एवं वातावरण प्रदान करना-** बच्चो में सृजनात्मकता को बढावा देने के लिये स्वस्थ एवं उचित वातावरण की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है। बच्चे की जिज्ञासा तथा सहनशीलता को किसी भी सूरत में दबाना नहीं चाहिये। सृजनशील अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने के लिये हम पाठय-सहगामी क्रियाओं, सामाजिक उत्सवो धार्मिक मेंलो प्रदर्शनो आदि का प्रयोग कर सकतें है। नियमित कक्षा-कार्य को भी इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है। जिससे बच्चो मे सृजनात्मक चितंन का विकास हो।
5. **समुदाय के सृजनात्मक साधनो का प्रयोग करना**- बच्चो को सृजनात्मक-कला केन्द्रो तथा वैज्ञानिक एवं औद्योगिक निर्माण-केन्द्रों की यात्रा करनी चाहिये। इससे उन्हें सृजनात्मक कार्य करने की प्रेरणा मिलेगी। कभी-कभी कलाकारो वैज्ञानिको तथा अन्य सृजनशील व्यक्तियो को भी स्कूल में आमंत्रित करना चाहिये। इस प्रकार बच्चो के ज्ञान-विस्तार में सहायता मिल सकती है और उनमें सृजनशीलता को बढावा दिया जा सकता है।

6. **सृजनात्मक चिंतन के अवरोधों से बचना**-परम्परावादिता शिक्षण की त्रृटिपूर्ण विधियाँ,असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार,परंपरागत कार्य आदतें पुराने विचारो आदर्शो और दुराग्रह और नवीन के प्रति भय ,छोटे-छोटे प्रत्येक कार्य में उपलब्धि की उच्च स्तर की मांग, परीक्षा में अधिक अंक अर्जित करने का दबाव,बालकों, को लीक से हटकर सोचने या कार्य करने को निरूत्साहित करना आदि ऐसे अनेक कारण और परिस्थितियाँ हैंजिनसे बालको में सृजनात्मकता के विकास और पोषण में बाधा पहुँचती है। अतः अध्यापक और अभिभावको का यह कर्तव्य है कि वे इन सभी कारणो और परिस्थितियो से बालकों की सृजनात्मकता को नष्ट होने से बचाने के लिये हर संभव प्रयत्न करे।
7. **मूल्यांकन प्रणाली में सुधार**- जो कुछ भी विद्यालय में पढा और पढाया जात है वह सब प्रकार से परीक्षा केंद्रित होता है। अतः जब तक परीक्षा और मूल्यांकन के ढाचें मे अनुकूल परिवर्तन नहीं आता तब तक किसी भी शिक्षा व्यवस्था के द्वारा सृजनात्मकता का पोषण नहीं किया जा सकता। परीक्षा प्रणाली में उन सभी बातो का समावेश करना चाहिये जिनेक द्वारा विद्यार्थियो को ऐसे अधिगम अनुभव अर्जित करने के लिये प्रोत्साहन मिले जो सृजनात्मकता का पोषण और विकास करते हो।
8. पाठयक्रम अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः विद्यालय पाठयक्रम को इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिये कि वह बालको में अधिक से अधिक सृजनात्मकता विकसित करने में सहायक सिद्व हो सके। पाठयक्रम काफी लचीला होना चाहिये और उसमें परीक्षा और मूल्यांकन की आवश्यकता से परे हटकर कुछ और पढने-पढाने एवं करने की पर्याप्त स्वतंत्रता होनी चाहिये।संक्षेप मे पाठयक्रम का आयोजन सब प्रकार से इस तरह किया जाना चाहिये कि उसके द्वारा सृजनशीलता में सहायक विभिन्न गुणोंका विकास में भरपूर सहयोग मिल सके।
9. श्रमशीलता आत्म-निर्भरता आत्म-विश्वास-आदि कुछ ऐसे गुण है जो सृजनात्मकता में सहायक होते हैं। बच्चो मे इन गणों का निर्माण करना चाहिये।
10. सृजनात्मकता के विकास के लिये विशेष तकनीकों का प्रयोग- सृजनात्मकता के क्षेत्र में कार्य कर रहे अनुसंधानकर्ताओ ने बालको में सृजनात्मकता के विकास के लिये जिन विशेष तकनीक एवं विधियों का उपयोग उचित ठहराया है। इनमें से कुछ का उल्लेख हम नीचे कर रहे हैं।
    i. **मस्तिष्क उद्वेलनBrain Storming**- मस्तिष्क उद्वेलन एक ऐसी तकनीक एवं विद्या है जिसके द्वारा किसी समूह विशेष से बिना किसी रोक-टोक आलोचना

मूल्यांकन या निर्णय की परवाह किये बिना किसी समस्या विशेष के हल के लिये विभिन्न प्रकार के विचारो एवं समाधानो को जल्दी-जल्दी प्रस्तुत करने के लिये कहा जाता है और फिर विचार विमर्श के बाद उचित हल एंव समाधान तलाशने का प्रयत्न किया जाता है।

ii. **शिक्षण प्रतिमानो का प्रयोग Use of Teaching Models-** शिक्षा शास्त्रियो द्वारा प्रतिपादित कुछ विशेष शिक्षण प्रतिमानो का प्रयोग भी बालको की सृजनशीलता के विकास में पर्याप्त योगदान दे सकता है। उदाहरण के लिये ब्रूनर का संप्रत्यय उपलब्धि-प्रतिमान संप्रत्ययो को ग्रहण करने के अलावा बालको को सृजनशील बनाने मे भी सहयोग देता है। और इसी तरह सचमैन का पूछताछ प्रशिक्षण प्रतिमान वैज्ञानिक ढंग से पूछताछ करने के कौशल को विकसित करने के अतिरिक्त सृजन में सहायक विशेष गुणो को विकसित करने में पर्याप्त सहायता करता है।

iii. **क्रीड़न तकनीकों का प्रयोग Use of Gaming Technique-** खेल-खेल में ही सृजनात्मकता का विकास करेन की दृष्टि से क्रीड़न तकनीकों का अपना एक विशेष स्थान है। इस कार्य हेतु इन तकनीकों में जो प्रयोग सामग्री काम में लाई जाती है वह शाब्दिक और अशाब्दिक दोनो ही रूपो में होती है। प्रकार की क्रीड़नसामग्री द्वारा बालको को खेल-खेल मे ही निर्माण एवं सृजन के लिये जो बहुमूल्य अवसर प्राप्त होते है उन सभी का उनकी सृजनशीलता के विकास एवं पोषण हेतु पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है।

18.9 सृजनात्मकतापरीक्षण

बुद्धिमापन के लिये जिस प्रकार हम बुद्धि –परीक्षणों का प्रयोग करते है वैसे ही सृजनात्मकता की परखके लिये हम सृजनात्मक परीक्षणों का प्रयोग कर सकतें है। इस कार्य के लिये विदेशोंमें तथा अपने देश में विभिन्न मनकीकृत उपयोगी परीक्षण मौजूद है। इनमें से कुछ काउल्लेख नीचे किय जा रहा है।

1. मानकीकृत विदेशी परीक्षण
   i. मिनीसोटा सृजनात्मक चिंतन परीक्षण
   ii. गिलफोर्ड का बहु-विध चिंतन उपकरण
   iii. रिमोट ऐसोशियेशन परीक्षा

iv. बालक एवं कॉरगन का सृजनात्मकता उपकरण
v. सृजनात्मक योग्यता का ए0सी0परीक्षण
vi. टौरेन्स का सृजनात्मक चिंतन परीक्षण

2. भारत में मानकीकृत परीक्षण

i. बकर मेहदी सृजनात्मक चिंतन परीक्षण-हिन्दी एवंअग्रजी
ii. पासी सृजनात्मक परीक्षण
iii. शर्मा बहु-विध उत्पादन योग्यता परीक्षण
iv. सक्सेना सृजनात्मक परीक्षण

जैसा कि पहले बतायाजा चुका है सृजनात्मकता बहुत सारी योग्यताओं और व्यक्तित्व आदि गुणों का एक जटिल सम्मिश्रण है। उपरोक्त वर्णितपरीक्षणो कें माध्यम से सृजनात्मकता के लिये आवश्यक विशेषगुणोंतथा विशेषताओं की उपस्थितिका अनुमान लगाने का प्रयत्न इन परीक्षणो में शामिल शाब्दिक तथा अशाब्दिक प्रश्नोतथा कार्यात्मक व्यवहार से किया जाता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्वों के नाम लिखिए।
6. सृजनात्मकता की चार अवस्थाओंके नाम लिखिए।
7. सृजनात्मक बालक किन्हीं दो विशेषताओं को लिखिए।
8. सृजनात्मकता के विकास के लिये विशेष तकनीक एवं विधियों के नाम लिखिए।
9. किन्हीं दो मानकीकृत विदेशी सृजनात्मकता परीक्षणों के नाम लिखिए।
10. किन्हीं दो भारत में मानकीकृत सृजनात्मकता परीक्षणों के नाम लिखिए।

18.10 सारांश

सृजनात्मकता से अभिप्राय व्यक्ति विशेष की उस विलक्षण संज्ञानात्मक क्षमता या योग्यता से होता है जिसके द्वारा वह किसी नवीन विचार या वस्तु का सृजन करने उसकी खोज या उत्पादन करने में कामयाब रहता है। सृजनात्मक सार्वभौमिक होती है तथा प्रकृति प्रदत होने के साथ-साथ प्रशिक्षण द्वारा भी इसे विकसित किया जा सकता है।

इसकी अभिव्यक्ति का क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक होता है। इसके प्रमुख अवयवों तथा तत्वों के रूप में हम प्रवाहात्मक विचारधारा मौलिकता, लचीलापन, विविधतापूर्णचिंतन, आत्मविश्वास, संवेदनशीलता संबधो को देखने तथा बनाने की योग्यता आदि की चर्चा कर सकतें है।

सृजनात्मक प्रक्रिया में कुछ विशष्टि एंव निश्चित सोपानो का समावेश रहता है। इन सोपानो का इसी क्रम में उपस्थित रहना आवश्यक नहीं है परन्तु फिर भी इनके द्वारा सृजनशील चिंतको द्वारा अभिव्यक्त उच्चतम सृजनात्मक प्रक्रिया के स्वरूप का विधिवत प्रतिनिधत्व हो सकता है।

सृजनात्मक बालको की पहनचान हेतु दो प्रकार के साधनो जैसे-सृजनात्मक परीक्षण तथा सृजनात्मक व्यवहार को जाँचने वाली अन्य तकनीको का उपयोग किया जा सकता है। सृजनात्मक परीक्षणों से सृजनात्मकता का निदान उसी रूप में सभव है। जैसे कि बुद्धि -परीक्षणो द्वारा बुंद्वि की जाँच के लिये किया जाता है। ऐसे परीक्षणो के उदाहरण रूप में हम टौरेन्स के सृजनात्मक चिंतन परीख्ज्ञण बकर मेहन्दी सृजनात्मक चिंतन परीक्षण पासी सृजनात्मक परीक्षण आदि का नाम ले सकतें है।

विशेष प्रयत्नों तथा उचित शिक्षा-दीक्षा से बालको में अन्तःनिहित सृजनात्मकता को विकसित किया जा सकता है। ऐसे कुछ उपायो में हम जिनका प्रमुख रूप से उल्लेख कर सकते हैं। वे है- बालको को उत्तर देने की स्वतंत्रता प्रदान करना, उन्हें अपने अहं तथा सृजनात्मक अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करना उनकी मौलिकता तथा लचीलेपन को प्रोत्साहित करना सृजनात्मक चिंतन के अवरोधो से बचाना पाठयक्रम के उचित आयोजन शिक्षण विधियों तथा मूल्यांकन प्रणाली में सुधार पर ध्यान देना, समुदाय के सृजनात्मक साधनो का प्रयोग करना तथा अपना उदाहरण एंव आर्दश प्रस्तुत करना तथा सृजनात्मकता के विकास से सम्बन्धित नवीनतम तकनीको जैसे मस्तिष्क उद्वेलन आदि की सहायता लेना।

18.11 शब्दावली

1. **अभिसारी चिन्तन -** दिये गये तथ्यो के आधार पर किसी पूर्व निष्चित क्रम में चिन्तन करना।
2. **अपसरण चिन्तन -** भिन्न-भिन्न दशाओं में चिन्तन करना
3. **प्रवाह**-प्रवाह से तात्पर्य किसी दी गई समस्या पर अधिकाधिक विचारों या प्रत्युत्तरों की प्रस्तुति से है ।
4. **लचीलापन**- लचीलापन से अभिप्राय किसी समस्या पर दिये गये प्रत्युत्तरों या विकल्पों में एक- दुसरे से भिन्नता से है।
5. **मौलिकता**- मौलिकता से अभिप्राय व्यक्ति के द्वारा प्रस्तुत किये गये विकल्पों या उत्तरों का असामान्य अथवा अन्य व्यक्तियों के उत्तरों से भिन्न होने से है। मौलिक्ता मुख्यतः नवीनता से सम्बंधित होती है।
6. **विस्तारण**- विस्तारण का अभिप्राय दिये गये विचारों या भावों की विस्तृत व्याख्या, व्यापक पूर्ति या गहन प्रस्तुतीकरण है

18.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नो के उत्तर

1. ड्रैवडाहल के अनुसार “सृजनात्मकता व्यक्ति की वह योग्यता हे जिसके द्वारा वह उन वस्तुओं या विचारों का उत्पादन करता है जो अनिवार्य रूप से नये हो और जिन्हें वह व्यक्ति पहले से न जानता हो”
2. सार्वभौमिक
3. गिलफोर्ड ने सृजनात्मकचिन्तन को निम्न दो भागो में बांटा है-
   i. अभिसारी चिन्तन
   ii. अपसरण चिन्तन
4. अपसरण चिन्तन
5. सृजनात्मकता के चार प्रमुख तत्वों के नाम हैं-प्रवाह, लचीलापन, मौलिकता, विस्तारण।
6. सृजनात्मकता की चार अवस्थाओंके नाम हैं- आयोजन, उद्भवन, प्रबोधन , प्रमाणीकरण या सम्बोधन
7. सृजनात्मक बालक दो विशेषताएँ निम्न हैं-
   i. विचार और कार्य में मौलिकता का प्रदर्शन।
   ii. व्यवहार में आवश्यक लचीलेपन का परिचय।
8. सृजनात्मकता के विकास के लिये विशेष तकनीक एवं विधियों के नाम हैं-
   i. मस्तिष्क उद्वेलन
   ii. शिक्षण प्रतिमानो का प्रयोग
   iii. क्रीड़न तकनीकों का प्रयोग
9. दो मानकीकृत विदेशी सृजनात्मकता परीक्षणों के नाम हैं-
   i. मिनीसोटा सृजनात्मक चिंतन परीक्षण
   ii. गिलफोर्ड का बहु-विध चिंतन उपकरण
10. भारत में मानकीकृत दोसृजनात्मकता परीक्षणों के नाम हैं-
   i. बकर मेहदी सृजनात्मक चिंतन परीक्षण-हिन्दी एवंअग्रजी
   ii. पासी सृजनात्मक परीक्षण

18.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मंगल, एस0 के0 (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
2. सिंह,ए0के0 (2007): उच्चतर मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
3. पाण्डा, अनिल कुमार (2011), शिक्षा मनोविज्ञान , साहित्य रत्नालय, कानपुर
4. सिंह,ए0के0 (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन पब्लिसर्श।

5. अग्रवाल, सन्ध्या(2005), विजय प्रकाशन मन्दिर,वाराणसी

18.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. सृजनात्मकता क्या है? सृजनात्मकता की विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।
2. सृजनात्मकता को परिभाषित कीजिए। सृजनात्मकता विकसित करने के लिए विद्यालयों में क्या प्रावधान किए जाने चाहिए?
3. सृजनात्मकता की प्रकिया को स्पष्ट कीजिए। सृजनात्मकता के तत्वों का वर्णन कीजिए।
4. सृजनात्मकता के विकास के लिये विशेष तकनीक एवं विधियों का वर्णन कीजिए।

इकाई 19- अभिप्रेरणा: परिभाषाएं, सिद्धान्त तथा अधिगम पर प्रभाव,अधिगमकर्ता को अभिप्रेरित करने में शिक्षक की भूमिका

Motivation –Definitions and Theories, Impact on Learning. Role of Teacher in Motivating the Learners

19.1 प्रस्तावना
19.2 उद्देश्य
19.3 परिभाषाएं
19.4 अभ्रिप्रेरकों का वर्गीकरण
19.5 अभिप्रेरणा के घटक
19.6 अभिप्रेरण करने वाले कारक
19.7 अभिप्रेरणा के सिद्धान्त
19.8 अभिप्रेरणा का अधिगम पर प्रभाव
19.9 अधिगमकर्ता को अभिप्रेरित करने में शिक्षक की भूमिका
19.10 सारांश
19.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
19.12 संदर्भ ग्रन्थ
19.13 निबन्धात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

अभिप्रेरणा शिक्षा मनोविज्ञान का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सम्प्रत्यय है, जो प्राणी के व्यवहार को नियंत्रण करता है तथा उसे उचित दिशा में अग्रसरित करता है। अभिप्रेरणा कुशल अधिगम की आधारशिला है। अभिप्रेरणा के अभाव में हम उत्तमअधिगम की कल्पना नहीं कर सकते।

स्किनर के अनुसार, ‘‘ अभिप्रेरणा सीखने के लिए राजमार्ग है।’’

“Motivation is the super highway to learning” Skinner

‘मोटीवेशन’ (Motivation) अंग्रेजी भाषा का शब्द है, जिसकी व्युत्पति लैटिन भाषा की motum धातु से हुई है। motum का अर्थ है- move, motor तथा motion.

अभिप्रेरणा के शाब्दिक अर्थ में हमें किसी अनुक्रिया को करने का बोध होता है। प्राणी की प्रत्येक अनुक्रिया में कोई न कोई उद्दीपन किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान होता है। उद्दीपन के अभाव में किसी भी अनुक्रिया का होना असम्भव होता है। उद्दीपन दो प्रकार का होता है- आन्तरिक तथा बाह्य। अतः अभिप्रेरणा के शाब्दिक अर्थ में किसी भी बाह्य उद्दीपन को अभिप्रेरणा कहा जा सकता है। अभ्रिपेरणा के मनोवैज्ञानिक अर्थ में केवल आन्तरिक उद्दीपनों को ही सम्मिलित किया जाता है, बाह्य उद्दीपनों को कोई महत्व नहीं दिया जाता। अतः मनोवैज्ञानिक अर्थ में अभिप्रेरणा एक आन्तरिक शक्ति है, जो प्राणी को अनुक्रिया करने के लिए प्रेरित करती है।

क्रेंच एवं क्रेचफील्ड के अनुसार अभिप्रेरणा का प्रश्न क्यों है।''

The question of motivation is the question of why- Krech and Crutchfield

हम शिक्षा क्यों प्राप्त करते हैं,? हम खाना क्यों खाते हैं? हम धन क्यों कमाते हैं? हम प्रेम क्यों करते हैं? इस प्रकार के सभी प्रश्नों का सम्बन्ध अभिप्रेरणा से है।

अभिप्रेरणा की प्रक्रिया को लक्ष्य प्राप्ति की ओर उन्नमुख होने के सन्दर्भ में आगे रेखाचित्र 19.1 तथा 19.2 द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

19.1 व 19.2

19.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप:-

1. अभिप्रेरणा की परिभाषाओं से परिचित हो सकेंगे।
2. अभ्रिप्रेरकों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
3. अभिप्रेरणा के घटकों को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों की व्याख्या सकेंगे।
5. अभिप्रेरणा का अधिगम पर प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

19.3 अभिप्रेरणा की परिभाषाएं (Definitions of Motivation

अभिप्रेरणा की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं।

1. वुडवर्थ के अनुसार, '' अभिप्रेरण व्यक्ति की वह दशा है, जो किसी निश्चित, उद्देश्य की पूर्ति के लिए निश्चित व्यवहार को स्पष्ट करती है।''

   "Motive is a state of individual which disposes him for certair behaviour and for seeking goals.'' **–Woodworth**

2. गिलफोर्ड के अनुसार ''अभिप्रेरणा कोई विशेष आन्तरिक कारक अथवा दशा है, जिसमें क्रिया को आरम्भ करने एवं बनाये रखने की प्रवृत्ति होती है।''

   "Motive is any particular internal factor or condition that tends to initiate and to sustain activity.'' –Guilford)

3. ब्लयेर, जोन्स एवं सिम्पसन के अनुसार, '' अभिप्रेरणा एक प्रक्रिया है, जिसमें सीखने वाले की आन्तरिक शक्तियां या आवश्यकताएं उसके वातावरण में विविध लक्ष्यों की ओर निर्देशित होती हैं।''

   "Motivation is a process in which the learners' internal energies or needs are directed towards various goal objects in his environment." - Blair, Jones and Simpson

4. गुड के अनुसार, ''अभिप्रेरणा क्रिया को प्रारम्भ करने, जारी रखने तथा नियंत्रित रखने की प्रक्रिया है।''

   Motivation is the process of arousing, sustaining and regulating activity." –Good

5. शफर तथा अन्य के अनुसार ''अभिप्रेरण क्रिया की एक ऐसे प्रवृत्ति है जो प्राणोदय द्वारा उत्पन्न होती है तथा समायोजन पर पूर्ण होती है। ।

   Motive may be defined as a tendency to activity initiated by drive and concluded by adjustment."Shaffer and Others

अभिप्रेरणा की उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर इसकी निम्नलिखित विशेषताएं प्रकट होती हैं-

1. अभिप्रेरणा उद्देश्य प्राप्ति का साधन है, जो कि उद्देश्य प्राप्त करने के लिए मार्ग प्रशस्त करती है।
2. अभिप्रेरणा उद्देश्य प्राप्ति तक प्राणी को क्रियाशील बनाये रखती है।
3. अभिप्रेरणा व्यक्ति को निश्चित व्यवहार करने के लिए निर्देशित करती है।
4. अभिप्रेरणा के दो मुख्य स्रोत हैं-आन्तरिक एवं बाह्य।
5. अभिप्रेरणा व्यक्तित्व की शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दशाओं के द्वारा प्रभावित होती है।
6. अभिप्रेरित व्यवहार की मुख्य तीन विशेषताएं होती हैं -
   i. व्यवहार की जागरूकता (Arousalness)
   ii. अभिप्रेरित व्यक्ति का दिशा निर्देशित (Directed) होना
   iii. का अनुभव करना (Feeling)

19.4 अभिप्रेरकों का वर्गीकरण Classification of Motives

अभिप्रेरकों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जाता है। वर्गीकरण में भिन्नता मनोवैज्ञानिक के अभिप्रेरकों के सापेक्ष दृष्टिकोणों में भिन्नता के कारण है।

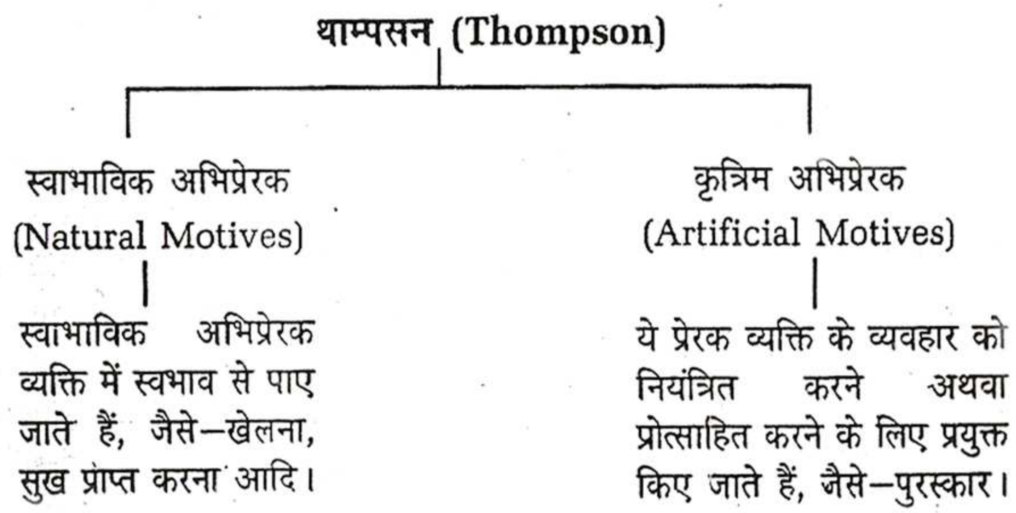

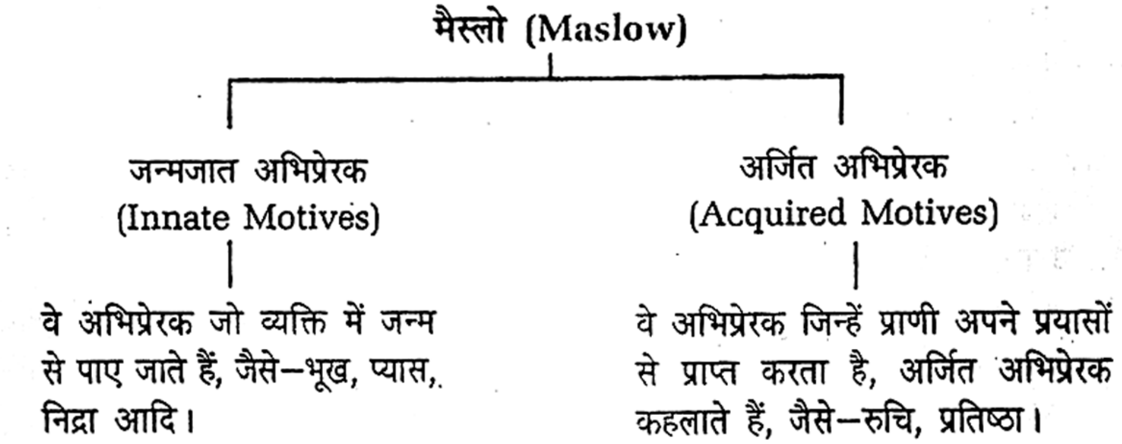

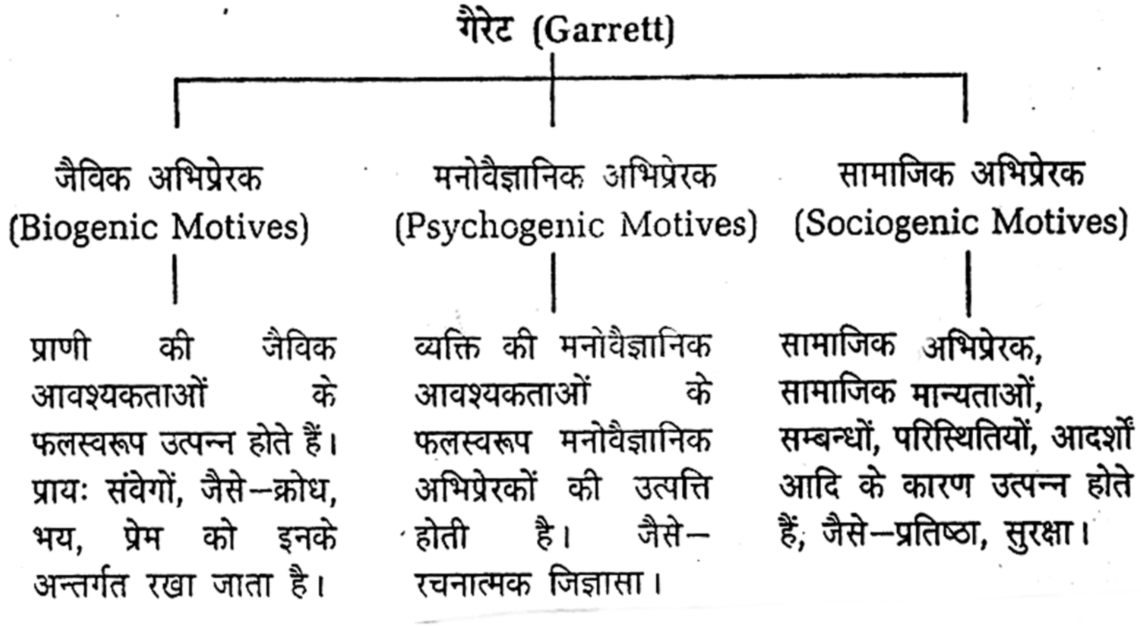

19.5 अभिप्रेरणा के घटक Components of Motivation

अभिप्रेरणा के प्रत्यय की व्याख्या कई घटकों, जैसे-आवश्यकता (Need), अन्तर्नोद या चालक (Drive)प्रोत्साहन या प्रलोभन (Incentives)तथा अभिप्रेरक (Motive)की चर्चा से स्पष्ट होती है।

1. आवश्यकताएं (Needs)आवश्यकता व्यक्ति में दैहिक असन्तुलन अथवा कमी की ओर संकेत करती है। प्रत्येक प्राणी की कुछ मूलभूत जैविकीय (Biological) जैसे-भोजन, हवा, जल तथा मनोसामाजिक (Psycho-social), जैसे-सुरक्षा, स्नेह, सम्मान आदि

आवश्यकताएं होती हैं, जिनकी पूर्ति के अभाव में ये आवश्यकताएं व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती है।

2. अन्तर्नोद (Drive)इसे चालक भी कहते हैं। प्राणी की आवश्यकताएं चालक को जन्म देती हैं जिससे व्यक्ति आवश्यकता को पूर्ण करने या दूर करने के लिए व्यवहार अथवा क्रिया करने के लिए क्रियाशील होता है। आवश्यकता मूलतः शारीरिक होती हैं, जबकि चालक व्यवहार से सम्बन्धित होता है, जैसे-भोजन की आवश्यकता भूख अन्तर्नोद को जन्म देती है।

   बोरिंग के अनुसार, ''चालक आन्तरिक शारीरिक क्रिया या दिशा है, जो उद्दीपन के द्वारा विशेष प्रकार का व्यवहार उत्पन्न करती है। ''drive is an intra – organic activity or condition of tissue supplying stimulation for particular type of behaviour." -Boring

3. प्रोत्साहन (Incentives) जिस वस्तु से आवश्यकता तथा अन्तर्नोद की समाप्ति होती है, उसे प्रोत्साहन कहते हैं। प्रोत्साहन का सम्बन्ध निश्चित वस्तुओं से है, जिसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रयत्न करता है। जैसे भूख अन्तर्नोद के लिए भोजन एक प्रोत्साहन है।
4. अभिप्रेरक (Motives)-मैकडूगल के अनुसार, ''अभिप्रेरक व्यक्ति के अन्दर वे दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक दशायें हैं, जो उसे एक निश्चित ढंग से कार्य करने के लिए प्रवृत्त करती हैं। "Motives are conditions, physiological and psychological within the organism that dispose it to act in certain ways". -Mc Dugall

सामान्य अर्थो में हम कह सकते हैं कि अभिप्रेरक कार्य करने की वे प्रवृत्ति हैं, जो किसी आवश्यकता अथवा अन्तर्नोद से प्रारम्भ होती हैं तथा समायोजन पर पूर्ण हो जाती है।

19.6 अभिप्रेरणा देने वाले घटक (Factors Accounting for Motivation)

जॉन पी. डिसेको ने अभिप्रेरणा देने वाले चार घटकों (Factor) का विवेचन किया है-

1. उत्तेजना (Arousal)
2. आकांक्षा (Expectancy)
3. प्रोत्साहन (Incentive)
4. दण्ड (Punishment)

इन चारों घटकों में आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यह शिक्षक में अभिप्रेरणा देने की क्रियाएं मानी जाती है-

1. उत्तेजना का कार्य (Arousal Function)
2. आकांक्षा का कार्य (expectancy Function)
3. प्रणोदन का कार्य (Incentive Function)
4. दण्ड अथवा अनुशासन का कार्य (Punishment or Disciplinary Function)

1. उत्तेजना (Arousal)

उत्तेजना शक्ति प्रदान करती है, परन्तु निर्देशन नहीं प्रदान करती। जैसे किसी मशीन को चालू कर दिया जाये, परन्तु उसका मार्ग (Steering) निश्चित नहीं किया जाये। उत्तेजना व्यक्ति की सक्रियता के लिए आवश्यक घटक माना जाता है। उत्तेजना के तीन स्तर होते हैं-

i. उच्च स्तर,
ii. मध्य स्तर, तथा
iii. निम्न स्तर

व्यक्ति को उत्तेजना दो स्रोतों से मिलती है-

i. आन्तरिक उत्तेजना स्रोत,
ii. बाह्य उत्तेजना स्रोत

1. आन्तरिक उत्तेजना स्रोत - सामान्य रूप से शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए व्यक्ति सक्रिय होता है। आन्तरिक योजना स्रोत शारीरिक निम्न स्तर की आवश्यकताओं से लेकर मानसिक उच्च की आवश्यकताओं तक होता है।
2. बाह्य उत्तेजना स्रोत - साधारणतः वातावरण से व्यक्ति को उत्तेजना मिलती है। वातावरण के तत्व उद्दीपन का कार्य करते हैं। वातावरण की नवीनता भी बालकों को प्रेरित करती है। नीरसता को दूर करने के लिए परिवर्तन तथा वातावरण की नवीनता आवश्यक होती है। उत्सुकता तथा उत्तेजना दोनों ही भावना के स्तर को उठाने में सहायक होते हैं। उत्तेजना में भावुकता की मात्रा अधिक होती है। उत्तेजना का छात्र की निष्पत्तियों से धनात्मक सहसम्बन्ध होता है।

2. आकांक्षा (Expectancy)

किसी कार्य के लिए हम कितनी अपेक्षा करते हैं और कितना वास्तव में कर पाते हैं, यह अन्तर हमें उत्तेजित करता है। यह उत्तेजना प्रदान करने का एक स्रोत भी माना जाता है।

अनुदेशक के उद्देश्य भी अकांक्षा का कार्य करते हैं। इनसे शिक्षक का विशेष सम्बन्ध रहता है, परन्तु शिक्षक को छात्रों की आकांक्षाओं तथा मूल्यों को ध्यान में रखना चाहिए।

छात्र जिस शक्ति से अनुदेशन उद्देश्यों को पाने का प्रयास करता है, वही उसकी आकांक्षा तथा शक्ति सन्तुलन का परिणाम होता है। इस प्रकार छात्र जिस प्रेरक को पाना चाहता है। उससे उसकी अकांक्षा तथा शक्ति सन्तुलन का पता चलता है।

आकांक्षा तथा प्रत्यक्षीकरण में अन्तर उत्तेजन स्रोत का कार्य करता है। अन्तर के आकार को छात्र की भावना निर्धारित करती है। अधिक अन्तर होने पर असन्तुष्टि की भावना विकसित होती है और कम अन्तर होने पर प्रसन्नता का अनुभव करता है। निष्पत्ति अभिप्रेरणा इसी का परिणाम होता है।

3. **प्रोत्साहन (Incentive)**

प्रोत्साहन वास्तव में मानव-जीवन का लक्ष्य होता है। हल तथा स्पेन्स का मत है कि प्राणी की क्रियाओं को लक्ष्य अथवा प्रोत्साहन द्वारा प्रेरित किया जा सकता है। जीव जो भी क्रियाएं करता है, उनसे कुछ न कुछ पाना चाहता है। जितना प्रोत्साहन का आकार बड़ा होता है, उतनी ही अधिक प्रेरणा मिलती है। व्यक्ति के कार्य करने की शक्ति प्रोत्साहन की प्रकृति से प्रभावित होती है। बी.एफ. स्किनर पुनर्बलन को भी प्रोत्साहन मानते हैं।

4. **दण्ड तथा अनुशासन (Punishment and Discipline**)

सोलोमन के अनुसार, ''दण्ड एक उद्दीपन के समान है, जिससे व्यक्ति बचने का प्रयास करता है'' **"**Punishment is as a stimulus, the individual seeks to avoid or escape." (Slomon 1964)

दण्ड व्यवहार को रोकने के लिए उतना ही दिया जाना चाहिए, जितने से अपना उद्देश्य प्राप्त किया जा सके। दण्ड के दो रूप होते हैं-

क. उस व्यक्ति को दिया जाये, जिसने गलत व्यवहार किया है, जिससे वह भविष्य में उस व्यवहार की पुनरावृत्ति न करे।

ख. अन्य व्यक्ति के समक्ष इसलिए दिया जाता है, जिससे वह व्यक्ति भी ऐसे व्यवहार न करे।

परन्तु सोलोमन के ये विचार बाल मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के विपरीत हैं। दण्ड का स्वरूप अधिकांश रूप में विकृत होता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. स्किनर के अनुसार,अभिप्रेरणा सीखने के लिए _______ है।
2. अभिप्रेरित व्यवहार की दो विशेषताएं लिखिए।
3. अभिप्रेरणा के कोई दो घटकों के नाम लिखिए।
4. आवश्यकता व्यक्ति में __________ की ओर संकेत करती है।
5. ________ ने दण्ड को स्वस्थ संवेग नहीं माना है, क्योंकि इसका आधार भय होता है।

19.7 अभिप्रेरणा के सिद्धान्त (Theories of Motivation)

'मानव व्यवहार को कौन दिशा प्रदान करता है। मानव क्यों किसी विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करता है? मानव व्यवहार किन कारकों से प्रभावित होता है? मानव अभिप्रेरणा में कौन से तत्व निहित होते है?

उपरोक्त सभी ऐसे प्रश्न हैं जिनका स्पष्ट उत्तर ढूढ़ने के प्रयास हमेशा से किए जाते रहे है। परन्तु इन पर एकमत होने या समान व्याख्या प्रस्तुत करने में अभी तक असफलता ही हाथ लगी है। ''जाकी रही मावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखी वैसी।'' मनोवैज्ञानिक ने प्रत्यक्षण में भिन्नता होने के कारण से अभिप्रेरणा को अपने विशिष्ट तरीके से स्पष्ट किया है।

मानव व्यवहार की प्रक्रिया तथा क्रिया विधि का अभिप्रेरणा के सम्बंध में मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गई व्याख्या या विचारों को अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों के नाम से जाना जाता है। अभिप्रेरणा के सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करते हैं कि कोई व्यक्ति किसी व्यवहार को क्यों करता है। अभिप्रेरणा का कोई एक सिद्धान्त न होकर अनेक सिद्धान्त मनोवैज्ञानिकों द्वारा अभी तक प्रतिपादित किए गए हैं। डेकार्टेस ने सर्वप्रथम व्यवहार के सिद्धान्त (Theory of Behaviour) का प्रतिपादन किया। इन्होंने मनुष्य को प्रभावित करने वाले बाह्य तत्वों के आधार पर मानव व्यवहार की व्याख्या की है। साथ ही मानव व्यवहार के प्रेरक के रूप में संवेगों की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया है। इसके बाद थॉमस हॉवस के द्वारा मनोवैज्ञानिक सुखवाद (Psychological Hedonism) के आधार पर मानव व्यवहार की व्याख्या की। जिसके अनुसार मानव उसी व्यवहार को करने की इच्छा रखता है जिससे उसे सुख व सन्तोष प्राप्त होता है तथा कष्टों से मुक्ति मिलती है। जॉन लॉक ने भी इसी से मिलते-जुलते विचार अभिप्रेरित व्यवहार के सम्बंध में प्रस्तुत किए। 19वीं शताब्दी में प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के विकास के पश्चात अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धांन्तों का प्रतिपादन हुआ। कुछ सिद्धान्त निम्नलिखित प्रकार से हैं-

1. अभिप्रेरणा का मूल प्रवृत्ति सिद्धान्त (Instictive Theory of Motivation)

यह सिद्धान्त मैक्डूगल (Mc-Daugall), जेम्स (James) तथा बर्ट (Burt) ने प्रतिपादित किया। इनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही कुछ विशिष्ठ व्यवहारिक प्रवृत्तियों विद्यमान रहती हैं। जिनकी क्रियाशीलता पर व्यक्ति इनके सापेक्ष विशिष्ट व्यवहार करता है। यह प्रदर्शित व्यवहार उसकी प्रवृत्ति की संतुष्टि करता है। मूल प्रवृत्ति के प्रत्यय का सर्वप्रथम उपयोग विलियम जेम्स (William James) द्वारा किया गया। मैकडूगल ने मूल प्रवृत्तियों की तीन विशेषताएं बताई

- ये जन्मजात होती है।
- ये प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान होती है।

- ये व्यवहार को प्रेरित करती है।

मूल प्रवृत्तियों के आधार पर सभी मानवों के व्यवहारों की स्पष्ट व्याख्या की जा सकती है। जब व्यक्ति में विद्यमान मूल प्रवृत्ति में से कोई भी मूलप्रवृत्ति क्रियाशील होती है। तो व्यक्ति में दैहिक व मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। जिससे मुक्ति पाने हेतु व्यक्ति विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करता है।

मैकडूगल ने 14 मूल प्रवृत्तियों की एक सूची भी प्रस्तुत की है। इनमें से प्रत्येक मूल प्रवृत्ति एक विशिष्ट संवेगात्मक स्थिति (Emotional dispostion) से जुड़ी होती है।

सभी व्यवहार मूल प्रवृत्यात्मक होते हैं जिनमें संज्ञान, भाव तथा चेष्टा विद्यमान रहती है।

सारणी 19.1 मैक्डूगल द्वारा दी गई-14 मूल प्रवृत्तियां तथा उनसे सम्बन्धित संवेग

क्रम	मूलप्रवृत्ति	संवेग
1	पलायन (Escape)	भय (Fear)
2	युयुत्सा (Combat)	क्रोध(Anger)
3	निवृत्ति(Repulsion)	घृणा(Disgust)
4	सन्तान कामना (Parental)	वात्सल्य (Temderme)
5	शरणागति (Appeal)	करुणा (Distre)
6	कामवृत्ति (sex)	कामुकता (Lust)
7	जिज्ञासा (Curiosity)	आश्चर्य (wonder)
8	दैन्य (Submission)	आत्महीनता (Negative Self Feeling)
9	आत्म गौरव (Assertion)	आत्माभिमान (Positive self felling)
10	समूहिक (Gregariousness)	एकाकीपन (Loneliness)
11	भोजनोन्वेषण (Food Seeking)	भूख (Hunger)
12	संग्रहण (Acquisition)	स्वामित्व (Ownership)
13	रचनात्मकता (Construction)	कृतिभाव (creation)
14	हास (Laughter)	आमोद Amusement)

मूल प्रवृत्ति सिद्धान्त प्रारम्भ में काफी प्रचलित रहा परन्तु व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया कि सभी व्यवहार मूलप्रवृत्यामक नहीं होते हैं मूल-प्रवृत्तियों की संख्या भी निरन्तर बढ़ती गई तथा सन 1924 तक 14000 मूल प्रवृत्तियों को गिनाना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु आलोचनाओं के बाद भी इस सिद्धांत को एक महत्पपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है।

2.मैस्लो का मांग सिद्धान्त (Need theory of Maslow)

अभिप्रेरणा के मांग सिद्धान्त का प्रतिपादन सन् 1954 में अब्राहम मैस्लो Abraham Maslow) ने किया था। मैस्लो ऐसे प्रथम मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने आत्मानुभूति (Actualization) को एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक बतलाया इसी आधार पर आवश्यकता पदानुक्र्रम सिद्धान्त प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त के अनुसार जब प्राणी अपने अस्तित्व के लिए आवश्यक किसी वस्तु की कमी या मांग महसूस करता है तो उसे प्राप्त करने के लिए क्रियाशील या अभिप्रेरित हो जाता हैं। व्यक्ति का एक ही व्यवहार कई कमियों की पूर्ति कर सकता है इसलिए व्यवहार की प्रवृत्ति बहु-अभिप्रेरित (multi-motivative) होती है। मैस्लो ने मानव आवश्यकताओं या अभिप्रेरकों की व्याख्या एक अनुक्रम (Hierarchy) या सीढ़ी (Ladder) के रूप में की हैं मैस्लों ने अपने सिद्धान्त की व्याख्या आत्मानुभूति के आधार पर की है। आत्मानुभूति से तात्पर्य व्यक्ति के अन्दर छिपी हुई क्षमताओं की पहचान करके उनका ठीक प्रकार से विकास करने की आवश्यकताओं की तीव्रता के आधार पर व्याख्या की है। इनके अनुसार कुछ आवश्यकताएं ऐसी होती हैं जिन्हें तुरन्त पूरा करना आवश्यक होता है और कुछ आवश्यकतायें ऐसी होती हैं। जो बाद में पूरी की जा सकती है।

मैस्लों ने जो पांच आवश्यकतायें अथवा प्रेरक बताये हैं वे निम्न प्रकार से हैं।

1. शारीरिक आवश्यकताएं या प्रेरक (Physiological Needs or Motives)
2. सुरक्षा आवश्यकताएं या प्रेरक (Safety Motives or Need)
3. स्नेह या लगाव प्रेरक अथवा आवश्यकताएं (Love and Affection Motives or Need)
4. आत्म सम्मान आवश्यकतायें या प्रेरक (Self Esteem Motives or Need)
5. आत्मानुभूति आवश्यकता या प्रेरक (Self Actualizotion motives or Need

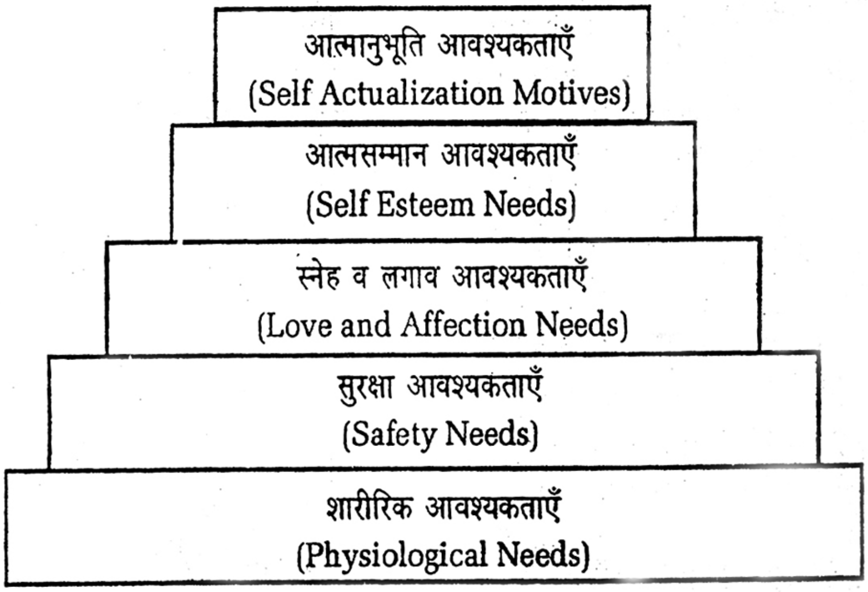

चित्र 19.1 मैस्लों की आवश्यकताओं की पदानुक्रमिक संरचना।

1. **शारीरिक आवश्यकतायें या प्रेरक** - ये प्रेरक व्यक्ति में बुनियादी आवश्यकताओं के कारण उत्पन्न होते हैं, इन्हें मनोदैहिक आवश्यकता अथवा अभिप्रेरक भी कहते हैं। इनके उदाहरण हैं-भूख, प्यास, नींद, सैक्स, मूलमूत्र, त्याग इत्यादि। इनकी पूर्ति ना होने पर व्यक्ति का शारीरिक संतुलन बिगड़ जाता है। इनकी पूर्ति होने पर ही व्यक्ति स्वस्थ रहता है। उच्च स्तर की आवश्यता तभी जाग्रत होती हैं। जब इन आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाएं।
2. **सुरक्षा आवश्यकताएं या प्रेरक** -जब व्यक्ति की मनोदैहिक आवश्यकताओं की पूति हो जाती है तब व्यक्ति अपने जीवन की सुरक्षा के प्रति जागरूक हो जाता है। ताकि उसके जीवन को कोई खतरा न हो। इन आवश्यकताओं के उदाहरण हैं-जीवित रहना, सुरक्षित रहना तथा आदेश देना आदि।
3. **स्नेह व लगाव प्रेरक या आवश्यकतायें**- जब व्यक्ति अपनी शारीरिक आवश्यकताओं तथा सुरक्षा को सुनिश्चित कर लेता है तो वह समाज में स्नेह, प्रेम तथा सहानुभूति की आशा करता है। इसीलिए वह अपने मित्रों, पड़ोसियों तथा सम्बन्धियों से मधुर सम्बंध कायम करना चाहता है। दूसरे से स्नेह व प्रेम की आशा करता है। ताकि वह अपना जीवन सुखी रहकर तथा उत्साह से व्यतीत कर सके।

4. **आत्म सम्मान आवश्यकताएं या प्रेरक** - इसे उच्च स्तर की आवश्यकता अथवा प्रेरक माना जाता है। जब व्यक्ति अपने प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेता हैं तब उसे अपने आत्म सम्मान की चिन्ता होती है। व्यक्ति आत्मसम्मान चाहता है। अपने आत्मसम्मान की रक्षा में ही उसे जीवन की सार्थकता नजर आती है। वह अपमान बर्दास्त नहीं कर सकता फलस्वरूप अपने को समर्थ बनाता है।
5. **आत्म अनुभूति आवश्यकताएं अथवा प्रेरक-** अपनी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् व्यक्ति अपने समाज या समुदाय के लिए कुछ योगदान करना चाहता हैं ताकि लोग उसे याद रखे। उसके अच्छे कार्यों की प्रशंसा करे। यह योगदान व्यक्ति आर्थिक शैक्षिक, सामाजिक तथा अध्यात्मिक किसी भी रूप में हो सकता है।

आत्मानुभूति की आवश्यकता को **मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कोपलर** ने निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया है-

''व्यक्ति की अपनी क्षमताओं को विकसित करने की आवश्यकता को आत्मानुभूति कहा जा सकता है, दूसरे शब्दों में अपनी क्षमता के अनुसार कुछ कर सकना ही आत्मानुभूति हैं।''

"Self actualization refers to an Individual's need to develop his or her Potentiality in other words, to do What he or she is capable of doing" Moranm, King, Weise & Schopler.

इसी सम्बंध में **मेस्लो ने कहा कि** -''एक संगीतज्ञ को संगीत प्रस्तुत करना चाहिये, कलाकार को चित्रकारी करनी चाहिए, तथा कवि को कविता लिखनी चाहिए यदि वह आत्म संतुष्टि चाहता है। अर्थात एक व्यक्ति को वही होना चाहिए जो वह हो सकता है।'' " A musician must make music, An artist must Paint and a poet must write if he is ultimately to be at place with himself. i.e. what a man can be, he must be."

3. अभिप्रेरणा का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त Psychoanalytic theory of Motivation

अभिप्रेरणा के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का प्रतिपादन सिंगमंड फ्रायड (Sigmund Freud) ने किया था। इन्होंने स्पष्ट किया है कि मानव के अचेतन मन में दबी इच्छाएं, वासनाएं, मूलप्रवृत्ति एवं अन्य मानसिक ग्रन्थियां मानव व्यवहार को अभिप्रेरित करती हैं। फ्रायड के अनुसार अप्रासंगिक इच्छाओं को परा अहम् (super Ego)। दमन कर देता है और वे अचेतन में पड़ी रहती हैं परन्तु अनुकूल अवसर आने पर वे पुनः सक्रिय हो जाती है। प्रारम्भ में बालक अपनी प्रत्येक इच्छा को पूरी करना चाहता है। परन्तु नैतिकता के विकास के साथ-साथ उसमें उचित अनुचित का ज्ञान बढ़ता है। वह इच्छा की अपेक्षा औचित्य पर अधिक ध्यान देने लगता है। बच्चे अपने माता-पिता तथा अन्य

लोगों का अनुसरण करके अच्छे गुण सीखते हैं। फ्रायड ने मूल प्रवृत्तियों को व्यवहार का मूल कारण माना तथा दो आधारभूत मूलप्रवृत्तियों-1. जीवन मूलप्रवृत्ति (Life Instincts) 2. मृत्यु मूल प्रवृत्ति (Death Instincts) की पहचान कर इन्हीं सभी प्रकार के व्यवहारों का प्रमुख अभिप्रेरणात्मक स्रोत बताया। इनके अनुसार व्यक्ति के सकारात्मक कार्य जीवन मूलप्रवृत्ति से निर्देशित व संचालित होते हैं तथा सभी विध्वंसात्मक कार्य मृत्यु मूलप्रवृत्ति के द्वारा संचालित होते हैं।

फ्रायड के अनुसार व्यक्ति तो अचेतन के द्वारा ही संचालित व नियंत्रित होता है। एक तरीके से कहें कि व्यक्ति अचेतन के हाथों की कठपुतली की तरह होता है तथा व्यक्ति को वहीं करना होता है जैसा उसका अचेतन चाहता है। इस प्रकार मानव व्यवहार में अचेतन की प्रभावी तथा महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की गई है।

4. मरे का आवश्यकता सिद्धान्त (Murray's Need theory of Motivation)

यह आवश्यकता सिद्धान्त हेनरी मरे (Henery murray) ने 1938 में प्रतिपादित किया। मरे के अनुसार आवश्यकता एक परिकल्पित शक्ति (Hypothetical Force) हैं जो मानसिक स्तर पर व्यक्ति के प्रत्यक्षण संवेदनाओं, बुद्धि आदि को संगठित कर उसके व्यवहार का नियंत्रण करती है। आवश्यकता का प्रेरणा से घनिष्ठ सम्बंध रहा है। मरे के अनुसार असन्तुष्ट आवश्यकता प्राणी को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है तथा तब तक क्रियाशील रखती है जब तक आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होती। मरे ने आवश्यकताओं को दो क्षेत्रों में वर्गीकृत किया है-

1. प्राथमिक आवश्यकताएं - प्राथमिक आवश्यकताए उन्हें कहते हैं जो प्राणी के जीवित रहने के लिए आवश्यक होती है। इसके अन्तर्गत खाना, पानी, वस्त्र आदि।
2. गौण आवश्यकताए - वे आवश्यकताएं गौण आवश्यकतायें कहलाती हैं जिनका जन्म प्राथमिक आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप होता है। गौण आवश्यकताओं के उदाहरण हैं- रचनात्मकता, खेल, निन्दा, आक्रामकता, सम्बन्ध, धन अर्जन करना, आदेश देना आदि।

मरें (Murray) ने अनेक परीक्षणों के आधार पर निम्नलिखित 27 आवश्यकताओं का वर्णन किया तथा उनके मापन हेतु परीक्षण भी बनाये हैं-

1. अपमान (Abusement)
2. निष्पति (Achievement)
3. सम्बन्ध (Affiliation)
4. अभिग्रहण (Acquisition)
5. आक्र्रमण (Aggression)
6. स्वायत्ता (Autonomy)
7. निर्माण (Construction)

8. संज्ञान (ब्वहदपजपवद)
9. विपरीत क्रिया (Counter action)
10. दोष बचाव (Blame-Avoidance)
11. सम्मान (Deference)
12. प्रतिरक्षण (Defendence)
13. स्पष्टीकरण (Exposition)
14. प्रदर्शन (Exhibition)
15. प्रभुत्व (Dominance)
16. पोषण (Nutrition)
17. पतन बचाव (In-avoidance)
18. हानि बचाव (Harm-Avoidance)
19. खेल (Play)
20. व्यवस्था (Order)
21. परित्याग (Rejection)
22. धारण (Retention)
23. समझ (Understanding)
24. काम (Sex)
25. संवेदनशीलता (Sensitise)
26. उच्चता (Superiority)
27. परिश्रम (Succorance)

5.अभिप्रेरणा-स्वास्थ्य सिद्धान्त (Motivation-Hygiene Theory)

अभिप्रेरणा स्वास्थ्य सिद्धान्त का प्रतिपादन फ्रेड्रिक हर्जबर्ग (Fredric Herzberg) ने 1966 में किया। इस सिद्धान्त में कार्य की परिस्थिति में व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों को स्पष्ट किया गया। वस्तुतः यह सिद्धान्त उ़द्योग तथा व्यापार जगत के लिए था परन्तु इसकी उपयोगिता शिक्षा के क्षेत्र में कम नहीं है।

इन्होंने अपने सिद्धान्त की निम्नलिखित दो कारकों के आधार पर व्याख्या की है-

1. स्वास्थ्य कारक (Hygiene Factors) इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कारक सम्मिलित होते हैं-
    i. कार्य की परिस्थितियॉं
    ii. विद्यालय नीति एवं प्रशासन
    iii. निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण के विभिन्न प्रकार

iv. विद्यालय का स्तर

यदि विद्यालय की उपरोक्त व्यवस्थाएं निम्न स्तर की होती हैं तब छात्र अप्रसन्न रहता हैं उसे सन्तुष्टि प्राप्त नहीं होती तथा उसकी अधिगम उपलब्धि अत्यन्त कम होती है।

2. प्रेरक (Motivatiors) -प्रेरक छात्रों की प्रसन्न रखते हैं तथा छात्रों के अधिगम में वृद्धि करते हैं। इसमें निम्नलिखित तत्वों को सम्मिलित किया गया है।
    i. निष्पत्ति
    ii. मान्यता
    iii. (उत्तरदायित्व
    iv. प्रगति तथा स्वतंत्रता
    v. व्यक्तिगत विकास

प्रेरक स्थायी प्रभाव उत्पन्न करते हैं तथा अधिगम के परिणाम में वृद्धि करते हैं।

19.8सीखने में अभिप्रेरणा (Motivation in Learning)

शिक्षा प्रक्रिया में अभिप्रेरणा (Motivation) के प्रत्यय का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अभिप्रेरणा का उचित प्रयोग करके अध्यापक सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को अधिक अच्छे ढंग से सम्पादित कर सकता है। अभिप्रेरित बालक (Motivated Children) ज्ञानर्जन के लिए तत्पर होते हैं तथा वे शीघ्रता, सरलता, सहजता तथा सुगमता से सीख सकते हैं। इसके विपरीत अ-अभिप्रेरित बालकों (Non-Motivated Children) को प्रायः नई बातों को सीखने में रुचि नहीं होती है तथा वे सीखने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। अध्यापक आवश्यकतानुसार विभिन्न प्रकार के अभिप्रेरकों का उपयोग करके बालकों की शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता हैं शिक्षा प्रक्रिया में अभिप्रेरणा की उपयोगिता स्वस्पष्ट ही है। कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त अन्य शैक्षिक परिस्थितियों में छात्रों के व्यवहारों को नियंत्रित करने के कार्य में भी अभिप्रेरणा महत्वपूर्ण योगदान कर सकती हैं। चरित्र-निर्माण में भी अभिप्रेरणा सहायक सिद्ध होती है। अध्यापक बालकों को उच्च चारित्रिक गुणों तथा आदेशों को प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित कर सकता है।

छात्रों को अभिप्रेरित करने की दृष्टि से निम्नलिखित बातें महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है-

1. सीखने की इच्छा (Will to Learn):

    अभिप्रेरणा प्रदान करने का प्रथम कदम बालकों में सीख ने की इच्छा जागृत करना है। सीखने की प्रक्रिया तब ही सरल, शीघ्र तथा स्थायी होती है, जब व्यक्ति सीखने का इच्छुक होता है यद्यपि कभी-कभी बालक बिना इच्छा के भी कुछ बातें सीख जाते हैं, परन्तु सीखने की इच्छा सीखने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। इच्छा (will) एक

अत्यन्त साधारण परन्तु प्रभावी अभिप्रेरक है तथा अध्यापक इसका उपयोग सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को गति अत्यन्त सहजता से प्रदान कर सकता है।

2. सीखने में आवेष्टन (Involvement in learning) - किसी कार्य में आवेष्टित हो जाने पर व्यक्ति उस कार्य को सफलतापूर्वक करने का यथासम्भव प्रयास करता है। आवेष्टन से तात्पर्य किए जाने वाले कार्य से लगाव का अनुभव करने एवं उसकी सफलता की इच्छा से होता है। आवेष्टन की स्थिति में व्यक्ति उस कार्य में मानसिक रूप से समाविष्ट हो जाता है। यदि बालकों का लगाव सीखने की प्रक्रिया में होता है, तो वे सरलता व शीघ्रता से नवीन बातों को सीख लेते है।
3. आकांक्षा स्तर (Level of Aspiration) आकांक्षा स्तर सीखने की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक का कार्य करता है। अकांक्षा स्तर व्यक्ति के जीवन लक्ष्यों को इंगित करता है। व्यक्ति अपने आकांक्षा स्तर के अनुरूप ही प्रयास करता है। सफलता प्राप्त हो जाने पर उसका भावी अकांक्षा स्तर प्रायः अधिक ऊंचा हो जाता है, जबकि असफलता प्राप्त करने पर व्यक्ति का आकांक्षा स्तर प्रायः नीचा हो जाता है। अध्यापक छात्रों से आकांक्षा स्तर को यथासम्भव ऊंचा निर्धारित करा कर उन्हें अधिकाधिक अध्ययन करने के लिए अभिप्रेरित कर सकते हैं।
4. प्रतियोगिता (Competition) अभिप्रेरणा प्रदान करने की एक अन्य विधि बालकों में प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करना है अध्यापक को अपने छात्रों में स्वस्थ प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न करना चाहिए। इससे छात्र अधिक समय तक तथा अधिक परिश्रम से कार्य करता है। परन्तु ईर्ष्या, क्र्रोध, घृणा आदि पर आधारित प्रतिद्धन्द्विता को कदापि सराहनीय नहीं माना जाता है तथा इस प्रकार की अवांछनीय प्रतिद्धन्द्विता से सदैव बचाना चाहिए। प्रतियोगिता के फलस्वरूप बालक कठिन कार्यों को भी करने के लिए अभिप्रेरित होता है तथा सफलता प्राप्त करते हैं।
5. सफलता का ज्ञान (Knowledge of Success) सफलता का ज्ञान भी व्यक्ति की अभिप्रेरित करता है। यदि बालकों को यह पता है कि उन्होंने क्या-क्या सफलताएं प्राप्त की हैं तो वे अपनी इन सफलताओं के ज्ञान से आगे बढ़ने के लिए अधिक अभिप्रेरित होते हैं। परीक्षा के उपरान्त बालकों को अपनी शैक्षिक उपलब्धि का ज्ञान परीक्षाफल के द्वारा इसीलिए कराया जाता है, सफल छात्र भविष्य में अधिकाधिक सफलता प्राप्त करने के लिए तथा असफल छात्र अपनी कमियों को दूर करने के लिए अधिक परिश्रम करने के लिए प्रयासरत होते हैं।
6. प्रसंशा (Praise) प्रशंसा एक सकारात्मक अभिप्रेरणा (Positive Motive) है। यदि किसी छोटे के अच्छे कार्यों की प्रशंसा की जाती है, तो उसके द्वारा उस प्रकार के कार्य को करने की सम्भावना हो जाती है। वास्तव में, अपने से बड़े तथा मान्य व्यक्तियों के द्वारा की जाने वाली प्रशंसा बालक को वांछित कार्य को अधिक अच्छे ढंग से करने के लिए उत्तेजित

करती है उचित समय तथा स्थान पर की जाने वली प्रशंसा निःसंन्देह अभिप्रेरणा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध होता है।

7. निन्दा (Blame) निन्दा का निषेधात्मक अभिप्रेरक है। निन्दा को एक प्रकार का सामाजिक-मानसिक उत्पीड़न माना जा सकता है। निन्दा के भय से बालक अपने व्यवहार में सुधार लाते हैं। सामाजिक परिस्थितियों में की जाने वाली निन्दा बालकों के ऊपर अत्यन्त प्रभाव छोड़ती है। अध्यापकों को निन्दा का प्रयोग बड़ी सावधानी पूर्वक करना चाहिये। उदाहरण के लिए बच्चे के परीक्षा में अंक कम आने पर यह कह देना ही पर्याप्त है कि तुम्हारे जैसे बुद्धिमान बच्चे के इतने अंक आना बड़े आश्चर्य की बात है। शायद आपने परिश्रम से जी चुराया है।
8. पुरस्कार (Reward)- पुरस्कार प्रशंसा का अधिक स्पष्ट व प्रखर भौतिक रुप है। किसी वस्तु धन, छूट आदि के रूप में दिये जाने वाले पुरस्कार प्रायः बालकों के लिए अत्यन्त शक्तिशाली अभिप्रेरक सिद्ध होते हैं, किन्तु पुरस्कारों का प्रयोग अत्यन्त सावधानीपूर्वक करना चाहिए। ऐसा न हो कि बालक पुरस्कार प्राप्ति के लिए अनुचित तरीकों का प्रयोग करके सफलता अर्जित करने लगे।
9. दण्ड (Punishment)- दण्ड भी निन्दा की तरह से एक निषेधात्मक अभिप्रेरक है, जो निन्दा से अधिक प्रखर होता है। दण्ड से अभिप्राय मानसिक पीड़ा देने से है, जिससे बालक भविष्य में उन कार्यों को न करने से बचे। दण्ड वास्तव में भय पर आधारित होता है। इसलिए इसका प्रयोग बड़ी सावधानी से करनी चाहिए। सही तो यह होता है कि दण्ड दिया ही न जाये।
10. प्रतिष्ठा (Prestige)- प्रतिष्ठा प्राप्त करना व्यक्ति की इच्छा होती है। वह चाहता है कि अपने समूह में अधिकाधिक प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त करे तथा इसके लिए वह सतत् चेष्टा करता है। बालक भी कक्षा तथा विद्यालय में प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहते हैं। प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न छात्रों की अपेक्षाएं भिन्न-भिन्न होती है। बालक अपनी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के अनुरूप कक्षा में प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है। प्रतिष्ठा प्राप्ति की इच्छा बालकों को परिश्रम से कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है।

19.9 अधिगमकर्ता को अभिप्रेरित करने में शिक्षक की भूमिका

उत्तेजना के लिए शिक्षक का कार्य

शिक्षक के समक्ष छात्रों के लिए उत्तेजना की समस्या आती है। छात्र की निष्पति उसी समय अच्छी होती है जबकि छात्र न अधिक भावुक और न अधिक सुस्त होता है। शिक्षक का कार्य छात्रों को सक्रिय रखना है। कक्षा की दैनिक क्रियाओं की नीरसता को कम करने के लिए नवीन कार्यों के लिए छात्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए। अमूर्त प्रकरण को उदाहरणों की सहायता से स्पष्ट करना चाहिए।

अज्ञात प्रकरण को सादृश्य अनुभव की सहायता से बोधगम्य बनाना चाहिए। उत्तेजना के कार्य का अर्थ शिक्षक के लिए छात्रों को सीखने में संलग्न रखने तथा सक्रिय बनाने हेतु प्रयुक्त करता है। इसके लिए शिक्षक को अन्वेषण तथा ब्रेन-स्टार्मिंग विधियों को प्रयुक्त करना चाहिए। छात्रों के पूर्व व्यवहार के आधार पर शिक्षक उनकी आवश्यकतानुसार उत्तेजना स्तर कम अथवा अधिक कर सकता है।

आकांक्षा स्तर का विकास

शिक्षक का मुख्य कार्य छात्रों की आकांक्षाओं को विस्तार देना हैं, जिससे वह अनुदेशन-उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके। छात्रों की तत्कालीन आकांक्षा को अन्तिम आकांक्षा से सम्बन्धित करना चाहिए, जिससे छात्र सीखने में पूर्णतः संलग्न हो सकें। अकांक्षाएं पूर्व-अनुभवों तथा निष्पत्तियों पर आधारित होती है। शिक्षक का कर्तव्य होता है कि कक्षा के अकांक्षा स्तर को ऊंचा उठाये, क्योंकि आकांक्षा स्तर को ही निष्पत्ति स्तर के लिए उत्तरदायी माना जाता है, इसके लिए शिक्षक को छात्रों की आकांक्षा में परिवर्तन लाना चाहिए, तभी वह अनुदेशन-उद्देश्यों की प्राप्ति करने में सफल हो सकता है।

प्रोत्साहन

शिक्षक का कर्त्तव्य यह है कि छात्रों की अनुक्रियाओं को इस प्रकार पुनर्बलन प्रदान करे, जिससे वह अनुदेशन के उद्देश्यों की प्राप्ति कर सके, इसके लिए प्रशंसा, उत्साहवर्द्धन, परीक्षाफल,
प्रतियोगिता आदि को प्रयुक्त करना चाहिए। प्रशंसा करने से छात्रों का निष्पति-स्तर ऊंचा होता है। परीक्षाफल पृष्ठपोषण के लिए अधिक प्रभावशाली माना जाता है। परीक्षाफल में आशा से अधिक अंक पाने पर उस विषय को सीखने के लिए प्रेरणा मिलती है तथा सीखने की प्रक्रिया की गति में भी वृद्धि होती है।

शिक्षक को गृह कार्यों का मूल्यांकन करने में उनका अंकन तथा अनुस्थित (Grading) करना चाहिए तथा उन्हें शीघ्र छात्रों को वापस लौटाना चाहिए। इससे अधिगम के कार्यों में छात्रों की रुचि बढ़ती है।

दण्ड

बी.एफ. स्कनर ने भी दण्ड को महत्व दिया है। छात्र के अवांछित व्यवहारों को रोकने के लिए दण्ड दिया जाना चाहिए। कक्षा में अनुशासन तथा विद्यालय में अनुशासन बनाये रखने के लिए दण्ड दिया जा सकता है। दण्ड अनुशासन का ही रूप होता है। दण्ड उस समय विशेष उपयोगी होता है, जबकि,

क. पुरस्कार के साथ प्रयुक्त किया जाये, अच्छे व्यवहार को प्रशंसा तथा अवांछनीय व्यवहारों के लिए दण्ड दिया जाये।

ख. अवांछित व्यवहार का परिणाम क्षतिपूर्ण हो।

ग. अवांछित व्यवहार के लिए तत्काल ही दण्ड दिया जाये, जिससे छात्र यह अनुभव कर सके कि उसको अवांछनीय कार्य के कारण दण्ड दिया गया है।

स्किनर ने दण्ड को स्वस्थ संवेग नहीं माना है, क्योंकि इसका आधार भय होता है। उनका सुझाव है कि अवांछनीय कार्यों पर ध्यान नहीं देना चाहिए, क्योंकि दण्ड देने पर अवांछनीय व्यवहारों को बल मिलता है। छात्रों में हीनभावना का विकास होता है, शिक्षक के प्रति सद्भावना नहीं रहती है। अतः इसका प्रयोग यदाकदा ही करना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

6. अभिप्रेरणा का मूल प्रवृत्ति सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया है।
7. मूल प्रवृत्ति के प्रत्यय का सर्वप्रथम उपयोग ___________ द्वारा किया गया।
8. मैकडूगल ने मूल प्रवृत्तियों की कौन सी विशेषताएं बताई हैं?
9. अभिप्रेरणा के मांग सिद्धान्त का प्रतिपादन _________ ने किया।
10. मैस्लो ऐसे प्रथम मनोवैज्ञानिक थे जिन्होंने _________ को एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक बतया।
11. अभिप्रेरणा के _______________ का प्रतिपादन सिंगमंड फ्रायड ने किया था।
12. फ्रायड के अनुसार व्यक्ति तो _________ के द्वारा ही संचालित व नियंत्रित होता है।
13. मरे ने आवश्यकताओं को किन दो क्षेत्रों में वर्गीकृत किया है?
14. अभिप्रेरणा स्वास्थ्य सिद्धान्त का प्रतिपादन ___________ ने किया।

19.10 सारांश

शिक्षण तथा अधिगम के लिए उत्प्रेरण एक आवश्यकता है। उत्प्रेरण के अभाव में अधिगम की क्रिया सम्भव नहीं है। अध्यापकों का दायित्व है कि बच्चों को अभिप्रेरणा प्रदान कर अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करें। प्रोत्साहन देने का सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है कि हम बच्चों के अच्छे कार्यों की प्रशंसा करें। दण्ड को अभिप्रेरणा का अच्छा साधन नहीं माना जाता है। अभिप्रेरणा के प्रत्यय की व्याख्या कई घटकों, जैसे-आवश्यकता (Need), अन्तर्नोद या चालक (Drive)प्रोत्साहन या प्रलोभन (Incentives)तथा अभिप्रेरक (Motive)की चर्चा से स्पष्ट होती है।

सामान्य अर्थों में हम कह सकते हैं कि अभिप्रेरक कार्य करने की वे प्रवृत्ति हैं, जो किसी आवश्यकता अथवा अन्तर्नोद से प्रारम्भ होती हैं तथा समायोजन पर पूर्ण हो जाती है।

मानव व्यवहार की प्रक्रिया तथा क्रिया विधि का अभिप्रेरणा के सम्बंध में मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गई व्याख्या या विचारों को अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों के नाम से जाना जाता है। अभिप्रेरणा के सिद्धान्त इस बात की व्याख्या करते हैं कि कोई व्यक्ति किसी व्यवहार को क्यों करता है। अभिप्रेरणा का कोई एक सिद्धान्त न होकर अनेक सिद्धान्त मनोवैज्ञानिकों द्वारा अभी तक प्रतिपादित किए गए हैं।

शिक्षा प्रक्रिया में अभिप्रेरणा (Motivation) के प्रत्यय का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। अभिप्रेरणा का उचित प्रयोग करके अध्यापक सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को अधिक अच्छे ढंग से सम्पादित कर सकता है।

19.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. राजमार्ग
2. अभिप्रेरित व्यवहार की दो विशेषताएं हैं -
   i. व्यवहार की जागरूकता
   ii. अभिप्रेरित व्यक्ति का दिशा निर्देशित होना
3. अभिप्रेरणा के कोई दो घटकों के नाम हैं- आवश्यकता, अन्तर्नोद
4. दैहिक असन्तुलन
5. स्किनर
6. अभिप्रेरणा का मूल प्रवृत्ति सिद्धान्त मैक्डूगल , जेम्स तथा बर्ट।
7. विलियम जेम्स
8. मैकडूगल ने मूल प्रवृत्तियों की निम्न विशेषताएं बताई हैं-
   - ये जन्मजात होती है।
   - ये प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान होती है।
   - ये व्यवहार को प्रेरित करती है।
9. अब्राहम मैस्लो
10. आत्मानुभूति
11. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त
12. अचेतन
13. मरे ने आवश्यकताओं को निम्न दो क्षेत्रों में वर्गीकृत किया है-
    i. प्राथमिक आवश्यकताएं
    ii. गौण आवश्यकताए
14. फ्रेड्रिक हर्जबर्ग

19.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. सिंह , शिरीषपाल (2009): शिक्षा मनोविज्ञान मेरठ, आर लाल बुक डिपो,

2. वर्मा, जी.एस. (2011) शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस
3. गुप्ता, एस.पी., गुप्ता अलका (2004): उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन,
4. शुक्ल, ओ.पी., (2002): शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन
5. पाठक, पी.डी. (2002): शिक्षा मनोविज्ञान आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर

19.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अभिप्रेरणा को परिभाषित कीजिए।
2. अभिप्रेरकों के विभिन्न प्रकार बताइये।
3. अभिप्रेरणा के कौन-कौन से घटक हैं।
4. अभिप्रेरणको को परिभाषित कीजिए।
5. अभिप्रेरकों का वर्गीकरण कीजिए।
6. सीखने में अभिप्रेरणा का क्या योगदान है।
7. अभिप्रेरणा किसे कहते हैं? अभिप्रेरणा के घटकों को स्पष्ट कीजिए।
8. छात्रों को अभिप्रेरित करने के लिए उपयोग में लाई जाने वाली विभिन्न प्रविधियों को विस्तार से समझाइये।
9. अधिगम में प्रेरणा के योगदान की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
10. अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों की विस्तुत विवेचना कीजिए।

इकाई 20- समायोजन:- अर्थ एवं प्रक्रिया, सुमायोजित तथा कुसमायोजित के लक्षण, समायोजन के निर्धारक, समायोजन की विधियाँ अध्यापकों तथा परिवार के दायित्व

20.1 प्रस्तावना
20.2 उद्देश्य
20.3 समायोजन का अर्थ एवं परिभाषा
20.4 समायोजन की प्रक्रिया
20.5 समायोजन प्रक्रिया की विशेषताएं
20.6 समायोजित तथा कुसमायोजित व्यक्ति के लक्षण
20.7 समायोजन के निर्धारक
20.8 समायोजन की विधियाँ
20.9 सुसमायोजन के विकास के लिए अध्यापकों तथा विद्यालयों के दायित्व
20.10 सुसमायोजन के लिए परिवार के दायित्व
20.11 सारांश
20.12 शब्दावली
20.13 स्वमूल्यांकनहेतु प्रश्नों के उत्तर
20.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
20.15 निबन्धात्मक प्रश्न

20.1प्रस्तावना

मानव की अनेकानेक आवश्यकताएं एवं आकांक्षाएं होती हैं। आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की मनोनुकूल प्राप्ति न होने पर मानव के मस्तिष्क में कुण्ठा, असंतोष, निराशा पैदा होती है। जब उसकी आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती है तब वह संतोष, तृप्ति, सुख तथा खुशी अनुभव करता है। परन्तु जब आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती तो कष्ट अनुभव

करता है। सफलता तथा असफलता जीवन पर्यन्त व्यक्ति को मिलती हैं। कुछ व्यक्ति असफलताओं से इतने प्रभावित हो जाते है कि वे कि कर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं। कुछ असफलताओं को चुनौती के रूप में स्वीकार कर, अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पुनः मनोयोगपूर्वक परिश्रम करके अपने कार्य में सफल हो जाते हैं। किम्कर्तव्य विमूढ़ हो जाने पर व्यक्ति समाज में समायोजन करने में बाधा उत्पन्न होती है।

इस इकाई में हम विद्यालयों में छात्रों के समायोजन से सम्बन्धित प्रमुख बातों का अध्ययन कर रहे हैं। ताकि हमारे छात्र परिवार, विद्यालय तथा समाज में अच्छी प्रकार समायोजित होकर एक सद्नागरिक बन सकें।

20.2उद्देश्य

बच्चों तथा बड़ो के लिए समाज में समायोजन (adjustment)बहुत आवश्यक है। कुसमायोजित व्यक्ति न तो स्वयं के लिए उपयोगी होता है न वह समाज के लिए उपयोगी हो सकता है। बच्चों के सुसमायोजन में अध्यापकों तथा विद्यालय का महत्वपूर्ण दायित्व है। बच्चों के सुसमायेजन से ही राष्ट्र तथा विश्व में सुसमायोजन सम्भव है। अध्यापकों को बच्चों को सुसमायोजित करने का ज्ञान होना आवश्यक है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. हम समायोजन का अर्थ तथा उसकी परिभाषाएं समझ सकेंगे।
2. कुसमायोजित तथा सुसमायोजित व्यक्ति में अन्तर जान सकेंगे।
3. परिवार तथा अध्यापकों के द्वारा बच्चों के समायोजन के लिए किए जाने वाले कार्यो से परिचित हो सकेंगे।
4. विद्यार्थियों में सुसमायोजन का विकास करने के लिए, शिक्षण करते समय उपयोगी विधियों का उपयोग कर सकेंगे।

20.3समायोजनकाअर्थएवंपरिभाषा

समायोजन के अर्थ को समझने के लिए हम पहले समायोजन की कुछ परिभाषाओं का अध्ययन कर ले तो उचित रहेगा। परिभाषाएं इस प्रकार है-

गेट्स के अनुसार: ''समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने और अपने वातावरण के बीच सन्तुलित सम्बन्ध रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।''

According to Gates ‘‘Adjustment is a continual process by which a person varies his behavior to produce a more harmonious relationship between himself and his environment.”

बोरिंग लैंगफील्ड व बेल्ड के अनुसार, ‘‘समायोजन वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में सन्तुलन रखता है।

According to Boring, Langfield and Weld

“Adjustment is the process by which a living organism maintains a balance between its needs and the circumstances that influence the satisfaction of those needs.”

इन परिभाषाओं से प्रकट होने वाले प्रमुख तथ्य इस प्रकार हैं-

1. समायोजन एक प्रक्रिया है।
2. यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।
3. व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में सन्तुलन स्थापन के लिए अपने व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करने होते हैं।

समायोजन को समझने के लिए समायोजन की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है। समायोजन की प्रक्रिया को आरेख 21.1 में रेखाचित्र के रूप में व्यक्त किया गया है।

20.4समायोजनकीप्रक्रिया(Process of Adjustment)

व्यक्ति समायोजन करने के लिए अपने पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करता है या पर्यावरण के अनुरुप अपना अनुकूलन करके स्वयं बदल जाता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति अपने विचारों, सम्प्रत्ययों, अभिवृत्तियों, प्रत्यक्षण, भावनाओं, संवेग तथा क्रियाओं में परिवर्तन करता है। समायोजन की प्रक्रिया को हम निम्नलिखित आरेख द्वारा भी प्रदर्शित कर सकते हैं-

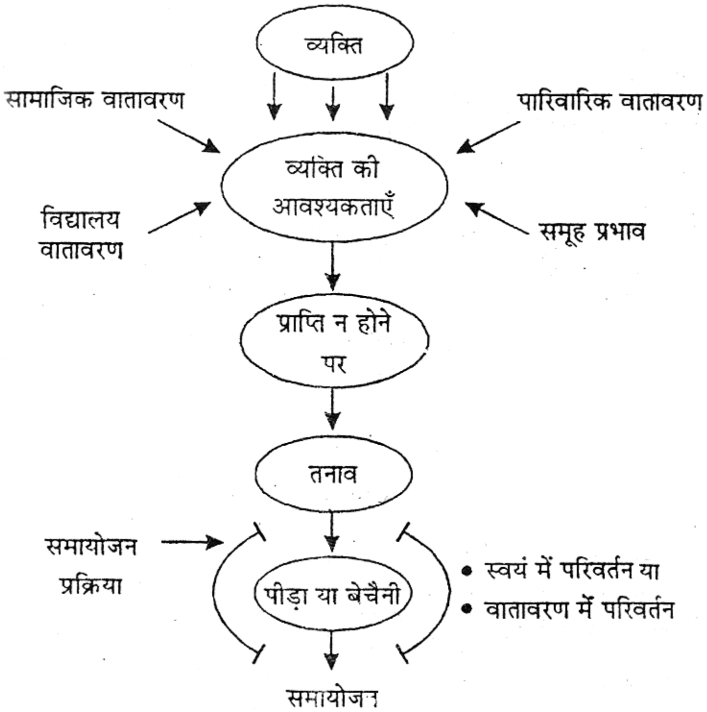

रेखाचित्र 21.1 समायोजन-प्रक्रिया

उपरोक्त रेखाचित्र से स्पष्ट है कि व्यक्ति की आवश्यकता प्राप्ति के लक्ष्य में उसके विभिन्न वातावरण प्रभाव डालते हैं। लक्ष्य प्राप्ति न होने पर व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। फलस्वरूप व्यक्ति तनाव कम करने के लिए स्वयं में अथवा वातावरण में परिवर्तन करने का प्रयास करता है। यदि वह इस क्रिया में सफल रहता है तो समायोजित हो जाता है।

20.5.समायोजनप्रक्रियाकीविशेषताएँCharacteristics of Adjustment Process

1. समायोजन प्रक्रिया एक द्विमार्गी प्रक्रिया है। इसमें व्यक्ति पक्ष के साथ-साथ पर्यावरण पक्ष भी प्रभावित होता है।
2. समायोजन एक गतिशील प्रक्रिया है। इसमें व्यक्ति एक बार समायोजित हो जाने पर इस गुण का अनुप्रयोग आगे की परिवर्तनशील परिस्थितियों में करता है।
3. समायोजन एक उद्देश्यमुखी प्रक्रिया है, क्योंकि मानव की समंजन प्रक्रिया उसकी मूल आवश्यकताओं पर निर्भर करती है।

4. समायोजन की प्रक्रिया में उद्देश्य की प्राप्ति न होने पर कुंठा (Frustration) की उत्पत्ति होती है।
5. समायोजन की प्रक्रिया को तीव्र करने के लिए व्यक्ति की मनोसंरचना, अभिवृत्ति, आकांक्षास्तर, व्यक्तित्व तथा अभिप्रेरणा को समझाना आवश्यक होता है।
6. समायोजन के अभाव में व्यक्ति में अपचारिता, प्रमाद, आक्रामकता, का विकास हो सकता है। तथा आत्मविश्वास में न्यूनता आदि लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

यहां एक प्रश्न उठता है कि सुमायोजित तथा कुसमायोजित व्यक्ति किसे कहेंगे कुसमायोजित तथा सुसमायोजित व्यक्ति के लक्षणों में जो अन्तर हैं उसे क्रमांक 21.6 में प्रस्तुत किया गया है।

20.6. सुसमायोजिततथाकुसमायोजितव्यक्तिकेलक्षण

सुसमायोजित तथा कुसमायोजित व्यक्ति के लक्षणों का अध्ययन हम निम्नलिखित सारणी के रूप में कर रहे हैं।

सारणी 21.1

सुसमायोजित तथा कुसमायोजित व्यक्तियों के लक्षणों की तुलना

क्रम	सुसमायोजित व्यक्ति	कुसमायोजित व्यक्ति
1	ये परिस्थितियों के अनुकूल आचरण करते हैं	ये परिस्थितियों के अनुकूल आचरण नहीं करते।
2	ये पर्यावरण के अनुकूल अपने आप को परिवर्तित करते हैं।	ये पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की सोचते हैं।
3	इनका समाज से समायोजन उच्च स्तर का होता है।	इनका समाज में समायोजन अच्छा नहीं होता
4	इनकी बुद्धि स्थिर होती है।	इनकी बुद्धि स्थिर नहीं होती है, कभी ये कुछ सोचते हैं कभी कुछ सोचते हैं।
5	इनमें समाजिक भावना होती है।	इनमें सामाजिक भावना कम होती है।
6	इनके उद्देश्य स्पष्ट होते हैं।	इनके उद्देश्य स्पष्ट नहीं होते हैं।
7	ये कठिनाइयों को सामना नियोजित ढंग से करते हैं।	ये कठिनाइयों का सामना करने के स्थान पर परिस्थितियों को कोसते रहते हैं।

8	ये संवेगात्मक रूप में परिपक्व होते हैं।	ये संवेगात्मक रूप से अपरिपक्व होते हैं।
9	ये क्षमाशील होते हैं। सर्वेभवन्तु सुखिनः की भावना रखते हैं।	इनमें घृणा, द्वेष तथा बदले की भावना से ग्रस्त होते हैं।
10	ये मानसिक रूप से परिपक्व तथा तनाव से मुक्त रहते हैं।	ये मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं और तनाव से युक्त हो जाते हैं।
11	असफलता को ये एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हैं।	असफलता में अपना संतुलन खो देते हैं।
12	इनमें मानसिक द्वन्द्व को शीघ्र समाप्त कर लेते हैं।	ये मानसिक द्वन्द्व से पीड़ित होकर अपने स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं।

अब हम उन कारकों का अध्ययन करेंगे जो कि किसी व्यक्ति के सुसमायोजन के लिए उत्तरदायी होते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. गेट्स के अनुसार समायोजन की परिभाषा लिखिए।
2. समायोजन की प्रक्रिया में उद्देश्य की प्राप्ति न होने पर ________ की उत्पत्ति होती है।
3. सुसमायोजित व्यक्ति संवेगात्मक रूप में परिपक्व होते है। (सत्य/असत्य)
4. कुसमायोजित व्यक्ति के कोई तीन लक्षण लिखिए।

20.7अच्छेसमायोजनकेनिर्धारक(Determinants of Good Adjustment)

अच्छे समायोजन के पहलुओं का निर्धारण हमेशा के लिए नहीं किया जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक समाज की संस्कृति तथा मूल्य भिन्न-भिन्न होते हैं और वे समय की मांग तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं। समायोजन के कुछ पहलुओं का निर्धारण मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया है, उनमें से प्रमुख निर्धारक इस प्रकार हैं।

1. **शारीरिक स्वास्थ्य (Physical Health)**: व्यक्ति को विभिन्न शारीरिक रोगों से मुक्त होना चाहिए। इन शारीरिक रोगों के कारण व्यक्ति की कार्य-कुशलता में कमी आती है। फलस्वरूप व्यक्ति का समायोजन प्रभावित होता है।

2. **कार्य की कुशलता (Ability to Work)**: यदि व्यक्ति अपने कार्य को कुशलतापूर्वक पूर्ण करता है तो उद्देश्य की प्राप्ति सरलता से हो जाती है। अतएव कार्य-कुशलता, समायोजन का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है।
3. **मनौवैज्ञानिक शान्ति (Psychological Peace):** इसका तात्पर्य है कि व्यक्ति में किसी प्रकार के मानसिक अथवा मनोवैज्ञानिक रोग नहीं होने चाहिएं क्योंकि ये रोग व्यक्ति के समायोजन को प्रभावित करते हैं।
4. **सामाजिक स्वीकृति (Social Acceptance):** प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक स्वीकृति की अभिलाषा रखता है। यदि व्यक्ति समाज के मूल्यों, मानकों, विश्वासों आदि के अनुरूप आचरण करता है तो हम उसे सुसमायोजित कह सकते हैं। परन्तु यदि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति समाज विरोधी क्रियाओं द्वारा करता है तो उसे हम कुसमायोजित व्यक्ति कहते हैं।

20.8समायोजनकीविभिन्नविधियाँ (Various Methods of Adjustment)

बालकों में समायोजन मुख्यतः तीन तरीकों से होता हैं-

1. **रचनात्मक समायोजन** - यदि व्यक्ति अपने सम्मुख प्रस्तुत समस्या का समाधान रचनात्मक या उचित तरीके से करता है, तो उसे रचनात्मक समायोजन कहा जाता है, जैसे-लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्नों में वृद्धि करना, समस्या पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करना, अन्य लोगों से उचित सलाह लेना आदि रचनात्मक कार्य व्यक्ति को समायोजन की ओर ले जाते हैं।
2. **स्थानापन्न समायोजन** - यदि व्यक्ति द्वारा किये गये प्रयत्नों से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पा रही है तो वह सम्भावित लक्ष्य का प्रतिस्थापन करके स्वयं को समायोजित कर सकता है, जैसे बालक के सामने कठिनाई उपस्थित होती है और कठिनाई के लिए यदि एक बालक पढ़ाई न करने के कारण कक्षा में कमजोर चल रहा है तो वह अपनी कमजोरी स्वीकार न करके दूसरों पर प्रतिस्थापित कर देता है, जैसे-अध्यापक रोज-रोज छुट्टी पर रहते हैं, पढ़ाते नहीं है, घर पर कार्य अधिक करना होता है। इत्यादि।
3. **मानसिक विरचनाएं** - मानसिक विरचनाएं जैसे इच्छा का दमन, प्रक्षेपण, औचित्य स्थापन का प्रयोग करके भी व्यक्ति कठिनाइयों से बच सकता है तथा समायोजित हो सकता है। इन मानसिक विरचनाओं को रक्षा युक्तियाँ (Defense Mechanism) भी कहते हैं।

   जे0एफ0 ब्राउन के अनुसार ‘‘ मनोरचनाएं, वे चेतन एवं अचेतन प्रक्रियाएं हैं, जिनसे आन्तरिक संघर्ष कम होता है अथवा समाप्त हो जाता है’’

"The mental mechanisms are various conscious or unconscious processes whereby the conflict situation is eliminated or reduced in its severity". **-J.F. Brown**

(1) **रक्षा युक्तियों की विशेषाताएं (Characteristics of Defense Mechanism)**

1. ये वास्तविकता को विकृत करती है।
2. मनोरचनाओं के उपयोग से आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व कम या समाप्त हो जाता है।
3. मनोरचनाएं प्रतिक्रिया करने का ढंग है।
4. यह चेतन और अचेतन किसी भी स्तर पर हो सकती है।
5. इनकी सहायता से व्यक्ति प्रतिबल वाली परिस्थितियों का सामना करता है।
6. इनके उपयोग से उपयुक्ता की भावना बनी रहती है।

(2) **रक्षा युक्तियों के प्रकार (Types of Defense Mechanism)**

रक्षा युक्तियों के निम्नलिखित प्रकार हैं-

1. **उदात्तीकरण (Sublimation)**जब व्यक्ति की कामप्रवृत्ति तृप्त न होने के कारण उसमें तनाव उत्पन्न करती है, तब वह कला, धर्म, साहित्य, पशुपालन, समाजसेवा आदि मे रुचि लेकर अपने तनाव को कम करता है। अर्थात मूल प्रवृत्तियों को सामाजिक स्वीकृति के रूप में व्यक्त करना उदात्तीकरण है। उदात्तीकरण से दमित इच्छाएं वांच्छिनीय दिशाओं में प्रवृत्त हो जाती हैं। कहते हैं कि - महाकवि तुलसीदास अपने यौवन में कामुक प्रवृत्ति के थे। पत्नि के उपदेश से वे काम-भावना का उर्दतीकरण करके ही वे अतुलनीय राम भक्त हुए तथा उन्होंने रामचरित मानस जैसे ग्रन्थ की रचना की तथा अन्य कई बहुत ही विलक्षण ग्रन्थों की रचना की।
2. **पृथक्करण या प्रत्याहार (Withdrawal)** इस विधि में व्यक्ति अपने को तनाव उत्पन्न करने वाली स्थिति से पृथक कर लेता है। उदाहरणार्थ, यदि उसके मित्र उसका मजाक उड़ाते हैं ,तो वह उनसे मिलना-जुलना बन्द कर देता है। जिस कारण उसका सामाजिक विकास अवरुद्ध हो जाता है और उसका समाजिक व्यवहार असाधारण हो जाता है। इस के दो रूप हो सकते है-

   (1) प्रतिगमन (2) दिवास्वपन

i. प्रतिगमन (Regression)

इस विधि में व्यक्ति अपने तनाव को कम करने के लिए वैसा ही व्यवहार करता है, जैसा वह पहले कभी करता था। उदाहरणार्थ, जब दो वर्षीय बालक को अपने छोटे भाई के जन्म के कारण अपने

माता-पिता का पूर्ण प्यार मिलना बन्द हो जाता है, तब वह छोटे बच्चे के समान घुटनों के बल चलने लगता है और केवल मां द्वारा भोजन खिलाये जाने की हठ करता है।

ii. दिवास्वप्न (Day Dreaming)

इस विधि में व्यक्ति कल्पना जगत में विचरण करके अपने तनाव को कम करता है। उदाहरणार्थ, निराश प्रेमी अपने काल्पनिक संसार में किसी सुन्दरी को अपनी पत्नी या प्रेयसी बनाकर उसके साथ समागम करता है।

3. **आत्मीकरण (Identification)**-इस विधि में व्यक्ति किसी महान् पुरुष, अभिनेता, राजनीतिज्ञ आदि के साथ एक हो जाने का अनुभव करता है। बालक अपने पिता से और बालिका अपनी माता से तादात्म्य स्थापित करके उनके कार्यों का अनुकरण करते हैं। ऐसा करके उन्हें आनन्द का अनुभव होता है, जिसके फलस्वरूप उनका तनाव कम हो जाता है।
4. **निर्भरता (Dependence)** इस विधि में व्यक्ति किसी दूसरे पर निर्भर होकर अपने जीवन का उत्तरदायित्व उसे सौंप देता है। उदारणार्थ, सांसारिक कष्टों से परेशान होकर मनुष्य किसी महात्मा का शिष्य बन जाता है और उसी के आदेशों एवं उपदेशों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करने लगता है।
5. **औचित्य-स्थापन (Rationalization)**-इस विधि में व्यक्ति किसी बात का वास्तविक कारण न बताकर ऐसा कारण बताता है, जिसे लोग अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। जैसे एक बालक यह स्वीकार नहीं करता है कि वह स्वयं देर से आया है। इसके विपरीत वह कहता है कि उसकी घड़ी सुस्त हो गई थी या उसे कहीं भेज दिया गया था आदि।
6. **दमन (Repression)**-इस विधि में व्यक्ति तनाव को कम करने के लिए अपनी इच्छाओं का दमन करता है। उदाहरणार्थ, वह अपनी काम-प्रवृत्ति को व्यक्त करके समाज के नैतिक नियमों के विरुद्ध आचरण नहीं कर सकता है। अतः इस प्रवृत्ति का पूर्ण रूप से दमन करने का प्रयास करता है।
7. **प्रक्षेपण (Projection):** इस विधि में व्यक्ति अपने दोष का आरोपण दूसरे पर करता है। उदाहरणार्थ, यदि बढ़ई द्वारा बनाई गई किवाड़ टेढ़ी हो जाती है तो वह कहता है कि लकड़ी गीली थी। या अच्छे अंक न आने पर विद्यार्थियों का अध्यापकों को दोष देना।
8. **क्षतिपूर्ति (Compensation)**-इस विधि में व्यक्ति एक क्षेत्र की कमी को उसी क्षेत्र में या किसी दूसरे क्षेत्र में पूरा करता है। उदाहरणार्थ, पढ़ने-लिखने में कमजोरी बालक दिन-रात परिश्रम करके अच्छा छात्र बन जाता है या पढ़ने-लिखने के बजाय खेलकूद की ओर ध्यान देकर उसमें यश प्राप्त करता है।

समायोजन के लिए बच्चों को रक्षा युक्तियों की आवश्यकता ही न पड़े इस के लिए उनका स्वाभाविक विकास हो यह बहुत आवश्यक है। कुसमायोजन तभी आता है जब पालन पोषण में कमी आ जाये इसलिए बच्चों में स्वतः स्फूर्त समायोजन हो, उसके लिए अध्यापकों को एसी युक्ति अपनानी चाहिये जिससे समायोजन स्वाभाविक तथा अवाध रूप से पूर्ण हो सके। क्योंकि सुसमायोजित व्यक्ति सामाजिक भी होता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. समायोजन के प्रमुख निर्धारकों के नाम लिखिए।
6. समायोजन की विभिन्न विधियों के नाम लिखिए।
7. रक्षा युक्तियों की कोई दो विशेषाताएं लिखिए।
8. रक्षा युक्तियों के प्रकारों के नाम लिखिए।
9. प्रतिगमन क्या है?
10. कल्पना जगत में विचरण करके अपने तनाव को कम करने को क्या कहते हैं?

20.9बच्चोंमेंसुसमायोजनकेविकासमेंविद्यालयोंतथाअध्यापकोंकेदायित्व

बच्चों में सुसमायोजन के विकास में विद्यालय तथा अध्यापक का महत्वपूर्ण स्थान है। सुसमायोजन के लिए किये जाने वाले प्रयासों को हम संक्षेप में आगे0 प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. विद्यालय को भयावहक न बनाया जाये, वह विद्यार्थी का घर के बाद दूसरा प्रिय स्थान होना चाहिए।
2. विद्यालय के समय में वृद्धि की जाये ताकि अधिक समय में अधिक कार्यक्रम आयोजित किये जा सकें ताकि छात्रों को अपना सर्वांगीण विकास करने का अवसर उपलब्ध हो सके। अल्प-समयविधि के विद्यालयों में केवल पुस्तकीय ज्ञान ही देना सम्भव रहता है। कई व्यक्ति मानते हैं। कि प्रहर पाठशाला (तीन घंटे) से समुचित शैक्षिक उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है। परन्तु तीन घंटे की अवधि के विद्यालय में समाजीकरण का अवसर ही उपलब्ध नहीं हो सकता। विद्यालय समाजीकरण का एक आदर्श स्थान हो सकता है क्योंकि वहां पर व्यवस्थित ढंग से समाजीकरण की प्रक्रिया को सम्पन्न किया जा सकता है।
3. विद्यालयों में स्काउटिंग तथा गाइडिंग के प्रशिक्षण की व्यवस्था रहनी चाहिए तथा प्रत्येक विद्यार्थी स्काउट या गर्ल गाइड का प्रशिक्षण प्राप्त करे। यह एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है जो बच्चों में प्रेम भावना, अन्तरराष्ट्रीय सद्भाव के विकास के

साथ बच्चों के समाजीकरण में अपना महत्वपूर्ण योगदान देता है तथा उसमें आत्मनिर्भरता का विकास करके आत्म गौरव को विकसित करता है। स्काउटिंग के सामूहिक-कार्य बच्चों में समाजिकता का विकास करते है, तथा समाज के प्रति उनके दायित्वों का बोध कराते हैं। इससे बच्चों में समाजीकरण की क्रिया तीव्र गति से तथा सुविचारित सुव्यवस्थित ढंग से होती है।

4. विद्यालयों में खेलकूद की व्यवस्था पर्याप्त हो। खेल सामूहिक भावना का विकास करते हैं। खेल को खेल की भावना से खेला जाय उसमें स्वस्थ प्रतियोगिता तो हो सकती है परन्तु अस्वस्थ प्रतियोगिता तो होनी ही नहीं चाहिए। खेल ऊंच-नीच, छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, जाति पाति, धर्म आदि की भावना से मुक्त रहते हैं। कहावत भी है ‘‘खेल में मियांजी नहीं। ‘‘यदि प्रतियोगिता विहीन खेल खेले जाएं तो अधिक अच्छा रहता है।
5. विद्यालय की समूची प्रणाली लोकतांत्रिक होनी चाहिए।
6. विद्यालय की अनुशासन प्रणाली दमनात्मक, मुक्तात्मक तथा अवरोधात्मक न होकर उपचरात्मक होनी चाहिए।
7. बच्चों को निषेधात्मक आदेश (यह नहीं करो, ऐसे नहीं करते हैं आदि) नहीं देने चाहिए। इस से बच्चों में नकारात्मकता की वृद्धि होती है।
8. बच्चे के व्यक्तित्व का सम्मान करें। इससे उनमें आत्मविश्वास बढ़ता है।
9. धर्म, जाति आदि के आधार पर बच्चों को प्रताड़ित अथवा प्रोत्साहित कदापि नहीं करें।
10. बच्चों के नाम प्रत्येक अध्यापक को याद हों। ध्यान रखे स्वयं का नाम व्यक्ति का सर्वप्रिय शब्द होता है। इससे उनमें आत्मविश्वास का उदय होता है।
11. बच्चों को विश्वास में लिया जाए।
12. बच्चों को अपनी बात कहने का अवसर मिले।
13. सरंक्षकों से अच्छे सम्बन्ध तथा सम्पर्क होना विद्यालय के लिए तथा अध्यापकों के लिए अच्छी बात है। इससे छात्र का विकास होता है।
14. छात्र का अपमान तथा उपहास कभी नहीं करना चाहिए।
15. छोटी-छोटी बातों को तूल नहीं देना चाहिए।
16. साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा सामाजिक आदर्श प्रस्तुत करे।। इन कार्यक्रमों में समस्त बच्चे भाग ले, ऐसी व्यवस्था करना बहुत आवश्यक है।
17. अध्यापकों को बदले की भावना से काम नहीं करना चाहिए। शिष्य को अपने पुत्र-पुत्री की तरह ही मानना चाहिए।
18. अपंग, विकलांग बच्चों को सामूहिक कार्यों में विशेष प्रोत्साहन देना चाहिए इससे उनमें आत्मविश्वास का उदय होता है।

19. दृष्टि-दोष, वाक-दोष वाले बच्चों को विशेष प्रोत्साहन की आवश्यकता होती है। वह उन्हें मिलना ही चाहिए।
20. संकीर्णता के अवगुण को निकाल कर छात्रों में व्यापक दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए। यही सनातन परम्परा है और यही हितकर भी है। विश्व बन्धुत्व (वसुधैव कुटुम्बकम्) की भावना क उदय हो ऐसे प्रयास अवश्य करने चाहिए।
21. प्रत्येक अध्यापक को प्रतिदिन यह कथन सोचकर अपने रुमाल में गाँठ लगा लेनी चाहिए तथा अपने स्टॉफ रूम में इसे सुन्दर अक्षरों से लिखकर लटका देना चाहिए। ताकि कक्षा में जाने से पूर्व उसे प्रत्येक अध्यापक पढ़ सके। वह महत्वपूर्ण कथन इस प्रकार है- बच्चा, बच्चा ही है न इससे कम और न इससे अधिक। वह आदमी का छोटा रुप नहीं है। वह तो बच्चा ही है। उसके साथ, बच्चों के साथ किया जाने वाला व्यवहार ही किया जाना चाहिए।

20.10सुसमायोजनमेंपरिवारकादायित्व

एक बहुत प्रचारित उक्ति है जिसे प्रत्येक अध्यापक तथा बाल मनोविज्ञान विशेषज्ञ बार-बार दोहराता हैं। **''समस्यात्मक बच्चे नहीं, उनके माता-पिता होते हैं।''**

इस कथन को निष्पक्ष माता-पिता भले ही मान लें वह भी समझाने के बाद। परन्तु कोई भी साधारण माता-पिता इस कथन को स्वीकार नहीं करेगा। लेकिन बात यह शत-प्रतिशत ठीक है। बच्चे का समाजीकरण ठीक प्रकार से सुचारु रूप से हो इसके लिए परिवार को निम्नलिखित सुझावों पर ध्यान देना चाहिए-

1. बच्चे के शारीरिक दोषों का उपचार यथाशीघ्र ही नहीं बल्कि पता चलते ही किसी योग्य डॉक्टर से करना चाहिए।
2. बच्चे प्यार के भूखे होते हैं। परिवार से उन्हें प्यार मिले और इतना मिले कि उनकी प्यार की भूख पूरी हो जाए। अत्यधिक लाड़ करना भी बच्चे के हित में नहीं है।
3. माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यांे के बीच पारस्परिक प्रेम होना चाहिए। यदि किन्हीं व्यक्तियों का कलह के बिना भोजन ही न पचता हो तो कलह लड़ाई-झगड़ा बच्चो की अनुपस्थिति में किया करें।
4. बच्चों को स्वालम्बन का पाठ पढांए उनमें सहकारिता की भावना का उदय करें उनमें घर तथा समाज के प्रति दायित्व का बोध करायें।
5. बच्चों में पारस्परिक तुलना कभी न करें। प्रत्येक बच्चे को महत्व दें। प्रत्येक बच्चे को अपना व्यक्तित्व होता है। पारस्परिक तुलना से बच्चों में हीन भावना तथा द्वेष की भावना जागृत होती है।

6. प्रत्येक बच्चे में अच्छाइयां खोजें तथा उसकी अच्छाइयों को प्रोत्साहन दें। बुराइयों को नजर अंदाज करें। ऐसा करने से अच्छाइयां विकसित होंगी तथा बुराइयां छूट जाएंगी। समस्यात्मक बच्चे के लिए इस उपचार में परिवार के सभी सदस्य हिस्सा लें।
7. घरेलू गोष्ठियों का आयोजन प्रत्येक घर में प्रतिदिन होना चाहिए। एक साथ बैठकर खाना खायें। प्रत्येक सदस्य को अपनी बात प्रस्तुत करने का अवसर मिले।
8. बच्चों के साथ उनके खेल भी खेलें, इससे इन्हें आनन्द की अनुभूति होती है। खेल में जीतने पर बच्चे को विशेष खुशी का आभास होता है। यह भी ध्यान में रखे कि बच्चों को खेल में हरायें नहीं बल्कि जितायें।
9. अपने सामाजिक आर्थिक स्तर के लोगों के साथ रह।
10. अनुशासन का आधार प्रेम है। क्रोध, अहंकार, कठोरता, क्रूरता से बच्चे बनते नहीं बल्कि बिगड़ते हैं।
11. अपने विचार बच्चों पर थोपे नहीं बच्चों को वस्तु स्थिति से परिचित करना आपका दायित्व है उसे पूरा करें। निर्णय लेना उनका स्वयं का कार्य है। उन्हें स्वयं ही निर्णय लेने दें।
12. बच्चे की बात को ध्यान पूर्वक सुनें और यदि वे आपकी सलाह मांगे तो अपनी सलाह भी देवें।
13. निषेधात्मक आदेश न देकर सुझावात्मक निर्देश दें।
14. बच्चों के बारे में अपने प्रियकर अनुभवों को अपने सच्चे मित्रों को सुनाएं।
15. विद्यालय का चयन बहुत सावधनीपूर्वक किया जाना चाहिए। क्योंकि परिवार के बाद विद्यालय ही एक प्रमुख स्थान है जहां बच्चों का समाजीकरण किया जाता है। विद्यालय बालक के सर्वांगीण विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं बच्चों के लिए विद्यालय का चयन करते समय यह ध्यान रखें कि विद्यालय में आपके अपने सामाजिक और आर्थिक स्तर के बच्चे ही आते हों। उच्च समाजिक आर्थिक स्तर के बच्चों के बीच बच्चा अपने में हीनभावना पनपा लेगा। तथा निम्न आर्थिक सामाजिक स्तर के बालकों के बीच उच्च भावना से पीड़ित हो जाएगा। उच्च तथा निम्न दोनों भावनाएं ही बच्चे के स्वाभाविक समाजीकरण को अवरुद्ध करती हैं। विद्यालय इस प्रकार का हो जहां पर बालकों में स्वावलम्बन, आत्माभिव्यक्ति, आत्मनिर्भरता, सामाजिकता, ईमानदारी, नियमितता का विकास किया जाता हो। जिस विद्यालय में बच्चे को प्रेम न मिले बच्चों के स्वाभिमान का सम्मान न होता हो उसमें बच्चे को कदापि भर्ती न करायें, भले ही उस विद्यालय का परीक्षाफल कितना भी शानदार क्यों न हो, तथा भले ही ख्याति के क्षितिज पर अपनी विजय पताका फहराने के लिए विख्यात ही क्यों न हो।

16. बच्चों को अतिथियों या नवागुंतकों तथा पराये लोगों के सामने दंड बिल्कुल न दे। शारीरिक दंड देना तो पाश्विक वृत्ति है। इन कार्यों से बच्चे का 'स्व' आहत होता है। कठोरता को समझाने का रूप दीजिए। याद रखें कठोरता से बच्चे भीरु, विद्रोही, घृणा करने वाले तथा हीन भावना के शिकार होते हैं।
17. बच्चों को ऐसा कार्य कदापि न दें जिसके पूरा करने की उससे अपेक्षा न की जा सके। कठिन कार्यों के करने में उसे अपने साथ रखे ताकि व उस कार्य को करना सीख जाए।
18. थोपे गए कायदे कानून, नियम, उपनियम आदि शासन कहलाते हैं। अनुशासन स्वयं पर स्वयं का शासन है। बच्चों को स्वयं पर शासन करना सिखाएं।
19. कठोर दंड बच्चें को ढीठ तो बनाता ही है साथ में बच्चे अवज्ञा करना भी शुरु कर देते हैं। क्रोध के वशीभूत होकर दिया गया दंड भयंकर विनाश का कारण होता है।
20. बच्चों को उपेक्षित न करें। देखने में यह आया है कि दूसरा बच्चो पैदा हो जाने पर पहले बच्चे के प्रति उपेक्षा हो जाती है। इससे बड़े बच्चे में छोटे बच्चे के प्रति ईर्ष्या तथा चिढ़ होने लगती है। इस चिढ़ का प्रदर्शन वह छोटे बच्चे के साथ नोच-खरोंच अथवा मारपीट के द्वारा करता है। यदि ऐसा करने पर उसे डाँट-फटकार या मारपीट मिल जाए तो उसका क्रोध अधिक प्रबल जाता है। असल में बच्चा पहले जैसे प्यार की अपेक्षा करता है और उसे पाने के लिए वह प्रतिगमन करता है। घुटनों के बल चलना, तोतला बोलना, अंगूठा चूसना आदि के द्वारा आपका ध्यान आपनी ओर आकृष्ट करता है। यदि आप फिर भी उसे पूरा प्यार नहीं दे पाते तो वह बिस्तर गीला करके आपके प्रति अपने क्रोध को प्रकट करता है। उपर्युक्त सुझावों को अपनाने से बच्चों में समायोजन सही दिशा में होगा ऐसी आशा ही नहीं बल्कि दृढ़ विश्वास है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

11. विद्यालय की समूची प्रणाली होनी__________ चाहिए।
12. विद्यालयों में ______ तथा _____ के प्रशिक्षण की व्यवस्था रहनी चाहिए।
13. अध्यापक को बच्चों को निषेधात्मक आदेश नहीं देने चाहिए। (सत्य/असत्य)

20.11 सारांश

अंत में हम यही कहना चाहेंगे की बच्चे के सुसमायोजन में यद्यपि अनेक बातों का योगदान है लेकिन यदि परिवारजन तथा विद्यालय इस दिशा में जागरूक रहे तो बच्चो का स्वाभाविक एवं उचित समाजीकरण किया जा सकता है। साथ ही बालकपन में यदि बच्चे में किसी प्रकार की कुसमायोजनता आ गई तो मिलकर उसमें सुधार कर सकते हैं। बच्चों के समायोजन के लिए

अध्यापकों तथा परिवार को निरन्तर सजग रहना आवश्यक है। यदि समस्या अधिक बढ़ती है तो मनोचिकित्सक को दिखाना चाहिए। मनोचिक्त्सक की सलाह बच्चों के लिए निश्चित रूप से लाभकारी रहेगी। कई व्यक्ति मानसिक चिकित्सकों से सलाह लेना नहीं चाहते। वे अलग तरह से सोचते हैं। जबकि मानसिक रोग भी वैसे ही रोग हैं जैसे कि खांसी, जुकाम, दस्त आदि रोग होते हैं जब हम इन रोगों की चिकित्सा कराते है तो कुसमायोजन से ग्रस्त बालक की चिकित्सा कराना भी हमारा दायित्व है।

20.12 शब्दावली

1. समायोजन- अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में सन्तुलन स्थापन के लिए अपने व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन करने को समायोजन कहते हैं।
2. उदात्तीकरण- मूल प्रवृत्तियों को सामाजिक स्वीकृति के रूप में व्यक्त करना उदात्तीकरण है।
3. दिवास्वप्न-कल्पना जगत में विचरण
4. आत्मीकरण-किसी महान् पुरुष, अभिनेता, राजनीतिज्ञ आदि के साथ एक हो जाने का अनुभव करना।
5. प्रक्षेपण-इस विधि में व्यक्ति अपने दोष का आरोपण दूसरे पर करता है।
6. क्षतिपूर्ति-एक क्षेत्र की कमी को उसी क्षेत्र में या किसी दूसरे क्षेत्र में पूरा करना।

20.13 स्वमूल्यांकनहेतुप्रश्नोंकेउत्तर

1. **गेट्स के अनुसार**: ‘‘समायोजन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने और अपने वातावरण के बीच सन्तुलित सम्बन्ध रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है।’’
2. कुण्ठा
3. सत्य
4. कुसमायोजित व्यक्ति के तीन लक्षण निम्न हैं-
   i. ये परिस्थितियों के अनुकूल आचरण नहीं करते।
   ii. ये पर्यावरण को अपने अनुकूल बनाने की सोचते हैं।
   iii. इनकी बुद्धि स्थिर नहीं होती है, कभी ये कुछ सोचते हैं कभी कुछ सोचते हैं।
5. समायोजन के प्रमुख निर्धारकों के नाम निम्न हैं-
   i. शारीरिक स्वास्थ्य
   ii. कार्य की कुशलता
   iii. मनौवैज्ञानिक शान्ति
   iv. सामाजिक स्वीकृति
6. समायोजन समायोजन की विभिन्न विधियों के नाम लिखिए।

i. रचनात्मक समायोजन
ii. स्थानापन्न समायोजन
iii. मानसिक विरचनाएं
7. रक्षा युक्तियों की कोई दो विशेषाताएं निम्न हैं-
   i. ये वास्तविकता को विकृत करती है।
   ii. यह चेतन और अचेतन किसी भी स्तर पर हो सकती है।
8. रक्षा युक्तियों के प्रकारों के नाम निम्न हैं-
   उदात्तीकरण, पृथक्करण या प्रत्याहार , आत्मीकरण, निर्भरता, औचित्य-स्थापन, दमन, प्रक्षेपण, क्षतिपूर्ति
9. अपने तनाव को कम करने के लिए वैसा ही व्यवहार करना, जैसा कोई पहले कभी करता था प्रतिगमन कहलाता है।
10. दिवास्वप्न
11. लोकतांत्रिक
12. स्काउटिंग तथा गाइडिंग
13. सत्य

20.14 संदर्भग्रंथसूची

1. भोपाल सिंह 2010: जनसंख्या शिक्षा (बच्चों का समाजीकरण), मेरठ, इण्टरनेशल पब्लिशिंग हाउस लायल बुक डिपो।
2. पाठक, पी.डी.(2002) शिक्षा मनोविज्ञान, आगरा-विनोद पुस्तक मन्दिर,
3. शुक्ल , ओ.पी. (2002) शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ, भारत प्रकाशन,
4. Murphy, and Murphy (1937) : Experimental social Psychology, New york Harper &

   Harper.
5. चौबे तथा चौबे (2007): शैक्षिक मनोविज्ञान के मूल आधार, मेरठ, इण्टरनेशनलपब्लिशिंग हाउस,

20.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विद्यालय के समय में वृद्धि करने से क्या लाभ है।
2. बच्चों को खेलकूद में हिस्सा लेने से क्या लाभ हैं?
3. निषेधात्मक आदेश क्यों नहीं दिये जाने चाहिए।
4. स्काउट गाइडिंग कार्यक्रम से क्या लाभ होते हैं।
5. अध्यापक अभिभावक सम्बन्ध अच्छे होने से बच्चों को क्या लाभ होता है?

6. खेल में बच्चों को जिताना क्यों आवश्यक है?
7. शारीरिक दण्ड देने की हानियां लिखें।
8. उन दुष्प्रभावों को लिखे जो कि बच्चों में दण्ड देने के बाद पनपते हैं।
9. कुसमायोजित बच्चों के बारे में मनोचिकित्सक को दिखाना क्यों आवश्यक है?
10. असफलताएं व्यक्ति के व्यवहार में कौन-कौन से परिवर्तन ला सकती है? सूची का निर्माण करें।